

स्वाध्याय प्रारंभ एवं समापन की विधि

अथ पौर्वाण्हक¹ स्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।

णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं।।

चत्तारिमंगलं—अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(9 बार णमोकार मंत्र जपना—सत्ताईस श्वासोच्छ्वास में)

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवलिअणंतजिणे।

णरपवर-लोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे।।1।।

लोयस्सुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वन्दे।

अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो।।2।।

—लघु श्रुतभक्ति—

श्रुतमपि जिनवरविहितं, गणधररचितं द्वयनेकभेदस्थम्।

अंगांग - बाह्यभावित - मनन्तविषयं नमस्यामि।।1।।

इच्छामि भंते! सुदभक्तिकाउस्सगो कओ तस्सालोचेउं अंगोवंगपइण्णए पाहुइयपरियम्म-सुत्त-पढमाणि-ओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थय-थुइ-धम्म-कहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

अथ पौर्वाण्हकस्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(णमो अरहंताणं से लेकर पूरा पाठ पढ़कर 9 बार णमोकार मंत्र जपकर 'थोस्सामि' स्तव पढ़कर भक्ति पढ़ें।)

—आचार्यभक्ति—

गुरुभक्त्या वयं सार्ध-द्वीपद्वितयवर्तिनः।

वंदामहे त्रिसंख्योन-नवकोटि-मुनीश्वरान्।।1।।

इच्छामि भंते! आयरियभक्तिकाउस्सगो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाणसम्मदंसण-सम्मचारित्त-जुत्ताणं पंचविहाचाराणं आयरियाणं आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

पुनः स्वाध्याय समापन करते समय—

नमोऽस्तु पौर्वाण्हकस्वाध्यायनिष्ठापनक्रियायां श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् णमो अरहंताणं आदि पढ़कर 9 बार महामंत्र जपकर 'थोस्सामिस्तव' पढ़कर श्रुतभक्ति पढ़ें)

1. दिन में 1 बजे के बाद स्वाध्याय करते समय 'अपराण्हक' बोलें। रात्रि में स्वाध्याय के प्रारंभ के समय 'पूर्वरात्रिक' बोलें।

शास्त्र स्वाध्याय का प्रारंभिक मंगलाचरण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः

ओंकारं विन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः॥१॥

अविरलशब्दघनौघ-प्रक्षालितसकलभूतलमलकलंका।
मुनिभिरुपासिततीर्था-सरस्वती हरतु नो दुरितान्॥२॥

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥३॥

श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः। सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां
परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, पापप्रणाशकं, पुण्यप्रकाशकं भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकं
इदं शास्त्रं श्रीषट्खण्डागमं नामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्री सर्वज्ञ देवाः,
तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्री गणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवाः तेषां वचोनुसारमासाद्य श्रीपुष्पदन्त-
भूतबलीआचार्यविरचितं गणिनीआर्यिकाश्रीज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिन्तामणिटीका समन्वितं।
श्रोतारः सावधानतया (पठन्तु) शृण्वन्तु।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥४॥
सर्वमंगलमांगल्यं, सर्वकल्याणकारकम्।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम्॥५॥



श्रीमद्भगवत्पुष्पदंतभूतबलि विरचितः

षट्खण्डागमः

(श्री भूतबलिसूरिवर्यविरचितः)

वेदनाखण्डनाम-चतुर्थः खण्डः

(द्वितीय वेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गताष्टमादिषोडशपर्यन्त नवानुयोगद्वारसमन्वितः)

(द्वादशो ग्रन्थः)

♦ सिद्धान्तचिन्तामणि टीका ♦

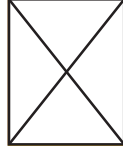
गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

(बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज की शिष्या, दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से विभूषित)

♦ हिन्दी टीका ♦

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी

(पीएच.डी. की मानद उपाधि से विभूषित)



-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र., फोन नं.- (01233) 280184, 280994

Website : www.jambudweep.org, www.encyclopediaofjainism.com

E-mail : jambudweepetirth@gmail.com Facebook : [jaintirthjambudweep](https://www.facebook.com/jaintirthjambudweep)

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं बृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

-: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :-

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

-: मार्गदर्शिन :-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

-: निर्देशक एवं सम्पादक :-

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

-: प्रबंध सम्पादक :-

जीवन प्रकाश जैन

— सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन —

श्रावण कृष्णा एकम् (13 जुलाई 2014) को परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा घोषित “श्री गौतम गणधर वर्ष” (2014-2015) के अन्तर्गत शरदपूर्णिमा 2014 के अवसर पर प्रकाशित)

कम्पोजिंग-ज्ञानमती नेटवर्क, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

(5)

Veer Gyanodaya Granthmala Serial No. 438

ISBN 978-93-84003-44-9

Shrimadbhagwat Pushpadant & Bhootbali Virachitah

Shatkhandagamah

(Shri Bhootbali Surivarya Virachitah)

Vedana Khand nam-Chaturthah Khandah

(With Nine Anuyogdwars form eighth to Sixteenth out of the sixteen divisions of the second Vednanuyogdwar)

Volume-12

– Siddhant Chintamani Commentary –

Ganini Pramukh Aryika Shiromani

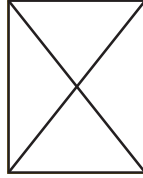
Shri Gyanmati Mataji

(the disciple of Acharya Shri Veer Sagar Ji Maharaj, the first Pattashishya of Charitra Chakravarti Prathmacharya Shri Shantisagar Ji Maharaj & receipt of honorary degrees of D.Litt. two times.)

– Hindi Commentary –

Pragyashramni Aryika Shri Chandnamati Mataji

(receipt of honorary degree of Ph.D.)



– Published By :-

Digambar Jain Institute of Cosmographic Research

Jambudweep-Hastinapur-250404, Distt.-Meerut (U.P.), Phone-(01233) 280184, 280994

Website : www.jambudweep.org, www.encyclopediaofjainism.com

E-mail : jambudweepirth@gmail.com Facebook : [jaintirthjambudweep](https://www.facebook.com/jaintirthjambudweep)

First Edition

500 Copies

Veer Nirvan Samvat 2540

Ashwin Shukla Poornima, 8 October 2014

Price

300/-

VEER GYANODAYA GRANTHMALA

This granthmala is an ambitious project of D.J.I.C.R. in which we are publishing the original and translated works of Digambar Jain sect written in Hindi, English, Sanskrit, Prakrit, Apabhramsh, Kannad, Gujrati, Marathi Etc. We are also publishing short story type books, booklets etc. in the interest of beginners and children.

—Founder & Inspiration—

**GANINI PRAMUKH ARYIKA SHIROMANI
SHRI GYANMATI MATAJI**

—Guidance—

Pragya Shramni Aryika Shri Chandnamati Mataji

—Director & Editor —

Karmayogi Peethadhish Swastishri Ravindrakirti Swami Ji

—Managing Editor—

Jeevan Prakash Jain

All Rights Reserved for the Publisher

Published on the occasion of Sharad Poornima-2014 during "Shri Gautam Gandhar Year" (2014-2015) announced by Param Pujya Ganini Pramukh Aryika Shiromani Shri Gyanmati Mataji on Shravan Krishna Ekam, 13th July 2014.

-Composing-

Gyanmati Network

Jambudweep-Hastinapur (Meerut) U.P.

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या
------	--------------

प्रस्तावना आदि की विषय-सूची

1. सम्पादकीय	9
2. प्रस्तावना	11
3. आचार्य चतुष्टय परिचय	17
4. षट्खण्डागम की सिद्धान्तचिंतामणि टीका का लेखन काल : एक दृष्टि में	26
5. धवला टीका एवं सिद्धान्तचिंतामणि टीका के ग्रंथों में अन्तर (चार्ट)	33
6. चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय	37
7. प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय	38
8. पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का परिचय	39
9. प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी का परिचय	51
10. दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान का परिचय	63
11. वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के सहयोगियों की सूची	68
12. षट्खण्डागम ग्रंथ पूजा	72
13. षट्खण्डागम ग्रंथ की मंगल आरती	77
14. पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा हस्तलिखित संस्कृत टीका का एक पृष्ठ	78
15. पूज्य श्री चंदनामती माताजी द्वारा हस्तलिखित हिन्दी टीका का एक पृष्ठ	79
16. समर्पण	80

षट्खण्डागम:-चतुर्थखण्डः

द्वादशो ग्रन्थः, सिद्धान्तचिंतामणिटीका

1. अथ वेदनाप्रत्ययविधानानुयोगद्वारम् (षोडशभेदान्तर्गतं अष्टमानुयोगद्वारम्) प्रथम महाधिकारः	1
2. वेदनास्वामित्वविधानानुयोगद्वारम् (वेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-नवमानुयोगद्वारम्) द्वितीयोऽधिकारः	30
3. अथ वेदनावेदनाविधानानुयोगद्वारम् (वेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-दशमानुयोगद्वारम्) तृतीयोऽधिकारः	41

विषय	पृष्ठ संख्या
4. वेदनागतिविधानानुयोगद्वारम् (वेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-एकादशानुयोगद्वारम्) चतुर्थोऽधिकारः	82
5. वेदना-अनन्तरविधानानुयोगद्वारम् (वेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-द्वादशानुयोगद्वारम्) पञ्चमोऽधिकारः	91
6. वेदनासन्निकर्षविधानानुयोगद्वारम् द्वितीयो महाधिकारः (वेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-त्रयोदशानुयोगद्वारम्) प्रथमोऽधिकारः	99
7. अथ वेदनापरिमाणविधानानुयोगद्वारम् (वेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-चतुर्दशानुयोगद्वारम्) द्वितीयोऽधिकारः	209
8. अथ वेदनाभागाभागविधानानुयोगद्वारम् (वेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-पंचदशानुयोगद्वारम्) तृतीयोऽधिकारः	248
9. अथ वेदना-अल्पबहुत्वविधानानुयोगद्वारम् (वेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-षोडशानुयोगद्वारम्) चतुर्थोऽधिकारः	258
10. उपसंहार	270
11. द्वादशग्रन्थस्य प्रशस्ति	290
12. हिन्दी टीकाकर्त्री की प्रशस्ति	295
13. टीका लेखन काल	298
14. चतुर्थ वेदनाखण्ड सूत्राणि	301



सम्पादकीय

—कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

किसी लेखक ने लिखा है—

आत्मोन्नति के मार्ग में सत्साहित्य का एक महत्वपूर्ण स्थान है। साधक पुरुष के लिये साधना मार्ग में साध्य की ओर बढ़ने के लिये सत्साहित्य एक प्रकृष्ट आलम्बन है। सद्गुरु सर्वत्र उपलब्ध नहीं होते हैं परन्तु सत्साहित्य प्रत्येक मंदिर, साहित्य सदन एवं स्वाध्याय भवन में उपलब्ध हो जाता है। सत्साहित्य का सच्चा उपयोग तभी होता है जब साधक उसका अध्ययन करके उसमें अपना प्रतिबिम्ब देखता है।

अनादिकालीन संसार में परिभ्रमण करते हुए भव्य जीव के लिए द्वादशांग वाणी ही एक माध्यम है जो भव भ्रमण के अपार पारावार में निमग्न, निराश्रित और निराश पथिक के लिए दिशासूचक ज्योतिस्तम्भ है। आज के पंचमकाल में हमें साक्षात् तीर्थंकरों की वाणी का पान कर भवसागर से पार होने का सौभाग्य नहीं प्राप्त है, परन्तु उस वाणी को ग्रन्थ रूप में गूँथकर 'जिनवाणी' के रूप में हमें प्रदान करने वाले श्री गौतम गणधर स्वामी से लेकर आचार्य श्री कुन्दकुन्दस्वामी एवं इसी परम्परा में बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज तथा उनकी निष्कलंक परम्परा को अक्षुण्णरूप से अभिसिंचित करने वाले सभी संत हम सबके आराध्य हैं और स्तुत्य हैं जिनके द्वारा हम तीर्थंकर भगवन्तों की वाणी का परिज्ञान सुलभता से प्राप्त कर रहे हैं। भगवान महावीर के प्रथम गणधर श्री गौतम स्वामी ने जो दिव्यध्वनि गूँथी और आगे आचार्यों द्वारा लिपिबद्ध की गई, उसका एकदेश रूप ज्ञान श्री धरसेनाचार्य को प्राप्त हुआ और उन्होंने उसे अपने दो सुयोग्य शिष्य श्री पुष्पदंत-भूतबलि मुनिराज को दिया जिन्होंने षट्खण्डागम जैसे महान सिद्धान्तग्रन्थ की रचना की, जिस पर लिखित अनेक टीकाओं में लगभग 1200 वर्ष पूर्व आचार्य श्री वीरसेन स्वामी द्वारा लिखित धवला टीका वर्तमान में उपलब्ध है। इसी महाग्रन्थ के सूत्रों पर जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, सिद्धान्तचक्रेश्वरी, गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ने सरल संस्कृत भाषा में "सिद्धान्तचिंतामणि" नामक टीका का लेखन कर विद्वत् वर्ग एवं जैन जगत पर महान उपकार किया है। 400 से भी अधिक न्याय, व्याकरण, अध्यात्म, सिद्धान्त आदि चारों अनुयोगों से परिपूरित क्लिष्ट एवं सरल से सरल ग्रन्थों की रचयित्री पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी साक्षात् वाग्देवी हैं जिनके जीवन का प्रत्येक क्षण स्वपरकल्याण के साथ-साथ जिनधर्म, जिनागम एवं देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति में बीतता है। ऐसी परम वंदनीय, राष्ट्र गौरव माताजी के चरण जिस तीर्थ पर पड़े वह तीर्थ आकाश की ऊँचाईयों तक पहुँच गया। जिस भव्य जीव पर उनकी दृष्टि पड़ गई वह मानो संसार सागर से ही पार हो गया। वे जो भी कहती हैं सब आगम के आधार से रहता है। वस्तुतः ज्ञान की साक्षात् देवीस्वरूपा, ज्ञानसूर्य, परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की ज्ञानरश्मियाँ प्रत्येक ज्ञानपिपासु, आत्मजिज्ञासु और संसार जलधि से पार होने के इच्छुक भव्य जीव के लिये सेतु के समान हैं।

इस षट्खण्डागम ग्रन्थ की 16 पुस्तकों की संस्कृत टीका पूज्य माताजी की लेखनी से सन् 2007 में पूर्ण हो चुकी है जिसमें से 11 पुस्तकें (हिन्दी टीका सहित) छप चुकी हैं और बारहवीं पुस्तक अब आपके सामने है। इस सिद्धान्तचिंतामणि की संस्कृत टीका का हिन्दी अनुवाद करने वाली पूज्य आर्यिका श्री चंदनामती माताजी इन्हीं पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की सुशिष्या हैं। पूज्य माताजी से

प्राप्त ज्ञान के फलस्वरूप आज इनकी विद्वत्ता भी वंदनीय है। साहित्य की विधाओं में गहन चिन्तन-मनन द्वारा अपनी कृतियों से जिनवाणी माता की सेवा करने वाली आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी का नाम भी चिरस्मरणीय है। वस्तुतः यह कृति एक ऐसी ऐतिहासिक धरोहर है जो सरल भाषा में सिद्धान्त ग्रन्थ का सार समझाने में सक्षम कृति सिद्ध होगी। जीवन के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग पूज्य माताजी की विशेषता है जो प्रत्येक प्राणी के लिये अनुकरणीय है।

मुझे अतीव प्रसन्नता है कि इस महान ग्रन्थराज की महान टीका को प्रकाशित करवाने का सौभाग्य “वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला” को प्राप्त हो रहा है। सम्पादक होने के नाते मैं प्रसन्नता का अनुभव करते हुए पूज्य आर्यिकाद्वय के प्रति नतमस्तक हूँ और स्वाध्यायप्रेमियों से मेरा मात्र यही कहना है कि हो सकता है कि ग्रन्थ के कुछ क्लिष्ट विषय आपको समझ में न आवें किन्तु आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव ने कहा है कि—

विणयेण सुदमधीदं, जदि वि पमादेण होदि विस्सरिदं।

तं उवड्ढादि परभवे, केवलणाणं च आहवदि।।

अर्थात् जो प्राणी विनयपूर्वक श्रुत अर्थात् शास्त्र को पढ़ता है वह पढ़ा गया श्रुत यदि प्रमाद से कभी विस्मृत भी हो जावे तो अगले भवों में कभी न कभी उपलब्ध हो जाता है तथा केवलज्ञान को प्राप्त कराने में भी निमित्त बन जाता है।

अतः इस ज्ञानगंगा में अवगाहन कर श्रुत व गुरु की भक्ति करते हुए आप अपनी आत्मा को समुन्नत बनाते हुए शीघ्र ही कैवल्य सम्पदा की प्राप्ति करने में सक्षम होंगे। पुनः पुनः गणिनी माताजी एवं आर्यिकाश्री के चरणों में नतमस्तक होने ते मात्र इतना ही कहते हुए अपनी कलम को विराम देता हूँ कि—

वदनं प्रसाद सदनं, सदयं हृदयं सुधा मुचो वाचः।

करणं परोपकरणं, येषां केषां न ते वन्द्याः।।



प्रस्तावना

—ब्र. कु. इन्दु जैन (संघस्थ)

दिगम्बर जैन साधु-साध्वियों की महिमा का वर्णन करते हुए शास्त्रों में कहा है—

साधवो जङ्गमं तीर्थं स्वात्मज्ञानं च साधवः।

साधवो देवता मूर्ता साधुभ्यः साधु नापरम्।।

अर्थात् दिगम्बर जैन साधु चलते-फिरते तीर्थ हैं, साधु स्वात्मज्ञान हैं, साधु मूर्तिधारी देवता हैं और साधु से बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

जिनशासन वास्तव में गौरवशाली है जिसे प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर की शासन परम्परा तक अनेक महान साधुओं ने अपने ओजमयी व्यक्तित्व से गौरवान्वित किया है। भगवान महावीर की ॐकारमयी वह पवित्र दिव्यध्वनि, जिसे उनके शिष्य श्री गौतम स्वामी ने ग्रथित किया, वही मौखिक परम्परा क्रमशः शिष्य-प्रशिष्यों में अनवरत चली आई। श्री गौतम गणधर के पश्चात् श्री सुधर्मा स्वामी और जम्बूस्वामी ये दो केवली हुए, पुनः पाँच श्रुतकेवली हुए जिनमें अन्तिम श्री भद्रबाहु थे। प्रथम केवली भगवन्तों को द्वादशांग वाणी का साक्षात् ज्ञान था और श्रुतकेवली भगवन्तों को श्रुतपरम्परा से द्वादशांग का ज्ञान था।

भगवान महावीर की निर्वाण प्राप्ति के पश्चात् 683 वर्षों तक यह श्रुतपरम्परा अविच्छिन्न मौखिक रूप से प्रवाहित होती रही पुनः ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम मंद होने से विच्छिन्न होते-होते एक समय द्वादशांग वाणी का कोई ज्ञाता नहीं रह गया क्योंकि तब तक श्रुतलेखन प्रारंभ नहीं हुआ था। उसी परम्परा में एकदेश रूप अंग पूर्व के धारी श्री धरसेनाचार्य नामक महान ज्ञानी साधु हुए जो अष्टांग महानिमित्त ज्ञानी और मंत्रशास्त्र के तलस्पर्शी ज्ञाता थे। उन धरसेनाचार्य ने श्रुतसंरक्षण की चिन्ता करते हुए अपनी आयु अल्प जान वृहद् साधु सम्मेलन से दो अत्यन्त योग्य मुनियों को बुलाया और उन्हें परीक्षा में उत्तीर्ण पाकर श्रुतज्ञान प्रदान किया। आचार्य श्री पुष्पदंत-भूतबलि नामक इन दो महामुनियों ने उस ज्ञान को प्राप्त कर षट्खण्डागम नामक महान सिद्धान्त ग्रंथ की रचना की।

आगे षट्खण्डागम के उन सूत्रों को समझने में कठिनाई आने पर अनेक टीकाएँ लिखी गईं जो वर्तमान में अनुपलब्ध हैं। आचार्य पद्मनन्दि अपरनाम कुन्दकुन्द, आचार्य शामकुण्ड, आचार्य तुम्बलूर, आचार्य समन्तभद्र और आचार्य वण्णदेव, इन आचार्यों द्वारा लिखित टीकाओं के पश्चात् आचार्य श्री वीरसेन स्वामी हुए जिनकी प्राकृत भाषा में लिखित धवला टीका ही आज उपलब्ध है।

वस्तुतः इस षट्खण्डागम ग्रंथ में सम्पूर्ण द्वादशांग का सार समाहित है। सन्तों की उसी परम्परा में बीसवीं शताब्दी में दक्षिण भारत के आध्यात्मिक सूर्य, सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर महाराज ने मूडबिद्री में विद्यमान उन धवला, जयधवला और महाबंध में महाबंध के ताड़पत्रों के कुछ भाग को कीटकों द्वारा नष्ट कर देने पर इसे सुरक्षित करने हेतु इसे ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण कराकर श्रुतसंवर्धन का महान कार्य किया और उस श्रुतपरम्परा को और अधिक वृद्धिगत

करते हुए उत्तर भारत की देदीप्यमान सूर्यरूप, बीसवीं-इक्कीसवीं सदी में क्वारी कन्याओं के लिए त्याग का मार्ग प्रशस्त करने वाली प्रथम बाल ब्रह्मचारिणी, सरस्वती स्वरूपा, आगम की प्रतिमूर्ति परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने भगवान महावीर के पश्चात् 2500 वर्ष के इतिहास में जैन साधु-साधवियों द्वारा शास्त्र लेखन की मिसाल कायम करते हुए स्वर्णिम इतिहास रच डाला। अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सभी को आश्चर्यचकित करते हुए उन्होंने चारों अनुयोगों का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त कर 400 ग्रंथों की रचना की। इसके साथ ही उन्होंने षट्खण्डागम सिद्धान्त ग्रंथ के सूत्रों पर 16 पुस्तकों की स्वतंत्र संस्कृत टीका "सिद्धान्तचिंतामणि" की रचना कर जो अद्वितीय कीर्तिमान स्थापित किया, जिनसाहित्य की विधाओं में ऐसी शारदा माता का नाम युगो-युगों तक चिरस्मरणीय रहेगा।

उसी षट्खण्डागम की सिद्धान्तचिंतामणि टीका का यह चतुर्थ खण्ड है—वेदनाखण्ड। इसके पूर्व की आठ पुस्तकों में तीन खण्ड प्ररूपित किए गए हैं, पुनः नवमीं से बारहवीं पुस्तक तक वेदनाखण्ड का वर्णन है जिसमें दशवीं से बारहवीं पुस्तक में वेदानुयोगद्वार का कथन है। इस वेदानुयोग द्वार में मुख्य सोलह अधिकार माने हैं, उनमें से अंतिम नौ अधिकार इस 12वें ग्रंथ में हैं—वेदनाप्रत्ययविधान, वेदनास्वामित्वविधान, वेदनावेदनाविधान, वेदनागतिविधान, वेदनाअनन्तरविधान, वेदनासन्निकर्षविधान, वेदनापरिमाणविधान, वेदनाभागाभागविधान और वेदना अल्पबहुत्वविधान।

इस ग्रंथ में इन नौ अनुयोगद्वारों का निरूपण करने हेतु 533 सूत्रों को दो महाधिकारों में विभाजित किया गया है। इस ग्रंथ का लेखन कार्य पूज्य माताजी ने भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर में किया है तथा बीच-बीच में पावापुर एवं राजगृही की वंदना हेतु जाने पर भी वहाँ लेखन कार्य हुआ है। ग्रंथ की पूर्णता माताजी ने दिसम्बर 2003 में मगसिर शुक्ला त्रयोदशी को भगवान महावीर की प्रथम देशनाभूमि राजगृही (बिहार) में की और उसी दिन घोषणा की थी कि "आगे आने वाले पौष कृ. 11 को भगवान पार्श्वनाथ का "तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव" प्रारंभ कर एक वर्ष तक सारे भारत में भगवान पार्श्वनाथ का गुणगान करें।"

इस ग्रंथ के प्रारंभिक मंगलाचरण में पूज्य माताजी ने ॐ, ह्रीं एवं अर्ह बीजाक्षरों को नमन करते हुए लिखा है—

ॐ नमो मंगलं कुर्यात्, ह्रीं नमश्चापि मंगलम्।

मोक्षबीजं महामंत्रं, अर्हं नमः सुमंगलम्॥

अर्थात् "ॐ नमः" मंत्र हम सबका मंगल करे तथा "ह्रीं नमः" मंत्र भी मंगल करे एवं मोक्ष के लिए बीज के समान "अर्हं" महामंत्र हम सबके लिए मंगलकारी होवे॥१॥

इस मंगलाचरण के अनन्तर पूज्य माताजी ने प्रथमतः तीनों लोकों के कृत्रिम-अकृत्रिम जिनालय, उनकी कृत्रिम-अकृत्रिम प्रतिमाओं, अनन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठियों से समन्वित सिद्धशिला तथा अर्हत अवस्था को प्राप्त चौबीसों तीर्थकरों को नमन किया है।

आगे पाँच अधिकारों में विभक्त प्रथम महाधिकार में पाँच वेदनाओं का वर्णन है एवं द्वितीय महाधिकार के अन्तर्गत चार महाधिकारों में शेष चार वेदनाओं का कथन किया है। सर्वप्रथम वेदनाप्रत्यय विधान में 16 सूत्रों के द्वारा नैगम आदि नयों की अपेक्षा ज्ञानावरणादि आठों कर्मों की

वेदना के बंध कारणों का वर्णन है। इसमें नैगम, संग्रह और व्यवहारनय की अपेक्षा सब कर्मों की वेदना के बंध में प्राणातिपात, मृषावाद, मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन और प्रयोग आदि 28 कारण हैं। ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध योग से तथा स्थिति और अनुभागबंध कषाय से होता है। “सद्वण्यस्स अवत्तव्वं” इस 15वें सूत्र के अनुसार शब्दनय की अपेक्षा किसके किसका बंध होता है यह कहना संभव नहीं है, क्योंकि नय में समास का अभाव पाया जाता है। पुनः **वेदनास्वामित्व विधान** नामक अधिकार में पन्द्रह सूत्रों के द्वारा द्वितीय अधिकार का कथन किया गया है जिसमें ज्ञानावरणादि आठों कर्मों के स्वामी का वर्णन है। इसके अंदर नयभेदों से स्वामी के भगों का विषय विशेष दृष्टव्य है। **वेदनावेदनाविधान** नाम के तृतीय अधिकार में तेरह स्थलों द्वारा अष्टावन सूत्रों का निरूपण किया है जिसमें सर्वप्रथम नैगमनय की अपेक्षा जीव, प्रकृति और समय इनके एकत्व और अनेकत्व का अवलम्बन लेकर ज्ञानावरण वेदना के एकसंयोगी, द्विसंयोगी और त्रिसंयोगी भगों का प्ररूपण किया है, पुनः संग्रहनय की अपेक्षा भगों का निरूपण किया है.....आदि। इस वेदनावेदनाविधान अनुयोगद्वार को पढ़कर आठ प्रकार के कर्मरूप पुद्गल स्कंधों को वेदना जानना चाहिए और चिन्तन करना चाहिए कि मेरी आत्मा निश्चयनय से पूर्णतया शुद्ध और कर्म के अनुभव से पृथक् है।

आगे बारह सूत्रों से समन्वित **वेदनागतिविधान** नाम के चतुर्थ अधिकार में ज्ञानावरणादि कर्मों की अपेक्षा भेद से क्या स्थित है, क्या अस्थित है या क्या स्थितास्थित है, इस बात का वर्णन किया गया है तथा नैगम, संग्रह आदि नयों की अपेक्षा घाति और अघाति कर्मों की वेदना स्थित, अस्थित, स्थितास्थित का विचार इसमें किया गया है। इस अध्याय के स्वाध्याय का तात्पर्य यह है कि संसार में जीवों का गमनागमन कर्मों के निमित्त से होता है, कर्मबंध के अभाव में यह जीव गमनागमन से मुक्त हो सिद्धालय में विराजमान हो जाता है अतः सिद्धगति प्राप्ति का उपाय हम सभी को करना चाहिए। वेदना अनन्तर विधान नामक पांचवें अधिकार में ग्यारह सूत्रों के माध्यम से इस बात का विवेचन किया है कि ज्ञानावरणादि कर्मों का बंध होने पर वे उसी समय फल देते हैं या कालांतर में फल देते हैं।

वेदनासन्निकर्ष विधान नामक अनुयोगद्वार के द्वितीय महाधिकार में सर्वप्रथम मंगलाचरणरूप श्री गणधरदेव को पूज्य माताजी ने नमन किया है। इस द्वितीय महाधिकार में तीन सौ बीस सूत्र हैं जिसमें आठों कर्मों की वेदना द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा उत्कृष्ट और जघन्य दोनों रूप बताई गई है, जिसमें प्रथम अधिकार में पाँच सूत्रों के माध्यम से वेदनासन्निकर्ष के भेद-प्रभेदों का कथन किया है। द्वितीय अधिकार में छत्तीस सूत्रों द्वारा ज्ञानावरणादि वेदना का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा कथन किया है। तृतीय अधिकार में एक सूत्र द्वारा दर्शनावरणीय-मोहनीय-अन्तराय कर्मों का वेदनासन्निकर्ष बताया है। चतुर्थ अधिकार में 27 सूत्रों में वेदनीय कर्म की वेदना का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट कथन है। पंचम स्थल में एक सूत्र द्वारा नाम और गोत्र कर्म की वेदना का प्रतिफल है। छठे अधिकार में आयुर्कर्म की वेदना का निरूपण 24 सूत्रों द्वारा किया है। सातवें अधिकार में एक सूत्र द्वारा जघन्यरूप से स्वस्थानवेदनासन्निकर्ष का भेद, आठवें में 24 सूत्र में ज्ञानावरणीय का जघन्य सन्निकर्ष, नवमें में एक सूत्र में दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय

कर्म की वेदना का प्रतिपादन, दशवें में 36 सूत्र द्वारा वेदनीय कर्म का निरूपण, ग्यारहवें में 18 सूत्र में आयुर्कर्म की वेदना का कथन, बारहवें में 18 सूत्र में नामकर्म की वेदना, तेरहवें में 24 सूत्र में गोत्रकर्म की वेदना, चौदहवें में 3 सूत्र में परस्थान सन्निकर्ष वेदना के भेदादि का कथन, पन्द्रहवें में नौ सूत्रों में ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का द्रव्य की अपेक्षा सन्निकर्ष विधान, सोलहवें में 9 सूत्र में ज्ञानावरणीय आदि कर्म की क्षेत्र की अपेक्षा वेदना का कथन किया है।

सत्रहवें अधिकार में 8 सूत्र में ज्ञानावरण आदि कर्मों का काल की अपेक्षा वेदना कथन, अठारहवें में 16 सूत्र में ज्ञानावरणादि कर्मों की भाव की अपेक्षा वेदना, उन्नीसवें में 23 सूत्र में ज्ञानावरणादि कर्मों के द्रव्य की अपेक्षा सन्निकर्ष का कथन, बीसवें में 3 सूत्र में ज्ञानावरणादि कर्म की क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य सन्निकर्ष वेदना, इक्कीसवें में 12 सूत्र में ज्ञानावरणादि कर्म की काल की अपेक्षा वेदना एवं बाईसवें में ज्ञानावरणादि की भाव की अपेक्षा वेदना बताई है। जिसे जानकर उन कर्मों से भिन्न शुद्ध-बुद्ध, चिच्चैतन्यचिंतामणि स्वरूप अपने शुद्धात्मतत्त्व का ही अभ्यास करना चाहिए ऐसी माताजी की प्रेरणा है।

वेदनापरिमाण विधान नामक द्वितीय अधिकार के चौदहवें अनुयोगद्वार में पूज्य माताजी ने आचार्यादि मुनीश्वरों को मंगलाचरणपूर्वक नमन करते हुए आठों कर्मों के भेदों का विवेचन करके 53 सूत्रों द्वारा बताया है कि ज्ञानावरण और दर्शनावरण की असंख्यात लोक प्रमाण प्रकृतियाँ क्यों हैं, साथ ही अन्य सभी कर्मों की प्रकृतियों का परिमाण भी बताया है।

वेदनाभागाभागविधान नामक पन्द्रहवें अनुयोगद्वार में भगवान के एक हजार आठ नामों को मंगलाचरण में माताजी ने नमस्कार करते हुए इक्कीस सूत्रों के माध्यम से प्रकृत्यर्थता, समयप्रबद्धार्थता और क्षेत्रप्रत्यास की अपेक्षा अलग-अलग ज्ञानावरणादि कर्मों की प्रकृतियों के भागाभाग का वर्णन किया है। **वेदनाअल्पबहुत्वविधान** नामक सोलहवें अनुयोगद्वार में जिनशासन को नमन करके छब्बीस सूत्रों द्वारा माताजी ने प्रकृत्यर्थता, समयप्रबद्धार्थता और क्षेत्रप्रत्यास की अपेक्षा ज्ञानावरणादि कर्मों के अल्पबहुत्व का कथन किया है।

इस प्रकार सोलहों अनुयोगद्वारों के कथनपूर्वक वेदनाखण्ड नाम का चतुर्थ खण्ड इस बारहवीं पुस्तक के माध्यम से पूर्ण हुआ है। इस बारहवें ग्रंथ के उपसंहार में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने भगवान महावीर की पंचकल्याणक भूमियों—कुण्डलपुर, जृंभिका, राजगृही, पावापुरी, श्री गौतम स्वामी की केवलज्ञानभूमि गुणावां का परिचय, प्रथम देशनाभूमि राजगृही का परिचय एवं श्री गौतम गणधर स्वामी का परिचय बहुत ही सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है। साथ ही श्री गौतम स्वामी के मुखकमल से विनिर्गत कृतियों के बारे में भी संक्षिप्त प्रकाश डाला है। ग्रंथ के अंत में पूज्य माताजी द्वारा लिखित तीर्थकर जन्मभूमि वंदना के माध्यम से तो बैठे-बैठे ही चौबीसों तीर्थकरों की सोलह जन्मभूमियों की यात्रा हो जाती है। ग्रंथ के अंत में पूज्य माताजी ने प्रशस्ति में ग्रंथ का प्रतिपाद्य विषय, स्थान, गुरु परम्परा आदि को भी बताया है।

शारदातुल्य संस्कृत टीकाकर्त्री पूज्य माताजी को पाकर जिनशासन धन्य है—प्राचीनकाल से ही यह बात सर्वविदित है कि महान आत्माएँ सदैव महान से महान कार्य करके भी अपनी लघुता को ही प्रदर्शित करती हैं तभी तो पूज्य माताजी ने इतने महानतम, क्लिष्ट ग्रंथ को सिद्धान्त ज्ञानामृत

के पिपासुओं के लिए इतना सरल और रुचिपूर्ण बनाने के बाद भी ग्रंथ के उपसंहार में अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए इसे मात्र अपनी आत्मा की शुद्धि और आत्मसिद्धि का कारण बताया है। वर्तमान युग में पूज्य माताजी जैसी महान व्यक्तित्व को पाकर जिनशासन धन्य है, जैनागम धन्य है और ऐसी महान गुरु को पाकर हम सबका जीवन धन्य है जिनके जीवन में चारित्र्यचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर महाराज द्वारा प्रदर्शित की गई आगमचर्या, गंभीरता, शांत मुद्रा, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य आदि के प्रति अकाट्य भक्ति और समर्पण दिखता है। आगम को अपना प्राण समझने वाले उन महान आचार्यवर्य के दर्शन हमें भले ही सुलभ न हुए हों किन्तु माताजी के दर्शन कर, नजदीकी से उनकी चर्या देखकर हम उन गुरुदेव की झलक उनमें सहज ही प्राप्त कर सकते हैं। जिनागम का इतना ज्ञान, इतनी विद्वत्ता होने पर भी निरभिमान, सरल, वात्सल्यपूर्ण मोहक छवियुक्त, अपनी मंद मुस्कान से हर आगत प्राणी की पीड़ा हरने वाली पूज्य माताजी का जैनजगत चिरऋणी रहेगा और उनकी यशपताका चिरकाल तक दिग्दिगन्त व्यापी होती रहेगी।

हिन्दी टीका एवं हिन्दी टीकाकर्त्री माताजी को भी शतशः नमन—किसी ने कहा है कि- Devotion to Ignorance bestows ignorance and devotion to Gyana (Self-Knowledge) bestows Gyana, for it a well established fact that a thing can grant only that which it Possesses.

यही कारण रहा कि इस ग्रंथ की हिन्दी टीकाकर्त्री परमपूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी ने ऐसी विदुषी माताजी का सामीप्य-शिष्यत्व प्राप्त कर जो अद्भुत विद्वत्ता प्राप्त की वह आज सम्पूर्ण समाज के समक्ष है। सन् 1995 में पूज्य चंदनामती माताजी ने पूज्य माताजी से षट्खण्डागम की टीका लिखने हेतु विनम्र निवेदन किया, जिसके प्रतिफल में ही आज हमें ऐसी अमूल्य कृति की प्राप्ति हुई है। ऐसी अमूल्य धरोहर की प्रदात्री कोटिशः धन्य हैं, पूज्य माताजी ने उनके आग्रह से ऐसी दुरुह टीका की न सिर्फ सरल संस्कृत टीका ही की अपितु पूज्य श्री चंदनामती माताजी की विशेष मेधाशक्ति को देखकर उन्हें इसकी हिन्दी टीका करने का दुरुह कार्य सौंपा और गुरु आज्ञानुसार उनके उन गरिमापूर्ण शब्दों को गरिमापूर्ण भाषाशैली में ही अनुवादित कर पूज्य चंदनामती माताजी ने अब तक 13 पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद कर पूज्य माताजी के करकमलों में समर्पित किया, इस मध्य आर्यिका चर्या के परिपालन के साथ-साथ हजारों किमी. की पदयात्रा, विशाल प्रभावनात्मक महोत्सव, अनेक ग्रंथों के लेखन-सम्पादन, संघस्थ शिष्यों के अध्यापन आदि की व्यस्तता के कारण मंदगति से होते हुए इस कार्य को देख पूज्य गणिनी माताजी ने भी मध्य में इसके षष्ठम एवं अष्टम ग्रंथ का स्वयं हिन्दी अनुवाद किया है। इन अनेकानेक कार्यों के सम्पादन के बाद भी पूज्य चंदनामती माताजी वर्तमान आगे की पुस्तकों की टीका में संलग्न हैं। वर्तमान में जब युवा पीढ़ी ज्ञानावरण कर्म के अत्यधिक मंद क्षयोपशम के कारण संस्कृत भाषा को समझने में भी स्वयं को असमर्थ पा रही है ऐसे विषम समय में सिद्धान्त ज्ञानेच्छुक भव्य प्राणियों के लिए सिद्धान्त ग्रंथ का रहस्य बताने में यह हिन्दी टीका मील का पत्थर साबित होगी।

इस बारहवीं पुस्तक की सरल हिन्दी टीका पूज्य माताजी ने पावन तीर्थ हस्तिनापुर में वीर नि. सं. 2528, फाल्गुन शुक्ला तृतीया, 24 फरवरी 2012 को पूर्ण की और परम धन्यता का अनुभव किया। उन्होंने इस ग्रंथ के अंत में उस समय सनावद (म.प्र.) में पूज्य माताजी की प्रेरणा से निर्मित

णमोकार धाम में हो रहे पंचकल्याणक का उल्लेख करते हुए पंचपरमेष्ठी भगवन्तों को नमन किया है, साथ ही प्रशस्ति के माध्यम से गुरु परम्परा को वंदन करते हुए परम उपकारिणी गुरुमाता परम पूज्यनीया गणिनी माताजी को बारम्बार नमन किया है।

बंधुओं! आज हमने भले ही उन पुष्पदन्त-भूतबली आचार्यवर्य के दर्शनों का सौभाग्य नहीं प्राप्त किया, भले ही ब्राह्मी-सुन्दरी माता की पदरज नहीं प्राप्त की, भले ही चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज एवं चारित्रचूड़ामणि आचार्य श्री वीरसागर महाराज के दर्शन नहीं किए किन्तु परम सौभाग्यशाली हैं कि उन्हीं आचार्यद्वय सम, माताद्वय सम, गुरुद्वय सम दोनों माताजी का वरदहस्त, उनके शिष्यत्व का सुयोग, निकट से उनकी आगमोक्त चर्या, उनका वात्सल्य और उनसे शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर मिला, जिससे मेरी यह मानव पर्याय धन्य हो गई। मैं परम उपकार मानती हूँ पूज्य मर्यादा शिष्योत्तमा, प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी का, जिन्होंने मुझे गृहबंधन से निकालकर सदैव प्रेम, मैत्री और सामंजस्य की शिक्षा देकर, अपने मधुर वात्सल्य से अभिसिंचित कर पूज्य माताजी के श्रीचरणों का सौभाग्य प्रदान किया। इन दोनों के कर का अवलम्बन लेकर मैं शीघ्र ही संसाररूपी समुद्र को पार कर पाऊँगी, ऐसा मुझे प्रगाढ़ विश्वास है। वस्तुतः ऐसी महान गुरु, प्रज्ञा गुण से विभूषित, मर्यादाशिष्योत्तमा, गुणरत्न और पी.एच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत, कर्तव्यनिष्ठता से गुरु की महानता का सहज परिज्ञान कराने वाली, गुरुभक्ति में अर्जुन और एकलव्य सम, हित-मित-प्रिय वचनों से जनकल्याण में निरत, साधना की उच्चतम सीढ़ियों पर सतत आरोहण करने वाली पूज्य माताजी के श्रीचरणों में त्रैकालिक कोटिशः वन्दन। इस ग्रंथ की प्रूफ रीडिंग के माध्यम से मुझे स्वाध्याय लाभ के साथ-साथ जो अनिर्वचनीय आनंद हुआ है, वह वर्णनातीत है। अन्त में गुरु की महिमा के बारे में बताते हुए मुक्ति प्राप्ति तक ऐसे गुरुचरण सान्निध्य की पवित्र भावना के साथ मैं अपनी लेखनी को विराम देती हूँ—

गुरुर्विधाता गुरुरेव दाता गुरुः स्वबन्धुर्गुणरत्नसिंधुः।

गुरुर्विनेता गुरुरेव तातो गुरुर्विमोक्षो हतकर्मपक्षः॥

आचार्य चतुष्टय परिचय

प्रस्तुति-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

जिनके श्रीमुखारविन्द से सिद्धान्त का ज्ञान शिष्यद्वय को प्राप्त हुआ था, उस ज्ञान के फलस्वरूप उन दोनों महामुनियों ने षट्खण्डागम सूत्र ग्रंथों की रचना की तथा जिन्होंने उन सूत्रों पर धवला टीका रचकर प्रदान की, ऐसे उन चारों महान आचार्यों (श्री धरसेनाचार्य, श्रीपुष्पदन्ताचार्य, श्री भूतबली आचार्य, श्री वीरसेनाचार्य) के संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

श्री धरसेनाचार्य—

भगवान महावीर स्वामी ने भावश्रुत का उपदेश दिया, अतः वे अर्थकर्ता हैं। उसी काल में चार ज्ञान से युक्त गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति ने बारह अंग और चौदह पूर्वरूप ग्रंथों की एक ही मुहूर्त में क्रम से रचना की अतः भावश्रुत और अर्थपदों के कर्ता तीर्थकर हैं तथा द्रव्यश्रुत के कर्ता गौतम गणधर हैं। उन गौतम स्वामी ने भी दोनों प्रकार का श्रुतज्ञान लोहार्य को दिया। लोहार्य ने भी जम्बूस्वामी को दिया। परिपाटी क्रम से ये तीनों ही सकल श्रुत के धारण करने वाले कहे गये हैं और यदि परिपाटी क्रम की अपेक्षा न की जाये तो उस समय संख्यात हजार सकलश्रुत के धारी हुए। गौतमस्वामी, लोहार्य और जम्बूस्वामी ये तीनों निर्वाण को प्राप्त हुए। इसके बाद विष्णु, नदिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु, ये पाँचों ही आचार्य परिपाटी क्रम से चौदह पूर्व के धारी हुए।

तदनन्तर विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जयाचार्य, नागाचार्य, सिद्धार्थ धृतिसेन, विजयाचार्य, बुद्धिल, गंगदेव और धर्मसेन ये ग्यारह ही महापुरुष परिपाटी क्रम से ग्यारह अंग, दशपूर्व के धारक और शेष चार पूर्वों के एकदेश के धारक हुए।

इसके बाद नक्षत्राचार्य, जयपाल, पांडुस्वामी, ध्रुवसेन, कंसाचार्य ये पाँचों ही आचार्य परिपाटी क्रम से सम्पूर्ण ग्यारह अंगों के और चौदह पूर्वों के एकदेश के धारक हुए।

तदनन्तर सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहार्य ये चारों ही आचार्य सम्पूर्ण आचारांग के धारक और शेष अंग तथा पूर्वों के एकदेश के धारक हुए। “इसके बाद सभी अंग और पूर्वों का एकदेश ज्ञान आचार्य परम्परा से आता हुआ धरसेन आचार्य को प्राप्त हुआ।”

सौराष्ट्र (गुजरात-काठियावाड़) देश के गिरिनगर नाम के नगर की चन्द्रगुफा में रहने वाले अष्टांग महानिमित्त के पारगामी, प्रवचन वत्सल और आगे अंगश्रुत का विच्छेद हो जायेगा, इस प्रकार उत्पन्न हो गया है भय जिनको, ऐसे उन धरसेनाचार्य से महामहिमा (पंचवर्षीय साधु सम्मेलन) में सम्मिलित हुए दक्षिणापथ के (दक्षिण देश के निवासी) आचार्यों के पास एक लेख भेजा। लेख में लिखे गये धरसेनाचार्य के वचनों को अच्छी तरह समझकर उन आचार्यों ने शास्त्र के अर्थ को ग्रहण और धारण करने में समर्थ, नाना प्रकार की उज्ज्वल और निर्मल विनय से विभूषित अंग वाले, शीलरूपी माला के धारक, गुरुओं द्वारा प्रेषण (भेजने) रूपी भोजन से तृप्त हुए, देश, कुल और जाति से शुद्ध अर्थात् उत्तम कुल और उत्तम जाति में उत्पन्न हुए, समस्त कलाओं में पारंगत और तीन बार पूछा है आचार्यों को उन्होंने (आचार्यों से तीन बार आज्ञा ली है जिन्होंने) ऐसे दो साधुओं को आंध्र देश में बहने वाली वेणानदी के तट से भेजा।

मार्ग में उन दोनों के आते समय श्री धरसेन भट्टारक ने रात्रि के पिछले भाग में स्वप्न देखा कि

समस्त लक्षणों से परिपूर्ण, सफेद वर्ण वाले दो उन्नत बैल उनकी तीन प्रदक्षिणा देकर चरणों में पड़ गये हैं। इस प्रकार के स्वप्न को देखकर संतुष्ट हुए धरसेनाचार्य ने “जयउ सुयदेवदा, श्रुतदेवता जयवन्त हो” ऐसा वाक्य उच्चारण किया।

उसी दिन दक्षिणापथ से भेजे हुए वे दोनों साथु धरसेनाचार्य को प्राप्त हुए। उसके बाद धरसेनाचार्य की पादवन्दना आदि कृतिकर्म करके और दो दिन बिताकर तीसरे दिन उन दोनों ने धरसेनाचार्य से निवेदन किया कि “इस कार्य से हम दोनों आपके पादमूल को प्राप्त हुए हैं।” उन दोनों मुनियों के इस प्रकार निवेदन करने पर “अच्छा है, कल्याण हो” इस प्रकार कहकर धरसेन भट्टारक ने उन दोनों साथुओं को आश्वासन दिया। इसके बाद भगवान धरसेन ने विचार किया कि—

“शैलघन, भग्नघट, सर्प, चालनी, महिष, मेंढा, जोक, तोता, मिट्टी और मशक के समान श्रोताओं को जो मोह से श्रुत का व्याख्यान करता है, वह मूढ़ दृढ़रूप से ऋद्धि आदि तीनों प्रकार के गौरवों के अधीन होकर विषयों की लोलुपतारूपी विष के वश से मूर्च्छित हो, बोधि-रत्नत्रय की प्राप्ति से रहित होकर भववन में चिरकाल तक परिभ्रमण करता रहता है।”

इस वचन के अनुसार स्वच्छन्दतापूर्वक आचरण करने वाले श्रोताओं को विद्या देना संसार और भय को ही बढ़ाने वाला है, ऐसा विचार कर, शुभ स्वप्न के देखने मात्र से ही यद्यपि उन दोनों साथुओं की विशेषता को जान लिया था, तो भी फिर से उनकी परीक्षा लेने का निश्चय किया क्योंकि उत्तम प्रकार से ली गई परीक्षा हृदय में संतोष को उत्पन्न करती है। अनन्तर धरसेनाचार्य ने उन दोनों को दो विद्याएँ दीं। उनमें से एक अधिक अक्षर वाली थी और दूसरी हीन अक्षर वाली थी। उनको विद्याएँ देकर यह कहा कि दो दिन का उपवास करके इन विद्याओं को सिद्ध करो। (इन्द्रनंदि आचार्य ने बताया कि उन दोनों ने गुरु की आज्ञा से नेमिनाथ की निर्वाणस्थली पर जाकर विद्याओं को सिद्ध किया)। जब उनकी विद्याएँ सिद्ध हो गईं, तो उन्होंने विद्या की अधिष्ठात्री देविकाओं को देखा कि “एक देवी के दाँत बाहर निकले हुए हैं और दूसरी कानी है।” “विकृतांग होना देवताओं का स्वभाव नहीं है।” इस प्रकार उन दोनों ने विचार कर मंत्र संबंधी-व्याकरण शास्त्र में कुशल उन दोनों ने हीन अक्षर वाली विद्या में अधिक अक्षर मिलाकर और अधिक अक्षर वाली विद्या में से अक्षर निकालकर मंत्र को फिर सिद्ध किया। जिससे वे दोनों विद्या देवियाँ अपने स्वभाव से सुन्दररूप में दिखलाई पड़ीं। उन्होंने ‘आज्ञा देवो’ ऐसा कहा, तब इन मुनियों ने कहा कि मैंने तो गुरु की आज्ञा मात्र से ही मंत्र का अनुष्ठान किया है, मुझे कुछ आवश्यकता नहीं है, तब वे देविकाएँ अपने स्थान को चली गईं ऐसा श्रुतावतार में वर्णन है।

तदनन्तर भगवान धरसेन के समक्ष योग्य विनय सहित उन दोनों ने विद्यासिद्धिसंबंधी समस्त वृत्तान्त निवेदित कर दिया। “बहुत अच्छा” ऐसा कहकर संतुष्ट हुए धरसेनाचार्य ने शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र और शुभ वार में ग्रंथ को पढ़ाना प्रारंभ किया। इस तरह क्रम से व्याख्यान करते हुए धरसेन भगवान से उन दोनों ने आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन पूर्वान्ह काल में विनयपूर्वक ग्रंथ समाप्त किया। विनयपूर्वक ग्रंथ समाप्त किया इसलिए संतुष्ट हुए भूत जाति के व्यंतर देवों ने उन दोनों में से एक की पुष्प, बलि तथा शंख और सूर्य जाति के वाद्य विशेष के नाद से व्याप्त बड़ी भारी पूजा की। उसे देखकर धरसेन भट्टारक ने उनका “भूतबलि” यह नाम रखा तथा जिनकी भूतों ने पूजा की है और अस्त-व्यस्त दन्त-पंक्ति को दूर करके जिनके दाँत समान कर दिये हैं, ऐसे दूसरे का भी श्री धरसेन भट्टारक ने “पुष्पदंत” नाम रखा।

तदनन्तर उसी दिन वहाँ से भेजे गये उन दोनों ने “गुरु की आज्ञा अलंघनीय होती है” ऐसा विचार

कर आते हुए अंकलेश्वर (गुजरात) में वर्षाकाल बिताया। (गुरु ने अपनी अल्प आयु जानकर उन दोनों को वहाँ से विहार कर अन्यत्र चातुर्मास करने की आज्ञा दी और वे दोनों मुनि आषाढ़ सुदी 11 को निकलकर श्रावण वदी 4 को अंकलेश्वर आये, वहाँ पर वर्षायोग स्थापित किया)।

वर्षायोग को समाप्त कर और जिनपालित को साथ लेकर पुष्पदन्ताचार्य तो वनवासी देश को चले गये और भूतबलि भट्टारक तमिल देश को चले गये। तदनन्तर पुष्पदन्ताचार्य ने जिनपालित को दीक्षा देकर बीस प्ररूपणा गर्भित सत्प्ररूपणा के सूत्र बनाकर और जिनपालित मुनि को पढ़ाकर अनन्तर उन्हें भूतबलि आचार्य के पास भेजा। भूतबलि ने जिनपालित के द्वारा दिखाये गये सूत्रों को देखकर और पुष्पदन्ताचार्य अल्पायु हैं, ऐसा समझकर तथा हम दोनों के बाद महाकर्म प्रकृति प्राभूत का विच्छेद हो जायेगा; इस प्रकार की बुद्धि के उत्पन्न होने से भगवान भूतबलि ने द्रव्यप्रमाणानुगम को आदि लेकर ग्रंथ रचना की। इसलिए इस खण्ड सिद्धान्त (षट्खण्ड सिद्धान्त) की अपेक्षा भूतबलि और पुष्पदन्त आचार्य भी श्रुत के कर्ता कहे जाते हैं। अनुग्रंथकर्ता गौतम स्वामी हैं और उपग्रंथकर्ता राग, द्वेष और मोह से रहित भूतबलि, पुष्पदन्त आदि अनेक आचार्य हैं।¹

धरसेनाचार्य का समय—

नदिसंघ की प्राकृत पट्टावली में 683 वर्ष के अंदर ही श्री धरसेन को माना है। यथा—केवली का काल 62 वर्ष, श्रुत केवलियों का 100 वर्ष, दश पूर्वधारियों का 183, ग्यारह अंगधारियों का 123 वर्ष, दस नव व आठ अंगधारी का 97 वर्ष ऐसे $62+100+183+123+97=565$ वर्ष हुए, पुनः एक अंगधारियों में अर्हतबलि का 28 वर्ष, माघनंदि का 21 वर्ष, धरसेन का 19 वर्ष, पुष्पदंत का 30 वर्ष और भूतबलि का 20 वर्ष, ऐसे 118 वर्ष हुए। कुल मिलाकर $565+118=683$ वर्ष के अंतर्गत ही धरसेनाचार्य हुए हैं।

इस प्रकार इस पट्टावली और इन्द्रनन्दि के श्रुतावतार के आधार पर भी श्री धरसेन का समय वीर निर्वाण संवत् 600 अर्थात् ई. सन् 73 के लगभग आता है।

धरसेनाचार्य के गुरु—

उपर्युक्त पट्टावली के अनुसार इनके गुरु श्री माघनंदि आचार्य थे अथवा इन्द्रनन्दि आचार्य ने स्पष्ट कह दिया है कि इनकी गुरु परम्परा का हमें ज्ञान नहीं है।

धरसेनाचार्य की रचना—

यह तो पूर्व में आपने पढ़ा है कि धरसेनाचार्य ने अपने पास में पढ़ने के लिए आए हुए दोनों मुनियों को मंत्र सिद्ध करने का आदेश दिया था अतः ये मंत्रों के विशेष ज्ञाता थे।

अतः इनका बनाया हुआ योनिप्राभूत नाम का एक ग्रंथ आज भी उपलब्ध है। यह ग्रंथ 800 श्लोक प्रमाण प्राकृत गाथाओं में है। उसका विषय मंत्र-तंत्रवाद है, बृहत् टिप्पणिका नामक सूची में उसका उल्लेख आया है। इसी ग्रंथ की एक पाण्डुलिपि भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना में है। इस प्रति में ग्रंथ का नाम तो योनिप्राभूत ही है किन्तु उसके कर्ता का नाम पण्हसवण मुनि पाया जाता है। इन महामुनि ने उसे कूष्माण्डिनी महादेवी से प्राप्त किया था और अपने शिष्य पुष्पदन्त और भूतबलि के लिए लिखा। इन दो नामों के कथन से इस ग्रंथ का धरसेन कृत होना बहुत संभव जँचता है। प्रज्ञाश्रमणत्व एक ऋद्धि का नाम है उसके धारण करने वाले प्रज्ञाश्रमण कहलाते थे। पूना में उपलब्ध “जोगिपाहुड़” की इस

प्रति का लेखन काल सं. 1582 है अर्थात् वह प्रति चार सौ वर्ष से अधिक प्राचीन है। जोणिपाहुड़ ग्रंथ का उल्लेख धवला में भी आया है, जो इस प्रकार है—

जोणिपाहुड़े भण्ड-मंत-तंत-सत्तीओ पोगलाणुभागो ति घेतव्वो।¹

धवला अ प्रति-पत्र।।18।।

इस प्रकार से धरसेनाचार्य के महान उपकारस्वरूप ही आज हमें षट्खण्डागम ग्रंथ का स्वाध्याय करने को मिल रहा है। इन्होंने बारहवें दृष्टिवाद अंग के अंतर्गत पूर्वों के तथा पाँचवें अंग व्याख्याप्रज्ञप्ति के कुछ अंशों को पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्यों को पढ़ाया था। “दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यतानुसार षट्खण्डागम और कषायपाहुड़ ही ऐसे ग्रंथ हैं, जिनका सीधा संबंध महावीर स्वामी की द्वादशांग वाणी से माना जाता है।”

श्री धरसेनाचार्य के इतिहास से हमें यह समझना है कि ये आचार्य अंग और पूर्वों के एकदेश के ज्ञाता थे, मंत्र शास्त्र के ज्ञाता थे एवं एक योनिप्राभृत ग्रंथ भी रचा था, इन्होंने बहुत काल तक चन्द्रगुफा में निवास किया था योग्य मुनियों को अपना श्रुतज्ञान पढ़ाया था। शिष्यों को मंत्र सिद्ध करने को भी दिया था। इस प्रकार से तो हमें अवश्य सोचना चाहिए कि आज के मुनि या आचार्य किसी को मिथ्यात्व के प्रपंच से हटाकर शांति हेतु या किसी कार्य सिद्धि हेतु यदि कुछ मंत्र दे देते हैं, तो देने वाले या मंत्र जपने वाले दोनों ही मिथ्यादृष्टि नहीं हैं तथा उन्होंने श्रुत के विच्छेद के भय से जो दो मुनियों को अपना श्रुतज्ञान देकर उनके निमित्त से आज श्रुतज्ञान की परम्परा अविच्छिन्न रखी है यह महान् उपकार उनका प्रतिदिन स्मरण करना चाहिए। जिस दिन षट्खण्डागम की रचना पूरी हुई है, उस दिन चतुर्विध संघ ने मिलकर श्रुत की महापूजा की थी, उस दिन ज्येष्ठ सुदी पंचमी थी, अतः उस पंचमी को आज श्रुतपंचमी कहकर सर्वत्र श्रुतपूजा करने की प्रथा चली आ रही है। उसे भी विशेष पर्वरूप में मनाकर श्रुत की, गुरु धरसेनाचार्य, पुष्पदंत तथा भूतबलि आचार्य की पूजा करनी चाहिए।

आचार्य श्री पुष्पदन्त और भूतबलि

पुष्पदन्त और भूतबलि का नाम साथ-साथ प्राप्त होता है। फिर भी नंदिसंघ की प्राकृत पट्टावली में पुष्पदंत को भूतबलि से ज्येष्ठ माना गया है। धरसेनाचार्य के बाद पुष्पदंत का आचार्य काल 30 वर्ष का बताया है और इनके बाद भूतबलि का 20 वर्ष कहा गया है अतः इनका समय धरसेनाचार्य के समय के लगभग ही स्पष्ट है।

यह तो निश्चित ही है कि श्री धरसेनाचार्य ने दो मुनियों को अन्यत्र मुनिसंघ से बुलाकर विद्याध्ययन कराया था। अनन्तर शास्त्रसमाप्ति के दिन उनकी विनय से संतुष्ट हुए भूतजाति के व्यंतर देवों ने उन दोनों में से एक मुनि की पुष्प, बलि तथा शंख और सूर्य जाति के वाद्य विशेषों के नाद से बड़ी भारी पूजा की, उसे देखकर धरसेनाचार्य ने उनका “भूतबलि” यह नाम रखा और दूसरे मुनि की अस्त-व्यस्त दंत पंक्तियों को ठीक करके उनके दाँत समान कर दिये-जिससे गुरु ने उनका “पुष्पदन्त” यह नाम रखा। इस धवला टीका के कथन से यह बात स्पष्ट है कि इनका पूर्व नाम कुछ और ही होना चाहिए तथा इनका गृहस्थाश्रम का परिचय क्या है, यह जिज्ञासा सहज ही होती है।

विबुध श्रीधर के श्रुतावतार में भविष्यवाणी के रूप में पुष्पदंत और भूतबलि आचार्य के जीवन पर अच्छा प्रकाश देखने में आता है। यथा—

“भरत क्षेत्र के वामिदेश—ब्रह्मादेश में वसुन्धरा नाम की नगरी होगी। वहाँ के राजा नरवाहन और रानी सुरूपा पुत्र न होने से खेदखिन्न होंगे। उस समय सुबुद्धि नाम का सेठ उन्हें पद्मावती की पूजा का उपदेश देगा। तदनुसार देवी की पूजा करने पर राजा को पुत्रलाभ होगा और उस पुत्र का नाम पद्म रखा जाएगा। तदनन्तर राजा सहस्रकूट चैत्यालय का निर्माण करायेगा और प्रतिवर्ष यात्रा करेगा। सेठ भी राजा की कृपा से स्थान-स्थान पर जिनमंदिरों का निर्माण करायेगा। इसी समय बसन्त ऋतु में समस्त संघ यहाँ एकत्र होगा और राजा सेठ के साथ जिन पूजा करके रथ चलायेगा। इसी समय राजा अपने मित्र मगध सम्राट को मुनीन्द्र हुआ देख सुबुद्धि सेठ के साथ विरक्त हो दिगम्बरी दीक्षा धारण करेगा। इसी समय एक लेखवाहक वहाँ आयेगा वह जिनदेव को नमस्कार कर मुनियों की तथा परोक्ष में धरसेन गुरुदेव की वंदना कर लेख समर्पित करेगा। वे मुनि उसे बाचेंगे कि “गिरिनगर के समीप गुफावासी धरसेन मुनीश्वर अग्रायणीय पूर्व की पंचमवस्तु के चौथे प्राभूतशास्त्र का व्याख्यान आरंभ करने वाले हैं अतः योग्य दो मुनियों को भेज दो। वे मुनि नरवाहन और सुबुद्धि मुनि को भेज देंगे। धरसेन भट्टारक कुछ दिनों में नरवाहन और सुबुद्धि नाम के दो मुनियों को पठन, श्रवण और चिन्तन कराकर आषाढ़ शुक्ला एकादशी को शास्त्र समाप्त करेंगे। उनमें से एक की भूतजाति के देव बलिविधि करेंगे और दूसरे के चार दाँतों को सुन्दर बना देंगे। अतएव भूतबलि के प्रभाव से नरवाहन मुनि का नाम भूतबलि और चार दाँत समान हो जाने से सुबुद्धि मुनि का नाम पुष्पदंत होगा।”

इन्द्रनिर्दिष्ट श्रुतावतार में यह लिखा है कि इन्होंने ग्रंथ समाप्त कर गुरु की आज्ञा से वहाँ से विहार कर अंकलेश्वर में वर्षायोग बिताया। वहाँ से निकलकर दक्षिण देश में पहुँचे। वहाँ पर पुष्पदंत मुनि ने करहाटक देश में अपने भानजे जिनपालित को साथ लिया और दिगम्बरी दीक्षा देकर उन्हें साथ लेकर वनवास देश को चले गये तथा भूतबलि मुनि द्रविड़ देश में चले गये। वनवास देश में पुष्पदंताचार्य ने “बीसदि” सूत्रों की रचना की और जिनपालित को पढ़ाकर तथा उन सूत्रों को उसे देकर भूतबलि मुनि का अभिप्राय जानने के लिए उनके पास भेजा। उन्होंने पुष्पदंताचार्य की अल्पायु जानकर और उन सूत्रों को देखकर बहुत ही संतोष प्राप्त किया पुनः आगे श्रुत का विच्छेद न हो जाये, इस भावना से द्रव्य प्रमाणानुगम को आदि लेकर आगे के सूत्रों की रचना की।

इस प्रकार से भूतबलि आचार्य ने पुष्पदंताचार्य विरचित सूत्रों को मिलाकर पाँच खंडों के छह हजार सूत्र रचे और तत्पश्चात् महाबंध नामक छोटे खण्ड की तीस हजार सूत्र ग्रंथरूप रचना की। इस तरह षट्खण्डागम की रचना कर उसे ग्रंथ रूप में निबद्ध किया। पुनः ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन उस श्रुत की महान् पूजा की। अनन्तर भूतबलि ने जिनपालित को षट्खण्डागम सूत्र देकर पुष्पदंत के पास भेजा। अपना सोचा हुआ कार्य पूर्ण हुआ, ऐसा देखकर पुष्पदंताचार्य ने भी श्रुतभक्ति के अनुराग से पुलकित होकर श्रुतपंचमी के दिन चतुर्विध संघ के समक्ष उनकी महान् पूजा की।

यह षट्खण्डागम ग्रंथ महाकर्म प्रकृति प्राभूत का अंश है तथा इसमें उसके अर्थ के साथ-साथ सूत्र भी समाविष्ट हैं। भूतबलि आचार्य ने चतुर्थ वेदनाखंड में जो “णमोजिणाणं” आदि 44 मंगलसूत्र दिये हैं,

वे गौतम स्वामी के मुखकमल से निकले हुए हैं। इससे श्री पुष्पदंत और भूतबलि आचार्य इस महान् ग्रंथ के कर्ता नहीं हैं, बल्कि प्ररूपक हैं अतः षट्खण्डागम का द्वादशांगवाणी के साथ साक्षात् संबंध है।

षट्खण्डागम का रहस्य—

यह ग्रंथ छह खण्डों में विभक्त है, अतः इसे षट्खण्डागम कहते हैं। उनके नाम—जीवह्वाण, खुद्वाबंध, बंधसामित्तविचय, वेयणा, वग्गणा और महाबंध हैं।

श्री धरसेनाचार्य, पुष्पदंत और भूतबलि के विषय में धवला में अनेक विशेषताएँ उपलब्ध हैं।

यथा—

जयउ धरसेणणाहो, जेण महाकम्मपयडिपाहुडसेलो।

बुद्धिसिरेणुद्धरिओ, समप्पिओ पुप्फयन्तस्स॥¹

वे धरसेन स्वामी जयवन्त होवें, जिन्होंने महाकर्म प्रकृति-प्राभूतरूपी पर्वत को अपने बुद्धिरूपी मस्तक से उठाकर पुष्पदंत को समर्पित किया है।

पणमामि पुप्फयंतं, दुक्कयंतं दुण्णयंधयाररविं।

भग्गसिवमग्गकंटय-मिसिसमिइवइं सया दंतं॥²

जो पापों का अन्त करने वाले हैं, कुनयरूपी अंधकार का नाश करने के लिए सूर्यतुल्य हैं, जिन्होंने मोक्षमार्ग के विघ्नों को नष्ट कर दिया है, जो ऋषियों की सभा के अधिपति हैं और निरन्तर पंचेन्द्रियों का दमन करने वाले हैं, ऐसे पुष्पदन्ताचार्य को मैं प्रणाम करता हूँ।

यहाँ पर “ऋषिसमितिपति” विशेषण से ये महान् संघ के नेता आचार्य सिद्ध होते हैं।

ऐसे ही—

“ण चासंबद्धं भूतबलिभडारओ परुवेदि महाकम्मपयडिपाहुड-अमियवाणेण ओसारिदा णंसरागदोसमोहत्तादो॥”³

भूतबलि भडारक असंबद्ध कथन नहीं कर सकते, क्योंकि महाकर्म प्रकृति प्राभूतरूपी अमृतपान से उनका समस्त रागद्वेष मोह दूर हो गया है।

इन प्रकरणों से इन पुष्पदंत और भूतबलि आचार्यों की महानता का परिचय मिल जाता है। ये आचार्य हम और आप जैसे साधारण लेखक या वक्ता न होकर भगवान् महावीर की द्वादशांग वाणी के अंशों के आस्वादी और उस वाणी के ही प्ररूपक थे तथा राग, द्वेष और मोह से बहुत दूर थे। उनके संज्वलन कषाय का उदय होते हुए भी वे असत्यभाषण से सर्वथा परे होने से वीतरागी थे, महान् पापभीरू थे।

बड़े सौभाग्य की बात है कि उनके द्वारा शास्त्ररूप से निबद्ध हुआ परमागम आज हमें उपलब्ध हो रहा है और हम लोग उनकी वाणी का स्वाध्याय करके अपने असंख्यातगुणित कर्मों की निर्जरा कर रहे हैं तथा महान् पुण्य संचय के साथ-साथ ही सम्यग्ज्ञान को प्राप्त कर अपने आप में कृतकृत्यता का अनुभव कर रहे हैं।

आचार्य श्री वीरसेन

जितात्मपरलोकस्य, कवीनां चक्रवर्तिनः।

वीरसेनगुरोः कीर्तिकलंकावभासते॥⁴

1. धवला पृ. 1, मंगलगाथा। 2. षट्खण्डागम (धवलाटीका), पृ. 1, पृ. 7। 3. धवला पुस्तक 10, पृ. 274-275।
4. हरिवंशपुराण सर्ग 1।

जिन्होंने स्वपक्ष और परपक्ष के लोगों को जीत लिया है तथा जो कवियों के चक्रवर्ती हैं, ऐसे श्री वीरसेन स्वामी की निर्मल कीर्ति प्रकाशित हो रही है।

ये आचार्य वीरसेन किनके शिष्य थे? इनका समय क्या था? इन्होंने क्या-क्या रचनाएं कीं? आदि संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

जीवन परिचय—आचार्यदेव ने स्वयं अपनी धवला टीका की प्रशस्ति में अपने गुरु का नाम एलाचार्य लिखा है। पर इसी प्रशस्ति की चौथी गाथा में गुरु का नाम आर्यनंदि और दादा गुरु का नाम चन्द्रसेन कहा है। डॉ. हीरालाल जैन का अनुमान है कि एलाचार्य इनके विद्यागुरु और आर्यनंदि इनके दीक्षागुरु थे।

इस प्रशस्ति से श्री वीरसेनाचार्य सिद्धान्त के प्रकाण्ड विद्वान, छन्द, ज्योतिष, व्याकरण और न्याय के वेत्ता तथा भट्टारक पद से विभूषित थे, ऐसा स्पष्ट है।

जो भी हो, एलाचार्य गुरु का वात्सल्य इन पर असीम था, ऐसा स्पष्ट है, वे किसी न किसी रूप में इनके गुरु अवश्य थे। यथा—“एलाइरियवच्छओ” स्वयं इस वाक्य में अपने को एलाचार्य का “वत्स” कहते हैं। ऐसे और भी अनेक स्थलों पर स्वयं आचार्य ने अपने को एलाचार्य का वत्स लिखा है।

समय निर्णय—इनका समय विवादास्पद नहीं है। इनके शिष्य जिनसेन ने इनकी अपूर्ण जयधवला टीका को शक संवत् 759 (ईसवी सन् 837) की फाल्गुन शुक्ला दशमी को पूर्ण किया है। अतः इस तिथि के पूर्व ही वीरसेनाचार्य का समय होना चाहिए। इसलिए इनका समय ईसवी सन् की 9वीं शताब्दी (816) का है।

इनकी रचनाएं—इनकी दो रचनाएं प्रसिद्ध हैं। एक धवला टीका और दूसरी जयधवला टीका। इनमें से द्वितीय टीका तो अपूर्ण रही है।

इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार में दिया है कि “षट्खण्डागम” सूत्र पर श्री वष्पदेव की टीका लिखे जाने के उपरान्त कितने ही वर्ष बाद सिद्धान्तों के वेत्ता एलाचार्य हुए, ये चित्रकूट में निवास करते थे, श्री वीरसेन ने इनके पास सम्पूर्ण सिद्धान्त ग्रंथों का अध्ययन किया, अनन्तर गुरु की अनुज्ञा लेकर वाटग्राम में पहुँचे, वहाँ पर आनतेन्द्र द्वारा बनवाये गये जिनमंदिर में ठहरे। वहाँ पर श्री वष्पदेवकृत टीका पढ़ी। अनन्तर उन्होंने 72000 श्लोक प्रमाण में समस्त षट्खण्डागम पर “धवला” नाम से टीका रची। यह टीका प्राकृत और संस्कृत भाषा में मिश्रित होने से “मणिप्रवालन्याय” से प्रसिद्ध है।

दूसरी रचना “कसायपाहुड” सुत्त पर “जयधवला” नाम से टीका है। इसको वे केवल 20000 श्लोक प्रमाण ही लिख पाये थे कि वे असमय में स्वर्गस्थ हो गये। इस तरह एक व्यक्ति ने अपने जीवन में 92000 श्लोक प्रमाण रचना लिखी, यह एक आश्चर्य की बात है। श्री वीरसेन स्वामी ने वह कार्य किया है, जो कार्य महाभारत के रचयिता ने किया है। महाभारत का प्रमाण 100000 श्लोक है और इनकी टीकाएं भी लगभग इतनी ही बड़ी हैं। अतएव “यदिहास्ति तदन्यद् यन्नेहास्ति न तत्त्वचित्।” जो इसमें है सो ही अन्यत्र है और जो इसमें नहीं है सो कहीं पर नहीं है।” यह उक्ति यहाँ भी चरितार्थ है।

इन टीकाओं से आचार्य के ज्ञान की विशेषता के साथ-साथ सैद्धान्तिक विषयों का कितना सूक्ष्म तलस्पर्शी इनका अध्ययन था, यह दिख जाता है।

वीरसेनाचार्य ने अपनी टीका में जिन आचार्यों के नाम का निर्देश ग्रन्थोल्लेखपूर्वक किया है, वे निम्न प्रकार हैं—

1. गृद्धपिच्छाचार्य का तत्त्वार्थसूत्र 2. तत्त्वार्थभाष्य (तत्त्वार्थवार्तिक भाष्य) 3. सन्मति सूत्र 4. सत्कर्म प्राभृत 5. पिंडिया 6. तिलोयपण्णत्ति 7. व्याख्याप्रज्ञप्ति 8. पंचास्तिकाय प्राभृत 9. जीवसमास 10. पूज्यपाद विरचितसारसंग्रह 11. प्रभाचन्द्र भट्टारक (ग्रंथकार) 12. समंतभद्र स्वामी (ग्रंथकार) 13. छंदसूत्र 14. सत्कर्म प्रकृति प्राभृत 15. मूलतंत्र 16. योनिप्राभृत और सिद्धिविनिश्चय।

और भी ग्रंथों के उद्धरणों या नाम का उल्लेख धवला टीका में पाया जाता है।

1. आचारांग निर्युक्ति 2. मूलाचार 3. प्रवचनसार 4. दशवैकालिक 5. भगवती आराधना 6. अनुयोगद्वार 7. चारित्रप्राभृत 8. स्थानांगसूत्र 9. शाकटायनन्यास 10. आचारांगसूत्र 11. लघीयस्रय 12. आप्तमीमांसा 13. युक्त्यनुशासन 14. विशेषावश्यक भाष्य 15. सर्वार्थसिद्धि 16. सौंदरनन्द 17. धनंजयनाममाला—अनेकार्थनाममाला 18. भावप्राभृत 19. बृहत्स्वयंभूस्तोत्र 20. नंदिसूत्र 21. समवायांग 22. आवश्यकसूत्र 23. प्रमाणवार्तिक 24. सांख्यकारिका 25. कर्मप्रकृति।

धवला टीका में जिन गाथाओं को उद्धृत किया है, उनमें से अधिकांश गाथाएँ गोमटसार, त्रिलोकसार, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति और वसुनंदिश्रावकाचार में भी पायी जाती हैं अतः यह अनुमान होता है कि इन प्राचीन गाथाओं का स्रोत एक ही रहा है, क्योंकि गोमटसार आदि ग्रंथ धवला टीका से बाद के ही हैं।

जयधवला की प्रशस्ति में कहा है—

“टीका श्री वीरसेनीया शेषाः पद्धतिपंजिका।”

श्री वीरसेन की टीका ही यथार्थ टीका है, शेष टीकाएँ तो पद्धति या पंजिका हैं।

वास्तव में श्री वीरसेन स्वामी को महाकर्म प्रकृति प्राभृत और कषायप्राभृतसंबंधी जो भी ज्ञान गुरु परम्परा से उपलब्ध हुआ, उसे इन दोनों टीकाओं में यथावत् निबद्ध किया है। आगम की परिभाषा में ये दोनों टीकाएँ दृष्टिवाद के अंगभूत दोनों प्राभृतों का प्रतिनिधित्व करती हैं। अतएव इन्हें यदि स्वतंत्र ग्रंथ संज्ञा दी जाये तो भी अनुपयुक्त नहीं है। यही कारण है कि आज “षट्खण्डागम” सिद्धान्त धवलसिद्धान्त के नाम से और “पेज्जदोसपाहुड़” जयधवल सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध हैं।

ज्योतिष एवं गणित विषय—इस महासिद्धान्त ग्रंथ में ज्योतिष, निमित्त और गणितविषयक की भी महत्वपूर्ण चर्चाएँ हैं। 5वीं शताब्दी से लेकर 8वीं शताब्दी तक ज्योतिषविषयक इतिहास लिखने के लिए इनका यह ग्रंथ बहुत ही उपयोगी है। ज्योतिषसंबंधी चर्चाओं में नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा संज्ञाओं के नाम हैं। दिन-रात्रि, मुहूर्त की चर्चा है। निमित्तों में व्यंजन और छिन्न निमित्तों की चर्चाएँ हैं।

इसमें प्रधानरूप से एक वर्ग समीकरण, अनेक वर्ग समीकरण, करणी, कल्पितराशियाँ, समानान्तर, गुणोत्तर, व्युत्क्रम आदि बीजगणितसंबंधी प्रक्रियाएँ हैं। धवला में अ^३ को अ के घन का प्रथम वर्गमूल कहा है। अ^० को अ के घन का घन बताया है। अ^० को अ के वर्ग का घन बतलाया है, इत्यादि।

आचार्य की पापभीरुता—श्री वीरसेन स्वामी आचार्यों के वचनों को साक्षात् भगवान् की वाणी समझते थे और परस्पर विरुद्ध प्रकरण में कितना अच्छा समाधान दिया है, इससे इनकी पापभीरुता

सहज ही परिलक्षित होती है। उदाहरण देखिये—

“आगम का यह अर्थ प्रामाणिक गुरु परम्परा के क्रम से आया है, यह कैसे निश्चय किया जाये? नहीं, क्योंकि.....ज्ञान-विज्ञान से युक्त इस युग के अनेक आचार्यों के उपदेश से उसकी प्रमाणता जाननी चाहिए।”¹

श्री वीरसेन स्वामी जयधवला टीका करते समय गाथा सूत्रों को और चूर्णि सूत्रों को कितनी श्रद्धा से देखते हैं—

“विपुलाचल के शिखर पर विराजमान वर्धमान दिवाकर से प्रगट होकर गौतम, लोहाचार्य और जम्बूस्वामी आदि की आचार्य परम्परा से आकर और गुणधराचार्य को प्राप्त होकर गाथास्वरूप से परिणत हो पुनः आर्यमंक्षु और नागहस्ति के द्वारा यतिवृषभ को प्राप्त होकर और उनके मुखकमल से चूर्णिसूत्र के आकार से परिणत दिव्यध्वनिरूप किरण से जानते हैं।”²

इस प्रकरण से यह स्पष्ट है कि कषायप्राभूत ग्रंथ साक्षात् भगवान की दिव्यध्वनि तुल्य है।

जब किसी स्थल पर दो मत आये हैं, तब कैसा समाधान है?

“दोनों प्रकार के वचनों में से किस वचन को सत्य माना जाये?”

“इस बात को केवली या श्रुतकेवली जानते हैं, दूसरा कोई नहीं जानता। क्योंकि इस समय उसका निर्णय नहीं हो सकता है, इसलिए पापभीरु वर्तमान के आचार्यों को दोनों का ही संग्रह करना चाहिए, अन्यथा पापभीरुता का विनाश हो जावेगा।”³

एक जगह वनस्पति के विषय में कुछ प्रश्न होने पर तो वीरसेन स्वामी कहते हैं कि—“गोदमो एत्थ पुच्छेयव्वो” यहाँ गौतम स्वामी से पूछना चाहिए। अर्थात् हम इसका उत्तर नहीं दे सकते। अब बताइये इससे अधिक पापभीरुता और क्या होगी? वास्तव में ये आचार्य अपनी गुरुपरम्परा से प्राप्त जानकारी के अतिरिक्त मन से कुछ निर्णय देना पाप ही समझते थे। इन आचार्यों के ऐसे प्रकरणों से आज के विद्वानों को शिक्षा लेनी चाहिए। जो कि किसी भी विषय में निर्णय देते समय आचार्यों को अथवा उनके ग्रंथों को भी अप्रामाणिक कहने में अतिसाहस कर जाते हैं।

यहाँ प्रकरण को समाप्त करते हुए मेरा यही कहना है कि इन पूर्वाचार्यों के समान ही हम सभी को पापभीरु बनना चाहिए। षट्खण्डागम ग्रंथ के अवतरण में निमित्तभूत परमपूज्य आचार्यश्री धरसेन स्वामी, श्री पुष्पदन्त और भूतबली तथा वीरसेनाचार्य के श्री चरणों में मेरा कोटिशः नमन है।



1. धवला पु. 1, पृ. 197। 2. एदम्हादो बिउलगिरमत्थयत्थबड्डमाणदिवायरादो परिणद-दिव्वज्झुणिकिरणादो णव्वदे। (जय ध.पृ. 313, कसायसुत्त की प्रस्तावना से)
3. धवला पु. 1, पृ. 222, 223।

षट्खण्डागम की सिद्धान्तचिंतामणि टीका का लेखन काल : एक दृष्टि में

-गणिनी ज्ञानमती

भगवान महावीर स्वामी के शासन में दिगम्बर जैन महामुनि श्री धरसेनाचार्य से ज्ञान प्राप्तकर श्री पुष्पदंताचार्य एवं श्रीभूतबलि आचार्य ने “षट्खण्डागम” ग्रंथ की रचना की है। इसमें छह खण्ड हैं—

1. जीवस्थान 2. क्षुद्रकबंध 3. बंधस्वामित्व 4. वेदनाखण्ड 5. वर्णाखण्ड एवं 6. महाबंध।

जीवस्थान—प्रथम खण्ड

श्री वीरसेनाचार्य द्वारा रचित उन ग्रंथों की प्राकृत-संस्कृत मिश्र “धवला” नाम की टीका के आधार से मैंने हस्तिनापुर तीर्थ पर वीर नि. संवत् 2521 आश्विन शुक्ला पूर्णिमा—शरत् पूर्णिमा को 8 अक्टूबर सन् 1995 में—

सिद्धान् सिद्ध्यर्थमानम्य, सर्वस्त्रैलोक्यमूर्धगान्।

इष्टः सर्वक्रियान्तेऽसौ, शान्तीशो हृदि धार्यते॥११॥

इस प्रकार मंगलाचरण लिखकर ‘सिद्धान्तचिंतामणि’ नाम से संस्कृत टीका लिखना प्रारंभ किया।

प्रथम खण्ड की टीका को मैंने मांगीतुंगी यात्रा के मध्य लिखते हुए माधोराजपुरा (राजस्थान) में वीर नि. सं. 2523, फाल्गुन कृ. 13 (दिनांक 7-3-1997) को पूर्ण किया। इस प्रथम खण्ड में छह ग्रंथ हैं और सूत्र संख्या 2375 है।

क्षुद्रकबंध—द्वितीय खण्ड

इस क्षुद्रकबंध की टीका मैंने पद्मपुरा—अतिशय क्षेत्र पर वीर नि. सं. 2523, फाल्गुन शु. प्रतिपदा को (दिनांक 10-3-1997) को प्रारंभ करके वीर नि. सं. 2524, मार्गशीर्ष शु. 13 (दिनांक 12-12-1997) को हस्तिनापुर में पूर्ण किया। इसमें एक ग्रंथ है, सूत्र संख्या 1594 है।

बंधस्वामित्वविचय—तृतीय खण्ड

इसकी टीका मैंने हस्तिनापुर में मार्गशीर्ष शु. 13 (दि. 12-12-1997) को प्रारंभ की। पुनः ऋषभदेव कमल मंदिर प्रीतविहार, दिल्ली में वीर नि. सं. 2525, द्वि. ज्येष्ठ शु. 5, श्रुतपंचमी के दिन दिनांक 18-6-1999 को पूर्ण की है। इसमें एक ग्रंथ है एवं सूत्र संख्या 324 है।

वेदना खण्ड—चतुर्थ खण्ड

मैंने जयसिंहपुरा, नई दिल्ली, अग्रवाल दि. जैन मंदिर में वीर नि. सं. 2525, आश्विन शु. 15—शरत् पूर्णिमा (दिनांक 24-10-1999) को प्रारंभ की। पुनः प्रयाग, शौरीपुर, कुण्डलपुर, पावापुरी, सम्मेशिखर आदि तीर्थों की यात्रा व तीर्थ विकास आदि कार्यों के मध्य वीर नि. सं. 2530, मार्गशीर्ष शु. 13 (दिनांक 6-12-2003) में राजगृही तीर्थ पर पूर्ण की है। इसमें चार ग्रंथ हैं एवं सूत्र संख्या 1525 है।

वर्णा खण्ड—पंचम खण्ड

इस ग्रंथ की टीका को मैंने वीर नि. सं. 2530, पौष कृ. 11 (दि. 19-12-2003) को कुण्डलपुर (जि.-नालंदा) में प्रारंभ किया। पुनः पावापुरी, वाराणसी, अयोध्या, अहिच्छत्र आदि यात्रा करते हुए हस्तिनापुर आकर वीर नि. सं. 2533, वैशाख कृ. 2 (दिनांक 4-4-2007) में भगवान पार्श्वनाथ के गर्भकल्याणक के पवित्र दिन एवं अपनी आर्यिका दीक्षा तिथि के दिन पूर्ण किया है। इसमें चार ग्रंथ हैं एवं सूत्र संख्या 1023 है।

वर्तमान में 'धवला' नाम से प्रसिद्ध इन षट्खण्डागम के पाँच खण्डों में हिन्दी अनुवाद सहित 16 पुस्तकें प्रकाशित हैं। मैंने भी इन्हें 16 पुस्तकों में विभक्त किया है। इन ग्रंथों में कुल सूत्र 6841 हैं। मेरे द्वारा लिखित पेज 3115 हैं।

त्रिप्रिपंचद्विवीराब्दे, वैशाखे द्वितयेऽसिते।

हस्तिनागपुरे तीर्थे, टीकेयं परिपूर्यते॥७॥

श्रीशान्तिनाथतीर्थेशं, नत्वात्यन्तिकशान्तये।

वन्दन्ते सर्वसिद्धाश्चाप्यन्ते शुद्धात्मसिद्धये॥१०॥

इस टीका के प्रारंभ में मैंने सिद्धों की वंदना करके भगवान् शान्तिनाथ को हृदय में विराजमान किया था। पुनः टीका के समापन में भगवान् शान्तिनाथ को नमस्कार करके अनंत सिद्धों की वंदना की है।

इस ग्रंथ की पूर्णता के बाद वीर नि. सं. 2533, वैशाख शु. 11 से पूर्णिमा तक बृहत् स्तर पर तेरहद्वीप जिनालय के जिनबिम्बों की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के मध्य वैशाख शुक्ला 14, दिनांक 1-5-2007 को 'षट्खण्डागम श्रुत महोत्सव' मनाकर इन सोलहों ग्रंथों की सभी भक्तों ने पूजा की है।

श्री ऋषभदेव चरितम्

इन्हीं 11 वर्षों के मध्य वी.नि.सं. 2524, मार्गशीर्ष शु. 12 (11-12-1997) को हस्तिनापुर में 'श्रीऋषभदेवचरित' को संस्कृत में लिखना प्रारंभ किया एवं वी.नि.सं. 2526, शरदपूर्णिमा (24-10-1999) को जयसिंहपुरा, नई दिल्ली में पूर्ण किया।

विश्वशांति महावीर विधान

भगवान् महावीर के 2600वें जन्मकल्याणक महोत्सव के अवसर पर वी. नि.सं. 2526 को कार्तिक कृ. अमावस्या को मैंने प्रीतविहार, दिल्ली में "विश्वशांति महावीर विधान" लिखना प्रारंभ किया। पुनः प्रयाग की ओर मंगल विहार करके मार्ग में ही लिखते हुए 2600 मंत्रों सहित इस विधान को प्रयाग (इलाहाबाद) पहुँचकर उसी दिन वी. नि. सं. 2527, पौष शु. 6, दिनांक 1-1-2001 को मात्र 66 दिन में पूर्ण किया है।

इस प्रकार षट्खण्डागम टीका लेखन के मध्य ये दो और महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे गये हैं।

अष्टादशमहाभाषा, लघुसप्तशतान्विता।

द्वादशांगमयी देवी, सा चित्ताब्जेऽवतार्यते॥

तीर्थयात्रा के मध्य टीका लेखन

(27 नवम्बर 1995 से 4 अप्रैल 2007 तक)

हस्तिनापुर तीर्थ पर जम्बूद्वीप महामहोत्सव के समय शरदपूर्णिमा 1995 को षट्खण्डागम ग्रंथ की संस्कृत टीका प्रारंभ कर मांगीतुंगी तीर्थ पर स्थित आर्यिकारत्न श्री श्रेयांसमती माताजी की अत्यधिक प्रेरणा एवं क्षेत्र के कार्यकर्ताओं के अतीव आग्रह से मगसिर शु. पंचमी, (27 नवम्बर 1995) को हस्तिनापुर से मांगीतुंगी की ओर मैंने मंगल विहार किया।

मार्ग में अनेक तीर्थ वंदना, धर्मप्रभावना करते हुए वैशाख शु. 9, शनिवार (27 अप्रैल 1996) को मांगीतुंगी क्षेत्र पर मेरा मंगल प्रवेश हुआ।

ज्येष्ठ शु. 2 से षष्ठी, (दिनांक 19 मई से 23 मई) तक मुनि श्री रयणसागरजी महाराज ससंघ, आर्यिका श्री श्रेयांसमती माताजी ससंघ एवं मेरे ससंघ सानिध्य में 20 फुट उत्तुंग भगवान् श्री मुनिसुव्रतनाथ, चौबीस तीर्थंकर प्रतिमा, सहस्रकूट प्रतिमा आदि का पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सानंद सम्पन्न हुआ। वहीं 1996 के चातुर्मास के

मध्य मांगीतुंगी पर्वत पर श्री ऋषभदेव की 108 फुट उत्तुंग प्रतिमा निर्माण की मैंने घोषणा की।

वहाँ से कार्तिक शु. पंचमी, (15 नवम्बर 1996) को मंगल विहार कर अहमदाबाद, उदयपुर आदि होते हुए चैत्र कृ. 6 (30 मार्च 1997) को मेरा दिल्ली में आगमन हुआ। यहाँ भगवान ऋषभदेव जन्मजयंती वर्ष घोषित करके मैंने 1997 के चातुर्मास में चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल विधान आदि अनेक धर्मानुष्ठान सम्पन्न कराए हैं।

पुनः कार्तिक शु. 5, (5 नवम्बर) को दिल्ली से विहार कर मैं हस्तिनापुर आ गई, यहाँ 1998 के चातुर्मास में कुलपति सम्मेलन आदि अनेक कार्यक्रम हुए हैं।

अनंतर दिल्ली आकर सन् 1999 का चातुर्मास कनाट प्लेस, नई दिल्ली एवं सन् 2000 का चातुर्मास प्रीतविहार-दिल्ली में हुआ है। इनके मध्य श्री ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव आदि अनेक धर्मप्रभावना के कार्य सम्पन्न हुए हैं।

पुनः दिल्ली से कार्तिक शु. 5, (1 नवम्बर सन् 2000) को भगवान ऋषभदेव दीक्षा भूमि प्रयाग की ओर विहार करके 1 जनवरी 2001 को नवतीर्थ "तीर्थकर ऋषभदेव तपस्थली" पर मैं पहुँची। वहाँ नव तीर्थ निर्माण, प्रतिष्ठा, महाकुंभ मस्तकाभिषेक आदि कार्यक्रम व कौशाम्बी-प्रभासगिरी में पंचकल्याणक सम्पन्न हुए।

वहाँ से पुनरपि विहार कर दिल्ली आकर मेरे सानिध्य में 2001 के चातुर्मास में भगवान महावीर स्वामी के छब्बीस- सौवें जन्मकल्याणक महोत्सव के अन्तर्गत "छब्बीस विश्व शांति महावीर विधान" आदि अनुष्ठान हुए हैं।

अनंतर माघ शु. 8 (20 फरवरी 2002) को दिल्ली से भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर (जि.-नालंदा) की ओर मेरा मंगल विहार हुआ। मध्य में तीर्थकर ऋषभदेव तपस्थली प्रयाग में 2002 का चातुर्मास करके कार्तिक शु. 6, (10 नवम्बर) को वहाँ से विहारकर वाराणसी, आरा, पटना होते हुए पौष कृ. 10, रविवार (29 दिसम्बर 2002) को कुण्डलपुर पहुँची, वहाँ पर "नंदावर्त महल" नवतीर्थ का निर्माण एवं विशाल पंचकल्याणक महोत्सव सम्पन्न हुआ।

पुनः पावापुरी, राजगृही, सम्मेदशिखर आदि की यात्रा करके 2003 व 2004 के चातुर्मास कुण्डलपुर में सम्पन्न किये।

तत्पश्चात् वहाँ से विहार कर भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी (भेलूपुर) में भगवान पार्श्वनाथ के 2881वें जन्मजयंती महोत्सव वर्ष का उद्घाटन कराकर सारनाथ (सिंहपुरी) में भगवान श्रेयांसनाथ का पंचकल्याणक, अयोध्या में प्रभु ऋषभदेव का महामस्तकाभिषेक, टिकैतनगर (जि.-बाराबंकी, उ.प्र.) में पंचकल्याणक, अहिच्छत्र तीर्थ के दर्शन, महाभिषेक आदि धर्मप्रभावना के साथ-साथ ज्येष्ठ कृ. दूज, 25 मई 2005 को हस्तिनापुर तीर्थ पर मैंने मंगल प्रवेश किया है।

यहाँ ईस्वी सन् 2005 एवं 2006 के चातुर्मास में अनेक धर्मप्रभावना के कार्य सम्पन्न हुए हैं। इस मध्य संस्कृत टीका लेखन करते हुए सन् 2007 में वैशाख कृ. द्वितीया (4 अप्रैल 2007) को टीका पूर्ण करके अपने जीवन में आध्यात्मिक कलशारोहण किया एवं वैशाख शुक्ला पूर्णिमा को तेरहद्वीप जिनालय के जिनबिम्बों की राष्ट्रीय स्तर पर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा पूर्ण होकर जिनालय के शिखर पर स्वर्णिम कलशारोहण, ऐसे दो कलशारोहण हुए हैं।

तीर्थयात्रा के मध्य विभिन्न तीर्थ दर्शन एवं अनेक महोत्सवों का संक्षेप में विवरण

27 नवम्बर 1995 से 25 मई 2005 तक यात्रा के मध्य 1. उत्तरप्रदेश, 2. दिल्ली, 3. हरियाणा, 4. राजस्थान, 5. मध्यप्रदेश, 6. महाराष्ट्र, 7. गुजरात से वापसी दिल्ली-हस्तिनापुर आकर पुनश्च प्रयाग-

इलाहाबाद जाकर वापस आकर दिल्ली से पुनः 8. बिहार प्रदेश और 9. झारखण्ड ऐसे नव प्रदेशों के विहार-भ्रमण में लगभग दस हजार किलोमीटर की यात्रा हुई है।

सिद्धक्षेत्र की यात्रा

इस मध्य 1. सिद्धवरकूट, 2. ऊन (पावागिरी), 3. मांगीतुंगी, 4. पावागढ़, 5. तारंगा, 6. मथुरा, 7. गुलजारबाग (पटना), 8. पावापुरी, 9. राजगृही, 10. गुणावां, 11. सम्मेशिखर ऐसे 11 सिद्धक्षेत्रों की वंदना हुई है। शिखरजी में चोपड़ाकुण्ड पर बैठकर भी मैंने टीका लिखी है।

तीर्थकर जन्मभूमि यात्रा

ऐसे ही 1. कौशाम्बी, 2. कंपिलाजी, 3. शौरीपुर, 4. वाराणसी, 5. सिंहपुर (सारनाथ), 6. चन्द्रपुरी, 7. कुण्डलपुरी, 8. राजगृही, 9. अयोध्या, 10. रत्नपुरी (रौनाही) और 11. हस्तिनापुर ऐसे 11 जन्मभूमियों की वंदनाएँ की हैं।

प्रयाग-दीक्षा भूमि, केवलज्ञानभूमि तथा अहिच्छत्र-केवलज्ञान भूमि के दर्शन किए हैं।

इन तीर्थों पर बैठकर टीका लिखते हुए मुझे ऐसा लगता था कि मानो भगवान की वाणी के कुछ अमृत-कण ही इसमें आ रहे हैं। उन क्षणों में मुझे एक अदभुत आनंद का अनुभव होता था। वास्तव में भगवन्तों की (शौरीपुर, कुण्डलपुर छोड़कर) सभी जन्मभूमियों में उनके केवलज्ञान कल्याणक में समवसरण की रचना हुई है और भगवान की दिव्यध्वनि से असंख्य जीवों ने धर्मामृत का पान किया है। उन तीर्थों की वंदना और वहाँ-वहाँ बैठकर टीका लेखन एक सुखद संयोग ही रहा है। इसी प्रकार दिल्ली, जयपुर, इंदौर, अहमदाबाद, उदयपुर, मेरठ आदि शहरों में अनेक प्रभावना के कार्यक्रम हुए हैं।

अतिशय क्षेत्र दर्शन

1. तिजारा, 2. पद्मपुरी, 3. महावीरजी, 4. केशवरायपाटन, 5. चांदखेड़ी, 6. चमत्कारजी (सवाईमाधोपुर), 7. जयपुर-खानिया में चूलगिरि, 8. अंकलेश्वर (गुजरात), 9. महुआ, 10. अर्पिंदा पार्श्वनाथ, 11. त्रिलोकपुर (जिला-बाराबंकी, उ.प्र.) आदि अतिशय क्षेत्रों के दर्शन किए हैं।

बृहत् पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

सन् 1996 में मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र, सन् 1997 में प्रीतविहार, दिल्ली, सन् 1998 में कमलानगर-मेरठ (उ.प्र.), सन् 2000 में लालकिला मैदान-दिल्ली एवं सतघरा मंदिर-दिल्ली, सन् 2001 में प्रयाग-इलाहाबाद एवं प्रभासगिरी (कौशाम्बी) में, सन् 2003 में कुण्डलपुर (जिला-नालंदा), पावापुरी एवं राजगृही, सन् 2005 में सारनाथ (सिंहपुरी, काशी), सन् 2005 में ही टिकैतनगर (जिला बाराबंकी-उ.प्र.), पुनः सन् 2007 में हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर तेरहद्वीप जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा ऐसी 14 प्रतिष्ठाएँ सम्पन्न हुई हैं। इसी मध्य लघु पंचकल्याणक अनेक हुए हैं।

चौबीस कल्पद्रुम महामंडल विधान का अनुष्ठान

अक्टूबर 1997 में दिल्ली में रिंग रोड पर विशाल पांडाल में एक साथ चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल बनाये गये। 3000 से अधिक श्रावक-श्राविकाओं ने केशरिया परिधान में पूजन विधान का अनुष्ठान किया।

समय-समय पर तीन लोक, जम्बूद्वीप, इन्द्रध्वज, सिद्धचक्र, सर्वतोभद्र, कल्पद्रुम आदि अनेक विधान आदि होते रहे हैं तथा शांतिविधान, गणधरवलय विधान आदि सहस्रों लघु विधान हुए हैं।

भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार

सन् 1998 में भारत की राजधानी दिल्ली से “भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार” का प्रवर्तन भारत के प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के करकमलों से हुआ। जिसका सारे भारत में भ्रमण होकर यह समवसरण “तीर्थकर ऋषभदेव तपस्थली” प्रयाग जैन तीर्थ पर स्थापित किया गया है। सन् 2003 में कुण्डलपुर से भगवान महावीर ज्योति रथ का भ्रमण कराया गया है।

भगवान ऋषभदेव कुलपति सम्मेलन

अक्टूबर 1998 में हस्तिनापुर में “भगवान ऋषभदेव कुलपति सम्मेलन” हुआ। इसमें भारत के विश्वविद्यालयों के कुलपति महोदयों ने आकर जैनधर्म के प्रथम तीर्थकर भगवान ऋषभदेव के गुणगान किये। पचास से अधिक प्रोफेसर, विद्वत्गण आदि आये।

वैशाख में मेरी आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती के समय सन् 2006 में जम्बूद्वीप स्थल पर “भट्टारक सम्मेलन” सम्पन्न हुआ है। वाराणसी, फैजाबाद (अयोध्या), मेरठ आदि में विश्वविद्यालयों में प्रवचन एवं अनेक शहरों में, जेल में भी प्रवचन आदि हुए हैं। समय-समय पर अनेक विद्वानों की संगोष्ठी, शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर आदि हुए हैं।

अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव

4 फरवरी 2000 में दिल्ली में “भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महोत्सव” मनाया गया। इसमें अष्टापद-कैलाशपर्वत की रचना करके 1008 निर्वाणलाडू चढ़ाये गये एवं त्रिकाल चौबीसी के 72 रत्नों के जिनबिम्बों की एवं श्री ऋषभदेव की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई।

इस निर्वाण महोत्सव का उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने किया है।

कैलाश मानसरोवर यात्रा

अक्टूबर 2000 में वर्षायोग के मध्य प्रीतविहार-दिल्ली की जैन समाज ने विशाल कैलाश मानसरोवर पर्वत बनवाकर त्रिकाल चौबीसी भगवन्तों को विराजमान कराया, लाखों भक्तों ने कैलाश मानसरोवर यात्रा करके भगवान ऋषभदेव का जयघोष किया है।

महाकुंभ मस्तकाभिषेक महोत्सव

सन 2001 में प्रयाग-इलाहाबाद में भगवान ऋषभदेव का 1008 कुंभों से महाकुंभ मस्तकाभिषेक महोत्सव सम्पन्न हुआ है। प्रयाग में महाकुंभनगर में विश्व हिन्दू परिषद द्वारा आयोजित “नवम संसद” में श्री रामचंद्र की जन्मभूमि अयोध्या के प्रथम तीर्थकर भगवान ऋषभदेव पर मेरे द्वारा प्रवचन हुए। पुनश्च कुंडलपुर, अयोध्या, हस्तिनापुर में भी महाकुंभ मस्तकाभिषेक हुए हैं।

विश्वशान्ति महावीर विधानानुष्ठान

सन् 2001 में दिल्ली में फिरोजशाह कोटला मैदान में विशाल पांडाल में एक साथ 26 मंडल विधान बनाये गए। प्रत्येक मंडल पर 2600 मंत्रपूर्वक रत्न चढ़ाये गये। यह विशाल पूजानुष्ठान भगवान महावीर स्वामी के छब्बीस सौवें जन्मकल्याणक महोत्सव के उपलक्ष्य में कराया गया है। इसमें सम्पूर्ण विश्व की शांति की कामना की गई।

महामहोत्सव

सन् 1996 में गोम्मतगिरि तीर्थ का दशाब्दी महोत्सव मनाया गया। सन् 2001 में प्रयाग-महाकुंभ नगर में श्री ऋषभदेव पांडाल में भगवान ऋषभदेव का निर्वाणलाडू चढ़ाकर निर्वाण महामहोत्सव मनाया गया। सन् 2005 में भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी भैलूपुर में पौष कृ.11 को भगवान

पार्श्वनाथ का 2881 वां जन्मकल्याणक महोत्सव का उद्घाटन किया गया। यह महोत्सव तीन वर्ष तक दिल्ली आदि सारे भारत में मनाया गया पुनः सन् 2008 में अहिच्छत्र में इसका समापन किया गया।

2005 अक्टूबर में हस्तिनापुर में चतुर्थ जंबूद्वीप महामहोत्सव, 2006 में वैशाख कृष्णा दूज को मेरा (गणिनी ज्ञानमती माता जी का) आर्यिका दीक्षा स्वर्णजयंती महोत्सव आदि कार्यक्रम विशाल स्तर पर संपन्न हुए हैं।

नवतीर्थ निर्माण

इस मध्य मांगीतुंगी में सहस्रकूट कमल मंदिर, 108 फुट उत्तुंग श्री ऋषभदेव प्रतिमा निर्माण घोषणा, दिल्ली में प्रीतविहार में कमल मंदिर, मेरठ में कमलों पर 24 तीर्थकर, 20 तीर्थकर, प्रयाग में तीर्थकर ऋषभदेव तपस्थली नवतीर्थ निर्माण, कुण्डलपुर में नंदावर्त महल नवतीर्थ निर्माण, सनावद (म.प्र.) में णमोकार धाम, अहिच्छत्र में 72-72 पांखुड़ियों के दस कमलों पर तीस चौबीसी प्रतिमा विराजमान, खेरवाड़ा में (केशरिया जी के निकट) कैलाश पर्वत की रचना, सम्मेशिखर, पावापुरी, गुणावां, राजगृही में नवमंदिर निर्माण व मानस्तंभ निर्माण, पिड़ावा (राजस्थान) में समवसरण रचना, माधोराजपुरा (राज.) आर्यिका दीक्षा भूमि में नूतन तीर्थ रचना आदि अनेक भव्य निर्माण भी सम्पन्न हुए हैं।

राजनेता आदि के आगमन

इस मध्य प्रतिष्ठा महोत्सव, महायज्ञविधानानुष्ठान आदि कार्यक्रमों में अनेक राजनेता आये हैं। दिल्ली में 1997 में भारत गणतंत्र शासन के पूर्व राष्ट्रपति श्री शंकरदयाल शर्मा, पावापुरी (बिहार प्रांत) में मई 2003 में महामहिम राष्ट्रपति श्री ए.पी.जे. अब्दुलकलाम, दिल्ली में सन् 1998 में एवं 2000 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी, अहमदाबाद में गुजरात के राज्यपाल श्री कृष्णपाल सिंह, प्रयाग में राज्यपाल आचार्य श्री विष्णुकांत जी शास्त्री, कुण्डलपुर (जिला-नालंदा) में राज्यपाल श्री विनोदचंद पाण्डेय एवं श्री एम.रामा जोयिस आए हैं। मांगीतुंगी में 1996 में महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री मनोहर जोशी, अहमदाबाद में 1997 में गुजरात के मुख्यमंत्री श्री शंकरसिंह वाघेला, दिल्ली में 1997 में दिल्ली के मुख्यमंत्री श्री साहिब सिंहवर्मा, मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह, सन् 2000 में मुख्यमंत्री श्रीमती शीला दीक्षित, टिकैतनगर (जि.-बाराबंकी) उ.प्र. में उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री मुलायम सिंह यादव आये हैं। इसी प्रकार समय-समय पर रेलमंत्री, मानव संसाधन विकास मंत्री आदि अनेक नेतागण भी आते रहे हैं।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री श्यामल कुमार सेन, न्यायमूर्ति श्री सुधीर नारायण, न्यायमूर्ति श्री एम.सी. जैन (इलाहाबाद), न्यायमूर्ति श्री मिलापचंद जैन (लोकायुक्त-राजस्थान) आदि आये हैं। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. श्री पी.रामचंद्रराव, राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय-फैजाबाद के कुलपति डॉ. एस.वी. सिंह, दिल्ली के लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ के कुलपति प्रो. वाचस्पति उपाध्याय आदि भी समय-समय पर आकर धर्मचर्चा करते हुए लाभान्वित हुए हैं।

सन् 1998 में कुलपति सम्मेलन में बाईस कुलपति आये हैं एवं अनेक प्रोफेसर, विद्वद्गण आये हैं।

इसी प्रकार अंतर्राष्ट्रीय कार्याध्यक्ष-विश्वहिन्दू परिषद-श्रीयुत अशोक सिंघल, सांसद एवं विधिवेत्ता श्री एल.एम. सिंघवी, वित्त राज्यमंत्री श्री वी. धनंजय कुमार जैन, श्री वीरेन्द्र हेगड़े, श्री कल्लप्पा आवड़े, साहू श्री अशोक कुमार जैन, श्री देवकुमार सिंह कासलीवाल आदि महानुभाव आकर धर्मप्रभावना में भाग लेकर प्रसन्न हुए हैं।

यात्रा के मध्य विहार आदि व्यवस्था

इस यात्रा में प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी एवं जम्बूद्वीप के प्रथम पीठाधीश समाधिस्थ क्षुल्लकरत्न मोतीसागर महाराज ने आगे-आगे के मार्ग का निर्धारण व सर्वत्र सभा संचालन आदि कार्य

व्यवस्था को संभाला है, साथ ही पदविहार का कठिन श्रम किया है। जम्बूद्वीप के वर्तमान पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी का तीर्थ निर्माण, विकास, जीर्णोद्धार तथा महामहोत्सव आदि कराने में अथक परिश्रम रहा है।

संघस्थ ब्रह्मचारिणी कु. बीना आदि ब्रह्मचारिणी बहनों ने संघ के आहार-विहार आदि व्यवस्था का संचालन पूर्ण भक्ति एवं कुशलता से किया है तथा प्रत्येक महोत्सव आदि कार्यों में सहयोग किया है। समय-समय पर इन सभी शिष्यों की अनुकूलता से ही मेरा लेखनकार्य निराबाध चलता रहा है। इन सबको रत्नत्रयवृद्धि के लिए मेरा बहुत-बहुत मंगल आशीर्वाद है।

श्री महावीर प्रसाद जैन, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कुसुमलता जैन-बंगाली स्वीट-दिल्ली, संघभक्त शिरोमणि (संघपति) का संघ विहार एवं प्रत्येक निर्माण आदि में महत्वपूर्ण योगदान इनके साथ ही स्व. प्रेमचंद जैन-श्रीमती निर्मला जैन, खारीबावली-दिल्ली एवं आनंद कुमार जैन, जैन मार्बल, मेरठ का योगदान, इन-इनके अतिशय पुण्य संपादन के लिए ही हुआ है। पुनश्च तीर्थ निर्माण आदि में भारत की संपूर्ण दिगम्बर जैन समाज के भक्तों की अर्थाञ्जलि ने भी अनेक तीर्थों को अतिशायी रूप प्रदान किया है। इन सभी के लिए मेरा बहुत-बहुत शुभाशीर्वाद है।

इस प्रकार अक्टूबर 1995 से अप्रैल 2007 तक 9 प्रदेशों के भ्रमण में दश हजार किमी. की यात्रा के मध्य अनेक तीर्थों की यात्रा, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, विधानानुष्ठान आदि सभी महामहोत्सवों में मेरी प्रेरणा एवं मेरा ससंघ सानिध्य रहते हुए भी मेरा संस्कृत टीका का लेखनकार्य निर्विघ्नतया होता रहा है।

जिनेन्द्र भक्ति का आश्चर्यकारी प्रभाव

इसमें मुझे स्वयं ही आश्चर्य प्रतीत होता है अथवा जिनेन्द्रदेव की भक्ति, परोक्ष से भी गुरुवर्य का वरदहस्त एवं जिनवाणी माता सरस्वती की महती अनुकंपा ही मेरी सिद्धान्तचिंतामणिटीका लेखन में वरदान बनी है, ऐसा मैं मानती हूँ।

इस टीका लेखन में षट्खण्डागम के पाँच खण्डों का स्वाध्याय, चिंतन, मनन करते हुए मन से-मानस मतिज्ञान व दिव्यश्रुतज्ञान से तीनों लोकों की यात्रा करते हुए मैंने मन से कभी सुमेरुपर्वत पर जाकर, कभी भगवान के समवसरण में बैठकर अपनी चिच्चैतन्य स्वरूप आत्मा का चिंतन करते हुए असीम-अनवधि आनंद अनुभव प्राप्त किया है। ऐसे केवलज्ञान के लिए बीजस्वरूप श्रुतज्ञान को मेरा अनंत-अनंत नमस्कार होवे।

अनंतानंत तीर्थंकर परम्परा में वर्तमान में अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के शासन में मूलसंघ में श्री कुंदकुंदाग्र्याय में बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागरजी महामुनिराज, उनके प्रथम शिष्य व प्रथम पट्टाधीश, महाव्रत के प्रदाता दीक्षागुरु श्री वीरसागराचार्य महामुनिराज को मेरा कोटि-कोटि नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।

—इन्द्रवज्रा छंदः—

सिद्धान्त चिन्तामणिनामधेया, सिद्धान्तबोधामृतदानदक्षा।

टीका भवेत्स्वात्मपरात्मनोर्हि, कैवल्यलब्धयै खलु बीजभूता।।।।।



धवला टीका एवं सिद्धान्तचिंतामणि टीका के ग्रंथों में अंतर

<div style="text-align: center;">धवला टीका (प्रथम खण्ड)</div>	<div style="text-align: center;">सिद्धान्तचिंतामणि टीका (प्रथम खण्ड)</div>
<p>पुस्तक 1 – सत्प्ररूपणा सूत्र - 177</p>	<p>पुस्तक 1 – सत्प्ररूपणा सूत्र - 177, पृ. 164</p> <p>प्रारंभ – आश्विन शु. 15, शरदपूर्णिमा, वी.नि.सं. 2521 दिनांक-8-10-1995, प्रातः 11.25</p> <p>समापन – फाल्गुन शु.7, वी.नि.सं. 2522, पिड़ावा (राज.) दिनांक-25-2-1996</p>
<p>पुस्तक 2 – आलाप अधिकार (सूत्र नहीं है)</p>	<p>पुस्तक 2 – आलाप अधिकार (सूत्र नहीं है), पृ. 90</p> <p>प्रारंभ – चैत्र कृ.1, वी.नि.सं. 2522, उज्जैन-जयसिंहपुरा मंदिर में, दिनांक-6-3-1996</p> <p>समापन – माघ शु. 5, वी.नि.सं. 2525, हस्तिनापुर, दिनांक-22-1-1999</p>
<p>पुस्तक 3 – द्रव्यप्रमाणानुगम सूत्र - 192</p>	<p>पुस्तक 3 – द्रव्यप्रमाणानुगम-क्षेत्रानुगम सूत्र - 284 (192+92=284), पृ. 131</p> <p>प्रारंभ – वैशाख शु. 12, वी.नि.सं. 2522, मांगीतुंगी, दिनांक-30-4-1996</p> <p>समापन – श्रावण कृ. 10, वी.नि.सं. 2522, मांगीतुंगी, दिनांक-8-8-1996</p>
<p>पुस्तक 4 – क्षेत्र-स्पर्शन-कालानुगम सूत्र - 619</p>	<p>पुस्तक 4 – स्पर्शनानुगम-कालानुगम सूत्र - 527 (185+342=527), पृ. 190</p> <p>प्रारंभ – श्रावण कृ. 10, वी.नि.सं. 2522, मांगीतुंगी, दिनांक-8-8-1996</p> <p>समापन – भाद्र शु. 3, वी.नि.सं. 2522, मांगीतुंगी, दिनांक-15-9-1996</p>

धवला टीका (प्रथम खण्ड)	सिद्धान्तचिंतामणि टीका (प्रथम खण्ड)
<p>पुस्तक 5 – अंतरानुगम-भावानुगम-अल्पबहुत्वानुगम सूत्र - 872</p>	<p>पुस्तक 5 – अंतरानुगम-भावानुगम-अल्प-बहुत्वानुगम सूत्र - 872, पृ. 193</p> <p>प्रारंभ – भाद्रपद शु. 3, वी.नि.सं. 2522, मांगीतुंगी, दिनांक-15-9-1996, अपराण्ह 5,8 बजे</p> <p>समापन – मार्गशीर्ष कृ. 7, वी.नि.सं. 2523, अंकलेश्वर (गुज.) दिनांक-2-12-1996, सोमवार</p>
<p>पुस्तक 6 – जीवस्थान चूलिका सूत्र - 515</p>	<p>पुस्तक 6 – जीवस्थान चूलिका सूत्र - 515, पृ. 187</p> <p>प्रारंभ – मगसिर कृ. 7, वी.नि.सं. 2523, अंकलेश्वर (गुज.) दिनांक-2-12-1996</p> <p>समापन – फाल्गुन कृ. 13, वी.नि.सं. 2523, माधोराजपुरा (राज.) दिनांक-7-3-1996</p>
(द्वितीय खण्ड)	(द्वितीय खण्ड)
<p>पुस्तक 7 – क्षुद्रकबंध सूत्र - 1594</p>	<p>पुस्तक 7 – क्षुद्रकबंध सूत्र - 1594, पृ. 285</p> <p>प्रारंभ – फाल्गुन शु. 1, वी.नि.सं. 2523, पद्मपुरा अतिशय क्षेत्र दिनांक-10-3-1997</p> <p>समापन – मार्गशीर्ष शु. 13, वी.नि.सं. 2524, हस्तिनापुर, दिनांक-12-12-1997</p>
(तृतीय खण्ड)	(तृतीय खण्ड)
<p>पुस्तक 8 – बंधस्वामित्वविचय सूत्र - 324</p>	<p>पुस्तक 8 – बंधस्वामित्व विचय सूत्र - 324, पृ. 230</p> <p>प्रारंभ – मार्गशीर्ष शु. 13, वी.नि.सं. 2524, हस्तिनापुर दिनांक-12-12-1997</p> <p>समापन – द्वि. ज्येष्ठ शु. 5, श्रुतपंचमी, वी.नि.सं. 2525, ऋषभदेव कमल मंदिर, प्रीतविहार, दिल्ली, दिनांक-18-6-1999</p>

धवला टीका (चतुर्थ खण्ड) (चतुर्थ खण्ड)	सिद्धान्तचिंतामणि टीका (चतुर्थ खण्ड) (चतुर्थ खण्ड)
पुस्तक 9 – कृति ¹ अनुयोगद्वार सूत्र - 76	पुस्तक 9 – कृति अनुयोगद्वार सूत्र - 76, पृ. 140 प्रारंभ – शरद् पूर्णिमा, वी.नि.सं. 2525, जयसिंहपुरा, नई दिल्ली दिनांक-24-10-1999 समापन – शरद् पूर्णिमा, वी.नि.सं. 2526, ऋषभदेव कमल मंदिर, प्रीतविहार, दिल्ली, दिनांक-13-10-2000
पुस्तक 10 – वेदना ² निक्षेप, वेदनानय, वेदनानाम, वेदना द्रव्यविधान सूत्र 213+11=224	पुस्तक 10 – वेदनानिक्षेप, वेदनानय, वेदनानाम, वेदना द्रव्यविधान, वेदनाक्षेत्र सूत्र - 323 (पृष्ठ 120) प्रारंभ – आश्विन शु.15, कमल मंदिर, प्रीतविहार, दिल्ली दिनांक-13-10-2000 समापन – वैशाख कृ. 7, वी.नि.सं. 2528, शौरीपुर-बटेश्वर, दि. -3-5-2002
पुस्तक 11 – वेदनाक्षेत्र, वेदना काल सूत्र - 378	पुस्तक 11 – वेदनाकाल, वेदनाभाव, तीन चूलाका सूत्र - 593, पृ. 225 प्रारंभ – वैशाख कृ. 7, वी.नि.सं. 2528, शौरीपुर-बटेश्वर, दि. -3-5-2002 समापन – श्रावण शु. 7, वी. नि. सं. 2529 दिनांक-4-8-2003, पावापुरी (बिहार)
पुस्तक 12 – वेदनाभाव से शेष 10 भेद सूत्र - 847	पुस्तक 12 – वेदनाप्रत्यय, वेदनास्वामित्व आदि 9 भेद हैं। सूत्र - 533, पृ. 175 प्रारंभ – श्रावण कृ. 10, वी.नि.सं. 2529, कुण्डलपुर, दिनांक-24-7-2003 समापन – मगशिर शु. 13, वी.नि.सं. 2530, राजगृही, दिनांक-6-12-2003

धवला टीका (पंचम खण्ड)	सिद्धान्तचिंतामणि टीका (पंचम खण्ड)
(पंचम खण्ड)	(पंचम खण्ड)
पुस्तक 13 – स्पर्श ⁸ , कर्म ⁴ , प्रकृति ⁶ अनुयोगद्वार सूत्र - 206	पुस्तक 13 – स्पर्श ⁸ , कर्म ⁴ , प्रकृति ⁶ अनुयोगद्वार सूत्र - 206 (पृष्ठ 257) प्रारंभ – पौष कृ. 11, वी.नि.सं. 2530, कुण्डलपुर, दिनांक 19-12-2003 समापन – द्वि. श्रावण शु. 7, वी.नि.सं. 2530 दिनांक-22-8-2004 कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार
पुस्तक 14 – बंधन ⁶ अनुयोगद्वार सूत्र - 797	पुस्तक 14 – बंधन ⁶ अनुयोगद्वार। सूत्र - 797 (पृष्ठ 351) प्रारंभ – आश्विन शु. 15, वी.नि.सं. 2530, कुण्डलपुर, दिनांक-28-10-2004 समापन – फाल्गुन कृ. 11, वी.नि.सं. 2532, हस्तिनापुर, दिनांक-24-2-2006
पुस्तक 15 – निबंधन ⁷ , प्रक्रम ⁸ , उपक्रम ⁹ , उदय ¹⁰ अनुयोगद्वार सूत्र - 20	पुस्तक 15 – निबंधन ⁷ , प्रक्रम ⁸ , उपक्रम ⁹ , उदय ¹⁰ , मोक्ष ¹¹ अनुयोगद्वार। निबंधन के 20 सूत्र, पृ. 195 प्रारंभ – फाल्गुन कृ. 11, वी.नि.सं. 2532, हस्तिनापुर, दिनांक-24-2-2006 समापन – आश्विन शु. 15-शरद् पूर्णिमा वी.नि.सं. 2532, हस्तिनापुर, दिनांक-6-10-2006
पुस्तक 16 – मोक्ष ¹¹ , संक्रम ¹² , लेश्या ¹³ , लेश्या-कर्म ¹⁴ , लेश्यापरिणाम ¹⁵ , साता-सात ¹⁶ , दीर्घ- ह्रस्व ¹⁷ , भवधारणीय ¹⁸ , पुद्गलात् ¹⁹ , निधत्तानिधत्त ²⁰ , निका-चितानिकाचित ²¹ , कर्मस्थिति ²² , पश्चिम- स्कंध ²³ , अल्पबहुत्व ²⁴ । इस प्रकार 16वीं पुस्तक में मोक्ष से लेकर अल्पबहुत्व तक 14 अनुयोगद्वार हैं। इसमें सूत्र नहीं हैं तथा कृति, वेदना, स्पर्श आदि से लेकर अल्पबहुत्व तक 24 अनुयोगद्वार हैं। ये सभी अनुयोगद्वार पुस्तक 9वीं से 16वीं तक विभक्त हैं।	पुस्तक 16 – संक्रम ¹² से लेकर अल्पबहुत्व ²⁴ तक 13 अनुयोगद्वार हैं। (सूत्र नहीं हैं) कुल पेज 225 हैं। प्रारंभ – कार्तिक शु. 1, वी.नि.सं. 2533, हस्तिनापुर, दिनांक-23-10-2006 समापन – वैशाख कृ. 2, वी.नि.सं. 2533, हस्तिनापुर, दिनांक-4-4-2007

षट्खण्डागम के सूत्रों की संख्या-

प्रथम खण्ड - 2375, द्वितीय खण्ड - 1594, तृतीय खण्ड - 324, चतुर्थ खण्ड - 1525, पंचम खण्ड - 1023।

कुल सूत्र - 6841

बीसवीं शताब्दी के प्रथम आचार्य चारित्र चक्रवर्ती १०८ श्री शांतिसागर जी महाराज संक्षिप्त परिचय

स्वस्ति श्री मूलसंघ में कुंदकुंदाम्नाय, सरस्वती गच्छ, बलात्कार गण में बीसवीं शताब्दी में प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य-चारित्र चक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज हुए हैं। जिनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है—

जन्म	— आषाढ़ बदी 6, सन् 1872
निवास स्थान	— भोजग्राम (जिला-बेलगाँव) कर्नाटक
नाम	— सातगौडा पाटिल
माता-पिता	— माता-सत्यवती, पिता-भीमगौडा पाटिल
क्षुल्लक दीक्षा	— ज्येष्ठ शु. 13, सन् 1914 ग्राम-उत्तूर (जि. कोल्हापुर) महाराष्ट्र
दीक्षा गुरु	— मुनि 108 श्री देवेन्द्रकीर्ति जी महाराज
ऐलक दीक्षा	— सन् 1917 गिरनार क्षेत्र, स्वयं भगवान के चरण सानिध्य में
मुनि दीक्षा	— फाल्गुन शु. 14, सन् 1920 ग्राम-येरनाल (जिला-बेलगाँव) कर्नाटक
दीक्षा गुरु	— मुनि श्री 108 देवेन्द्रकीर्ति जी महाराज
आचार्य पद	— आश्विन शु. 11, सन् 1924 ग्राम-समडोली (जिला-सांगली-महाराष्ट्र) द्वारा-चतुर्विध संघ
चारित्र चक्रवर्ती पद	— सन् 1937 गजपंथा सिद्धक्षेत्र (महा.)
समाधिमरण	— द्वि. भाद्रपद शु. 2, सन् 1955, कुंथलगिरि (सिद्धक्षेत्र)

आचार्य देव ने अनेक दीक्षाएँ देकर चतुर्विध संघ सहित दक्षिण से उत्तर और पूर्व से पश्चिम तक सारे भारत में मंगल विहार करके दिगम्बर जैन मुनि परंपरा को पुनरुज्जीवित किया। अनेक तीर्थों पर जिनप्रतिमाएँ स्थापित करायीं, षट्खण्डागम ग्रंथ को ताम्रपट्ट पर उत्कीर्ण कराकर जिनवाणी को स्थायित्व प्रदान किया। ऐसे बहुत से जिनधर्म प्रभावना के कार्यों से इस भूतल पर अपने यश को विरस्थायी कर दिया।

आपने अंत में कुंथलगिरि क्षेत्र पर सल्लेखना लेकर अपने जीवनकाल में अपना आचार्यपद अपने प्रथम शिष्य मुनि श्री वीरसागर को प्रदान कर दिया था। पुनः उनकी परम्परा में द्वितीय पट्टाचार्य श्री शिवसागर मुनिराज हुए, तृतीय पट्टाचार्य श्री धर्मसागर महाराज, चतुर्थ उसके पश्चात् श्री अजितसागर महाराज, पंचम पट्टाचार्य श्री श्रेयांससागर महाराज हुए हैं तथा छठे पट्टाचार्य श्री अभिनंदनसागर महाराज हैं, उन्होंने अपनी शारीरिक अस्वस्थता के कारण संघस्थ शिष्य मुनि श्री अनेकांतसागर जी को 26 मई 2014 को आगे का सप्तम पट्टाचार्य घोषित किया है एवं 2 जून 2014, श्रुतपंचमी को उन पर बालाचार्य पद के संस्कार अपने हाथ से कर दिये हैं।

चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागराचार्य के प्रथम पट्टशिष्य

चारित्रशिरोमणि पूज्य आचार्यरत्न

श्री वीरसागर महाराज का परिचय-एक दृष्टि में

(संस्कृत टीकाकर्त्री पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के आर्थिका दीक्षागुरु)

स्वस्ति श्री मूलसंघ में कुन्दकुन्दाम्नाय, सरस्वती गच्छ, बलात्कारगण में बीसवीं सदी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टशिष्य आचार्यश्री वीरसागर महाराज हुए हैं। उनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

जन्म	—आषाढ़ शु. 15, सन् 1876, वि.सं. 1933
ग्राम	—वीर गाँव (जि.-औरंगाबाद, महाराष्ट्र)
नाम	—हीरालाल
जाति एवं गोत्र	—खण्डेलवाल जाति एवं गंगवाल गोत्र
पिता	—श्री रामसुख जैन
माता	—श्रीमती भाग्यवती जैन (भागू बाई)
कुल्लक दीक्षा	—फाल्गुन शु. 7, सन् 1923 (वि.सं. 1980)
नाम	—श्री वीरसागर महाराज
मुनिदीक्षा	—आश्विन शु. 11, सन् 1924 (वि.सं. 1981)
ग्राम	—समडोली-महाराष्ट्र
दीक्षागुरु	—चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज
आचार्य पद घोषणा	—कुंथलगिरि में आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज द्वारा प्रथम भाद्रपद शु. 7, सन् 1955 (वि.सं. 2012)
आचार्यपदारोहण	—द्वि. भाद्रपद कृ. 7, सन् 1955 (वि.सं. 2012)
स्थान	—खानिया-जयपुर (राज.)
समाधिमरण	—आश्विन कृ. अमावस्या, सन् 1957 (वि.सं. 2014)
स्थान	—खानिया-जयपुर (राज.)

षट्खण्डागम की सिद्धांतचिंतामणि टीकाकर्त्री, दो बार डी.लिट्. की मानद
उपाधियों से अलंकृत प्रथम ऐतिहासिक साध्वी

परम पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

कुन्दकुन्दान्वयो जीयात्, जीयात् श्री शांतिसागरः।

जीयात् पट्टाधिपस्तस्य, सूरिः श्री वीरसागरः॥

श्री ब्राह्मी गणिनी जीयात्, जीयादन्तिमचन्दना।

जीयात् ज्ञानमती माता, गणिन्यां प्रमुखा कलौ॥

जैनशासन के वर्तमान व्योम पर छिटके नक्षत्रों में दैदीप्यमान सूर्य की भाँति अपनी प्रकाश-रश्मियों को प्रकीर्णित कर रही पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर उठी लेखनी की अपूर्णता यद्यपि अवश्यंभावी है, तथापि आत्मकल्याण की भावना से पूज्य माताजी के श्रीचरणों में उनके दीर्घकालीन त्यागमयी जीवन के प्रति विनम्र विनयांजलिरूप मेरा यह विनीत प्रयास है।

1. **जन्म, वैराग्य और दीक्षा**-22 अक्टूबर सन् 1934, शरदपूर्णिमा के दिन टिकैतनगर ग्राम (जि. बाराबंकी, उ.प्र.) के श्रेष्ठी श्री छोटेलाल जैन की धर्मपत्नी श्रीमती मोहिनी देवी के दांपत्य जीवन के प्रथम पुष्प के रूप में "मैना" का जन्म परिवार में नवीन खुशियाँ लेकर आया था। माँ को दहेज में प्राप्त 'पद्मनंदिपंचविंशतिका' ग्रन्थ के नियमित स्वाध्याय एवं पूर्वजन्म से प्राप्त दृढ़ वैराग्य संस्कारों के बल पर मात्र 18 वर्ष की अल्प आयु में ही शरद पूर्णिमा के दिन मैना ने आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से सन् 1952 में आजन्म ब्रह्मचर्यव्रतरूप सप्तम प्रतिमा एवं गृहत्याग के नियमों को धारण कर लिया। उसी दिन से इस कन्या के जीवन में 24 घंटे में एक बार भोजन करने के नियम का भी प्रारंभोत्तरण हो गया।

नारी जीवन की चरमोत्कर्ष अवस्था आर्यिका दीक्षा की कामना को अपनी हर साँस में संजोये ब्र. मैना सन् 1953 में आचार्य श्री देशभूषण जी से ही चैत्र कृष्णा एकम् को श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र में 'क्षुल्लिका वीरमती' के रूप में दीक्षित हो गई। सन् 1955 में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की समाधि के समय कुंथलगिरी पर एक माह तक प्राप्त उनके सान्निध्य एवं आज्ञा द्वारा 'क्षुल्लिका वीरमती' ने आचार्य श्री के प्रथम पट्टाचार्य शिष्य-वीरसागर जी महाराज से सन् 1956 में 'वैशाख कृष्णा दूज' को माधोराजपुरा (जयपुर-राज.) में आर्यिका दीक्षा धारण करके "आर्यिका ज्ञानमती" नाम प्राप्त किया।

2. **अध्ययन और अध्यापन**-ज्ञानप्राप्ति की पिपासा माता ज्ञानमती जी के रोम-रोम में प्रारंभ से ही कूट-कूट कर भरी थी। दीक्षा लेते ही स्वाध्याय-मनन-चिंतन की धारा में ही उन्होंने स्वयं को निबद्ध कर लिया। ज्ञान प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ स्रोत बना-संघस्थ मुनियों, आर्यिकाओं एवं संघस्थ शिष्य-शिष्याओं को जैनागम का तलस्पर्शी अध्यापन। 'कांतत्र रूपमाला' रूपी बीज से पूज्य माताजी की ज्ञानसाधना रूप वृक्ष प्रस्फुटित हुआ, जिस पर जो पत्ते, फूल-फल इत्यादि लगे, उन्होंने समस्त संसार को सुवासित कर दिया। गोमटसार, परीक्षामुख, न्यायदीपिका, प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री, तत्त्वार्थराजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि, अनगारधर्मामृत, मूलाचार, त्रिलोकसार आदि अनेक ग्रंथों को अपनी शिष्याओं और संघस्थ साधुओं को पढ़ा-पढ़ाकर आपने अल्प समय में ही विस्तृत ज्ञानार्जन कर लिया। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, मराठी इत्यादि भाषाओं पर आपका पूर्ण अधिकार हो गया।

3. **लेखनी का प्रारंभीकरण संस्कृत भाषा से-**भगवान महावीर के पश्चात् 2600 वर्ष के जिस इतिहास में जैन साध्वियों के द्वारा शास्त्र लेखन की कोई मिसाल दृष्टिगोचर नहीं होती थी, वह इतिहास जागृत हो उठा जब क्षुल्लिका वीरमती जी ने सन् 1954 में सहस्रनाम के 1008 मंत्रों से अपनी लेखनी का प्रारंभ किया। यही मंत्र सरस्वती माता का वरदहस्त बनकर पूज्य माताजी की लेखनी को ऊँचाइयों की सीमा तक ले गये। सन् 1969-70 में न्याय के सर्वोच्च ग्रंथ 'अष्टसहस्री' के हिन्दी अनुवाद ने उनकी अद्वितीय विद्वत्ता को संसार के सामने उजागर कर दिया। कितने ही ग्रंथों की संस्कृत टीका, कितनी ही टीकाओं के हिन्दी अनुवाद, संस्कृत एवं हिन्दी में अनेक मौलिक ग्रंथों की रचना मिलकर आज लगभग 250 से भी अधिक संख्या हो चुकी है। पूज्य माताजी द्वारा लिखित समयसार, नियमसार इत्यादि की हिन्दी-संस्कृत टीकाएँ, जैनभारती, ज्ञानामृत, कातंत्र व्याकरण, त्रिलोक भास्कर, प्रवचन निर्देशिका इत्यादि स्वाध्याय ग्रंथ, प्रतिज्ञा, संस्कार, भक्ति, आदिब्रह्मा, आटे का मुर्गा, जीवनदान इत्यादि जैन उपन्यास, द्रव्यसंग्रह-रत्नकरण्डश्रावकाचार इत्यादि के हिन्दी पद्यानुवाद व अर्थ, बाल विकास, बालभारती, नारी आलोक आदि का अध्ययन किसी को भी वर्तमान में उपलब्ध जैन वाङ्मय की विविध विधाओं का विस्तृत ज्ञान कराने में सक्षम है।

अध्यात्म, व्याकरण, न्याय, सिद्धांत, बाल साहित्य, उपन्यास, चारों अनुयोगोंरूप विविध विधाओं के अतिरिक्त पूज्य माताजी की लेखनी से विपुल भक्ति साहित्य उद्भूत हुआ है। इन्द्रध्वज, कल्पद्रुम, सर्वतोभद्र, तीन लोक, सिद्धचक्र, विश्वशांति महावीर विधान इत्यादि अनेकानेक भक्ति विधानों ने देश के कोने-कोने में जिनेन्द्र भक्ति की जो धारा प्रवाहित की है, वह अतुलनीय है। पूज्य माताजी का चिंतन एवं लेखन पूर्णतया जैन आगम से संबद्ध है, यह उनकी महान विशेषता है।

धन्य हैं ऐसी महान प्रतिभावान् सरस्वती माता!

4. **सिद्धांत चक्रेश्वरी-**पूज्य माताजी ने जैनशासन के सर्वप्रथम सिद्धांत ग्रंथ 'षट्खण्डागम' की सोलहों पुस्तकों के सूत्रों की संस्कृत टीका 'सिद्धांत चिंतामणि' का लेखन करके महान कीर्तिमान स्थापित किया है। क्रम-क्रम से हिन्दी टीका सहित इन पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य चल रहा है। आज से लगभग 1000 वर्ष पूर्व आचार्य श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने जिस प्रकार छह खण्डरूप द्वादशांगरूप जिनवाणी को परिपूर्ण आत्मसात करके साररूप में द्रव्य संग्रह, गोमटसार, लब्धिसार इत्यादि ग्रंथ अपनी लेखनी से प्रसवित किये थे, उसी प्रकार इस बीसवीं सदी की माता ज्ञानमती जी ने समस्त उपलब्ध जैनागम का गहन अध्ययन-मनन-चिंतन करके इस सिद्धांतचिंतामणिरूप संस्कृत टीका लेखन के महत्तम कार्य से 'सिद्धांत चक्रेश्वरी' के पद को साकार कर दिया है। आचार्य श्री वीरसेन स्वामी द्वारा 1000 वर्ष पूर्व लिखित 'धवलाटीका' के पश्चात् इस महान ग्रंथ की सरल टीका लेखन का कार्य प्रथम बार हुआ है।

5. **शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर-**जैन सिद्धांतों का मर्म विद्वत् वर्ग समझ सके, इस भावना से कितने ही शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन पूज्य माताजी की प्रेरणास्वरूप किया गया। सन् 1969 में जयपुर चातुर्मास के मध्य 'जैन ज्योतिर्लोक' पर प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य माताजी द्वारा 'जैन भूगोल एवं खगोल' का विशेष ज्ञान विद्वत् वर्ग को कराया गया। अक्टूबर सन् 1978 में हस्तिनापुर में पं. मक्खनलाल जी शास्त्री, पं. मोतीचंद जी कोठारी, डा. लाल बहादुर शास्त्री सहित जैन समाज के उच्चकोटि के लगभग 100 विद्वानों का विद्वत् प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य माताजी ने विद्वत्समुदाय को यथेष्ट मार्गदर्शन प्रदान किया। समय-समय पर आज तक यह श्रृंखला चल रही है।

6. **राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार-**सन् 1985 में 'जैन गणित एवं त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में सम्पन्न हुआ, पुनः अनेक संगोष्ठियाँ सम्पन्न होती रहीं और सन् 1998 में 'भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन' के भव्य आयोजन द्वारा देशभर के विश्वविद्यालयों से पधारे कुलपतियों को भगवान ऋषभदेव को भारतीय संस्कृति एवं जैनधर्म के वर्तमानयुगीन प्रणेता पुरुष के

रूप में जानने का अवसर प्राप्त हुआ। 11 जून 2000 को 'जैनधर्म की प्राचीनता' विषय पर आयोजित इतिहासकारों के सम्मेलन द्वारा पाठ्य पुस्तकों में जैनधर्म संबंधी भ्रांतियों के सुधार के लिए विशेष दिशा-निर्देश 'राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद' (NCERT) तक पहुँचाये गये। इनके अतिरिक्त अनेक अन्य सेमिनार भी समय-समय पर सम्पन्न हुए हैं, जिनके प्रतिफल में देश के समक्ष समय-समय पर साहित्यिक कृतियाँ (Proceedings) प्रस्तुत हो चुकी हैं।

7. दिगम्बर समाज की साध्वी को प्रथम बार डी.लिट्. की उपाधि प्रदान कर विश्वविद्यालय भी गौरवान्वित हुआ-किसी महाविद्यालय, विश्वविद्यालय आदि में पारम्परिक डिग्रियों को प्राप्त किये बिना मात्र स्वयं के धार्मिक अध्ययन के बल पर विदुषी माताजी ने अध्ययन, अध्यापन, साहित्य निर्माण की जिन ऊँचाइयों को स्पर्श किया, उस अगाध विद्वता के सम्मान हेतु डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद द्वारा 5 फरवरी 1995 को डी.लिट्. की मानद उपाधि से पूज्य माताजी को सम्मानित करके स्वयं को गौरवान्वित अनुभव किया गया तथा दिगम्बर जैन साधु-साध्वी परम्परा में पूज्य माताजी यह उपाधि प्राप्त करने वाली प्रथम व्यक्तित्व बन गईं। पुनः इसके उपरांत 8 अप्रैल 2012 को पूज्य माताजी के 57वें आर्यिका दीक्षा दिवस के अवसर पर तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद में विश्वविद्यालय का प्रथम विशेष दीक्षांत समारोह आयोजित करके विश्वविद्यालय द्वारा पूज्य माताजी के करकमलों डी.लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की गई।

इसी प्रकार से समय-समय पर विभिन्न आचार्यों एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा पूज्य माताजी को न्याय प्रभाकर, आर्यिकारत्न, आर्यिकाशिरोमणि, गणिनीप्रमुख, वात्सल्यमूर्ति, तीर्थोद्धारिका, युगप्रवर्तिका, चारित्रचन्द्रिका, राष्ट्रगौरव, वादेवी इत्यादि अनेक उपाधियों से अलंकृत किया गया है, किन्तु पूज्य माताजी इन सभी उपाधियों से निस्पृह होकर अपनी आत्मसाधना को प्रमुखता देते हुए निर्दोष आर्यिका चर्या में निमग्न रहने का ही अपना मुख्य लक्ष्य रखती हैं।

8. पूज्य माताजी की प्रेरणा से त्याग में बढ़े कदम-त्यागमार्ग में अग्रसर सम्यग्दृष्टी जीव की यह विशेषता रहती है कि वह संसार परिभ्रमण से आक्रान्त अन्य भव्यजीवों को भी मोक्षमार्ग का पथिक बनाने हेतु विशेषरूप से प्रयासरत रहता है। इसी भावना की परिपुष्टी करते हुए पूज्य माताजी ने अनेकानेक शिष्य-शिष्याओं का सृजन किया।

संघस्थ साधुओं-मुनिजनों एवं आर्यिकाओं को अध्ययन कराते हुए सन् 1956-57 में ब्र. राजमल जी को राजवार्तिक आदि अनेक ग्रंथों का अध्ययन कराकर पूज्य माताजी ने उन्हें मुनिदीक्षा लेने की प्रेरणा प्रदान की। पुनश्च ब्र. राजमल जी कालांतर में आचार्य अजितसागर जी महाराज के रूप में चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज की परम्परा में चतुर्थ पट्टाचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

सन् 1967 में सनावद चातुर्मास के मध्य पूज्य माताजी ने ब्र. मोतीचंद एवं युवक यशवंत कुमार को घर से निकाला, उन्हें खूब विद्याध्ययन कराया तथा यशवंत कुमार को मुनिदीक्षा दिलवायी, जो वर्तमान में आचार्यश्री वर्धमानसागर के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हैं। ब्र. मोतीचंद जी भी क्षुल्लक मोतीसागर बनकर जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के प्रथम पीठाधीश के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

वर्तमान पट्टाचार्यश्री अभिनंदनसागर जी महाराज ने भी पूज्य माताजी से राजवार्तिक, गोम्मतसार आदि ग्रंथों का अध्ययन किया था। मुनि श्री भव्यसागर जी महाराज, मुनि श्री संभवसागर जी महाराज इत्यादि ने भी पूज्य माताजी से विद्याध्ययन किया तथा उनकी प्रेरणा से ही मुनि दीक्षा प्राप्त की। वर्तमान में पूज्य माताजी के अनन्य शिष्य स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी अत्यंत कर्मठ व्यक्तित्व के रूप में समस्त समाज में प्रसिद्धि को प्राप्त हैं।

आर्यिका माताओं की श्रृंखला में आर्यिका श्री पद्मावती माताजी, आर्यिका श्री जिनमती माताजी, आर्यिका श्री आदिमती माताजी, आर्यिका श्री श्रेष्ठमती माताजी, आर्यिका श्री अभयमती माताजी,

आर्यिका श्री श्रुतमती माताजी, मैं स्वयं (आर्यिका चन्दनामती) तथा आर्यिका श्री सम्पेदशिखरमती माताजी, आर्यिका श्री कैलाशमती माताजी आदि अन्य कई माताजी पूज्य माताजी से प्राप्त वैराग्यमयी संस्कारों एवं अध्यापन का ही प्रतिफल हैं। पूज्य माताजी से सर्वांगीण ग्रंथों का अध्ययन करके पूज्य जिनमती माताजी ने प्रमेयकमलमार्तण्ड, पूज्य आदिमती माताजी ने गोम्पटसार कर्मकाण्ड का हिन्दी अनुवाद किया है। मुझे भी षट्खण्डागम एवं अन्य महान ग्रंथों की हिन्दी टीका, महावीर स्तोत्र की संस्कृत टीका एवं कतिपय संस्कृत रचनाएँ लिखने का सुअवसर पूज्य माताजी की अनुकम्पा से प्राप्त हुआ है।

62 वर्षों की सुदीर्घ अवधि में कितने ही भव्य जीवों ने पूज्य माताजी से आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत, पंच अणुव्रत, शक्ति अनुसार प्रतिमाएँ इत्यादि ग्रहण करके संयम के मार्ग को आत्मसात किया है। वर्तमान में पूज्य माताजी के साक्षात् सानिध्य में रहकर अनेक ब्रह्मचारिणी बहनें त्यागमार्ग में संलग्न हैं।

9. तीर्थ विकास की भावना-तीर्थकर भगवन्तों की कल्याणक भूमियों एवं विशेष रूप से जन्मभूमियों के विकास की ओर पूज्य माताजी की विशेष आंतरिक रुचि सदा से रही है। पूज्य माताजी का कहना है कि हमारी संस्कृति का परिचय प्रदान करने वाली ये कल्याणक भूमियाँ हमारी संस्कृति की महान धरोहर हैं अतः इनका संरक्षण-संवर्धन-विकास अत्यंत आवश्यक है।

सर्वप्रथम **भगवान शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ की जन्मभूमि 'हस्तिनापुर'** में पूज्य माताजी की प्रेरणा से निर्मित जैन भूगोल की अद्वितीय रचना 'जम्बूद्वीप' आज विश्व के मानस पटल पर अंकित हो गयी है, उ.प्र. सरकार के पर्यटन विभाग ने जम्बूद्वीप से हस्तिनापुर की पहचान बताते हुए उसे एक अतुलनीय 'मानव निर्मित स्वर्ग' (A Man Made Heaven of Unparallel Superlatives And Natural Wonders) की संज्ञा प्रदान की है। सन् 1993 से 1995 तक शाश्वत जन्मभूमि 'अयोध्या' में 'समवसरण मंदिर' और 'त्रिकाल चौबीसी मंदिर' का निर्माण करवाकर उसका विश्वव्यापी प्रचार, अकलूज (महाराष्ट्र) में नवदेवता मंदिर निर्माण की प्रेरणा, सनावद (म.प्र.) में णमोकार धाम, प्रीत विहार-दिल्ली में कमलमंदिर, मांगीतुंगी (महाराष्ट्र) में सहस्रकूट कमल मंदिर, अहिच्छत्र में ग्यारह शिखर वाला तीस चौबीसी मंदिर और भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान कल्याणक भूमि-प्रयाग (इलाहाबाद) में 'तीर्थकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ' का भव्य निर्माण पूज्य माताजी की ही प्रेरणा के प्रतिफल हैं।

कितने ही अन्य स्थानों पर भी जैसे-**खेरवाड़ा में कैलाशपर्वत निर्माण की प्रेरणा, पिड़ावा में समवसरण रचना की प्रेरणा, सोलापुर (महा.) में भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा की स्थापना, श्री महावीर जी के शांतिवीर नगर में मंदारवृक्ष की स्थापना, अतिशयक्षेत्र श्री त्रिलोकपुर में पारिजातवृक्ष की स्थापना, केकड़ी (राज.) में सम्पेदशिखर की रचना आदि अनेकानेक निर्माण पूज्य माताजी के निर्देशन द्वारा सम्पन्न हुए और हो रहे हैं। भगवान महावीर स्वामी की जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) के विकास हेतु भगवान महावीर स्वामी कीर्तिस्तंभ, भगवान महावीर की विशाल खड्गासन प्रतिमा सहित विश्वशांति महावीर मंदिर, नवग्रह शांति जिनमंदिर, त्रिकाल चौबीसी मंदिर एवं नंदावर्त महल आदि अनेक निर्माण आपकी प्रेरणा से इस क्षेत्र पर हुए हैं तथा कुण्डलपुर तीर्थ विश्वभर के लिए आकर्षण का केन्द्र बन गया है।**

भगवान मुनिसुवतनाथ की जन्मभूमि '**राजगृही**' में 'मुनिसुवतनाथ जिनमंदिर' एवं विपुलाचल पर्वत की तलहटी में मानस्तंभ रचना, भगवान महावीर की निर्वाणस्थली **पावापुरी में जलमंदिर के समक्ष पाण्डुकशिला परिसर में भगवान की खड्गासन प्रतिमा सहित 'भगवान महावीर जिनमंदिर', गौतम गणधर स्वामी की निर्वाणस्थली गुणावां जी में गौतम स्वामी की खड्गासन प्रतिमा सहित जिनमंदिर, श्री सम्पेदशिखर जी में भगवान ऋषभदेव मंदिर** इत्यादि समस्त निर्माण भी पूज्य माताजी की संप्रेरणा से ही सम्पन्न हुए हैं।

तीर्थकर जन्मभूमि विकास की श्रृंखला में **भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकंदी में 'श्री पुष्पदंतनाथ जिनमंदिर'** का निर्माणकार्य होकर उसमें भगवान पुष्पदंतनाथ की विशाल सवा 9 फुट

उत्तुंग पद्मासन प्रतिमा पंचकल्याणक प्रतिष्ठापूर्वक विराजमान हो चुकी हैं।

तीर्थकरों की शाश्वत जन्मभूमि अयोध्या में वर्तमानकालीन वहाँ जन्में पाँच तीर्थकरों की जन्मभूमि की टोकों पर जिनमंदिर निर्माण की प्रेरणा प्रदान कर आपने संस्कृति को जीवन्त करने का अभूतपूर्व प्रयास किया है। उस श्रृंखला में प्रथम तीर्थकर भगवान ऋषभदेव की टोंक पर सुन्दर कलात्मक मंदिर बनकर उसमें सवा चार फुट पद्मासन श्वेत प्रतिमा विराजमान हुई हैं तथा सरयू नदी के तट पर भगवान अनन्तनाथ के मंदिर का निर्माण होकर पंचकल्याणक सम्पन्न हो चुका है। इसी प्रकार क्रमशः भगवान अजितनाथ एवं अभिनंदननाथ की टोकों पर भी मंदिरों के सुन्दर निर्माण हो चुके हैं।

उल्लेखनीय है कि पूज्य माताजी के आर्यिका दीक्षास्थल-माधोराजपुरा (राज.) में भी 'गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती दीक्षा तीर्थ' के विकास का कार्य सम्पन्न किया जा चुका है। यहाँ सुन्दर कृत्रिम सम्मोदशिखर पर्वत का निर्माण करके 15 फुट उत्तुंग काले पाषाण वाली भगवान पार्श्वनाथ की खड्गासन प्रतिमा एवं चौबीसी विराजमान की गई हैं। इस तीर्थ की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा 21 नवम्बर से 26 नवम्बर 2010 तक पीठाधीश्वर क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज के सान्निध्य में एवं कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन (वर्तमान पीठाधीश्वर रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी) के निर्देशन में विशेष महोत्सवपूर्वक सम्पन्न हुई है।

इसी श्रृंखला में अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी (राज.) में पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से महावीर धाम परिसर में पंचबालयति दिगम्बर जैन मंदिर का भव्य निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ है। यहाँ पर पाँचों बालयति भगवान की प्रतिमाएँ विराजमान करके पृथक् वेदियों में पद्मावती, क्षेत्रपाल की प्रतिमाएँ भी विराजमान की गई हैं। संस्थान द्वारा उक्त जिनमंदिर का पंचकल्याणक दिनांक 29 जनवरी से 2 फरवरी 2012 तक सानंद सम्पन्न किया गया।

विशेष : तेरहद्वीप रचना, तीर्थकरत्रय प्रतिमा एवं तीनलोक रचना-

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर तीर्थ के विकास की अद्वितीयता को अमरता प्रदान करने वाली इन रचनाओं का निर्माण पूज्य माताजी की प्रेरणा से इतिहास में प्रथम बार हुआ। अप्रैल सन् 2007 में स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई। विश्व में प्रथम बार निर्मित इस रचना में विराजमान 2127 जिनप्रतिमाओं के दर्शन करके लोग इच्छित फल की प्राप्ति करते हैं। इसके अतिरिक्त हस्तिनापुर में जन्मे भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमाओं एवं 56 फुट उत्तुंग निर्मित तीनलोक रचना की जिनप्रतिमाओं की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा फरवरी सन् 2010 में हुई जो हस्तिनापुर के अतिशय में चार चाँद लगा रही हैं।

10. विश्व में अनोखी 108 फुट मूर्ति निर्माण की प्रेरणा-विश्व के अप्रतिम आश्चर्य के रूप में 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की खड्गासन प्रतिमा के निर्माण का कार्य मांगीतुंगी (महा.) के पर्वत पर पूज्य माताजी की प्रेरणा से द्रुतगति से चल रहा है। युगों-युगों तक जिनशासन की महिमा को विकसित करने वाली यह प्रतिमा जैन संस्कृति के विशाल व्यक्तित्व का परिचय भी जनमानस को प्रदान करेगी।

11. शिरडी (महाराष्ट्र) में ज्ञानतीर्थ-शिरडी (महाराष्ट्र) को जैन संस्कृति केन्द्र के रूप में स्थापित करने हेतु वहाँ पर 'ज्ञानतीर्थ' का निर्माण हुआ है, जिसमें पूज्य माताजी के निर्देशानुसार भगवान पार्श्वनाथ की विशाल प्रतिमा विराजमान करके पंचकल्याणक महोत्सव (मई 2013 में) सम्पन्न हो चुका है और अब वहाँ सुन्दर कमल मंदिर का निर्माण किया जा रहा है।

12. जृम्भिका तीर्थ विकास की प्रेरणा-भगवान महावीर स्वामी की कैवल्य भूमि जृम्भिका जो आज बिहार प्रान्त में जमुई के नाम से प्रसिद्ध है, वहाँ एक नूतन भूमि पर भगवान की प्रतिमा विराजमान हो चुकी है तथा इस जृम्भिका तीर्थ का विकास हो रहा है।

13. धर्मप्रभावना के विविध आयाम-जम्बूद्वीप रचना के निर्माण का प्रमुख लक्ष्य लेकर 'दिगम्बर

जैन त्रिलोक शोध संस्थान' नामक संस्था का राजधानी दिल्ली में पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् 1972 में गठन किया गया। इसी संस्थान ने विविध धर्मप्रभावना के कार्यों का संचालन किया है। संस्थान स्थित 'वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला' द्वारा लाखों की संख्या में ग्रंथ प्रकाशन, चारों अनुयोगों के ज्ञान से समन्वित 'सम्यग्ज्ञान' मासिक पत्रिका का प्रकाशन, पणोकार महामंत्र बैक इत्यादि कितनी ही कार्ययोजनाएँ जिनशासन की कीर्ति को निरंतर प्रसारित कर रही हैं।

पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् 1982 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा राजधानी दिल्ली से उद्घाटित 'जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति' ने तीन वर्ष तक सम्पूर्ण भारतवर्ष में जैनधर्म के सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार किया और अंत में यह ज्योति अखण्डरूप से तत्कालीन केन्द्रीय रक्षामंत्री-श्री पी.वी. नरसिंहराव द्वारा जम्बूद्वीप स्थल पर स्थापित कर दी गयी। इसी प्रकार अप्रैल सन् 1998 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 'भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार' का राजधानी दिल्ली से प्रवर्तन किया, जो समस्त प्रांतों में प्रवर्तन के पश्चात् भगवान ऋषभदेव की दीक्षास्थली-प्रयाग तीर्थ पर निर्मित 'समवसरण मंदिर' में स्थापित होकर युगों-युगों तक के लिए भगवान ऋषभदेव के वास्तविक समवसरण की याद दिला रहा है। भगवान महावीर जन्मभूमि-कुण्डलपुर (नालंदा) से सन् 2003 में 'भगवान महावीर ज्योति रथ' का विविध प्रांतों में सफल प्रवर्तन भी इसी श्रृंखला की विशिष्ट कड़ी है।

जैनधर्म की प्राचीनता तथा भगवान ऋषभदेव के नाम एवं सिद्धांतों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए पूज्य माताजी ने सन् 1997 में राजधानी दिल्ली में विशाल 'चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल विधान' आयोजित कराया, जिसका झण्डारोहण पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने किया एवं दिल्ली के मुख्यमंत्री श्री साहिब सिंह वर्मा, मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह तथा श्रीमती सुषमा स्वराज आदि अनेक कैबिनेट मंत्रियों ने उपस्थित होकर धर्मलाभ लिया। साथ ही 'भगवान ऋषभदेव जन्मजयंती वर्ष' (सन् 1997-1998 में) तथा 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष' (सन् 2000 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा उद्घाटित) भी पूज्य माताजी की प्रेरणा द्वारा विविध धर्मप्रभावना के कार्यक्रमों सहित सम्पन्न हुए। विभिन्न टी.वी. चैनलों द्वारा पूज्य माताजी के 'तीर्थंकर जीवन दर्शन (सचित्र)' एवं अन्य विषयों पर प्रभावक प्रवचन लम्बे समय तक प्रसारित हुए एवं हो रहे हैं। पूज्य माताजी की प्रेरणा से स्थापित 'अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महिला संगठन' अपनी सैकड़ों ईकाइयों द्वारा दिगम्बर जैन समाज की नारी शक्ति को सृजनात्मक कार्यों हेतु संगठित कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त कितने ही अन्य धर्मप्रभावना के कार्य पूज्य माताजी ने सम्पन्न किये हैं जिनका यहाँ लेखन तो संभव नहीं है, किन्तु आज पूरा समाज उनके कार्यकलापों से परिचित होकर उन्हें कर्मठता की मूर्ति के रूप में पहचानता है।

14. संघर्ष विजेत्री-पूज्य माताजी ने प्रारंभ से अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया- प्रत्येक कार्य आगमानुकूल ही करना। पुनः उन कार्यों के निष्पादन में जो भी विघ्न आते हैं, उन्हें बहुत ही शांतिपूर्वक झेलकर पूरी तन्मयता के साथ उस कार्य को परिपूर्ण करना उनकी विशेषता रही है। उनका पूरा जीवन आर्ष परम्परा का संरक्षण करते हुए अपने मूलगुणों में बाधा न आने देकर जिनधर्म की अधिकाधिक प्रभावना के साथ व्यतीत हुआ है।

15. भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का आयोजन-23वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी में 6 जनवरी 2005 को पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं ससंघ सानिध्य में 'भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव' का उद्घाटन किया गया। भगवान की केवलज्ञान कल्याणक भूमि 'अहिच्छत्र', निर्वाणभूमि 'श्री सम्मदशिखर जी' इत्यादि अनेकानेक तीर्थों पर विविध आयोजनों के साथ यह वर्ष मनाया गया। वर्ष 2006 को "सम्मदशिखर वर्ष" के रूप में मनाने की प्रेरणा पूज्य माताजी ने प्रदान की, ताकि तन-मन-धन से दिगम्बर जैन समाज अपने महान तीर्थराज 'श्री सम्मदशिखर जी' के प्रति समर्पित हो सके। पुनः दिसम्बर 2007 में अहिच्छत्र में आयोजित

‘सहस्राब्दि महामस्तकाभिषेक’ के साथ इस त्रिवर्षीय महोत्सव का समापन किया गया।

16. शताब्दी का अभूतपूर्व अवसर : दीक्षा स्वर्ण जयंती -वैशाख कृष्ण दूज, वी.नि.सं. 2532 अर्थात् 15 अप्रैल 2006 को अपनी आर्यिका दीक्षा के 50 वर्ष पूर्ण करने वाली प्रथम साध्वी पूज्य माताजी वर्तमान दिगम्बर जैन साधु परम्परा में सर्वाधिक प्राचीन दीक्षित होने के गौरव से युक्त होकर हम सभी के लिए अतिशयकारी प्राचीन प्रतिमा के सदृश बन गईं। जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में 14 से 16 अप्रैल 2006 तक ‘गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव’ का भव्य आयोजन करके समस्त समाज ने पूज्य माताजी के श्रीचरणों में अपनी विनम्र विनयांजलि अर्पित की।

17. विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का उद्घाटन किया राष्ट्रपति जी ने-21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पूज्य माताजी की प्रेरणा से आयोजित विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का उद्घाटन भारत की प्रथम महिला राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील के करकमलों से हुआ। पुनः सन् 2009 “शांति वर्ष” में पूरे देश में विश्व की शांति के लिए धार्मिक अनुष्ठान एवं संगोष्ठियों के कार्यक्रम आयोजित किए गए।

18. ‘प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर वर्ष’ मनाने की प्रेरणा-बीसवीं सदी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के महान उपकारों से जन-जन को परिचित कराने के उद्देश्य से पूज्य माताजी ने वर्ष 2010 को “प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर वर्ष” के रूप में मनाने की प्रेरणा समस्त समाज को प्रदान की। इस वर्ष का उद्घाटन ज्येष्ठ कृ. चतुर्दशी, 11 जून 2010 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में भगवान शांतिनाथ जन्म-दीक्षा एवं निर्वाणकल्याणक के शुभ दिवस किया गया तथा ज्येष्ठ कृ. चतुर्दशी, 31 मई 2011 तक यह वर्ष पूरे देश के विभिन्न अंचलों में अनेक धर्मप्रभावनात्मक कार्यक्रमों के साथ विभिन्न आयोजनोंपूर्वक मनाया गया।

19. प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर वर्ष मनाने की प्रेरणा-शरदपूर्णिमा-2011 के शुभ अवसर पर पूज्य माताजी द्वारा प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज, जो पूज्य माताजी के दीक्षा गुरु भी हैं, का वर्ष मनाने की घोषणा की अतः यह वर्ष समाज द्वारा विभिन्न आयोजन पूर्वक सानंद मनाया गया।

20. चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष-जिनकी दीर्घकालिक तपस्या के वर्षों की गिनती जानकर अनेक आचार्य, मुनि, आर्यिकाएँ इत्यादि भी इस बात को कहते हुए गौरव का अनुभव करते हैं कि आज जितनी मेरी उम्र भी नहीं है उससे अधिक तो पूज्य माताजी की दीक्षा की आयु है, अर्थात् 18 वर्ष की उम्र से त्याग मार्ग पर जिन्होंने कदम रखा, उन्होंने अपनी जन्मतिथि-शरदपूर्णिमा को भी त्याग से सार्थक कर उस त्यागमयी जीवन के 60 वर्ष भी उन्होंने निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण किये। इसीलिए इनके 79वें जन्मदिवस एवं 61वें त्यागदिवस पर हमने अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महिला संगठन के आह्वान पर चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष 2012-2013 मनाने की घोषणा की। इस वर्ष में सभी को शक्ति अनुसार चारित्र ग्रहण करने का संदेश दिया गया।

21. मंगलमय अमृत महोत्सव-अब पूज्य माताजी के 80वें जन्मदिवस को शरदपूर्णिमा-18 अक्टूबर 2013 को “गणिनी ज्ञानमती अमृत महोत्सव” के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर मनाया गया। इस अवसर पर “सम्मेदशिखर विधान” के 80 मांडले बनाकर 80 परिवारों के द्वारा उनकी पूजन करने का विहंगम दृश्य उपस्थित हुआ। ज्ञातव्य है कि पूज्य माताजी की प्रेरणानुसार शाश्वत सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखर में “आचार्य शांतिसागर धाम” नामक स्मारक का निर्माण किया जा रहा है, जो आचार्य श्री की सम्मेदशिखर यात्रा (सन् 1927-28 में की गई) की ऐतिहासिकता का दिग्दर्शन कराएगा।

इन चतुर्मुखी प्रतिभा की धनी पूज्य माताजी के चरणों में कोटिशः नमन है तथा भगवान जिनेन्द्र से यही प्रार्थना है कि उनके इस पवित्र त्यागमयी जीवन का हमें शताब्दी महोत्सव भी मनाने का लाभ प्राप्त हो एवं आपके द्वारा नया-नया साहित्य जनता को प्राप्त होता रहे, यही मंगलकामना है।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की श्रुतसेवा का अद्भुत एवं बेमिसाल स्वरूप प्रस्तुत है पूज्य माताजी की स्वतः लेखनी से प्रसूत साहित्य भंडार की सूची

प्रकाशित/उपलब्ध ग्रंथ

1. अष्टसहस्री भाग-1
2. जैन ज्योतिर्लोक
3. त्रिलोक भास्कर
4. सामायिक एवं श्रावक प्रतिक्रमण
5. न्यायसार
6. भगवान महावीर कैसे बने?
7. जम्बूद्वीप पूजन विधान
8. तीर्थंकर महावीर और उनका धर्मतीर्थ
9. श्री वीर जिनस्तुति
10. ऐतिहासिक तीर्थ हस्तिनापुर
11. द्रव्यसंग्रह (पद्यानुवाद)
12. आत्मा की खोज
13. जम्बूद्वीप
14. बाल विकास, भाग-1 (हिन्दी एवं मराठी)
15. बाल विकास, भाग-2
16. बाल विकास, भाग-3
17. बाल विकास, भाग-4
18. समाधिशतक इष्टोपदेश
19. आर्यिका
20. व्रत विधि एवं पूजा
21. इन्द्रध्वज विधान
22. प्रतिज्ञा
23. प्रवचन निर्देशिका
24. चौबीस तीर्थंकर
25. प्रतिज्ञा (छापी)
26. आराधना
27. शिक्षण पद्धति
28. पंच परमेष्ठी विधान
29. तीस चौबीसी विधान
30. भगवान बाहुबली
31. रत्नकरंड पद्यावली (रत्नकरंड श्रावकाचार)
32. भक्ति
33. प्रभावना
34. ऋषिमंडल पूजा विधान
35. श्री शांतिनाथ पूजन विधान
36. नित्य पूजा
37. सुदर्शन मेरु पूजा
38. सोलह भावना
39. तीर्थंकर त्रय पूजा
40. भगवान ऋषभदेव
41. रोहिणी नाटक
42. संस्कार
43. जीवनदान
44. उपकार
45. परीक्षा
46. नियमसार पद्यावली
47. दिगम्बर मुनि
48. जैन भारती
49. अभिषेक एवं पूजा
50. बाहुबली पूजा
51. बाहुबली नाटक
52. योगचक्रेश्वर बाहुबली
53. कामदेव बाहुबली (गुजराती, कन्नड़, हिन्दी)
54. बाहुबली पूजा एवं स्तोत्र
55. जम्बूद्वीप गाइड (मार्गदर्शिका)
56. जैन बाल भारती, भाग-1
57. जैन बाल भारती, भाग-2
58. जैन बाल भारती, भाग-3
59. नारी आलोक, भाग-1
60. नारी आलोक, भाग-2
61. दस धर्म
62. जैन भूगोल
63. आदि ब्रह्मा
64. हस्तिनापुर
65. धरती के देवता
66. पतिव्रता
67. आटे का मुर्गा
68. एकांकी, भाग-1
69. एकांकी, भाग-2
70. पुरुदेव नाटक
71. जैन धर्म
72. Jambudvip Guide & Hastinapur
73. जिनगुण सम्पत्ति विधान
74. नियमसार (पद्मप्रभमलधारी देव की टीका सहित)

75. जम्बूद्वीप पूजा एवं भक्ति
76. हस्तिनापुर पूजा
77. कुन्दकुन्द का भक्तिराग
78. नियमसार प्राभृत (संस्कृत एवं हिन्दी टीका)
79. सती अंजना
80. कातंत्र रूपमाला
81. जम्बूद्वीप मण्डल विधान
82. कल्पद्रुम विधान
83. मण्डल विधान प्रारंभ एवं हवन विधि
84. सामायिक पाठ
85. गोम्मतसार जीवकांडसार
86. गोम्मतसार कर्मकाण्डसार
87. सम्पेदशिखर टोंक पूजन
88. सर्वतोभद्र विधान
89. तीन लोक विधान
90. त्रैलोक्य विधान
91. जैन महाभारत
92. पंचमेरु विधान
93. जम्बूद्वीप पूजांजलि
94. भाव त्रिभंगी
95. अष्टसहस्री, भाग-2
96. कुन्दकुन्द मणिमाला
97. अष्टसहस्री, भाग-3
98. ज्ञान रश्मि
99. कुन्दकुन्द के भक्ति प्रसून
100. ज्ञानामृत
101. समयसार(पूर्वार्द्ध)
102. समयसार (उत्तरार्द्ध)
103. मेरी स्मृतियाँ
104. मुनिचर्या
105. भरत का भारत
106. दीपावली पूजन
107. चतुर्दशी व्रत कथा
108. जिन सहस्रनाम मंत्र
109. भक्ति कुसुमावली
110. जिन स्तवनमाला
111. भक्ति सुधा
112. जिन स्तोत्र संग्रह
113. कल्याण कल्पतरु स्तोत्र
114. श्री सिद्धचक्र विधान
115. पंचकल्याणक विधान
116. चौंसठ ऋद्धि विधान
117. श्रुतस्कन्ध विधान
118. नंदीश्वर विधान
119. गणधर वलय विधान
120. भगवान नेमिनाथ
121. अयोध्या तीर्थक्षेत्र पूजा
122. श्री ऋषभ जन्मभूमि अयोध्या
123. सहस्रनाम विधान
124. श्री ऋषभदेव विधान
125. भगवान ऋषभदेव का समवसरण
126. भगवान नेमिनाथ विधान
127. अनादि जैन धर्म
128. जैन धर्म एवं भगवान ऋषभदेव
129. यागमण्डल विधान
130. तीर्थकर ऋषभदेव के दस अवतार
131. षट्खण्डागम खण्ड-1, भाग-1
132. षट्खण्डागम खण्ड-1, भाग-2
133. षड्खण्डागम खण्ड-1, भाग-3
134. षट्खण्डागम खण्ड-1, भाग-4
135. षट्खण्डागम खण्ड-1, भाग-5
136. षट्खण्डागम खण्ड-1, भाग-6
137. षट्खण्डागम खण्ड-1, भाग-7
138. षट्खण्डागम खण्ड-1, भाग-8
139. चतुर्विंशति तीर्थकर स्तुति
140. श्री ऋषभदेव पूजा
141. प्रयाग तीर्थ वन्दना
142. विश्वशांति महावीर विधान
143. तीर्थकर जीवन दर्शन
144. सामायिक पाठ
145. प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर महाराज
146. भगवान महावीर देशना
147. विश्वशांति महावीर विधान
148. अन्तिम तीर्थकर भगवान महावीर
149. मनोकामना सिद्धि महावीर व्रत एवं पूजा
150. वीर गुणसंपद् विधान (लघु महावीर विधान)
151. नवदेवता विधान (वृहत्)
152. श्री पार्श्वनाथ विधान
153. समवसरण विधान
154. महावीर समवसरण विधान
155. विषापहार विधान
156. आचार्य श्री शांतिसागर विधान
157. भगवान पार्श्वनाथ
158. आचार्य श्री वीरसागर विधान

159. भगवान महावीर
160. सात सौ बीस तीर्थकर विधान
161. त्रिकाल चौबीसी विधान
162. प्रतिष्ठा तिलक
163. पुण्यास्रव विधान
164. कर्मदहन विधान
165. श्री सरस्वती विधान
166. दशलक्षण धर्म पूजा
167. प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर परिचय एवं पूजा
168. तीर्थकर पंचकल्याणक तीर्थ व्रत विधि एवं पूजा
169. तेरहद्वीप पूजा
170. तेरहद्वीप विधान
171. चारित्रशुद्धि व्रत
172. श्री पार्श्वनाथ समवसरण विधान
173. नवनिधि व्रत विधि एवं पूजा
174. श्री शांतिनाथ व्रत
175. नवदेवता विधान (लघु)
176. भगवान शांतिनाथ
177. भगवान मुनिसुव्रतनाथ विधान
178. श्री आदिपुराण
179. बीस तीर्थकर विधान
180. चौबीस तीर्थकर विधान
181. श्री बाहुबली विधान
182. त्रिभुवन तिलक विधान
183. तीनलोक रचना एवं वंदना
184. श्री ऋषभदेव विधान (लघु)
185. गतियों से आने-जाने के द्वार
186. जैन व्रत विधि संग्रह (108 व्रत)
187. आओ जानें तीनलोक
188. पंच बालयति तीर्थकर परिचय एवं पूजा
189. श्री पंचकल्याणक विधान (लघु)
190. षट्खण्डागम (पुस्तक-9-10-11-12)
191. षट्खण्डागम (पुस्तक-13-14)
192. जम्बूद्वीप, तीनलोक आदि संक्षिप्त परिचय
193. षट्खण्डागम (पुस्तक-15-16)
194. णमोकार धाम तीर्थ परिचय एवं पूजा
195. तत्त्वार्थसूत्र
196. देवागम स्तोत्र (आप्तमीमांसा)
197. वर्षायोग स्थापना
198. ज्ञानामृत (भाग-2)
199. सम्मेदशिखर विधान
200. भ्रान्तियों का निराकरण
201. ज्ञानामृत (भाग-2)
202. षट्खण्डागम (पुस्तक-9)
203. षट्खण्डागम (पुस्तक-10)
204. जैन आगम में नव पदार्थ
205. सरल संस्कृत शिक्षा
206. णमोकार महामंत्र महिमा
207. अभिषेक पाठ एवं नवदेवता पूजा
208. जिनागम में शासन देव-देवी
209. ज्ञानामृत (भाग-3)
210. आगम दर्पण
211. तीर्थकर बनने के नियम
212. कृतिकर्म विधि
213. लघीयस्त्रय
214. अकृत्रिम जिनमंदिर रचना
215. अकृत्रिम वृक्षों पर जिनमंदिर
216. महापुराण सार
217. अकृत्रिम कमलों में जिनमंदिर
218. ऋषभदेव समवसरण विधान
219. जिनागम में द्वादशानुप्रेक्षा
220. जिनागम में द्वादशतप
221. देववंदना अपरनाम सामायिक
222. श्रुतावतार
223. आस्रव त्रिभंगी
224. तीर्थकर जन्माभिषेक महिमा
225. श्री संभवनाथ विधान
226. सावैभौम जैनधर्म
227. श्री शांतिभक्ति विधान
228. श्री चन्द्रप्रभु विधान
229. श्री अनंतनाथ विधान
230. तीस चौबीसी स्तुति
231. बीस तीर्थकर स्तुति
232. मंगल प्रभात
233. समवसरण रचना
234. तीनलोक जिनमंदिर
235. शांतिनाथ समवसरण विधान
236. मुनि दीक्षा विधि
237. सप्तपरमस्थान विधान
238. नवनिधि विधान (तीर्थकरत्रय विधान)
239. ज्योतिर्लोक जिनालय विधान
240. समवसरण चैत्यवृक्ष विधान
241. तीर्थकर धर्मचक्र विधान
242. समवसरण स्तूप विधान

243. समवसरण मानस्तंभ विधान
244. समवसरण सिद्धार्थवृक्ष विधान
245. पंचबालयति विधान
246. श्री संभवनाथ विधान
247. ढाईद्वीप विधान
248. श्री अजितनाथ विधान
249. अकृत्रिम जम्बूद्वीप वृक्ष जिनालय विधान
250. श्री महर्षि विधान
251. सुदर्शनमेरु वंदना एवं ध्यानाभ्यास
252. श्री धर्मनाथ विधान
253. सप्तस्तोत्र
254. श्री वासुपूज्य विधान
255. चौबीसी विधान (लघु)
256. जिनागम रहस्य
257. जिनसहस्रनाम स्तोत्र
258. श्री गौतम गणधर वाणी
259. देवदर्शन विधि
260. सिद्धान्त नवनीत (भाग-1)
261. जिनागम नवनीत (भाग-1)
262. षट्खण्डागम (पुस्तक-11)
263. षट्खण्डागम (पुस्तक-12)
264. श्री गौतम स्वामी प्रणीत प्रतिक्रमण पाठ में परिवर्तन विचारणीय विषय
265. सर्व गणधरदेव विधान
266. श्री गौतम गणधर अभिषेक विधि एवं पूजा
267. श्री गौतम गणधर स्तोत्र
268. सर्वोपद्रव निवारक श्री पार्श्वनाथ विधान

अप्रकाशित/अनुपलब्ध

269. ऐतिहासिक आर्यिकाएँ
270. रोहिणी कथा
271. बोध कथाएँ
272. समवसरण
273. तीर्थकर महावीर की शासन परम्परा
274. प्राचीन दिगम्बर जैन साधु
275. प्राचीन आर्यिकाएँ
276. जैन गणित
277. त्रिलोक विज्ञान
278. आर्यखंड व्यवस्था एवं अलौकिक गणित
279. मानवलोक
280. गत्यागति एवं जीव के स्वतत्त्व

281. जैनदर्शन में निमित्त-उपादान
282. सम्यग्दर्शन
283. षट्खण्डागम सार
284. मध्यलोक विधान
285. पात्रकेसरी स्तोत्र
286. मूलाचार का सार
287. षट्आवश्यक क्रिया
288. गणधरवलय मंत्र (अर्थ सहित)
289. सप्तपरमस्थान
290. गृहस्थ धर्म
291. जैनदर्शन
292. दिव्यध्वनि
293. सम्यक्त्व-प्राभृतादिसार
294. सुदं मे आउस्संतो!
295. द्वादशांग श्रुतज्ञान का विषय
296. पंचमकाल के अंत तक चतुर्विध संघ
297. जैन ग्रंथों के अध्ययन का क्रम
298. उपासक धर्म
299. अष्टसहस्रीसार
300. नियमसार कलश
301. जैनेन्द्र प्रक्रिया संस्कृत व्याकरण
302. द्रव्यसंग्रहसार
303. तत्त्वार्थसूत्र एक अध्ययन
304. समयसार का सार
305. अध्यात्मसार
306. अनुबद्धकेवली विधान
307. जिनधर्म विधान
308. गणिनी आर्यिका विधान
309. चारित्रलब्धि विधान
310. सुदर्शनमेरु विधान
311. निर्वाणक्षेत्र विधान
312. अकृत्रिम कमल जिनालय विधान
313. अभिनंदननाथ विधान
314. सुमतिनाथ विधान
315. श्री महर्षि स्तोत्र
316. जिनेन्द्र स्तुति संग्रह
317. चौबीस तीर्थकर वंदना
318. सम्मेशिखर स्तोत्र
319. गणधरवलय मंत्र स्तोत्र संग्रह
320. द्वादशांगवाणी स्तुति
321. अनुबद्धकेवली स्तोत्र
322. नंदीश्वर स्तोत्र

323. पंचपरमेष्ठी स्तोत्र
324. कर्मदहन स्तोत्र
325. पुण्यास्रव स्तोत्र
326. पंचकल्याणक स्तोत्र
327. समवसरण वंदना
328. ऋद्धिधारी मुनि स्तोत्र
329. गणिनी आर्यिका वंदना
330. सोलहकारण वंदना
331. रत्नत्रय स्तोत्र
332. कृत्रिम जिनमंदिर जिनबिम्ब स्तोत्र
333. तीर्थप्रवर्तन साधु स्तोत्र
334. श्री सिद्ध परमेष्ठी स्तोत्र
335. नवदेवता स्तुति संग्रह
336. नवदेवता स्तोत्र
337. 170 तीर्थकर स्तोत्र
338. चौरासी गणधर स्तोत्र
339. पंचमेरु स्तोत्र
340. मंगलाष्टक स्तोत्र संग्रह
341. मध्यलोक जिनालय स्तोत्र
342. तीनलोक जिनालय स्तोत्र
343. श्री अभिनंदननाथ विधान
344. श्री पद्मप्रभ विधान
345. श्री शीतलनाथ विधान
346. श्री श्रेयांसनाथ विधान
347. श्री विमलनाथ विधान
348. श्री सर्वविघ्नहर शांतिनाथ विधान
349. श्री कुंथुनाथ विधान
350. श्री अरनाथ विधान
351. श्री मल्लिनाथ विधान
352. श्री नमिनाथ विधान
353. श्री अरिष्टनेमि विधान
354. श्री कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
355. श्री महावीर विधान
356. वन्दना मंत्र संग्रह
357. तीस चौबीसी स्तोत्र
358. तीस चौबीसी वंदना मंत्र संग्रह
359. जिनागम में आहार प्रत्याख्यान
360. सर्वविधि संकटहर श्री ऋषभदेव स्तोत्र
361. सिद्धशिला विधान
362. अर्हत परमेष्ठी विधान
363. आचार्य परमेष्ठी विधान
364. उपाध्याय परमेष्ठी विधान
365. साधु परमेष्ठी विधान
366. वैमानिक देव जिनालय विधान
367. ढाईद्वीप समवसरण विधान
368. भवनवासी जिनालय विधान
369. जिनागम में नवदेवता
370. देवपूजा विधि अपरनाम श्रावक
371. दिगम्बर जैन साधु की दिनचर्या
372. दिगम्बर जैन साधुओं की अहोरात्र कृतिकर्म विधि
373. दिगम्बर जैन साधुओं की चतुर्दशी अष्टमी
374. दिगम्बर जैन साधुओं के दैवसिक रात्रिक प्रतिक्रमण
375. मुनियों के षडावश्यक
376. बंध प्रत्यय निवारण व्रत (व्रत संग्रह, भाग-1)
377. ज्ञानामृत भाग-4
378. षड्खण्डागम सूत्र विधान
379. बंध प्रत्यय निवारक विधान
380. व्यंतर देव जिनालय विधान
381. भरत बाहुबली विधान
382. श्रावक त्रेपन क्रिया विधान
383. चारित्रशुद्धि विधान (लघु)
384. चारित्रशुद्धि विधान (वृहत्)
385. चौंसठ ऋद्धि विधान (लघु)
386. कृत्रिम जिनालय विधान
387. सिद्धचक्र विधान (लघु)
388. द्वात्रिंशतिका
389. मध्यलोक का वर्णन
390. त्रेसठ शलाका पुरुषों का परिचय
391. जीवों की अवगाहना का अल्पबहुत्व
392. सिद्धलोक प्रज्ञप्ति
393. श्री गौतम गणधर वाली (अमृतवर्षिणी टीका)
394. चारित्रशुद्धि विधान
395. जम्बूद्वीप विदेह क्षेत्र विधान
396. श्री चन्द्रप्रभ स्तोत्र
397. श्री पार्श्वजिन स्तोत्र
398. श्री महावीर स्तोत्र
399. त्रैलोक्य चैत्य वंदना
400. श्री बाहुबलि स्तोत्र
401. जम्बूस्वामी स्तोत्र

ग्रंथ की हिन्दी टीकाकर्त्री, पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी का परिचय

प्रस्तुति-आर्यिका स्वर्णमती

(संघस्थ-गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी)

वात्सल्य की अविरल धारा, जिनमें बहती नित है,
गुरुभक्ति की प्रबल भावना, जिनमें सदा निहित है।
सामंजस्य प्रेम मैत्री जो, सिखलाती नित-प्रति हैं,
ऐसी माँ “चंदनामती” जी, नित ही अभिवंदित हैं।।

अनंतानंत जीवों से परिपूरित संसार सागर में जो विरले जीव जन्म-मरण के कुचक्र से छूटने हेतु शाश्वत सुख की प्राप्ति के प्रयास में संलग्न होते हैं, वे ही अपने जीवन को भी सफल करते हैं और अन्य जीवन रूपी दीपकों को प्रकाशित करने में भी निमित्त बनते हैं। ऐसा ही एक मधुरिम व्यक्तित्व है-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी का, जो जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की अनन्य समर्पित शिष्या होने के साथ-साथ अपने वात्सल्यमयी व्यवहार से सभी पर अपनी अमिट छाप छोड़ने में सक्षम हैं। किसी भव्य जीव को जिनेन्द्र भगवान प्रणीत शाश्वत मोक्षमार्ग के प्रति आसक्त करने में जो प्रयासरत रहे, वास्तव में वह स्तुत्य है, क्योंकि अनादिकाल से जीव ने न जाने किन-किन भौतिकताओं में बंधकर स्वयं को कल्याण के पथ से वंचित रखा है।

जन्म, शिक्षा एवं वैराग्य पथ पर बड़े बाल कदम-बाराबंकी जिले के टिकैतनगर ग्राम में 18 मई सन् 1958, ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या को गणिनी ज्ञानमती माताजी जैसे महान रत्न को प्रसूत करने वाली माता मोहिनी की कोख से 12वीं संतान के रूप में जन्म लेने वाली “कु. माधुरी” बालपन से ही पिता श्री छोटेलाल जी सहित समस्त परिवार एवं परिजनों की लाडली बिटिया के रूप में सर्वप्रिय थीं। माँ ने दूध पिलाने से लेकर पालन-पोषण करने तक प्रत्येक संतान पर अभिन्न धार्मिक संस्कार तो डाले ही थे, जिससे कु. माधुरी भी अछूती नहीं रहीं।

तीक्ष्ण बुद्धि वाली इस बालिका ने लौकिक शिक्षा की ओर कदम बढ़ाये तो सदैव अपनी सहपाठियों सहित समस्त शिक्षक वर्ग को भी विशेष प्रभावित करते हुए क्रमशः मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। अकादमिक उपलब्धियाँ कु. माधुरी की प्रतिभा से कहीं भी परे नहीं थीं, तथापि शाश्वत उन्नति का मार्ग इस कन्यारत्न के भविष्य का निर्माता बनकर समक्ष खड़ा था अतः उसी होनहार के अनुरूप सन् 1969 में सर्वप्रथम जयपुर-राज. में अपनी बड़ी बहन कु. मैना के “आर्यिका ज्ञानमती माताजी” के रूप में दर्शन प्राप्त कर वैराग्य को प्राप्त इस बालिका ने मात्र 11 वर्ष की अल्प आयु में 25 अक्टूबर-शरदपूर्णिमा को दो वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर पुनः 13 वर्ष की आयु में सन् 1971 में सुगंधदशमी के दिन अजमेर में उनसे आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर लिया। जिस आयु में बालक-बालिकाएँ खाने-खेलने में ही संलग्न रहते हैं, उस अल्पवय में बालब्रह्मचर्य व्रत को धारण करना कु. माधुरी के स्वर्णिम भविष्य का ही परिचायक था। माता मोहिनी की सन्तानों ने ये विशिष्ट धार्मिक संस्कार मानों विरासत में ही पाये थे।

धार्मिक अध्ययन एवं गुरुसेवा बना जीवन का प्रमुख ध्येय-वैराग्यपथ पर बढ़चली इस बाला ने अब धार्मिक अध्ययन एवं गुरु सेवा को ही अपना प्रमुख लक्ष्य बना लिया। शास्त्री, विद्यावाचस्पति इत्यादि धार्मिक शिक्षा को प्राप्त करते हुए आपने जैनागम संबंधी हजारों गाथाएँ, श्लोक इत्यादि कंठाग्र करके अपनी मेधा शक्ति का परिचय प्रदान किया। वस्तुतः इस क्षयोपशम विशेष के अतिरिक्त अविरल सेवा भावना, पूर्ण अनुकूलता, वैयावृत्ति, परिपूर्ण समर्पण, संघ में सभी के प्रति वात्सल्यमयी सौहार्दभाव इत्यादि गुणों से आपने पूज्य माताजी को विशेष प्रभावित किया था। ‘गुरु यदि दिन को रात कहें तो रात, यदि रात को दिन कहें तो दिन’ इस भावना का परिपालन करने वाली कु. माधुरी शास्त्री ने क्रमशः 18 वर्षों तक ब्रह्मचारिणी अवस्था में रहकर पूज्य माताजी की भरपूर सेवा की। विशेष बात यह थी कि अध्ययन के साथ-साथ भजन, पूजन, चालीसा, लेख इत्यादि लिखने का प्रवाह भी निरंतर चलता रहा।

आर्थिका दीक्षा धारण कर बनी 'चंदनामती'-चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज की गुरु परम्परा में प्रविष्ट भव्य जीव संयम धारण करना अपना आभूषण समझते हैं, तदनुसार राजधानी दिल्ली में पूज्य ज्ञानमती माताजी से सन् 1982 में दो प्रतिमा के व्रत एवं हस्तिनापुर में सन् 1987 में सप्तम प्रतिमा के व्रतों को क्रमशः धारण करते हुए आपने नारी जीवन के सर्वोत्कृष्ट पद की प्राप्ति के क्रम में जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में श्रावण शुक्ला ग्यारस, 13 अगस्त 1989 को पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी के करकमलों से आर्थिका दीक्षा प्राप्त कर **“आर्थिका चन्दनामती”** नाम प्राप्त किया। आर्थिका श्री रत्नमती माताजी (पूर्व में माता मोहिनी) एवं आर्थिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी रूप शिल्पियों से सुसंस्कारित, व्यवहार में माधुर्य गुण की धनी 'माधुरी' जी को अपने शिष्ट आचरण के अनुरूप ही नाम प्राप्त हुआ था।

प्रभावी लेखनी से सुसज्जित व्यक्तित्व-आपकी लेखनी बाल्यकाल से ही अत्यंत प्रभावी, ओजपूर्ण एवं सारगर्भित रही है, पद्य लेखन आपके लिए क्षणों का काम रहता है अतः अब तक आप सैकड़ों भजन, आरती, चालीसा, पूजन, स्तुति, मुक्तक इत्यादि का लेखन कर चुकी हैं। समयसार की गाथाओं एवं कलश काव्यों का पद्यानुवाद, भक्तामर विधान, नवग्रहशांति विधान, मनोकामना सिद्धि महावीर विधान, तीर्थंकर जन्मभूमि विधान, महावीर स्तोत्र की संस्कृत-हिन्दी टीका, ज्ञानज्योति की भारत यात्रा, अवध की अनमोल मणि, भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर, ज्ञान रश्मि, ज्ञानमती माताजी के अमूल्य प्रवचन इत्यादि कितनी ही कृतियाँ आपके ज्ञानगुण को प्रदर्शित करने में सक्षम हैं। आर्थिका रत्नमती अभिनंदन ग्रंथ, आचार्यश्री वीरसागर स्मृति ग्रंथ, गणिनी आर्थिकारत्न श्री ज्ञानमती अभिनंदन ग्रंथ, कुण्डलपुर अभिनंदन ग्रंथ, भगवान महावीर हिन्दी-अंग्रेजी जैन शब्दकोश, गणिनी ज्ञानमती गौरव ग्रंथ, भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि ग्रंथ इत्यादि शताधिक ग्रंथों का लेखन, सम्पादन एवं समायोजन आपके कठोर परिश्रम का ही सुफल है। आपका सृजनात्मक मस्तिष्क धर्मप्रभावना के नये-नये आयामों को साकार धरातल देते हुए सदैव उत्साहपूर्ण होकर पठन-पाठन-लेखन में ही दत्तचित्त रहता है, यह गुण आपने अपनी महान गुरु पूज्य ज्ञानमती माताजी से विरासत में ही प्राप्त किया है। आप मात्र वार्तालाप के स्थान पर सदैव कार्यरत रहने की नीति में ही विश्वास रखती हैं, जो विशेष अनुकरणीय है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के मुखपत्र 'सम्यग्ज्ञान' का समायोजन भी प्रतिमाह आपके द्वारा किया जाता है। वर्तमान में आप महान सिद्धांत ग्रंथ 'षट्खण्डागम' की पूज्य ज्ञानमती माताजी द्वारा लिखित सिद्धांतचिंतामणि टीका के हिंदी अनुवाद के कार्य में संलग्न हैं, हिन्दी टीका सहित ग्यारह पुस्तकों का प्रकाशन पूर्व में हो चुका है। आगे ग्रंथों का अनुवाद कार्य निरन्तर चल रहा है। संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी इत्यादि भाषाओं की विद्वान पूज्य माताजी द्वारा जिनवाणी की जो विशिष्ट सेवा की जा रही है, वह निःसंदेह ही सभी के लिए पथ प्रदर्शन का कार्य करेगी।

वर्तमान में इंटरनेट पर आपके द्वारा **'इन्साइक्लोपीडिया ऑफ जैनज्म डॉट कॉम' (ऑनलाईन जैन विश्वकोश)** के सम्पादन का कार्य अत्यन्त परिश्रमपूर्वक किया जा रहा है। आगामी वर्षों में दिगम्बर जैनधर्म की अनादिधिन परम्परा को आज के आधुनिकतम साधन 'इंटरनेट' के माध्यम से हृदयंगम करने हेतु यह कार्य निःसंदेह ही मील का पत्थर सिद्ध होगा।

वक्तृत्व कला की धनी पूज्य माताजी-पूज्य चंदनामती माताजी के विशिष्ट गुण के रूप में अवस्थित है उनकी वक्तृत्व क्षमता। आपकी ओजपूर्ण एवं प्रभावक प्रवचन शैली से श्रोता प्रभावित हुए बिना रह नहीं पाता है और जिन संस्कृति तथा गुरु परम्परा के प्रति अनुरक्त होकर ही प्रवचनसभा से उठता है। पूज्य ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित भक्ति विधानों की पूजा को जब आप अपनी मधुर आवाज में सम्पन्न कराती हैं तो सभी भक्तगण जिनेन्द्र भगवान की भक्ति के रस का वास्तविक आस्वादन कर हर्ष विभोर हो उठते हैं।

गुरुभक्ति की विशिष्ट भावना-पूज्य चंदनामती माताजी छाया की भाँति पूज्य ज्ञानमती माताजी के साथ रहते हुए उनकी प्रत्येक कार्ययोजना में सहभागी बनकर अपना सौभाग्य समझती हैं, अयोध्या-मांगीतुंगी-प्रयाग-कुण्डलपुर (नालंदा) इत्यादि तीर्थों के विकास एवं सभी राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों को अपनी गुरु की भावना के अनुरूप सफलता के उच्च शिखर तक पहुँचाने हेतु आप हर क्षण प्रयत्नशील रही हैं, वस्तुतः ऐसे शिष्यरत्न ही अपने भविष्य को भी उज्ज्वल बना लेते हैं। स्वयं में प्रतिभा की परिपूर्णता होते हुए भी ख्याति-पूजा-लाभ की कामना से अपना अलग व्यक्तित्व बनाने की किसी आकांक्षा ने आपको स्पर्श नहीं किया है, यह विशेष अनुकरणीय बात है। वरन् जैसे-जैसे आपकी प्रतिभा में निखार आया

है, वैसे-वैसे पूज्य माताजी के प्रति आपके समर्पण की भावना में अभिवृद्धि ही हुई है। संघस्थ सभी शिष्य-शिष्याओं को पूज्य ज्ञानमती माताजी की ज्ञान एवं चारित्र रश्मियों के प्रति अधिकाधिक समर्पित होने की शिक्षा ही आपसे सर्वदा प्राप्त हुआ करती है, जो उनकी अनन्य गुरुभक्ति का ही परिचायक है। सभी के बीच सामंजस्य कैसे स्थापित हो, सभी लोग प्रसन्नचित होकर गुरुआज्ञा के पालन में कैसे निरत रह सकें, यही प्रयास वह सदैव किया करती हैं। यही कारण है कि हृदय के समस्त मनोभावों को आपके समक्ष व्यक्त करके सभी को विशेष संतुष्टि की अनुभूति होती है।

गुरु परम्परा की कट्टर पोषक—पूज्य ज्ञानमती माताजी के साथ हजारों कि.मी. की पदयात्रा करके आपने जनमानस में अहिंसा, शाकाहार, सदाचार की भावनाओं को आरोपित करने का विशेष पुरुषार्थ किया है, जो कि आज के समाज की प्रमुख आवश्यकता है। जैन युवावर्ग को मांसाहार से सर्वदा दूर रहने एवं रात्रि भोजन के त्याग की विशेष प्रेरणाएँ आपसे सदैव प्राप्त हुआ करती हैं। चारित्र्यचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज की गुरु परम्परा के प्रति आपका विशेष समर्पण सदा से रहा है, अतः अपने सानिध्य में आने वाले प्रत्येक बालक-बालिका पर इस गुरु परम्परा के संस्कार डालने में आपको विशेष आनंद की प्राप्ति होती है। वास्तव में भौतिकता की होड़ में नेत्र बंद कर दौड़ रहे युवावर्ग को यदि कोई वात्सल्यपूर्ण भव्य जीव शाश्वत धर्म के मार्ग के प्रति अनुरक्त करता है, तो इसे विशेष सौभाग्य ही मानना चाहिए।

प्रज्ञाश्रमणी पद एवं पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकरण—आपकी प्रखर मेधा एवं इस गुण-विभूषित व्यक्तित्व के सम्मानार्थ पूज्य ज्ञानमती माताजी ने सन् 1997 में राजधानी दिल्ली में आयोजित विशाल कल्पद्रुम महामण्डल विधान के समापन अवसर पर आपको 'प्रज्ञाश्रमणी' की उपाधि से अलंकृत किया।

उपाधि अलंकरण की इस शृंखला में 8 अप्रैल 2012 को तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय-मुरादाबाद के परिसर में आयोजित विशेष प्रथम दीक्षांत समारोह में षट्खण्डागम जैसे महान सिद्धांत ग्रंथराज की हिन्दी टीका रूप आपकी विद्वत्ता का मूल्यांकन करते हुए विश्वविद्यालय द्वारा आपको पीएच.डी. की मानद उपाधि से भी अलंकृत किया गया।

पुनश्च आप सदा यही कहा करती हैं कि पूज्य ज्ञानमती माताजी का वात्सल्यमयी वरदहस्त ही मेरे जीवन की सबसे बड़ी सौगात है और इन्हीं गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञानामृत ने ही मेरा श्रृंगार किया है अतः इस महान जिन संस्कृति, तीर्थ संरक्षण एवं गुरुसेवा में मेरे शरीर का रोम-रोम भी समर्पित होकर काम आ जाये, तो वह ही मेरे लिए सर्वाधिक आनंददायी अनुभूति है।

ऐसे आदर्श व्यक्तित्व को धारण करने वाली पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी प्रतिक्षण साधना के उच्च सोपानों पर आरोहण करते हुए कतिपय ही भवों में रत्नत्रय की पूर्ण विशुद्धि के साथ मोक्षलक्ष्मी का वरण करें, यही मंगलभावना है। साथ ही जिनेन्द्र प्रभु से यह प्रार्थना भी है कि जिन परमपूज्य प्रातःस्मरणीय राष्ट्रगौरव गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी एवं परमपूज्य श्री चंदनामती माताजी की जो महान उपकारी छत्रछाया मुझे प्राप्त हुई है, वह मोक्षप्राप्ति तक रक्षाकवच की भाँति मुझे पूर्णतया रक्षित करते हुए जिनशासन में अवगाहन के योग्य बनाएँ, ताकि एक दिन ऐसा आ सके कि अपने अनंत चतुष्टय में निमग्न होकर सदैव के लिए मेरे चतुर्गति परिभ्रमण की भी निवृत्ति हो सके।

विशिष्ट गुणों से सुरभित व्यक्तित्व

वस्तुतः गुणों की सुरभि से ही मानव जीवन का श्रृंगार होता है। पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी के प्रभावी व्यक्तित्व के इन्हीं सुरभित पहलूओं से आइये किंचित् परिचित होने का प्रयास करें—

(1) आपकी उदारता—अत्यन्त उदार हृदय की धनी पूज्य चंदनामती माताजी की विशिष्टता है कि जब भी किसी को कोई आवश्यकता होती है, वह अत्यन्त तत्परता से अपनी शक्ति के अनुसार निःस्वार्थ भाव से उसे पूर्ण करने में विशेष आल्हाद का अनुभव करती हैं।

एक दिन एक संघस्थ महिला ने मुझे बताया—“जब वह माधुरी बहनजी (दीक्षा से पूर्व) थीं और संघ संचालन की समस्त व्यवस्थाओं का संयोजन करती थीं, तब एक दिन सर्दियों की ठण्डी सुबह में मैं चौके के कार्य में हाथ बँटाने के लिए बाल धोकर आयी, ठण्ड से मेरा शरीर थोड़ा-थोड़ा काँपने लगा था। बहन जी ने जैसे ही मुझे देखा, वह शीघ्रता से अपने कमरे में गयीं और अपना सफेद शॉल लाकर अपने हाथों से मुझे ओढ़ा दिया, मुझे अत्यन्त संकोच लग रहा था पर

बहनजी के चेहरे पर मात्र मुस्कान थी, एक ऐसी मुस्कान जिसने सदैव के लिए मेरा दिल जीत लिया।

“वास्तव में, उदारता व्यक्ति को सबका प्रिय बना देती है।”

(2) आपकी तत्परता—आलस एवं सुस्ती शब्द पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी एवं उनकी सुशिष्या पूज्य चंदनामती माताजी के शब्दकोश में सम्मिलित ही नहीं किये गये हैं। प्रतिदिन की दिनचर्या हो अथवा कोई राष्ट्रीय कार्यक्रम, तत्परतापूर्ण कार्य आपकी उल्लेखनीय विशिष्टता रहती है।

अप्रैल-मई 2007 की बात है जब जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में तेरहद्वीप जिनालय के पंचकल्याणक का अवसर था। गर्भकल्याणक का पहला दिन था, मंच को पाँच सौधर्म इन्द्र-इन्द्राणी एवं उनकी सुधर्मा सभाओं के लिए व्यवस्थित करना था। मंच-व्यवस्थापक शायद समायोजन नहीं करा पा रहे थे और मुझे आज भी स्मरण हो आता है कि पूज्य छोटी माताजी वहाँ पहुँची और वहाँ उपस्थित सभी युवाओं को उचित दिशा-निर्देश देकर मात्र 1-2 घण्टे में ही परदों इत्यादि के द्वारा मंच को पूर्णतया व्यवस्थित करा दिया, पुनः पाँच दिन तक पंचकल्याणक की सभी क्रियाएँ अत्यन्त समायोजित रूप में सम्पन्न हुईं। हम सभी के हृदय पर पूज्य माताजी की तत्परतापूर्ण कार्यशैली की अमिट छाप अंकित हो गई।

“वास्तव में, समय-सीमा में विचारपूर्ण तत्परता ही कार्य कुशलता की सूचक है।”

(3) कार्य में आपकी तन्मयता—अपनी गुरु पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की भाँति घण्टों तक कार्य में तन्मय रहना पूज्य माताजी की विशेषता है। पूज्य गणिनी माताजी की आर्यिका दीक्षा की स्वर्ण जयंती का अवसर था जब सन् 2006 में ‘गणिनी ज्ञानमती गौरवग्रंथ’ का प्रकाशन होना था। अपनी आर्यिका चर्या की क्रियाओं के यथासमय निर्वहन के साथ दो माह तक पूज्य चंदनामती माताजी द्वारा रात-दिन ग्रंथ सम्बन्धी लेखन, संपादन, समायोजन, विविध महानुभावों से प्रकाशन हेतु प्राप्त सामग्री का आलोढन इत्यादि कार्यों की जिस तन्मयता के साथ पूर्णता की गयी, वह आज भी स्मृति पटल पर अंकित है। लगभग 1100 पृष्ठों का यह ग्रंथ एक अद्वितीय कृति के रूप में प्रतिष्ठापित हो गया।

इसी प्रकार सन् 2011 में पूज्य माताजी ने षट्खण्डागम ग्रंथ 9, 10 एवं 11 की हिन्दी टीका, समयसार विधान, सोलहकारण विधान इत्यादि का लेखन भी पूर्ण तन्मयता के साथ सम्पन्न किया। वर्तमान में इंटरनेट पर www.himmatgurjirdharam.org के सम्पादन कार्य में अपनी युवा टीम के साथ आप पूर्ण दत्तचित्त रहती हैं।

“वास्तव में, कार्य में पूर्ण तन्मयता एवं समर्पण के बिना उच्चता प्राप्त नहीं की जा सकती।”

(4) **आपकी गुरुसेवा**—पूज्य आर्थिका श्री चंदनामती माताजी का नाम अपनी गुरु पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी के प्रति समर्पण हेतु 'आदर्श शिष्या' के रूप में प्रतिष्ठित है। किसी अन्य के द्वारा भी पूज्य बड़ी माताजी की आज्ञा की किंचित अवहेलना भी उन्हें स्वीकार्य नहीं हो पाती।

सन् 2005 की बात है, जब दिल्ली, इलाहाबाद, कुण्डलपुर, अयोध्या आदि के लम्बे विहार के पश्चात् आर्यिका संघ हस्तिनापुर पहुँचा था। सूर्य के प्रखर ताप से चारों ओर तीक्ष्ण गर्मी का साम्राज्य था और इस गर्मी ने पूज्य ज्ञानमती माताजी के स्वास्थ्य पर काफी विपरीत प्रभाव डाला था। मई 2005 के मध्य जब तक संघ हस्तिनापुर पहुँचा, तब तक पूज्य माताजी अत्यन्त अस्वस्थ हो गयीं। मुझे आज तक स्मरण है किस प्रकार रात-दिन का भेद विस्मृत कर पूज्य चंदनामती माताजी ने पूर्ण समर्पण एवं निष्ठा से बड़ी माताजी के आहार-नीहार-वैय्यावृत्ति आदि में स्वयं को तन्मय कर लिया था, उनका कहना रहता था कि ये मात्र हमारी गुरु ही नहीं हैं, वरन् सम्पूर्ण जैन जगत की दुर्लभ निधि हैं, इसलिए इनकी सेवा जैनशासन की ही सेवा है।

3 जून 2005 की रात्रि में पूज्य बड़ी माताजी ने एक बार भी आँखें नहीं खोली, कमजोरी अत्यधिक हो गयी थी; भाई जी (कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जी) पूरी रात माताजी को विविध स्तोत्रों का पाठ सुनाते रहे, देश के विविध स्थानों से पूज्य माताजी के भक्तगण आकर एकत्रित हो गये थे, इसी गंभीर स्थिति में सारी रात्रि व्यतीत हो गयी। प्रातः 4 बजे पूज्य चंदनामती माताजी ने बड़ी माताजी को आवाज दी—“माताजी ! अब कृपया उठिये, रात्रि बीत गयी है, आँखें खोलिये।” सभी के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब पूज्य माताजी ने आँखें खोली और पुनः कुछ चेतनता का अनुभव किया। भगवान शांतिनाथ के जन्म-दीक्षा और निर्वाण कल्याणक दिवस की यह मंगलमयी बेला हम सबको अमृत से अभिसिंचित कर गयी, पूज्य माताजी को उठकर बैठते हुए देखकर।

“वास्तव में, गुरु-सेवा की हार्दिक भावनाएँ चमत्कार भी कर सकती हैं।”

(5) **अनुशासन का अनुपालन कराने में आपकी कठोरता**—यद्यपि किसी भावुक व्यक्ति से कठोरता की अपेक्षा अक्सर तर्कसंगत प्रतीत नहीं होती है, तथापि पूज्य चंदनामती माताजी के विषय में यह तथ्य स्वयमेव ही असंगत हो जाता है, जब आर्थिका संघ में अनुशासन के अनुपालन की बात हो अथवा कोई छोटा या बड़ा कार्यक्रम आयोजित किया जाना हो, तब पूज्य माताजी की समस्त भावुकता एवं कोमलता अपेक्षित कठोरता में भी परिवर्तित हो जाती है और कभी-कभी तो यह विश्वास करना कठिन प्रतीत होने लगता है कि वह इतनी कठोर भी हो सकती हैं। परन्तु हाँ ! यह परिवर्तन मात्र कुछ समय के लिए ही होता है, मूलतः स्वभाव में कोमलता ही बनी रहती है।

कुछ वर्ष पूर्व, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के कतिपय स्टॉफ मेम्बर्स के बीच में किसी बात पर आपस में विवाद हो गया, छोटी सी बात इतनी बढ़ गयी कि दोनों ग्रुप भाई जी (वर्तमान में स्वस्ति श्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी) के पास आये। भाई जी ने सारी बातें सुनी, समझाया पर अंततः पूज्य छोटी माताजी ने उन्हें सम्बोधित करने के लिए निवेदन किया। पूज्य माताजी ने कठोरता एवं कोमलता का उचित समन्वय करते हुए इस प्रकार उन्हें सम्बोधन दिया कि दोनों पक्षों ने अपनी-अपनी गलती स्वीकार की, एक-दूसरे से क्षमा याचना की और परस्पर में पूर्ववत सौहार्द की स्थापना हो गयी।

“वास्तव में, जीवन में सदैव कोमलता ही कार्यकारी नहीं होती, कभी-कभी उचित अनुशासन का अनुपालन कराने के लिए व्यक्ति को कठोर भी बनना पड़ता है।”

(6) **आपका स्नेहिल व्यवहार**—पूज्य चंदनामती माताजी अपने समीप आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को निःस्वार्थ स्नेह प्रदान करती हैं। अक्सर हम स्वभाव से कठोर, असभ्य, कटु व्यवहार करने वाले से दूर-दूर रहना चाहते हैं; परन्तु जो स्नेहिल व्यवहार करे, हमारे आत्म-सम्मान और संवेदनाओं का ध्यान रखते हुए हमारी उन्नति एवं हित का मार्ग प्रशस्त करे, ऐसे व्यक्ति से हम बार-बार बात करना चाहते हैं। हाँ! पूज्य माताजी में ये सभी गुण विद्यमान हैं और इसीलिए चाहे संघस्थ लोग हों अथवा बाहर से पधारे महानुभाव, सब उनसे बैठकर बात करने हेतु लालायित रहते हैं।

जब उनका यह स्नेहिल व्यवहार किसी संसारी प्राणी को शाश्वत धर्म के अर्थात् सच्चे मार्ग के प्रति आसक्त कराने में निमित्त बन जाता है तब यह व्यवहार वास्तव में सार्थक हो जाता है। पूज्य माताजी के मातृत्व युक्त वात्सल्य ने ही मेरे हृदय पर ऐसा आधिपत्य कर लिया कि सुन्दर अकादमिक कैरियर एवं अन्य भौतिक आकर्षण भी मुझ पर अपना प्रभाव नहीं डाल पाये और अंततः पिछ्छी-कमण्डलु धारण करने का साहस मुझमें जागृत हो पाया।

“वास्तव में, सच्चा प्रेम वही है जो व्यक्ति को शाश्वत उन्नति का मार्ग प्राप्त कराने हेतु प्रोत्साहित करे।”

(7) **सबका ध्यान रखने का आपका स्वभाव**—सबका ध्यान रखने का पूज्य माताजी का अत्यन्त विशिष्ट स्वभाव है और इसीलिए वह सबकी प्रिय रहती हैं। संघस्थ ब्रह्मचारिणी बहनों सहित संघ से सम्बन्धित प्रत्येक जन को जब भी कोई स्वास्थ्य सम्बन्धी अथवा अन्य कोई भी मानसिक या शारीरिक कठिनाई होती है, वह अत्यन्त तत्परता से उसकी व्यवस्था सुनिश्चित करके उसका निदान कर देती हैं। संघस्थ साधुओं अथवा बाहर से पधारे साधुओं की व्यवस्था उनके अनुरूप हो जाये, उसका पूज्य माताजी सदैव ध्यान रखती हैं। मुझे अक्सर प्रतीत होता है कि कोई आवश्यकता उत्पन्न हो और उसके लिए कहा जाये, उससे पहले ही पूज्य माताजी उसकी पूर्ति करा देती हैं।

इसके अतिरिक्त समय एवं परिस्थिति के अनुसार अपनी शिक्षाओं एवं प्रेरणाओं द्वारा सबके आध्यात्मिक एवं नैतिक उत्थान हेतु भी वह सदैव सतर्क रहती हैं क्योंकि वर्तमान युग में नैतिक सबलता का सर्वाधिक ध्यान रखने की ही आवश्यकता है।

“वास्तव में, सबका ध्यान रखने वाला स्वतः ही सबका प्रिय हो जाता है।”

(8) **सबके विचारों/भावनाओं को सुनने की आपकी क्षमता**—अक्सर हमें ऐसे व्यक्ति मिल जाते हैं जो अपनी-अपनी बात कहना चाहते हैं, अन्य की कुछ भी सुनना नहीं चाहते। परन्तु पूज्य चंदनामती माताजी का स्वभाव इससे विपरीत है। दूसरे व्यक्ति की बात सुनने का धैर्य उनमें पूर्णतया विद्यमान रहता है, जिससे बात करने वाला व्यक्ति मानसिक रूप से संतुष्ट हो जाता है कि मैंने खुले मन से अपनी सारी कठिनाई माताजी को बता दी हैं, अब वह बिना किसी को बताये मुझे उस कठिनाई पर विजय प्राप्त करने का मार्ग अवश्य बता देंगी। कई बार किसी इच्छित व्यक्ति के द्वारा धैर्य एवं एकाग्रता पूर्वक हमारी बात सुन लेने से ही आधी कठिनाई दूर हो जाती है।

“वास्तव में, अपनी-अपनी बात कहने के स्थान पर व्यक्ति में धैर्यपूर्वक दूसरे की बात सुनने की क्षमता भी होनी चाहिए।”

(9) परम्पराओं के संवाहन में आपकी दृढ़ता—पूज्य चंदनामती माताजी चारित्र चक्रवर्ती प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज, प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर जी महाराज एवं गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की आगमोक्त धर्म परम्परा की कट्टर एवं सबल पोषक हैं।

पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी सदैव कहती हैं—“भले ही हमारे पास भक्तों की भीड़ न हो, पंचामृत अभिषेक-स्त्री अभिषेक-आर्यिकाओं की नवधाभक्ति-सज्जाति की सुरक्षा हेतु लोग हमारी निंदा भी करने लग जायें तो भी तीर्थंकर भगवान की दिव्यध्वनि के आधार पर पूर्वाचार्यों द्वारा प्रणीत/मान्य इन परम्पराओं को हमें कदापि तिलांजलि नहीं देना है।”

पूज्य चंदनामती माताजी को ये शिक्षाएँ शैशव काल से ही प्राप्त हुई हैं और इसीलिए इनके संवाहन में वह सर्वदा जागृत एवं दृढ़ रहती हैं। वह सदैव कहती हैं—

“जिस देश-जाति में जन्म लिया, बलिदान उसी पर हो जावें।”

“वास्तव में, धर्म के सच्चे पथ के संरक्षण-संवर्धन में व्यक्ति को अत्यंत दृढ़ रहना चाहिए क्योंकि अंततः यही पथ मोक्ष-लक्ष्मी की प्राप्ति में आधारभूत बनता है।”

(10) निर्णय लेने की आपकी अनूठी क्षमता—परिस्थिति के अनुसार त्वरित निर्णय लेने की अनूठी क्षमता की धनी हैं—पूज्य चंदनामती माताजी। बिना विचारे लिये गये निर्णय अथवा सोच-विचार में ही उपयुक्त समय-सीमा बिता कर लिये गये निर्णय दोनों ही अर्थहीन होते हैं, इन दोनों ही स्थितियों से विपरीत उचित समय पर उचित निर्णय लेने की क्षमता आपने अपनी गुरु पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी से विरासत में प्राप्त की है। एक बार निर्णय ले लेने के पश्चात् प्राण-प्रण से उसके क्रियान्वयन में प्रयासरत होना भी माताजी द्वय का विशेष गुण है।

फरवरी 2002 में आर्यिका संघ राजा बाजार-दिल्ली में विराजमान था। उस समय भगवान महावीर स्वामी का 2600वाँ जन्म कल्याणक वर्ष राष्ट्रीय स्तर पर मनाया जा रहा था। एक दिन पूज्य चंदनामती माताजी ने पूज्य गणिनी माताजी से कहा—“माताजी ! इस वर्ष की सबसे बड़ी उपलब्धि होगी-भगवान महावीर की जन्मभूमि का विकास पर यह तभी संभव है जब आप स्वयं वहाँ जायें।”

“क्या तुम्हारा मस्तिष्क ठीक है, चंदनामती ! इतनी दूर जाना क्या आसान है”—पू. माताजी ने कहा।

“माताजी ! आपके लिए कुछ भी असंभव नहीं है”—छोटी माताजी बोलों और कुछ ही घण्टों में हम सबको सूचित किया गया कि एक सप्ताह बाद संघ भगवान महावीर की जन्मभूमि-कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार के लिए विहार करेगा।

“वास्तव में, सही समय पर लिया गया सही निर्णय सम्पूर्ण परिवेश/समाज के लिए भी फलदायी हो जाता है।”

(11) आधुनिक साधनों द्वारा धर्म-प्रभावना की आपकी विशेष रुचि—धर्म-प्रभावना सम्यग्दर्शन का एक विशिष्ट अंग है और आज के कम्प्यूटर युग में जबकि मनोरंजन एवं मौज-मस्ती के साधनों की सीमा ही निश्चित नहीं है, ऐसे समय में पारम्परिक साधनों से युवावर्ग को इन्द्रिय सुखों के परित्याग रूप तप धर्म की ओर आकृष्ट करना कठिनतर हो गया है। कम्प्यूटर, लैपटॉप, आईपैड, इंटरनेट आदि वर्तमान साधनों को यदि धर्मप्रभावना में प्रयुक्त किया जाये तो संभवतः आज का युवा भी कम से कम धर्म से परिचित तो हो ही सकता है।

सन् 2009-2010 से पूज्य चंदनामती माताजी के प्रयासों द्वारा इंटरनेट का प्रयोग करके अमेरिका के विविध शहरों-कैलीफोर्निया, न्यूयार्क, न्यूजर्सी, टेक्सास आदि के जैन महानुभावों हेतु पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी एवं पूज्य चंदनामती माताजी के प्रवचन उपलब्ध कराये गये।

इंटरनेट पर जैन इन्साइक्लोपीडिया के निर्माण का अति महत्वपूर्ण प्रोजेक्ट पूज्य गणिनी माताजी की प्रेरणा पर पूज्य चंदनामती माताजी एवं उनकी समर्पित टीम द्वारा दिगम्बर जैन परम्परा के विश्वव्यापी प्रचार-प्रसार हेतु क्रियान्वित किया जा रहा है, जो आगामी भविष्य में निश्चित ही सम्पूर्ण जैन संस्कृति के लिए मील का पत्थर सिद्ध होगा।

आजकल पूज्य छोटी माताजी आने वाले प्रत्येक जैन युवा को www.encyclopediaofjainism.com में सम्बन्धित जानकारीयाँ / मैटर अपलोड करने हेतु प्रेरित किया करती हैं।

“वास्तव में, आधुनिक वैज्ञानिक साधन एकमात्र मनोरंजन हेतु ही नहीं हैं, वरन् उनका उपयोग आत्मिक उत्थान हेतु भी किया जाना चाहिए।”

(12) कठिन परिस्थितियों को बातचीत के माध्यम से सुलझा लेने की आपकी अद्भुत क्षमता—कभी-कभी जीवन में सम्बन्धित लोगों के कटु एवं अहम्-पूर्ण व्यवहार से परिस्थितियाँ अत्यन्त जटिल हो जाती हैं। कोई भी अपनी गलती स्वीकार नहीं करना चाहता अपितु दूसरे की गलती पर ही ध्यान केन्द्रित रहता है। ऐसे में, यदि कोई अधिकारपूर्वक आपको अहम् के झूठे आसन से उतारकर आपकी गलती का अहसास कराये, तो स्थितियाँ सुधर जाती हैं।

पूज्य चंदनामती माताजी ऐसी ही किसी भी बात को संभालने में सिद्धहस्त हैं क्योंकि मूल में आपसी मनोमालिन्य का कारण अक्सर बहुत छोटा होता है, मात्र सोचने का ढंग एवं व्यवहार इसे बड़ा बना देता है। उस मूल कारण को पहचानकर दोनों पक्षों को अपनी-अपनी गलती का अहसास करा देना और आपस में प्रेम-सौहार्द की स्थापना करा देना पूज्य माताजी का विशेष गुण है।

धर्मप्रभावना की बड़ी कार्य-योजनाओं में भी अपनी प्रज्ञापूर्ण दृष्टि से उचित मार्गदर्शन प्रदान करके वह सदैव विशेष भूमिका का निर्वहन किया करती हैं।

“वास्तव में, जटिल स्थितियों को और अधिक जटिल बनाने के स्थान पर योग्य व्यक्ति को स्थितियों को सुलझाने का गुण स्वयं में विकसित करना चाहिए।”

(13) सदैव आपसी सौहार्द एवं प्रेम को प्रेरित करने का आपका विशेष गुण—एक दिन एक युवा महिला अपने पति एवं दो छोटी-छोटी बेटियों को लेकर पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी के दर्शनार्थ आयी। उसने संघ में रहने के लिए पूज्य माताजी से निवेदन किया। माताजी ने बात करने के लिए उसे पूज्य चंदनामती माताजी के पास भेज दिया। उसने छोटी माताजी से कहा—“माताजी ! मैं घर छोड़कर अपनी दोनों बेटियों के साथ सदा के लिए आपके पास रहना चाहती हूँ।”

पूज्य छोटी माताजी ने उसकी बातों से स्थिति को समझने का प्रयास किया कि भला किस कारण से वह ऐसा कह रही है। यद्यपि उनके लिए यह कहना बहुत सरल था कि—“ठीक है ! तुम यहाँ रहो, तुम्हारी सब व्यवस्थाएँ बन जायेंगी।” परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। कुछ देर बात करने के बाद उस महिला से उन्होंने कहा—“तुम्हारा घर तुम्हारे लिए स्वर्ग है, तुम्हें अपनी पति की अनुकूलता करनी चाहिए और ठीक प्रकार से अपनी बेटियों का पालन-पोषण करना चाहिए। जब भी तुम चाहो, तब थोड़े दिन के लिए यहाँ आकर रहो, धर्म की चर्चा सुनो इत्यादि।” इसके पश्चात् पूज्य माताजी ने उस महिला के पति को अपने परिवार को उचित समय देकर उनके अकेलेपन को दूर करने एवं कभी भी अपशब्द न कहने के लिए कटिबद्ध किया। थोड़ी ही देर में आपसी सामंजस्य एवं प्रेम की नयी आशा से सराबोर वह परिवार हृदय में खुशियाँ लेकर पूज्य माताजी के पास से लौटा।

“वास्तव में, अपना स्वार्थ सिद्ध करने के स्थान पर दूसरों के मध्य पारस्परिक प्रेम एवं विश्वास की धारा प्रवाहित करना ही सज्जनता की पहचान है।”

(14) आपकी अनुपम कार्यक्षमता—किसी भी कार्य के निष्पादन में पूज्य चंदनामती माताजी की अनुपम कार्यक्षमता सदैव दृष्टिगत होती है। चाहे किसी बड़े कार्यक्रम का आयोजन हो अथवा किसी पुस्तक का लेखन करना हो अथवा आर्यिका संघ का उचित संयोजन हो अथवा पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी की भावनानुसार प्रतिदिन के धार्मिक आयोजनों का क्रियान्वयन हो, वह प्रत्येक कार्य को इस पूर्णता से समायोजित करती हैं कि हम सब लोग सदैव आश्चर्य भी करते हैं और मन ही मन उनकी प्रशंसा भी किया करते हैं।

संघस्थ एवं अन्य लोगों में वह विभिन्न व्यवस्थाओं का विभाजन कर देती हैं और उनके अधिकारपूर्ण स्नेहिल आकर्षण से सबके द्वारा अपने-अपने कार्यों का निश्चित समय एवं उचित स्तर के साथ निष्पादन किया जाता है, संघ में आने के पश्चात् मैंने प्रारंभ से ही ऐसा देखा है। वस्तुतः ऐसा इसलिए होता है कि वह भी पूज्य गणिनी माताजी की भाँति सदा पूर्ण सजग एवं कार्यशील रहती हैं और तब ही अन्य लोगों से भी कार्य कराया जा सकता है।

किसी एक दिन में ही विविध प्रकार के कार्यों में संलग्न उनको देखा जा सकता है—कभी किसी प्रकाशित होने वाली पुस्तक का वह सम्पादन कर रही होती हैं तो कभी पेंटर को किसी जैनकथा से सम्बन्धित चित्र बनाने सम्बन्धी निर्देश दे रही होती हैं, कभी पूज्य गणिनी माताजी एवं स्वामी रवीन्द्रकीर्ति जी (अध्यक्ष-जम्बूद्वीप, हस्तिनापुर) के साथ मंदिर निर्माण की मीटिंग में संलग्न रहती हैं तो कभी आये हुए यात्रियों के मध्य प्रवचन कर रही होती हैं, कभी मंदिर जी में चल रहे

भक्ति- विधान में पूजा की पंक्तियाँ पढ़ रही होती हैं तो कभी जैन इन्साइक्लोपीडिया में मैटर अपलोड करने के लिए बच्चों एवं युवाओं को प्रेरित कर रही होती हैं, कभी आये हुए यात्रियों से बात करते हुए वह दिखायी पड़ती हैं। निश्चित ही, अनुपम कार्यक्षमता की धनी हैं पूज्य चंदनामती माताजी।

“वास्तव में, व्यक्ति की योग्यतापूर्ण कार्यक्षमता उसे सबके लिए महत्त्वपूर्ण एवं आकर्षण का केन्द्र बना देती है।”

(15) **हृदय पर शासन करने वाला आपका व्यक्तित्व**—वस्तुतः पूज्य चंदनामती माताजी सबके दिलों पर शासन करती हैं। प्रत्येक सन्निकट आने वाला व्यक्ति गुणों से सुरभित उनके स्नेहमयी व्यवहार से मानों उनसे बँध ही जाता है।

मैं अक्सर सोचती हूँ कि यद्यपि दोनों माताजी ने किसी प्रसिद्ध बड़े महाविद्यालय या विश्वविद्यालय से अकादमिक डिग्री प्राप्त नहीं की हैं, तथापि वो अपने प्रत्येक कार्य में इतनी समर्थ, इतनी क्षमतावान, इतनी पूर्ण हैं कि सोचकर आश्चर्य होने लगता है। उनका समय-संयोजन अद्भुत रहता है। और इसीलिए हृदय कभी भी उनकी अवज्ञा करने को कहता ही नहीं है।

उनकी दिव्य गुणराशि एवं सर्वाधिक उचित पथ पर निरंतर बढ़ने की उनकी मातृत्व युक्त प्रेरणाएँ किसी का भी दिल जीतने के लिए पर्याप्त हैं।

हाँ ! यह आवश्यक नहीं कि उच्च अकादमिक शिक्षा ही व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करें, वरन् तप-त्याग-सदाचार एवं नैतिकता की शक्ति व्यक्ति को कहीं अधिक समुन्नत एवं पूर्ण बनाने में समक्ष हैं।

“वास्तव में, बलपूर्वक लोगों को कुछ समय के लिए जीता जा सकता है परन्तु गुणों की सुरभि से सदा के लिए उनके हृदय पर शासन किया जा सकता है।”

(16) **गुरुचरणों में आपका अतुलनीय समर्पण**—पूज्य चंदनामती माताजी सदैव कहती हैं—“जो कुछ मैं हूँ और जो कुछ मैं होऊँगी, वह एकमात्र मेरी सच्ची माँ गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की ही महान अनुकम्पा है, उन्होंने ही जीवन के सर्वोत्कृष्ट उपहार के रूप में मुझे यह मोक्ष का पथ प्रदान किया है, उन्होंने ही ज्ञान रूपी अमृत से मेरा सिंचन किया है और मेरे लिए सब कुछ वही हैं।”

वास्तविकता यह है कि किसी योग्य एवं क्षमतावान शिष्य के लिए ‘गुरु’ के प्रति इतना समर्पण सदैव आवश्यक नहीं है क्योंकि जब कोई शिष्य संघ में रहता है तब पूर्ण सहनशीलता एवं धैर्य का अवलम्बन लेकर ही उसे गुरु के अनुशासन में रहना होता है। कभी-कभी सब कुछ मनोकूल नहीं भी होता है, फिर भी उसे सामंजस्य की क्षमता का परिचय देना होता है। ख्याति-पूजा लाभ एवं निज की स्वतन्त्रता के लिए गुरु से अलग हो जाना तो सरल है परन्तु पूर्ण कृतज्ञता एवं समर्पण के साथ गुरु के अनुशासन में रहना ही कठिन होता है। पू. चंदनामती माताजी ने उपरोक्त सभी गुणों को स्वयं में समाहित करके चार दशकों से अधिक समय से पूज्य ज्ञानमती माताजी की आज्ञा का सदैव पालन करते हुए उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता एवं आदर की भावना रखकर अपनी ओर से उनके लिए पूर्ण अनुकूल वातावरण के निर्माण का ही सद्प्रयास किया है।

आज भी यदि माताजी उन्हें एक बार भी आवाज देती हैं तो कितना भी आवश्यक कार्य वह कर रहीं हो, उसे उसी क्षण छोड़कर तुरन्त उठकर वह माताजी की बात सुनती हैं। कभी किसी विषय अथवा किन्हीं व्यवस्थाओं के प्रति बड़ी माताजी को यदि असंतोष होता है तो वह तुरन्त सम्बन्धित व्यक्ति को उचित दिशा-निर्देश प्रदान कर माताजी को संतुष्ट करती हैं। सभी संघस्थ सदस्यों के लिए भी उनकी सर्वदा यही प्रेरणा रहती है कि बड़े पुण्य से पू. गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी जैसी अमूल्य निधि हम सबको प्राप्त हुई है, इसलिए सब लोग उनकी सेवा, उनकी आज्ञापालन एवं अनुकूलता करके सच्चे हृदय से उनका वात्सल्य प्राप्त कर लो।

पू. चंदनामती माताजी संघ में भी शांति, पारस्परिक प्रेम एवं सामंजस्य का वातावरण निर्मित करने में सदा प्रयत्नशील रहती हैं ताकि सबका आध्यात्मिक विकास ठीक प्रकार हो सके। इस आंतरिक शांतिपूर्ण वातावरण के कारण ही जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर द्वारा क्रियान्वित की जाने वाली धर्मप्रभावनात्मक योजनाएँ सफल हो पाती हैं, ऐसा मेरा विश्वास है।

अपनी इन्हीं गुण-सुरभियों से उन्होंने पूज्य ज्ञानमती माताजी का हृदय जीता है।

“वास्तव में, सभी शिष्यों को अपने गुरु के प्रति प्रेम एवं स्नेह रहता ही है तथापि सर्वाधिक भाग्यशाली तो वह है, जिसके प्रति गुरु के हृदय में स्वतः ही प्रेम, सन्तुष्टि एवं सतत आशीर्वाद की भावनाएँ प्रवाहित होती रहती हैं।”

(17) **आपकी नियमितता**—नियमित होना सफलता की कुंजी है और पूज्य चंदनामती माताजी के जीवन में यह पूर्णतया परिलक्षित होता है। अपनी आर्थिका चर्या के पालन में एवं अन्य कार्यकलापों में वह अत्यन्त सजग एवं नियमित रहती हैं। दिन एवं रात के समय का विविध क्रियाओं एवं कार्यों हेतु विभाजन कर लेने से धर्मप्रभावना के विविध कार्य भी वह कर पाती हैं।

जब कोई कार्य वह प्रारम्भ करती हैं, तब नियमित रूप से उस कार्य में तब तक वह लगी रहती हैं, जब तक वह पूर्ण न हो जाये। अक्सर लोग कार्य प्रारम्भ करते हैं परन्तु कुछ समय बाद ही वे इसे करने में अनियमित हो जाते हैं, फलस्वरूप या तो कार्य अधूरा रह जाता है या समय पर पूरा नहीं हो पाता।

इसके विपरीत पूज्य चंदनामती माताजी का सिद्धान्त रहता है कि जब किसी कार्य को हाथ में लिया जाये तो इसे इसकी पूर्णता तक पूरी नियमितता एवं समर्पण के साथ किया जाये। बिना किसी रचनात्मक कार्य के खाली बैठना पूज्य माताजी को पसंद ही नहीं है, यदि कदाचित किसी कार्यक्रम या यात्रियों के साथ वार्तालाप करने के निमित्त से वह कार्य नहीं कर पाती हैं तो वह व्याकुलित हो जाती हैं। वह अक्सर कहती हैं—“यदि रात्रि में सोना न पड़े तो कितना अच्छा हो।” यह कुछ और नहीं वरन् धर्मकार्य के प्रति समर्पण की भावना का ही परिचायक है, जिसे उन्होंने पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी से विरासत में प्राप्त किया है।

“वास्तव में, रचनात्मक कार्यों के सम्पादन में नियमितता से ही जीवन सार्थक हो पाता है।”

(18) **व्यवहारिकता में आपका विश्वास**—पूज्य चंदनामती माताजी यद्यपि एक भावुक व्यक्तित्व हैं, परन्तु सदैव नहीं। व्यवहारिकता में उनका पूर्ण विश्वास रहता है। वह सदैव कहती हैं—“जीवन व्यवहारिकता से चलता है, मात्र भावनाओं एवं स्वप्नों से नहीं। वही स्वप्न देखो और वही योजनाएँ बनाओ जो व्यवहारिक रूप से संभव हो, अव्यवहारिक स्वप्नों के लिए समय व्यर्थ न गँवाओं।” अपने जीवन में भी वह इसी सिद्धान्त का परिपालन करती हैं।

यह सत्य है कि दृढ़ परिश्रम के साथ व्यवहारिक मार्ग खोजकर निरंतर प्रयत्नशील एवं कार्यशील रहने से बड़े से बड़ी कार्ययोजना भी सफल हो जाती है जबकि इसके विपरीत ऊँचे-ऊँचे स्वप्न एवं योजनाएँ कार्यशीलता के अभाव में धाराशायी हो जाती हैं। पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी, पूज्य चंदनामती माताजी एवं पीठाधीश्व स्वस्ति श्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी के जीवन का यही सत्य रहा है। जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर, तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली-प्रयाग, भगवान महावीर जन्मभूमि-कुण्डलपुर (नालंदा) में निर्मित नंदावर्त महल तीर्थ, मांगीतुंगी (महा.) में निर्मित हो रही 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव प्रतिमा एवं अन्य निर्माण कार्य इसी सत्य के प्रतिबिम्ब हैं।

“वास्तव में, प्रत्येक वास्तविकता अपनी उत्पत्ति में मात्र एक स्वप्न ही रहती है तथापि व्यवहारिकता की उचित जलवायु ही इसे फल से लदे वृक्ष में परिणत करने में सक्षम होती है।”

(19) **आपकी आशावादिता**—पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्थिका श्री चंदनामती माताजी एक आशावादी व्यक्तित्व हैं। वह सदैव किसी घटना/वस्तु का सकारात्मक पक्ष देखने का ही प्रयास करती हैं। उनका कहना रहता है—“दो रातों के बीच एक दिन देखने की अपेक्षा दो दिनों के बीच एक रात देखो।” उन्हें किसी अन्य का निराशावादी दृष्टिकोण भी पसंद नहीं आता। उनकी विचारधारा रहती है—

जीवन एक उपहार है, इसे स्वीकार करो

जीवन एक प्रेम है, इसका मजा लो

जीवन एक संघर्ष है, इसे भली-भाँति लड़ो

जीवन एक ट्रेजडी है, इसका सामना करो

जीवन एक कर्तव्य है, इसे पूर्ण करो

जीवन में निरन्तर आने वाली विपरीत परिस्थितियों में लोग अक्सर धैर्य छोड़ देते हैं और जीवन उनके लिए अर्थहीन हो जाता है। ऐसा कोई व्यक्ति जब पूज्य चंदनामती माताजी के पास आता है, तब अपनी आशावादी बातों से वह उसमें नये विश्वास एवं आशा का संचार कर देती हैं। अनेक बार ऐसे उदाहरण मेरे देखने में आये हैं।

किशोरवय का एक जैन बालक पूज्य माताजी के पास दर्शन के लिए आया करता था। एक दिन सड़क-दुर्घटना में उसे काफी चोट आ गयी, हॉस्पिटल में भर्ती होना पड़ा। कई बार वह साहस खो देता, रोने लगता कि मुझे ऐसा दुःख क्यों

मिला ? जब मध्य में वह जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर स्थित अपने घर आता, तब पूज्य चंदनामती माताजी उसे कर्म-सिद्धान्त की कहानियाँ सुना-सुनाकर दृढ़ करतीं, धीरे-धीरे वह शांत होता, थोड़ा प्रसन्न भी होता। समय बीता और वह स्वस्थ होकर घर आ गया। परन्तु विधि का विधान, अपने माता-पिता की एकमात्र संतान उस बालक की माँ का अप्रत्याशित देहावसान हो गया, निश्चित ही उसका साहस छूट जाना अवश्यंभावी था परन्तु पूज्य चंदनामती माताजी के निरंतर सम्बोधन एवं वात्सल्य से वह संभला और आज भी जीवन के लिए एक सकारात्मक चिंतन विकसित कर वह अपनी पढ़ाई कर रहा है।

“वास्तव में, आशावादिता ही जीवन का सही दृष्टिकोण है। जब हम सोचते हैं कि सब कुछ खो गया है, तब भी भविष्य हमारे हाथ में रहता है।”

(20) रचनात्मकता में आपका विश्वास—जीवन में रचनात्मक एवं सृजनात्मक दृष्टिकोण रखने वाले महानुभाव ही सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ते हैं, न कि विध्वंसात्मक विचारधारा में अपनी शक्ति तथा समय का दुरुपयोग करने वाले, यह ही सत्य है पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी एवं उनकी सुशिष्या पूज्य चंदनामती माताजी के जीवन का।

दोनों माताजी का कहना रहता है—“यदि आप एक खींची हुई रेखा को छोटा करना चाहते हैं तो इसे मिटाइये मत वरन् इसके पास में इससे लम्बी एक रेखा खींच दीजिए।” अर्थात्-हमें कभी भी अपने समय तथा शक्ति का उपयोग अन्य जन की उपलब्धि के विध्वंस में अथवा उससे ईर्ष्या करने में नहीं करना है, वरन् सही अर्थ में रचनात्मक कार्य करके स्वयं का सदुपयोग करना है। इससे हम स्वयं ही ऊँचे बन जायेंगे। पूज्य गणिनी माताजी अक्सर कहती हैं—“भगवान जिनेन्द्र की भक्ति एवं कठिन पुरुषार्थ हाथ की रेखाओं को भी बदलने में समर्थ हैं।”

भगवान महावीर जन्मभूमि-कुण्डलपुर (नालंदा) के विकास के समय हम सबने पूज्य छोटी माताजी को सम्बन्धित जैन आगम के निरन्तर आलोढन एवं विभिन्न विद्वानों से चर्चा में पूर्णतया निरत देखा है। मात्र 18 माह में नंदावर्त महल तीर्थ-कुण्डलपुर का विकास पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी के सम्पूर्ण ग्रुप की रचनात्मक मानसिकता का ही परिचायक बना। पूज्य छोटी माताजी सदैव कहा करती थीं—“आगम के सत्य की स्थापना हेतु हम सारे प्रयास करेंगे।”

“वास्तव में, जो ऊर्जा विध्वंस के नकारात्मक विचारों में व्यर्थ चली जाती है, उसे यदि रचनात्मक से ओत-प्रोत सकारात्मकता की ओर प्रवाहित कर दिया जाये तो बड़ी उपलब्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।”

(21) विशेष प्रज्ञा से समन्वित आपका मस्तिष्क—पूज्य चंदनामती माताजी अत्यन्त मेधावान एवं कुशल व्यक्तित्व हैं। उनका मस्तिष्क विशेष प्रज्ञा से समन्वित है। उनके लेखन, उनके अध्ययन कराने की शैली, उनकी कार्य-क्षमता, किसी धार्मिक प्रोजेक्ट हेतु उनके विचार एवं संयोजन क्षमता सभी से यह परिलक्षित होता है।

मात्र 11 वर्ष की उम्र में, उन्होंने गोम्मतसार जीवकाण्ड की 34 गाथाएँ याद करके सभा के मध्य सुना दिया, जिससे पूज्य ज्ञानमती माताजी को इस बालिका के विशेष क्षयोपशम का भान हो गया। धीरे-धीरे भजन-आरती-चालीसा इत्यादि के लेखन से उनकी काव्य-प्रतिभा दृष्टिगोचर होने लगी। पूर्वाचार्यों द्वारा लिखित शास्त्रों के अध्ययन के साथ-साथ जम्बूद्वीप संस्थान की मासिक प्रतिका ‘सम्यग्ज्ञान’ के लिए भी उन्होंने विविध आलेख लिखना प्रारम्भ कर दिया। साथ-साथ सैकड़ों श्लोक एवं गाथाएँ भी उन्होंने कंठस्थ कर लीं।

वर्षों से पूज्य गणिनी माताजी के निर्देशानुसार वह संस्कृत व्याकरण, छंद, न्याय, सिद्धान्त, मण्डल विधान-विधि, प्रतिष्ठा विधि, जैन भूगोल एवं अनेकानेक विषय संघस्थ ब्रह्मचारिणी बहनों एवं बाहर से अध्ययन हेतु पधार विद्यार्थियों एवं महानुभावों को पढ़ाती आ रही हैं। जब उन्होंने हमें ‘आप्त-मीमांसा’ का अध्ययन कराया, तब मुझे कई बार अहसास हुआ कि पहली बार मैं कुछ भी समझ नहीं आता था परन्तु जब वह अपने शब्दों में व्याख्या करती थीं, तो विषय पूरी तरह हृदयंगम हो जाता था।

संस्कृत एवं प्राकृत का उनका उच्चारण इतना स्पष्ट, शुद्ध एवं अस्खलित रहता है कि यह सभी को आकर्षित करता है। संस्कृत भाषा एवं व्याकरण में उन्होंने शनैः शनैः विशेष दक्षता अर्जित कर ली है।

जहाँ एक अंग्रेजी भाषा का प्रश्न है, उन्होंने अपनी विशेष अभिरुचि एवं अभ्यास के द्वारा इस भाषा को भी हृदयंगम कर लिया है। कई बार अंग्रेजी साहित्य में मास्टर्स डिग्री प्राप्त कर लेने वाले लोग भी अंग्रेजी बोलने एवं अंग्रेजी में काव्य लिखने में असमर्थता अनुभव करते हैं, परन्तु पूज्य चंदनामती माताजी न केवल अंग्रेजी में पूजन-भजन इत्यादि लिख लेती हैं अपितु विदेशों से ‘इंटरनेशनल समर स्कूल फॉर जैन स्टडीज’ में पधारने वाले छात्र-छात्राओं के लिए जैन विषय पर

अंग्रेजी में व्याख्यान भी प्रस्तुत करती हैं।

प्रथम जैन सिद्धान्त ग्रंथ 'षट्खण्डागम' की 16 पुस्तकों की पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा लिखित 'सिद्धान्त चिंतामणि संस्कृत टीका' का हिन्दी अनुवाद, समयसार ग्रंथराज की प्राकृत गाथाओं का हिन्दी पद्यानुवाद, समयसार-सोलहकारण-दशलक्षण-भक्तामर-नवग्रह आदि के विधान एवं सैकड़ों भजन-पूजन-आरती-चालीसा इत्यादि का लेखन सभी उनके मेधापूर्ण व्यक्तित्व के ही परिचायक हैं। उनकी प्रज्ञा के सम्मानार्थ सन् 1997 में 'प्रज्ञाश्रमणी' की उपाधि एवं सन् 2012 में तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय-मुरादाबाद द्वारा पी एच. डी. की मानद उपाधि स्वयं ही उनकी बौद्धिक कुशलता को व्याख्यायित कर रही हैं।

जम्बूद्वीप, जैन ज्योतिर्लोक, चारित्र-निर्माण, जैनधर्म की प्राचीनता आदि अनेक विषयों पर विविध वर्षों में आयोजित राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनारों के आयोजन में उनकी सदा महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

सन् 2006 में राष्ट्रीय स्तर पर पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी की आर्यिका दीक्षा की स्वर्ण जयंती के आयोजन में उनका ही प्रमुख योगदान रहा। यह कार्यक्रम अत्यन्त सफल रहा था।

दिगम्बर जैन संस्कृति की प्रभावना में अपना अद्वितीय योगदान प्रदान करने वाले जैन विद्वान अथवा महानुभाव को सम्मानित करने हेतु सन् 1995 में "गणिनी ज्ञानमती पुरस्कार" की स्थापना का श्रेय भी आपको ही जाता है। इस पुरस्कार में 1 लाख रुपये की नगद राशि एवं प्रशस्ति पत्र इत्यादि भेंट किये जाते हैं।

पूज्य चंदनामती माताजी की ही प्रेरणा से माधोराजपुरा (राज.) में 'गणिनी ज्ञानमती दीक्षातीर्थ' का विकास किया गया। ज्ञातव्य है कि सन् 1956 में माधोराजपुरा में ही प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से पूज्य ज्ञानमती माताजी को 'आर्यिका दीक्षा' प्राप्त हुई थी।

इन सबके अतिरिक्त, मैं व्यक्तिगत रूप से भी विपरीत परिस्थितियों में सजग मस्तिष्क के साथ अनुकूलता स्थापित कर लेने की पूज्य चंदनामती माताजी की कुशलता की हार्दिक प्रशंसक हूँ।

"वास्तव में, मेधावान मस्तिष्क सही अर्थों में तभी सार्थक होता है, जबकि यह स्व एवं पर के शाश्वत उत्थान में प्रयुक्त हो।"

(22) **ख्याति-पूजा-लाभ/प्रसिद्धि के प्रति आपकी अनासक्ति**—पूज्य चंदनामती माताजी का एक अनुकरणीय गुण है—अपने नाम एवं प्रसिद्धि के प्रति अनासक्त भाव। वस्तुतः जिस शिष्य को अपनी प्रसिद्धि की चाह रहती है, वह दीर्घ काल तक गुरु के अनुशासन में नहीं रह सकता। पूज्य माताजी का तो कहना रहता है—“यदि मेरी गुरु का हृदय मुझसे प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रहता है तो लोगों की प्रशंसा की अपेक्षा मेरे लिए यह कहीं अधिक मूल्यवान है।” यद्यपि उनकी योग्यता में कहीं कोई कमी नहीं है तथापि उन्होंने कभी भी अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की इच्छा नहीं की और यही उनकी अनुकरणीय विशेषता है। संघ में आने वाले प्रत्येक सदस्य को वह सर्वदा पूज्य गणिनी माताजी के प्रति भक्तिमान एवं समर्पित होने की ही प्रेरणा दिया करती हैं।

दीक्षा मुख्यतः आत्मकल्याण के लिए ली जाती है, प्रसिद्धि के लिए नहीं। आगम एवं चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की परम्परा में सुस्थापित रहकर जो प्रसिद्धि स्वतः प्राप्त हो जाये बस वही स्वीकार्य है। यदि आगमोक्त मान्यताओं का हनन करके लोगों की प्रशंसा प्राप्त हो रही हो तो उसका अपने लिए कोई मूल्य नहीं है, यही कहना रहता है पूज्य दोनों माताजी का।

(23) **आपकी निष्पक्षता**—अच्छा व्यक्ति बनने हेतु निष्पक्ष एवं न्यायोचित चिंतन अतीव आवश्यक है। अर्थात् हम संतुलित मस्तिष्क से बिना किसी का पक्ष लिये यह विचार कर सकें कि क्या सही है और क्या गलत। राग अथवा द्वेष के वशीभूत होकर लिये गये निर्णय सम्यक् नहीं रह पाते। कभी-कभी कुछ लोग अपने अहम् के वशीभूत हो स्थितियों को जटिल बना देते हैं एवं अपनी गलती को स्वीकार भी नहीं करना चाहते।

ऐसे किसी भी अवसर पर पूज्य चंदनामती माताजी निष्पक्षता का परिचय देते हुए दोनों पक्षों की बात पूर्ण धैर्य से सुनती हैं तथा कोई कितना भी प्रिय क्यों न हो, यदि उसकी कोई गलती है तो उस पर पूरा अनुशासन भी करती हैं। व्यक्तिगत रूप में भी वह स्वयं न्यायोचित सीमाओं के अन्तर्गत ही पूर्ण संतुष्ट रहती हैं, ऊँची-ऊँची अपेक्षाएँ रखकर दुःखी बने रहना, इससे वह सदा बचकर ही रहती हैं।

“वास्तव में, जीवन में प्रसन्नता प्राप्ति एवं दूसरों के लिए मूल्यवान बनने हेतु व्यक्ति को मस्तिष्क की जड़ता को त्याग कर निष्पक्ष एवं न्यायोचित बनने का साहस करना चाहिए और यदि स्वयं से कोई गलती हो गयी हो तो उसकी स्वीकारोक्ति से विमुख नहीं होना भी सीखना चाहिए।”

(24) आपका शांत एवं विनम्र व्यवहार—पूज्य चंदनामती माताजी अधिकांशतः शांत स्वभावी ही रहती हैं और तनाव के क्षणों में भी धैर्य से ही काम लेती हैं। आपके मुस्कराहट युक्त चेहरे को देखकर अपने सुख-दुःख खुलकर कहने का मन किसी का भी हो जाता है, परन्तु गृहस्थी सम्बन्धी लम्बी एवं जटिल चर्चाओं को सुनने का धैर्य माताजी नहीं रख पाती हैं। वह कहती हैं—“यदि इन्हीं सब विषयों में ही अपने को आनंद आता तो भला हम त्याग मार्ग में क्यों आते?” जैन मान्यताओं के अनुसार ही वह किसी को समस्या का समाधान बताती हैं।

पूज्य माताजी मानसिक रूप से अत्यन्त सबल एवं विश्वस्त रहती हैं, परन्तु इस सब के बावजूद कभी कोई गर्व की अभिव्यक्ति मैंने आज तक उनमें नहीं देखी है। यद्यपि एक महान गुरु की सर्वाधिक अग्रणी एवं योग्य शिष्या वह हैं, तथापि किसी भी प्रकार के मान से सदा दूर एवं विनम्र प्रवृत्ति ही उनमें दृष्टिगत होती है।

उनकी स्पष्ट वक्तृत्व शैली एवं व्यवहार भी उनके प्रभावी व्यक्तित्व का महत्त्वपूर्ण अंग हैं। वह घुमा-फिराकर बात करने की अपेक्षा स्पष्टवादिता का ही प्रश्रय लेती हैं, जिससे अन्य के मन में कोई संशय नहीं रहता। किसी अन्य के द्वारा यदि घुमा-फिराकर बात की जाती है, तो उसे वह स्वीकार भी नहीं करती। हाँ, स्पष्ट कहने में वह इस बात का ध्यान रखती हैं कि अन्य के स्वाभिमान एवं आत्मसम्मान को कोई ठेस न पहुँचे।

यद्यपि पूज्य माताजी अक्सर शांत ही रहती हैं, फिर भी अनुशासन करने हेतु क्रोध करना भी उन्हें आता है ताकि पुनः उस गलती की पुनरावृत्ति शिष्यगण न कर सकें।

“वास्तव में, प्रभावी व्यक्तित्व के विकास हेतु व्यक्ति शांतिप्रिय हो, विनम्र हो, स्पष्टवादी हो पर साथ ही अनुशासन करने हेतु किंचित कठोर होना भी जानता हो।”

(25) नेतृत्व करने की आपकी क्षमता—पूज्य चंदनामती माताजी में नेतृत्व करने की पूर्ण क्षमता विद्यमान है। इसे उनका आकर्षण मानें अथवा उनका श्रेष्ठ पुण्य कि चाहें संघस्थ शिष्यगण हों अथवा समाज के प्रभावशाली व्यक्तित्व हों, परिवारीजन हों अथवा अन्य परिचित जन हों, सब उनको प्रेम करते हैं, उनको आदर देते हैं एवं उनके निर्देश का पालन करने हेतु तत्पर भी रहते हैं।

पूज्य माताजी भली-भाँति जानती हैं कि किस प्रकार सबका सहयोग लेकर किसी कार्य को अनुशासित रूप में सम्पन्न किया जाये। व्यवस्थित कार्य ही उन्हें पसंद आता है और स्वयं भी व्यवस्थित रूप में ही किसी कार्य को वह सम्पन्न करती हैं।

सबके लिए उनकी यही शिक्षा रहती है—“कभी भी धर्म, धैर्य और गुरु को मत छोड़ो।” उनके अपने जीवन का भी यही सत्य है।

वास्तव में, नेतृत्व करने हेतु व्यक्ति को पहले स्वयं परिश्रमी, व्यवस्थित, सजग, न्यायोचित एवं अनुशासित होना चाहिए।

यद्यपि पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी ‘छोटी माताजी’ के नाम से प्रसिद्ध हैं, परन्तु उनके गुण बड़े-बड़े हैं जो किसी को भी ऊँचाईयों पर ले जाने में समर्थ हैं। अपनी गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण से उन्होंने ज्ञान, चारित्र्य, कार्यक्षमता, सामाजिक पहचान सभी में उन्नति प्राप्त की है और इस तथ्य को वह अंतरंग से स्वीकार करती हैं। हम सबके लिए भी यह अत्यन्त अनुकरणीय है।

पूज्य माताजी के चरण-सानिध्य में रहकर उनके व्यक्तित्व की जो भीनी सुगंध मुझे प्राप्त हुई है, उसका कुछ अंश लेखनीबद्ध करने का क्षुद्र प्रयास मैंने किया है। यद्यपि यह सत्य है कि आत्मा के अनंत गुणों को उपलब्ध करने हेतु ही तो मोक्षमार्ग का आश्रय लिया गया है तथापि यह भी उतना ही सत्य है कि एक गुणवान एवं योग्य व्यक्तित्व ही इस मार्ग का सच्चा पथिक बन सकता है।

अंत में, अद्भुत सृजनकर्ता परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी एवं उनकी बेमिसाल कृति परम पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी के चरणारविंद में असंख्य हार्दिक वंदन अर्पित करते हुए मैं अपने शब्दों को विराम देती हूँ तथा जिनेन्द्र प्रभु से यही कामना करती हूँ कि ऐसे गुणवान व्यक्तित्वों की छत्रछाया में ही हम सभी का जीवन भी पल्लवित-पुष्पित हो सके एवं अग्रिम प्रत्येक भव में ऐसे ही गुरुचरणों का आश्रय प्राप्त होता रहे।

एक अद्वितीय जैन केन्द्र **दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान**

-कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी (अध्यक्ष)

राजधानी दिल्ली से 110 किमी. दूर उत्तरप्रदेश के जिला मेरठ स्थित पौराणिक तीर्थ **हस्तिनापुर** में सन् 1974 से 'जम्बूद्वीप' नाम से एक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र अवस्थित है। 200 फुट के व्यास में निर्मित जैन भूगोल की अद्वितीय रचना '**जम्बूद्वीप**' के अन्दर हल्के गुलाबी संगमरमर से निर्मित 101 फुट ऊँचे **सुमेरु पर्वत** की शोभा आज प्रत्येक व्यक्ति के मन को आकर्षित करती है।

प्राचीन जैन साहित्य एवं भूगोल के परिचायक, वैज्ञानिकों के लिए शोध केन्द्र, आध्यात्मिक उन्नयन के लिए पवित्र स्थान, मानसिक शांति एवं जिनेन्द्र भगवान की पूजन-भक्ति के सम्पूर्ण साधनों तथा समस्त आधुनिक सुविधाओं की उपलब्धता सहित इस अनुपम तीर्थ की जनक संस्था का नाम है-**दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान (रजि.)**। जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की पावन प्रेरणा से 1972 में इस संस्थान की स्थापना हुई। दिगम्बर जैन इंस्टीट्यूट ऑफ कॉस्मोग्राफिक रिसर्च (**Digambar Jain Institute of Cosmographic Research**) के नाम से प्रसिद्ध इस संस्थान का आधारभूत लक्ष्य था-जम्बूद्वीप का निर्माण और यह जम्बूद्वीप ही अंततः संस्थान का मुख्य कार्यालय बन गया।

जंबूद्वीप की 35 एकड़ पवित्र भूमि पर संस्थान के द्वारा संचालित विभिन्न योजनाओं/रचनाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है-

1. **जंबूद्वीप रचना**-जिनेन्द्र भगवान की 207 प्रतिमाओं से पावन भारतीय शिल्प और जैन भूगोल का अद्वितीय उदाहरण, आधुनिक आकर्षणों-बिजली के फौवारे, नौका-विहार इत्यादि सहित।
2. **कमल मंदिर**-भगवान महावीर की अतिशयकारी खड्गासन प्रतिमा इस मंदिर में विराजमान हैं।
3. **ध्यान मंदिर**-24 तीर्थंकर भगवन्तों की प्रतिमाओं सहित '**हीं**' रचना इस मंदिर में विराजमान हैं, जो कि 'ध्यान' (Meditation) करने हेतु उत्तमोत्तम माध्यम हैं।
4. **त्रिमूर्ति मंदिर**-भगवान आदिनाथ, भरत एवं बाहुबली की खड्गासन प्रतिमाओं से इस मंदिर का नाम सार्थक है। कमल पर विराजमान भगवान नेमिनाथ एवं पार्श्वनाथ से इस मंदिर की शोभा द्विगुणित हो गयी है।
5. **वासुपूज्य मंदिर**-इस मंदिर में 12वें तीर्थंकर-वासुपूज्य स्वामी की खड्गासन प्रतिमा विराजमान हैं।
6. **शांतिनाथ मंदिर**-जिन भगवन्तों के गर्भ, जन्म, तप और ज्ञान कल्याणकों से हस्तिनापुर की भूमि परम-पावन हुई है, उन शांति-कुंथु और अरहनाथ भगवन्तों की खड्गासन प्रतिमाएँ इस मंदिर में विराजमान हैं।
7. **ॐ मंदिर**-अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठियों की प्रतिमाओं सहित ॐ (ओम) रचना इस मंदिर में विराजित है।
8. **विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर**-इस मंदिर में विदेह क्षेत्र के विद्यमान 20 तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ बीस कमलों पर विराजमान हैं।
9. **सहस्रकूट मंदिर**-जिनेन्द्र भगवान की 1008 प्रतिमाओं सहित।
10. **भगवान ऋषभदेव मंदिर**-धातु निर्मित भगवान ऋषभदेव की मूलनायक प्रतिमा एवं अन्य जिन प्रतिमाओं सहित।

11. **भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ**—‘भगवान ऋषभदेव अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष’ में निर्मित, भगवान के जीवन चरित्र को प्रदर्शित करने वाला, 8 प्रतिमाओं से समन्वित 31 फुट ऊँचा कीर्तिस्तंभ।

12. **तेरहद्वीप जिनालय**—इस मंदिर के अंदर मध्यलोक के तेरहद्वीपों की अकृत्रिम रचना का अति सुन्दरता के साथ दिग्दर्शन कराया गया है, जिसमें पंचमेरु पर्वतों के साथ-साथ कुल 2127 प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

13. **अष्टापद दिगम्बर जैन मंदिर**—इस मंदिर के अंदर प्रथम जैन तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की निर्वाणभूमि अष्टापद-कैलाशपर्वत की आकर्षक प्रतिकृति विराजमान है। कैलाशपर्वत का ही दूसरा नाम अष्टापद है। 4 फरवरी 2000 को लाल किला मैदान, दिल्ली में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा इस प्रतिकृति के समक्ष निर्वाणलाडू चढ़ाकर इसका उद्घाटन किया गया।

14. **नवग्रह शान्ति जिनमंदिर**—पूज्य माताजी की पावन प्रेरणा से उत्तर भारत में प्रथम बार निर्मित इस नवग्रहशान्ति जिनमंदिर में नवग्रह अरिष्ट निवारक नव तीर्थंकरों की धातु निर्मित सुन्दर प्रतिमाएँ विराजमान हैं, जिनके दर्शन-पूजन करके भक्तगण अपने ग्रहों की शान्ति करते हुए देखे जाते हैं।

15. **तीर्थंकरत्रय की विशाल प्रतिमाएँ**—हस्तिनापुर में जन्मे तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ भगवान की 31-31 फुट की खड्गासन प्रतिमाएँ पूज्य माताजी की प्रेरणा से जम्बूद्वीप स्थल पर विराजमान हुई हैं, जिनका विशाल मंदिर भी प्रस्तावित है।

16. **तीनलोक की भव्य रचना**—त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति आदि करणानुयोग ग्रंथों के अनुसार तीन लोक की सुन्दर रचना का निर्माण भी पूज्य माताजी की प्रेरणा का ही सुफल है। इसमें अत्याधुनिक सुविधा के लिए लिफ्ट लगाई गई है, जिससे सभी भक्तगण सिद्धशिला तक के दर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

17. **जम्बूद्वीप पुस्तकालय**—प्राचीन हस्तलिखित एवं प्रकाशित लगभग 15000 ग्रंथों एवं पुस्तकों के संग्रह सहित।

18. **जम्बूद्वीप औषधालय**

19. **ज्ञानमती हीरक जयंती एक्सप्रेस**—विशेष कृत्रिम रेल, जिसमें चौबीसों तीर्थंकरों की 16 जन्मभूमियों का विविध झाँकियों एवं चित्रावली के माध्यम से मनमोहक प्रस्तुतीकरण किया गया है।

20. **वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला**—1972 में संस्थापित इस ग्रंथमाला द्वारा अब तक लाखों की संख्या में 300 से अधिक ग्रंथों एवं पुस्तकों के संस्करणों का प्रकाशन हो चुका है।

21. **सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका**—यह पत्रिका सन् 1974 से लगातार प्रकाशित हो रही है, जिसमें जैन शास्त्रों के साररूप लेखों एवं अन्य महत्वपूर्ण कार्यक्रमों का संकलन एक स्थान पर प्राप्त होता है।

22. **राजा श्रेयांस भोजनशाला**—आने वाले दर्शनार्थियों को प्रतिदिन शुद्ध (जैनचर्या के अनुरूप) भोजन उपलब्ध कराने वाला यह दिगम्बर जैन समाज का प्रथम भोजनालय है, जहाँ एक साथ 500 लोग बैठकर भोजन कर सकते हैं।

23. **धर्मशालाएँ**—200 से अधिक फ्लैट, बंगले इत्यादि, जिनमें ठहरने संबंधी सभी आधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

24. **मनोरंजन के साधन**—तरह-तरह के झूले, बच्चों की रेल, हँसी के गोलगप्पे, नौका विहार, फौवारे, हरे-भरे लॉन, पूरे कैम्पस में घूमने के लिए ऐरावत हाथी (मोटर से संचालित), बिजली की आकर्षक व्यवस्था, सुन्दर प्राकृतिक दृश्य इत्यादि बरबस ही दर्शनार्थियों को इस भव्य रचना की तुलना ‘स्वर्ग’ से करने के लिए प्रेरित करते हैं।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा आयोजित सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम

अक्टूबर 1981-जम्बूद्वीप (हस्तिनापुर) स्थल पर 'जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति सेमिनार'।

31 अक्टूबर 1982-फिक्की ऑडिटोरियम-दिल्ली में 'जम्बूद्वीप सेमिनार' जिसका उद्घाटन श्री राजीव गांधी, तत्कालीन संसद सदस्य द्वारा किया गया।

अप्रैल 1985-जम्बूद्वीप (हस्तिनापुर) स्थल पर 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' विषय पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार, जिसका उद्घाटन उ.प्र. के तत्कालीन मंत्री प्रोफेसर वासुदेव सिंह द्वारा किया गया।

जून 1982 से अप्रैल 1985-लालकिला मैदान, दिल्ली से तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरागांधी द्वारा 4 जून, 1982 को पूरे देश में भ्रमण करने हेतु 'जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति' रथ का उद्घाटन किया गया। जनसाधारण में अहिंसा, चारित्र-निर्माण तथा विश्व बन्धुत्व के संदेश का प्रचार-प्रसार करते हुए 1045 दिन तक देश भर में भ्रमण करने के पश्चात् यह ज्ञान ज्योति तत्कालीन रक्षामंत्री श्री पी.वी. नरसिम्हा राव (भूतपूर्व प्रधानमंत्री) द्वारा जम्बूद्वीप के मुख्य द्वार के समक्ष सदैव के लिए स्थापित कर दी गई।

1992-'अंतर्राष्ट्रीय चरित्र निर्माण संगोष्ठी' का जंबूद्वीप स्थल पर श्री नेमीचंद जैन, विधायक (मध्यप्रदेश) की अध्यक्षता में आयोजन किया गया।

'जैन गणित' एवं 'चारित्र निर्माण' आदि विषयों पर हुई संगोष्ठियाँ मेरठ विश्वविद्यालय एवं दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित की गईं।

1993-अयोध्या में अवध विश्वविद्यालय-फैजाबाद के संयुक्त तत्वावधान में 'भारतीय संस्कृति के आद्य प्रणेता भगवान ऋषभदेव' विषय पर संगोष्ठी।

अक्टूबर 1995-मेरठ विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में पंचदिवसीय 'गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती साहित्य संगोष्ठी-95'।

मार्च-अप्रैल 1998-तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा 9 अप्रैल 1998 को तालकटोरा स्टेडियम, दिल्ली से देश भर में भ्रमण करने हेतु 'भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार रथ' का उद्घाटन। 3 वर्ष तक देशभर में तीर्थंकर भगवन्तों के सर्वोदयी सिद्धांतों एवं जैनधर्म की प्राचीनता का प्रचार-प्रसार करने के पश्चात् यह समवसरण इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश द्वारा तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली प्रयाग तीर्थ (इलाहाबाद) में स्थापित कर दिया गया।

अक्टूबर 1998-जम्बूद्वीप स्थल पर 'राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन', जिसका उद्घाटन किया गया-स्वर्गीय श्री राजेश पायलट (तत्कालीन संसद सदस्य द्वारा)।

फरवरी 2000-तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा 4 फरवरी 2000 को लाल किला मैदान, दिल्ली में एक वर्ष तक चलने वाले 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष' का उद्घाटन किया गया।

इस युग में जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव पर 1008 संगोष्ठियों की शृंखला, भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभों का निर्माण तथा अन्य अनेक सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस वर्ष के अंतर्गत आयोजित किये गये।

टोरण्टो, कनाडा, न्यूजर्सी आदि विदेश की भूमियों पर भी इन्हीं प्रेरणाओं के माध्यम से 4 फरवरी 2000 को निर्वाण महामहोत्सव मनाया गया।

जून 2000-जम्बूद्वीप स्थल पर 11 जून 2000 को 'जैनधर्म की प्राचीनता' विषय पर राष्ट्रीय सेमिनार आयोजित किया गया।

फरवरी 2001-भगवान ऋषभदेव की दीक्षाभूमि-प्रयाग (इलाहाबाद) में 'तीर्थकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ' का नवनिर्माण। इस तीर्थ पर भगवान के दीक्षा कल्याणक के प्रतीकस्वरूप धातु के वटवृक्ष के नीचे ध्यान में लीन महायोगी ऋषभदेव की सवा पांच फुट उत्तुंग पिच्छी-कमण्डलु सहित खड्गासन प्रतिमा, केवलज्ञान कल्याणक के प्रतीकस्वरूप भगवान की चतुर्मुखी प्रतिमा सहित दिव्य समवसरण रचना तथा निर्वाण कल्याणक के प्रतीक स्वरूप 51 फुट उत्तुंग 'कैलाशपर्वत' की भव्य रचना पर भगवान ऋषभदेव की 14 फुट उत्तुंग अत्यंत मनोहारी लालवर्णी पद्मासन प्रतिमा तथा तीन चौबीसी के प्रतीक स्वरूप 72 जिन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। 'ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ' भी स्थापित है। 4 से 8 फरवरी 2001 तक 'भगवान ऋषभदेव पंचकल्याणक प्रतिष्ठा' एवं 1008 महाकुंभों से कैलाशपर्वत पर प्रतिष्ठित भगवान ऋषभदेव का 'महाकुंभमस्तकाभिषेक' कार्यक्रम।

सन् 2003-2004-भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) में 'नंदावर्त महल तीर्थ' का निर्माण। भगवान महावीर मंदिर, भगवान ऋषभदेव मंदिर, नवग्रहशांति जिनमंदिर, त्रिकाल चौबीसी मंदिर और नंदावर्त महल (भगवान महावीर का जन्म महल) एवं उसमें स्थापित भगवान शातिनाथ जिनालय इस तीर्थ के मुख्य आकर्षण हैं। महावीर की जन्मभूमि के प्रचार-प्रसार हेतु **भगवान महावीर ज्योति रथ सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रवर्तन कर चुका है।**

सन् 2005-2007-भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव-6 जनवरी 2005 को जन्मभूमि वाराणसी से इसका भव्य उद्घाटन होकर पूरे एक वर्ष तक (27 दिसम्बर 2005 तक) इसे विभिन्न आयोजनों के साथ मनाया गया।

पुनः सन् 2006 में पूज्य माताजी ने भगवान पार्श्वनाथ निर्वाणभूमि "सम्मेदशिखर वर्ष" घोषित किया तथा दिसम्बर 2007 में केवलज्ञान भूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर भगवान पार्श्वनाथ सहस्राब्दि महोत्सव का राष्ट्रीय कार्यक्रम आयोजित करके 4 जनवरी 2008 को भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का समापन किया।

विशेषरूप से इस संस्थान द्वारा 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में 'विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन' का आयोजन किया गया, जिसका उद्घाटन पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी ससंघ के सानिध्य में भारत गणतंत्र की राष्ट्रपति महामहिम श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर राष्ट्रपति जी अपने पति डॉ. देवीसिंह शेखावत के साथ सम्मेलन में पधारीं। कार्यक्रम में उत्तरप्रदेश के राज्यपाल श्री टी.वी. राजेश्वर तथा स्वास्थ्य मंत्री श्री अनंत कुमार मिश्रा भी पधारे। इसी अवसर पर पूज्य माताजी द्वारा वर्ष 2009 को "शांति वर्ष" के रूप में मनाने की घोषणा की गई। यह 'शांति वर्ष-2009' वर्तमान में समस्त जैन समाज द्वारा भारत के विभिन्न प्रान्तों में अनेक कार्यक्रमों के माध्यम से मनाया गया।

सन् 2010 में पूज्य माताजी की प्रेरणा से गठित "अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थकर जन्मभूमि विकास कमेटी" द्वारा भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकासकार्य सम्पन्न किया गया है। तीर्थ पर भगवान पुष्पदंतनाथ की सवा 9 फुट पद्मासन प्रतिमा सुन्दर जिनमंदिर में विराजमान होकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठित हो चुकी हैं तथा भगवान पुष्पदंतनाथ कीर्तिस्तंभ तीर्थ की कीर्ति को दिग् दिगन्तव्यापी ख्याति प्राप्त कराने में निमित्तभूत है।

सन् 2012 में अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी (राज.) में पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से शांतिवीर नगर के निकट स्थित महावीर धाम परिसर में पंचबालयति दिगम्बर जैन मंदिर का भव्य निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ है। यहाँ पर पाँचों बालयति भगवान की प्रतिमाएँ विराजमान करके पृथक्

वेदियों में पद्मावती, क्षेत्रपाल की प्रतिमाएँ भी विराजमान की गई हैं। संस्थान द्वारा उक्त जिनमंदिर का पंचकल्याणक दिनोंक 29 जनवरी से 2 फरवरी 2012 तक सानंद सम्पन्न किया गया है तथा दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत इस जैन मंदिर का संचालन सुचारु रूप से किया जा रहा है।

इस संस्थान के द्वारा समय-समय पर विविध पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएं एवं धार्मिक कार्यक्रम सम्पन्न होते रहते हैं। संस्थान के अद्भुत कार्यकलाप की श्रेणी में है-**णमोकार महामंत्र बैंक**, जहाँ प्रतिवर्ष श्रद्धालु भक्तों द्वारा लाखों की संख्या में णमोकार मंत्र लिखकर जमा कराए जाते हैं। ये करोड़ों महामंत्र विश्वशांति की किरणें प्रसारित करने में अतिशय धरोहरस्वरूप हैं।

संस्थान द्वारा दिये जाने वाले पुरस्कार

गणिनी ज्ञानमती पुरस्कार-सन् 1995 से प्रत्येक पाँच वर्ष में यह पुरस्कार जैन धर्म पर उच्चस्तरीय शोध तथा संस्थान की शैक्षणिक गतिविधियों में सहयोग हेतु किसी भी जैन विद्वान या समर्पित कार्यकर्ता को 1,00,000/- (एक लाख) रुपये की नगद राशि, प्रशस्ति-पत्र इत्यादि के साथ प्रदान किया जाता था। अप्रैल 2006 में “गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव” के अवसर पर संस्थान द्वारा प्रतिवर्ष इस पुरस्कार को देने का निर्णय लिया गया अतः अब यह पुरस्कार प्रतिवर्ष किसी वरिष्ठ विद्वान अथवा विशिष्ट समाजसेवी को प्रदान किया जाता है।

आर्यिका रत्नमती पुरस्कार-सन् 1999 में स्थापित 25,000/- रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

जम्बूद्वीप पुरस्कार-सन् 2000 में स्थापित 25,000/- रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

नंदावर्त महल पुरस्कार-सन् 2004 से प्रारंभ 25000/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

श्री छोटेलाल जैन पुरस्कार-सन् 2003 में स्थापित 25,000/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

प्रकाशचंद जैन स्मृति पुरस्कार-सन् 2012 से प्रारंभ 25000/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

जम्बूद्वीप बाल प्रतिभा पुरस्कार-सन् 2010 से प्रारंभ 11000/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

उपरोक्त पुरस्कारों के अतिरिक्त ‘भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महोत्सव वर्ष’ के अवसर पर घोषित ‘भगवान ऋषभदेव नेशनल अवार्ड’, ‘ब्राह्मी पुरस्कार’, ‘भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर पुरस्कार’, ‘गणिनी ज्ञानमती दीक्षा स्वर्ण जयंती पुरस्कार’, ‘हीरक जयंती पुरस्कार’ तथा **रूपाबाई पुरस्कार** आदि भी संस्थान द्वारा प्रदान किये जा चुके हैं।

पुनः “गणिनी ज्ञानमती अमृत महोत्सव”-18 अक्टूबर 2013 के अवसर पर 80000/-रुपये की राशि वाला **‘अमृत महोत्सव पुरस्कार’** भी प्रदान किया गया।

इस प्रकार यह संस्थान अपनी विभिन्न समर्पित कार्य योजनाओं द्वारा समाज की सेवा में प्रतिक्षण संलग्न है। मानसिक शांति, आध्यात्मिक विकास, प्राकृतिक सौन्दर्य एवं अन्य अनेक लाभ एक साथ प्राप्त करने हेतु यह संस्थान जंबूद्वीप दर्शन के लिए आपको सादर आमंत्रित करता है।



वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के सहयोगी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत “वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला” की स्थापना सन् 1972 में हुई। तब से अब तक लाखों की संख्या में ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है और निरन्तर हो रहा है। ग्रन्थमाला से पाठकों को ग्रन्थ कम कीमत में प्राप्त हो सकें, इस दृष्टि से ग्रन्थमाला में एक संरक्षक योजना अगस्त सन् 1990 से प्रारंभ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत निम्न महानुभाव अब तक संरक्षक बनकर अपना सहयोग प्रदान कर चुके हैं।

शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खारी बावली, दिल्ली-6।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारुहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)।
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.।
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली।
11. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई।
12. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली।
13. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.।
14. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
15. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
16. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।
17. श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-4, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली।

परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गजजू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सराफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरभ वाले), गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन, तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।

13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली।
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली
19. श्री प्रद्युम्न कुमार जैन छोटी सा., अमर चंद जैन सराफ, लखनऊ (उ.प्र.)
20. श्रीमती शशि जैन ध.प. श्री दिनेशचंद जैन, शिवालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।

संरक्षक

1. स्व. श्री अनन्तवीर्य जैन एवं स्व. श्रीमती आदर्श जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमार जैन, मेरठ।
2. श्रीमती राजूबाई मातेश्वरी श्री शिखर चन्द भाई देवेन्द्र कुमार लखमी चन्द जैन, सनावद (म.प्र.)।
3. श्री चिमनलाल चुन्नीलाल दोशी, कीका स्ट्रीट, मुम्बई।
4. श्रीमती अरुणाबेन मन्नुभाई कोटड़िया, सी.पी. टैंक रोड, मुम्बई।
5. श्रीमती ताराबेन चन्दूलाल दोशी, फ्रेन्च ब्रिज, मुम्बई।
6. श्री रतिलाल चुन्नीलाल दोशी, मुम्बई।
7. स्व. श्रीमती मथुराबाई खुशाल चन्द्र जैन, द्वारा-श्री रतन चन्द खुशाल चन्द गाँधी के सुपुत्र श्री धन्य कुमार, अशोक कुमार, शिरीश कुमार, धर्मराज गाँधी फलटन (महा.)।
8. श्री शान्तिलाल खुशाल चन्द गाँधी, फलटन (सातारा) महा.।
9. श्री अनन्त लाल फूलचन्द फड़े, अकलूज (सोलापुर) महा.।
10. श्री हीरालाल माणिकलाल गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
11. श्री जयकुमार खुशालचंद गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
12. श्रीमती बदामी देवी मातेश्वरी श्री पदम कुमार जैन गंगवाल, कानपुर (उ.प्र.)।
13. श्रीमती कमलादेवी ध.प. स्व. श्री महेन्द्र कुमार जैन, घण्टे वाले हलवाई, दरियागंज, नई दिल्ली।
14. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री श्रवण कुमार जैन, चावडी बाजार, दिल्ली।
15. श्री मुकेश कुमार जैन, कटरा शहंशाही, चाँदनी चौक, दिल्ली।
16. श्री हुकमीचंद मांगीलाल शाह, धानमंडी, उदयपुर (राज.)
17. श्री किरण चन्द्र जैन, कटरा धूलियान, चाँदनी चौक, दिल्ली।
18. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री महावीर प्रसाद जैन इंजी. विवेक विहार, दिल्ली
19. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री अशोक कुमार जैन (खेकड़ा निवासी), बहराइच (उ.प्र.)।
20. श्रीमती लीलावती ध.प. श्री हरीश चन्द्र जैन, शकरपुर, दिल्ली।
21. श्री दुलीचन्द जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली।
22. श्री रतिलाल केवलचन्द गाँधी की पुण्य स्मृति में, पापुलर परिवार, सूरत (गुज.)।
23. श्रीमती भंवरीदेवी ध.प. श्री सदासुख जैन पांड्या की स्मृति में इन्दर चन्द सुमेरमल जैन पांड्या शिलांग (मेघालय)।
24. श्रीमती सोहनीदेवी ध.प. श्री तनसुखराय सेठी, फैन्सी बाजार, गौहाटी (आसाम)।
25. श्रीमती धापूबाई ध.प. श्री कस्तूर चन्द जैन, रामगंज मण्डी (राज.)।
26. श्री मिट्ठनलाल चन्द्रभान जैन, कविनगर गाजियाबाद (उ.प्र.)।
27. श्रीमती शकुन्तलादेवी ध.प. श्री सुरेशचंद जैन (बर्तन वाले), खुड़बुड़ा मोहल्लका, देहरादून (उ.प्र.)।
28. श्री देवेन्द्र कुमार गुणवन्त कुमार टोंग्या, बड़नगर (म.प्र.)।
29. श्री दिगम्बर जैन समाज, तहसील फतेहपुर (बाराबंकी) उ.प्र.।

30. श्री मन्नालाल रामलाल जैन इंगरवाला, भानपुरा (मन्दसौर) म.प्र.।
31. श्री इन्दर चन्द कैलाश चंद चौधरी, सनावद (म.प्र.)।
32. श्री प्रकाश चन्द अमोलक चन्द जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
33. स्व. श्री विमल चन्द जैन, रखबचन्द दसरथ सा, सनावद (म.प्र.)।
34. श्री आजाद कुमार जैन शाह (सनावद वाले), इन्दौर (म.प्र.)।
35. श्रीमती सुषमा देवी ध.प. श्री राकेश कुमार जैन, मवाना (मेरठ) उ.प्र.।
36. श्रीमती कुसुम जैन ध.प. श्री रमेशचन्द जैन, किशनपुरी, बागपत रोड, मेरठ।
37. श्रीमती किरण जैन ध.प. श्री पदम प्रसाद जैन एडवोकेट, मेरठ (उ.प्र.)।
38. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री जिनेन्द्रप्रसाद जैन ठेकेदार, टोडरमल रोड, नई दिल्ली।
39. श्रीमती क्षमादेवी जैन, मधुबन, दिल्ली।
40. श्रीमती कमलादेवी ध.प. श्री राजेन्द्र कुमार जैन टोडरका, ठाणे (महा.)।
41. श्री अजित प्रसाद जैन बब्बेजी, श्री राजकुमार श्रवण कुमार जैन, लखनऊ।
42. श्री प्रभा चन्द गोधा, 45 भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर-6 (राज.)।
43. श्री गोपीचन्द विपिन कुमार जैन, सरधना टैन्ट हाउस, गंजमंडी, सरधना।
44. श्रीमती रतनसुन्दरी देवी ध.प. श्री वीरचन्द जैन (चिकन वाले), चूड़ीवाली गली, चौक बाजार, लखनऊ।
45. डॉ. सुभाषचन्द जैन, रातानाड़ा क्लीनिक, रातानाड़ा बाजार, जोधपुर (राज.)।
46. श्री प्रमोद कुमार जैन (मुजफ्फरनगर वाले) 35 एच.वी.रोड, न्यू मार्केट, थरपकना, रांची (बिहार)।
47. श्री विजेन्द्र कुमार जैन, के.-1/20 मॉडल टाउन, दिल्ली।
48. श्री कैलाश चंद जैन, 45 भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर (राज.)।
49. श्री सुभाषचंद जैन, श्री दि. जैन पार्श्वनाथ चैत्यालय, 405 डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली।
50. श्री सुभाष चन्द जैन सर्राफ, टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.।
51. श्री चन्द्रसेन जैन, द्वारा-सुमेरचन्द, चन्द्रसेन जैन, सब्जी मण्डी, नहतौर (बिजनौर)।
52. श्री सुधीर कुमार जैन जे.ई., नन्द किशोर जैन, शारदा नहर खण्ड, शाहजहाँपुर।
53. श्री सुकुमालचंद जैन, मोती ट्रेडिंग कम्पनी, टी.आर. फुकन रोड, फैन्सी बाजार, गौहाटी।
54. श्री अनिल पुलकित सेठी, बी 1/122, फेज-2, अशोक विहार, दिल्ली-110052।
55. श्री चन्द्रमोहन बंसल, 11, पूसा रोड, करोलबाग, नई दिल्ली-5।
56. श्री गिरधर प्रसाद आमोद प्रसाद जैन, जैन वस्त्रालय, काली मार्केट, सिवान (बिहार)।
57. श्री सतीश चन्द जैन, 31 सिविल लाइन, म.नं.-10, सेक्टर-2, टाइप-5 झांसी।
58. श्री स्वरूप चन्द कासलीवाल, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
59. श्री हुलास चन्द सेठी, अयोध्या शुगर मिल्स, राजा का सहसपुर, बिलारी (उ.प्र.)।
60. श्रीमती किरण देवी जैन ध.प. श्री नरेन्द्र कुमार जैन, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
61. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री प्रवीण कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
62. श्री सूरजमल पुत्र श्री विनीत कुमार जैन, मोहल्ला गंजकटरा पूरणटारा पूरणजाट, जैन विला, मुरादाबाद (उ.प्र.)।
63. स्व. श्री शिखर चन्द जैन, 'टिम्बर कमीशन एजेन्ट', शंकरगंज, हापुड (उ.प्र.)।
64. श्रीमती राजेश्वरी जैन मातेश्वरी श्री राकेश जैन 31, सिविल लाइन, सीतापुर।
65. श्री राजकुमार जैन, मैसर्स रविदत्त प्रेमचन्द जैन बारदाने वाले, श्यामगंज, बरेली।
66. श्री बलवीर जैन, द्वारा-जानकी एक्सटेंशन रिफाइनरी, गाँधीगंज, शाहजहाँपुर।
67. श्री पन्नालाल सेठी, डीमापुर (नागालैंड)।
68. श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, ईदगाह कालोनी, आगरा (उ.प्र.)।
69. श्री पोखपाल जैन, द्वारा-नावेल्टी मेटल इंडिया, मानसिंह गेट, अलीगढ़ (उ.प्र.)।

70. श्रीमती रश्मि जैन ध.प. श्री विजय कुमार जैन, दरियागंज, नई दिल्ली।
71. श्रीमती विमला देवी ध.प. श्री प्रमोद कुमार जैन इंजी., शाहजहाँपुर (उ.प्र.)।
72. स्व. श्रीमती कैलाशवती जैन ध.प. श्री कैलाश चन्द जैन इंजी., तोपखाना बाजार, मेरठ।
73. श्रीमती अरुण कुमार नांदेकर ध.प. भाऊ साहेब नांदेकर, मुलुन्ड (वेस्ट) मुम्बई।
74. श्री भागचन्द मनीष कुमार ठोलिया, द्वारा-किरन एजेंसी, पो. बुरहानपुर, (म.प्र.)।
75. श्री कैलाशचन्द राजकुमार जैन रावका, पो. बिसवां (सीतापुर) उ.प्र.।
76. श्रीमती विद्यावती जैन, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली।
77. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरभ वाले) एवं सुपुत्र श्री मदन कुमार, प्रदीप कुमार एवं प्रवीण कुमार जैन, धर्मपुरा, गाँधीनगर, दिल्ली।
78. श्रीमती अरुणा जैन, ध.प. प्रवीन्द्र कुमार जैन, प्रीतमपुरा, दिल्ली।
79. श्रीमती पुष्पादेवी, ध.प. महेन्द्र कुमार जैन, पुष्पांजली एन्क्लेव, दिल्ली।
80. श्री बाबूलाल तोताराम जैन, भुसावल (महा.)।
81. डॉ. अनुपम जैन, सुदामा नगर, इंदौर (म.प्र.)।
82. श्री विनय कुमार जैन, ज्वैलर्स, दरीबाकलां, दिल्ली।
83. स्व. श्री आनन्द प्रकाश जैन 'शान्तिप्रिय', जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.।
84. श्रीमती राजुलबाई ध.प. श्री नेमीचन्द जैन लोहाड़े, पो. कोपरगाँव (महा.)।
85. श्री धन्नालाल गोधा, मल्हारगंज, इंदौर (म.प्र.)।
86. श्री सुनील कुमार मनोज कुमार जैन, झिलमिल कालोनी, दिल्ली।
87. श्रीमती आशा जैन ध.प. श्री राजेश कुमार जैन बरुआ सागर (उ.प्र.)।
88. श्री पारसमल टूंगरमल जी पाटनी पो. मेड़तासिटी, नागौर (राजस्थान)।
89. श्री अनिल कुमार जैन (गुड़गांव वाले) प्रियदर्शनी विहार, दिल्ली-92।
90. श्रीमती कृष्णा बाई नेमीनाथ जैन, पी. वाले, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
91. श्रीमती मंजूलता जैन ध.प. श्री प्रभात चन्द गोधा, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
92. श्री प्रमोद कुमार जैन, पारस प्रिन्टर्स, शाहदरा-दिल्ली।
93. श्री चांदमल अनिल कुमार सरावगी, किशनगंज (बिहार)।
94. कुमारी अदिती सुपुत्री श्री अपोलो जी जैन सौगानी, इंदौर।
95. श्रीमती मंजूलता ध.प. प्रभाचन्द गोधा-नया बाजार, अजमेर।
96. श्री सुचेद्र कुमार शैलेन्द्र कुमार जैन, डाल्टनगंज (झारखंड)।
97. श्रीमती जतनदेवी लक्ष्मीचंद जैन, चेन्नई (तमिलनाडु)।
98. श्रीमती सखाई जैन ध.प. श्री जीतमल जैन, मड़ाना (कोटा) राज.।
99. श्री मोहित जैन पुत्र मुकेश जैन, जगन्नाथ जैन पहाड़िया, फतेहपुर (शेखावटी) राज.।
100. श्री नरेश जैन बंसल, गुड़गाँवा (हरि.)।
101. श्रीमती रतनबाई ध.प. राजेन्द्र प्रकाश कोठिया, कोटा (राज.)।
102. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री अजीत कुमार जैन, भिवाड़ी (राज.)।
103. श्रीमती प्रेमलता जैन ध.प. श्री सुशील कुमार जैन, मलाड़ (मुम्बई)।
104. श्री राजेन्द्र कुमार पचौलिया, इंदौर (म.प्र.)।
105. स्व. श्री मोहनलाल हेमचंद गांधी, सतारा (महा.)।
106. श्रीमती आरती जैन ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन 'शीशे वाले', इलाहाबाद (उ.प्र.)
107. डॉ. विमला जैन "विमल" ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन, फिरोजाबाद (उ.प्र.)
108. सौ. पुष्पा पवन कुमार कासलीवाल, खामगांव (बुलठाणा) महा.।

षट्स्वण्डागम ग्रंथ पूजा

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

-स्थापना (शंभु छंद) -

जिनशासन का प्राचीन ग्रंथ, षट्स्वण्डागम माना जाता।
प्रभु महावीर की दिव्यध्वनि से, है इसका सीधा नाता॥
जब द्वादशांग का ज्ञान धरा पर, विस्मृत होने वाला था।
तब पुष्पदंत अरु भूतबली ने, आगम यह रच डाला था॥१॥

-दोहा -

षट्स्वण्डागम ग्रंथ की, पूजन करूँ महान।
मन में श्रुत को धार कर, पा जाऊँ श्रुतज्ञान॥२॥

ॐ ह्रीं श्रीषट्स्वण्डागमसिद्धान्तग्रंथराज! अत्र अवतर अवतर संवैषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्रीषट्स्वण्डागमसिद्धान्तग्रंथराज! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्रीषट्स्वण्डागमसिद्धान्तग्रंथराज! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं स्थापनं ।

-अष्टक -

(तर्ज - मैं चंदन बनकर.....)

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की॥टेक॥
ज्ञानामृत पीने से, भव बाधा नशती है।
हम जल की झारी लाए, त्रयधारा करने को॥हम॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीषट्स्वण्डागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की॥टेक॥
चन्दन की शीतलता तो, कुछ क्षण ही रहती है।
शाश्वत शीतलता हेतु, श्रुतपूजन कर लूँ मैं॥हम॥२॥

ॐ ह्रीं श्रीषट्स्वण्डागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की॥टेक॥
श्रुतवारिधि में रमने से, अक्षय पद मिलता है।
हम अक्षत लेकर आए, श्रुत पूजन करने को॥हम॥३॥

ॐ ह्रीं श्रीषट्स्वण्डागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की॥टेक॥
स्वाध्याय परमतप द्वारा, विषयाशा नशती है।
हम पुष्पों को ले आए, पुष्पांजलि करने को॥हम॥४॥

ॐ ह्रीं श्रीषट्स्वण्डागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः कामबाणविध्वंसेनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

- हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
 हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की॥टेक॥
 ज्ञानामृत का आस्वादन, ही सच्चा भोजन है।
 नैवेद्य थाल ले आए, श्रुत अर्चन करने को॥हम॥१५॥
- ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।
 हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
 हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की॥टेक॥
 सम्यग्दर्शन का दीपक, मन का मिथ्यात्व भगाता।
 इक दीप जलाकर लाए, श्रुत अर्चन करने को॥हम॥१६॥
- ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
 हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
 हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की॥टेक॥
 कर्मों की धूप जलाऊँ, निज ध्यान की अग्नि में।
 हम धूप सुगंधित लाए, श्रुत अर्चन करने को॥हम॥१७॥
- ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
 हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
 हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की॥टेक॥
 फल के स्वादों में फँसकर, नहिं मुक्ति सुफल को पाया।
 अब थाल फलों का लाए, श्रुत पूजन करने को॥हम॥१८॥
- ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।
 हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
 हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की॥टेक॥
 कोमल मृदु वस्त्रों द्वारा, निज तन को सदा ढका है।
 अब वस्त्र बनाकर लाए, श्रुत पूजन करने को॥हम॥१९॥
- ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यो वस्त्रं निर्वपामीति स्वाहा।
 हम पूजा करने आए, सैद्धान्तिक ग्रंथों की।
 हम थाल सजाकर लाए, हैं आठों द्रव्यों की॥टेक॥
 जिनवाणी के अध्ययन से, इक दिन अनर्घ्य पद मिलता।
 “चंदना” अर्घ्य ले आए, श्रुत पूजन करने को॥हम॥११०॥
- ॐ ह्रीं श्रीषट्खंडागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—दोहा—

षट्खंडागम ग्रंथ के, सम्मुख कर जलधार।

ज्ञान और चारित्र से, करूँ भवाम्बुधि पार॥११०॥

शान्तये शान्तिधारा।

विविध पुष्प की वाटिका, से पुष्पों को लाय।
पुष्पांजलि अर्पण करूँ, श्रुत समुद्र के मांहि।।11।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

अथ प्रत्येक अर्घ्य

—शंभु छंद—

पहला है जीवस्थान खण्ड, छह पुस्तक की टीका इसमें।
दो सहस तीन सौ पिचहत्तर, सूत्रों का सार भरा इसमें।।
अनुयोग आठ नव चूलिकाओं, में सत्प्ररूपणा आदि कथन।
यह ज्ञान मुझे भी मिल जावे, इस हेतु करूँ श्रुत का अर्चन।।11।।

ॐ ह्रीं अष्टअनुयोगनवचूलिकासमन्वितजीवस्थाननाम-प्रथमखण्डजिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्खण्डागम का दुतिय खण्ड, है क्षुद्रकबंध कहा जाता।
पन्द्रह सौ चौरानवे सूत्र से, सहित ग्रंथ यह कहलाता।।
सप्तम पुस्तक में है निबद्ध, यह बंध का प्रकरण बतलाता।
इस श्रुत का अर्चन करूँ कर्म, ज्ञानावरणी तब नश जाता।।2।।

ॐ ह्रीं कर्मबंधप्रकरणसमन्वितक्षुद्रकबंधनामद्वितीय-खण्डजिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

है तृतीयबंधस्वामित्वविचय, का खण्ड आठवीं पुस्तक में।
त्रय शतक व चौबिस सूत्रों के, द्वारा सिद्धान्त कथन इसमें।।
जो मन वच तन की शुद्धि सहित, इस आगम का अध्ययन करें।
वे कर्मबंध से छुट जाते, हम अर्घ्य चढ़ाकर नमन करें।।3।।

ॐ ह्रीं कर्मबंधादिसिद्धान्तकथनसमन्वितबंधस्वामित्व-विचयनामतृतीयखण्डजिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वेदनाखण्ड नामक चतुर्थ है, खण्ड चार पुस्तक निबद्ध।
नौ से बारह तक चारों में, पन्द्रह सौ चौदह सूत्र बद्ध।।
इन शास्त्रों की पूजन से मन का, कर्म असाता नश जाता।
गौतमगणधर विरचित मंगल-सूत्रों की है इसमें गाथा।।4।।

ॐ ह्रीं ऋद्ध्यादिवर्णनसमन्वितवेदनाखण्डनामचतुर्थ-खण्डजिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्खण्डागम का पंचम है, वर्गणा खण्ड आचार्य ग्रथित।
हैं एक सहस तेईस सूत्र, तेरह से सोलह तक पुस्तक।।
धरसेनसूरि सम गिरि से गिरती, गंगा मानो प्रगट हुई।
श्री पुष्पदेव अरु भूतबली के, अन्तस्तल से उदित हुई।।5।।

ॐ ह्रीं गणितादिनानाविषयसमन्वितवर्गणाखण्डनाम-पंचमखण्डजिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्खण्डागम के छठे खण्ड में, महाबंध का नाम सुना।
है महाधवल टीका उस पर, श्रीवीरसेनस्वामी ने रचा।।
इस तरह बना षट्खण्डागम, महावीर दिव्यध्वनि अंश कहा।
ये सूत्र ग्रंथ कहलाते हैं, इनकी पूजन से सौख्य महा।।6।।

ॐ ह्रीं महाधवल टीकासमन्वितमहाबंधनामषष्ठखण्ड-जिनागमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री पुष्पदंत अरु भूतबली, गुरु की कृति षट्खण्डागम है।
 नौ हजार सूत्रों से युत, इस युग का यह श्रुत अनुपम है।।
 बानवे सहस्र श्लोकों प्रमाण, टीका भी इसकी लिखी गई।
 श्रीवीरसेन स्वामी कृत धवला, टीका को मैं जजुँ यहीं॥१७॥

ॐ ह्रीं धवलामहाधवलाटीकासमन्वित षट्खण्डागम जिनागमाय पूर्णाध्व्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीगुणधर भट्टारक विरचित, है कषायप्राभृत ग्रंथ कहा।
 जयधवला टीका संयुत सोलह, पुस्तक में उपलब्ध यहाँ॥
 है द्वादशांग का पूर्ण सार, इन सब ग्रंथों में भरा हुआ।
 इनके अतिरिक्त न सार कोई, अर्चन का मन इसलिए हुआ॥१८॥

ॐ ह्रीं जयधवला टीकासमन्वितकषायप्राभृत जिनागमाय पूर्णाध्व्यं निर्वपामीति स्वाहा।

षट्खण्डागम के सूत्रों पर, गणिनी श्री ज्ञानमती जी ने।
 संस्कृत टीका सिद्धान्तसुचिन्तामणि रचकर दी इस युग में।।
 श्रीवीरसेन आचार्य सदृश यह, टीका भी निधि इस युग की।
 चिन्तामणि सम फल दात्री उस, टीकायुत ग्रंथ को करूँ नती॥१९॥

ॐ ह्रीं सिद्धान्तचिन्तामणिटीकासमन्वितषट्खण्डागम जिनागमाय अध्व्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य मंत्र - ॐ ह्रीं सिद्धान्तज्ञानप्राप्तये षट्खण्डागम जिनागमाय नमः।

जयमाला

शेर छंद -

जैवन्त हो महावीर दिव्यध्वनि जगत में। जैवन्त हो गौतम गणीश ज्ञान जगत में॥
 जैवन्त हो उन रचित द्वादशांग जगत में। जैवन्त हो उपलब्ध शास्त्र अंश जगत में॥१॥
 गौतम ने अपना ज्ञान फिर लोहार्य को दिया। लोहार्य स्वामी से वो जम्बूस्वामी ने लिया॥
 क्रमबद्ध ये त्रय केवली निर्वाण को गये। फिर पाँच मुनी चौदह पूर्व धारी हो गये॥२॥
 नंतर विशाखाचार्य आदि ग्यारह मुनि हुए। एकादशांग पूर्व दश के पूर्ण ज्ञानी थे॥
 अरु शेष चार पूर्व का इक देश ज्ञान पा। परिपाटी क्रम से उसको जगत में भी दिया था॥३॥
 नक्षत्राचार्य आदि पाँच मुनियों ने क्रम से। पाया था वही ज्ञान एक देश अंश में॥
 नंतर सुभद्र आदि चार मुनियों ने पाया। इक अंग ज्ञान देश अंश ज्ञान भी पाया॥४॥
 यह ज्ञान पुनः क्रम से श्रीधरसेन को मिला। अतएव वर्तमान में श्रुत का कमल खिला॥
 इस श्रुत की कहानी सुन रोमांच होता है। शिष्यों के समर्पण का परिज्ञान होता है॥५॥
 निज आयु अल्प जान दो मुनियों को बुलाया। निज ज्ञान उन्हें सौंप मन में हर्ष समाया॥
 मुनिराज नर वाहन तथा सुबुद्धि ने सोचा। गुरु ज्ञानवाटिका की मैं समृद्धि करूँगा॥६॥
 अध्ययन पूर्ण होने पर गुरुवंदना करी। देवों ने पुष्प आदि से गुरु अर्चना करी॥
 मुनिवर सुबुद्धि जी की दंतपंक्ति बनाई। कह पुष्पदंत गुरु ने उनकी कीर्ति बढ़ाई॥७॥

मुनिराज नरवाहन को पूजा भूत सुरों ने। फिर भूतबली नाम दिया उन्हें गुरु ने॥
 वे इस प्रकार पुष्पदंत भूतबलि बने। षट्खंड जिनागम को जीत चक्रपति बने॥8॥
 गुजरात अंकलेश्वर में चौमासा रचाया। फिर ज्ञान को लिपिबद्ध करना मन में था आया।
 श्री पुष्पदंतमुनि ने सत्प्ररूपणा रची। मुनिराज भूतबलि के पास उसे भेज दी॥9॥
 आगे उन्होंने द्रव्यप्रमाणानुगम आदी। षट्खण्डों में हजारों सूत्रों की भी रचना की॥
 फिर ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी की तिथि आ गई। आगम की रचना पूर्ण कर संतुष्टि छा गई॥10॥
 सिद्धांतचक्रवर्ती थे धरसेन जी सचमुच। श्री पुष्पदंत भूतबली में भी थे ये गुण॥
 पश्चात्त्वर्ति मुनि भी उनके अंशरूप हैं। जिनको मिला सिद्धान्त ज्ञान साररूप है॥11॥
 त्रयखण्ड पे परिकर्म टीका कुन्दकुन्द की। थी पद्धति द्वितीय टीका शामकुण्ड की॥
 श्रीतुम्बुलूर सूरि ने टीका की पंचिका। स्वामी समन्तभद्र ने चौथी रची टीका॥12॥
 श्री बप्पदेव गुरु ने लिखी व्याख्याप्रज्ञप्ती। धवलादि टीकाओं के कर्ता वीरसेन जी॥
 इन छह में मात्र धवला उपलब्ध आज है। पाँचों ही शेष टीका के नाम मात्र हैं॥13॥
 सदि बीसवीं में भी मिले सिद्धान्त ग्रंथ ये। चारित्रचक्रवर्ति शांतिसिंधु कृपा से॥
 इन सबको ताम्रपत्र पे उत्कीर्ण कराया। विद्वानों से टीकाओं का अनुवाद कराया॥14॥
 संस्कृत तथा प्राकृत में मिश्र है धवल टीका। अतएव मणिप्रवालन्याय युक्त है टीका॥
 इसका ही ले आधार ज्ञानमती मात ने। टीका रची सिद्धान्तचिन्तामणि नाम से॥15॥
 इन सबकी टीकाओं को बार-बार मैं नमूँ। षट्खण्ड जिनागम में मूलग्रंथ को प्रणमूँ॥
 मुझको भी इन्हें पढ़ने की शक्ति प्राप्त हो। माता सरस्वती मुझे तब भक्ति प्राप्त हो॥16॥
 षट्खण्ड धरा जीत चक्रवर्ति ज्यों बनें। षट्खंडजिनागम को भी त्यों ही जो पढ़ें॥
 सिद्धान्तचक्रवर्ति वे हों 'चन्दनामती'। पूर्णाघ्य चढ़ाऊँ करूँ मैं वंदना-भक्ती॥17॥

—दोहा—

षट्खण्डागम ग्रंथ को, वंदन बारम्बार।

अर्घ्य समर्पण कर लहूँ, जिनवाणी का सार॥18॥

ॐ ह्रीं षट्खण्डागमसिद्धान्तग्रंथेभ्यो जयमाला पूर्णाघ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्य पुष्पांजलिः।

—सोरठा—

जो पूजें चितलाय, षट्खंडागम शास्त्र को।

निज अज्ञान नशाय, वे पावें श्रुतसार को॥

॥ इत्याशीर्वादः, पुष्पांजलिः ॥



श्री षट्खण्डागम ग्रंथराज की मंगल आरती

रचयित्री-ब्र. कु. सारिका जैन (संघस्थ)

तर्ज - चाँद मेरे आ जा रे.....

आज हम आरति करते हैं-2

षट्खण्डागम ग्रंथराज की, आरति करते हैं।।

महावीर प्रभू के शासन का, ग्रंथ प्रथम कहलाया।

उनकी वाणी सुन गौतम, गणधर ने सबको बताया।।

आज हम आरति करते हैं-2

वीरप्रभू के परम शिष्य की, आरति करते हैं।।1।।

क्रम परम्परा से यह श्रुत, धरसेनाचार्य ने पाया।

निज आयु अल्प समझी तब, दो शिष्यों को बुलवाया।।

आज हम आरति करते हैं-2

श्री धरसेनाचार्य प्रवर की, आरति करते हैं।।2।।

मुनि नरवाहन व सुबुद्धी, ने गुरु का मन जीता था।

देवों ने आ पूजा कर, उन नामकरण भी किया था।।

आज हम आरति करते हैं-2

पुष्पदंत अरु भूतबली की, आरति करते हैं।।3।।

श्री वीरसेन सूरी ने, इस ग्रंथराज के ऊपर।

धवला टीका रच करके, उपकार कर दिया जग पर।।

आज हम आरति करते हैं-2

वीरसेन आचार्य प्रवर की, आरति करते हैं।।4।।

गणिनी माँ ज्ञानमती ने, इस ग्रंथ की संस्कृत टीका।

लिखकर सिद्धान्तसुचिन्तामणि नाम दिया है उसका।।

आज हम आरति करते हैं-2

श्री सिद्धान्तसुचिन्तामणि की, आरति करते हैं।।5।।

चन्दनामती माताजी, माँ ज्ञानमती की शिष्या।

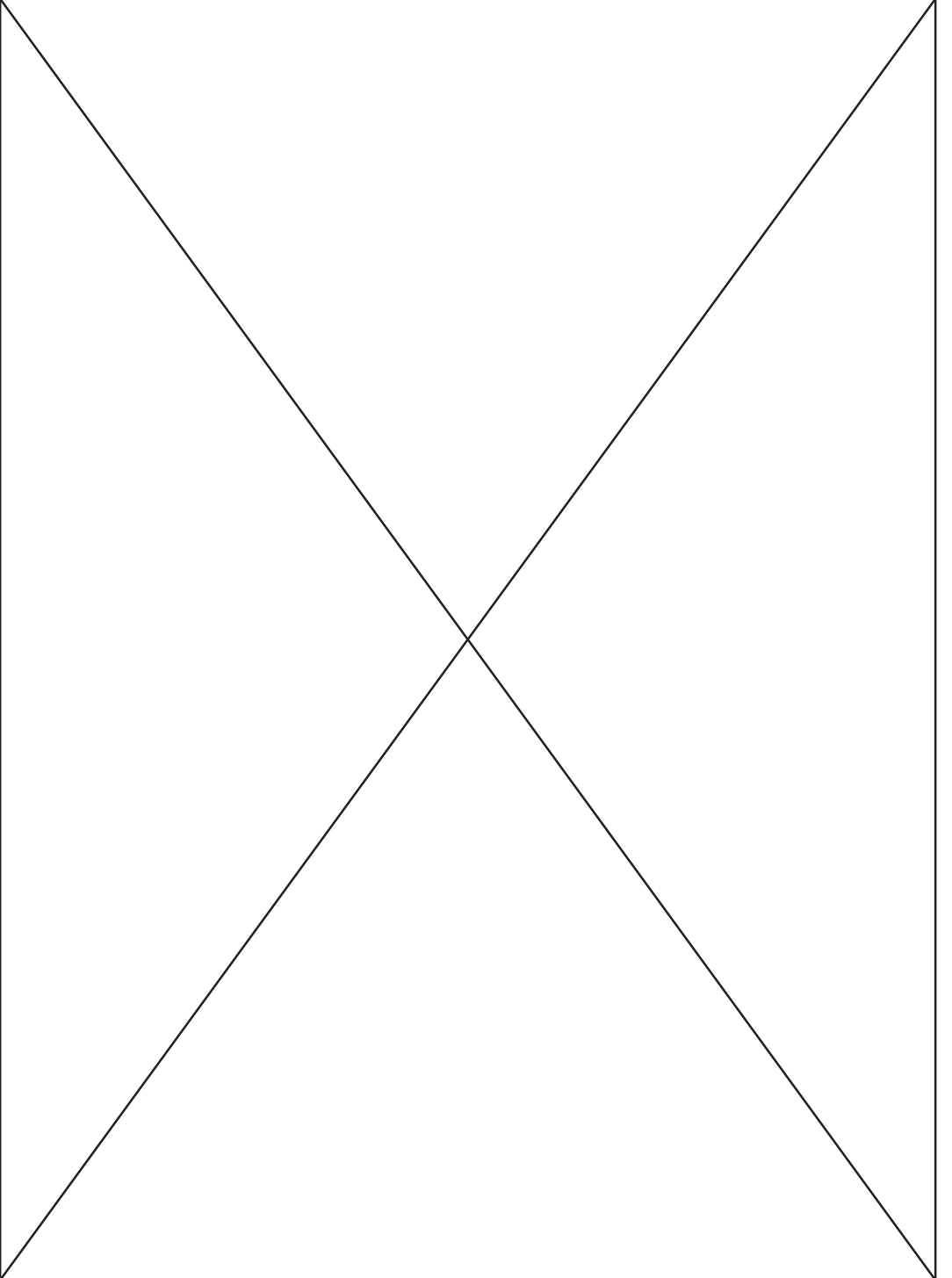
हिन्दी अनुवाद किया है, इस चिन्तामणि टीका का।।

आज हम आरति करते हैं-2

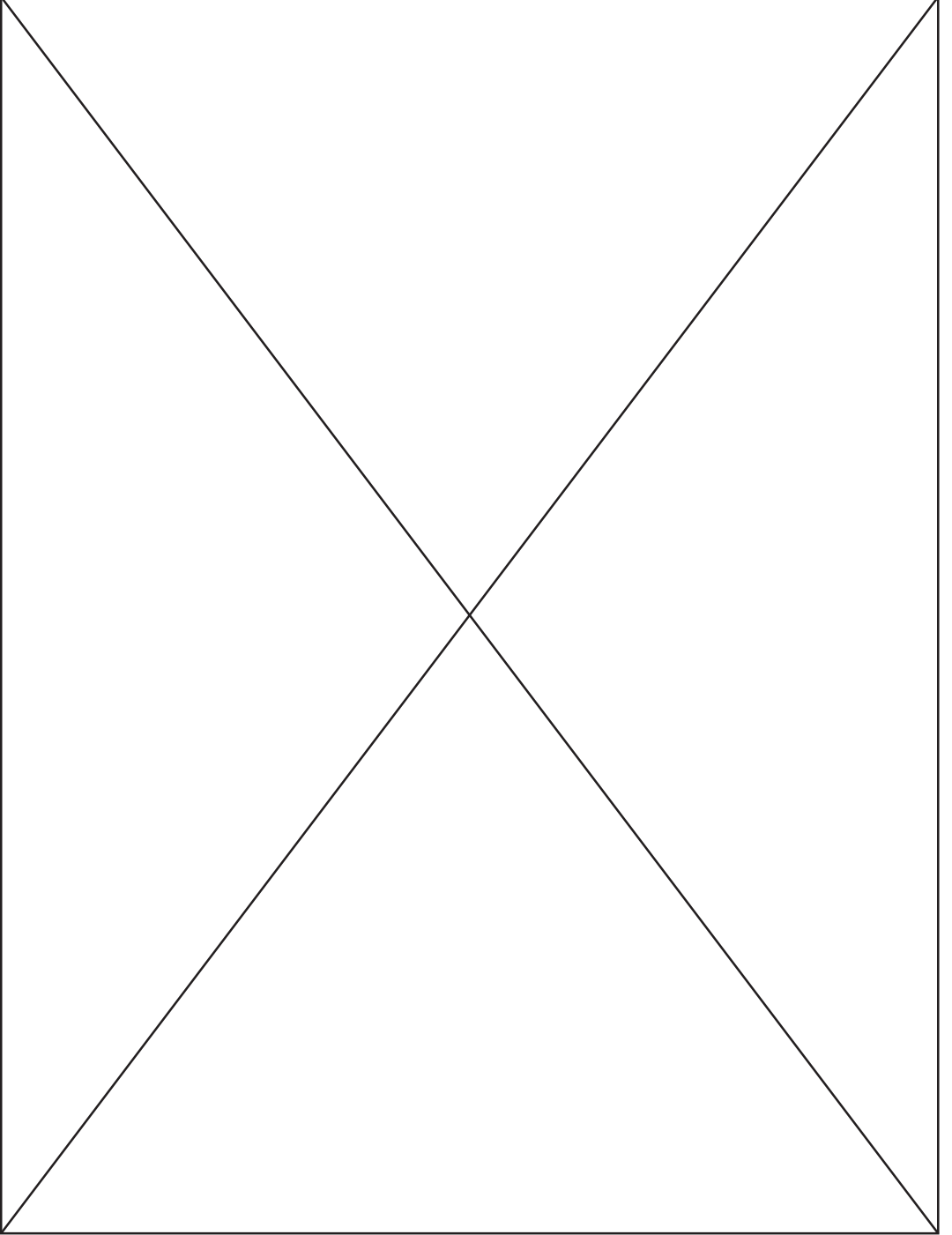
सरल-सरस टीका की "सारिका" आरति करते हैं।।6।।



पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा हस्तलिखित संस्कृत टीका का एक पृष्ठ



प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी द्वारा लिखित हिन्दी टीका का एक पृष्ठ





सविनय समर्पण



वर्तमान शासनपति भगवान महावीर की दिव्यध्वनि से सीधा संबंध रखने वाले

श्री धरसेनाचार्य महामुनीन्द्र से प्राप्त ज्ञान के आधार पर

श्री पुष्पदन्त-भूतबली आचार्य द्वारा रचित

षट्खण्डागम सूत्र ग्रंथ के चतुर्थ खण्ड

कृति-वेदना अनुयोगद्वार में से

बारहवाँ ग्रन्थ

वेदना प्रत्यय विधान आदि नौ अनुयोगद्वारों पर

श्री वीरसेनाचार्य कृत धवला टीका को प्रमुख करके

अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से रचित

‘सिद्धान्तचिन्तामणि’

नामक संस्कृत टीका के हिन्दी अनुवाद सहित

इस ग्रंथ को संस्कृत टीकाकर्त्री

सिद्धान्तचक्रेश्वरी, वाग्देवी, युगप्रवर्तिका, राष्ट्रगौरव, चारित्र्यचन्द्रिका,

विश्वविद्यालय से दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत

परमपूज्य गणिनीप्रमुख

आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

के पवित्र करकमलों में गंगा नदी का जल गंगा में ही

अर्पित करने के समान

समर्पित करते हुए श्रुतज्ञान वृद्धि हेतु

मंगल आशीर्वाद की आकांक्षा करती हूँ।

-समर्पणकर्त्री-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

-पावन प्रसंग-

पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी के

81वें जन्मोत्सव पर आयोजित

शरदपूर्णिमा महोत्सव-8 अक्टूबर 2014, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर





ॐ नमः सिद्धेभ्यः

श्रीमद्भगवत्पुष्पदंतभूतबलिविरचितः

षट्खण्डागमः

चतुर्थो वेदनाखण्डः

श्रीमद्भूतबलिसूरिवर्यविरचितः-वेदनाप्रत्ययविधानादिनवानुयोगद्वारसमन्वितः

अथ वेदनाप्रत्ययविधानानुयोगद्वारम्

(चतुर्विंशत्यनुयोगद्वारेषु द्वितीयवेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गतं अष्टमानुयोगद्वारम्)

द्वादशो ग्रंथः

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका (गणिनीज्ञानमतीविरचिता)

प्रथमो महाधिकारः (अन्तर्गत-प्रथमोऽधिकारः)

मंगलाचरणम्

(श्रीजिनचैत्यमंगलाष्टकम्)

ॐ नमो मंगलं कुर्यात्, ह्रीं नमश्चापि मंगलम्।

मोक्षबीजं महामंत्रं, अर्हं नमः सुमंगलम्॥१॥

अथ वेदनाप्रत्यय विधान अनुयोगद्वार

प्रथम महाधिकार (अन्तर्गत-प्रथम अधिकार)

मंगलाचरण (श्री जिनचैत्य मंगलाष्टक)

श्लोकार्थ — “ॐ नमः” मंत्र हम सबका मंगल करे तथा “ह्रीं नमः” मंत्र भी मंगल करे एवं मोक्ष के लिए बीज के समान “अर्हं ” महामंत्र हम सबके लिए मंगलकारी होवे॥१॥

सप्तकोट्यो जिनागाराः, लक्षाणि च द्विसप्ततिः।
भावनेषु स्थिताः सर्वे, कुर्वन्तु मम मंगलम्॥२॥

चतुःशताष्टपञ्चाशद्, मध्यलोके जिनालयाः।
जिनार्चास्ते च ताश्चापि, कुर्वन्तु मम मंगलम्॥३॥

व्यन्तराणां जिनागाराः, संख्यातीता विभान्त्यपि।
स्वात्मसिद्धेर्विधातारः, कुर्वन्तु मम मंगलम्॥४॥

ज्योतिष्काणां जिनागाराः, असंख्याः सन्ति सौख्यदाः।
स्वात्मज्योतिः प्रयच्छन्तु, कुर्वन्तु मम मंगलम्॥५॥

वैमानिका जिनागाराः, लक्षाश्चतुरशीतयः।
सहस्रं सप्तनवतिः, त्रयोविंशाश्च मंगलम्॥६॥

कृत्रिमाकृत्रिमाः सर्वे, त्रैलोक्ये ये जिनालयाः।
कृताकृता जिनार्चाश्च, ते ताः कुर्वन्तु मंगलम्॥७॥

त्रैलोक्यशिखराग्रे या, भाति सिद्धशिला शुभा।
अनन्तानन्तसिद्धेभ्यो, भृता कुर्यात् सुमंगलम्॥८॥

—शार्दूलविक्रीडित छंद—

सिद्धेः कारणमुत्तमा जिनवरा, आर्हन्त्यलक्ष्मीवराः।
मुख्या ये रसदिग्युता^१, गुणभृतास्त्रैलोक्यपूजामिताः॥

भवनवासी देवों के भवनों में (अधोलोक में) स्थित जो सात करोड़ बहत्तर लाख जिनमंदिर हैं वे सभी मेरा मंगल करें॥२॥

मध्यलोक में जो चार सौ अट्ठावन अकृत्रिम जिनमंदिर हैं, वे तथा उन मंदिर में विराजमान जिनप्रतिमाएँ मेरा मंगल करें॥३॥

व्यन्तर देवों के (अधोलोक एवं मध्यलोक में) असंख्यात जिनमंदिर सुशोभित हैं उन सभी में विराजमान जिनप्रतिमाएँ जो आत्मसिद्धि के लिए निमित्तभूत हैं वे मेरा मंगल करें॥४॥

ज्योतिर्वासी देवों के असंख्यात जिनमंदिर सौख्यप्रदाता हैं वे मेरी आत्मज्योति को प्रदान करें तथा मेरा मंगल करें॥५॥

वैमानिक देवों के विमानों में चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेईस जिनमंदिर मुझे मंगल प्रदान करें॥६॥

तीन लोक में जो कृत्रिम-अकृत्रिम जिनालय हैं वे सभी तथा उनकी कृत्रिम-अकृत्रिम प्रतिमाएँ मेरा मंगल करें॥७॥

त्रैलोक्य शिखर के अग्रभाग पर शुभकारी पवित्र सिद्धशिला है, जो कि अनन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठियों से भरी हुई है वह सिद्धशिला मेरा मंगल करे॥८॥

सिद्धपद को प्राप्त कराने में निमित्तभूत आर्हन्त्य लक्ष्मी — अन्तरंग केवलज्ञान लक्ष्मी एवं बहिरंग समवसरण लक्ष्मी से समन्वित जो चौबिस जिनवर हैं, तीनों लोकों के पूज्य छियालिस गुणों से समन्वित वे

चित्ताब्जं प्रविकासयन्तु मम भो!, ज्योतिःप्रभा भास्कराः।
तीर्थेशाः ऋषभादिवीरचरमाः, कुर्वन्तु मे (नो) मंगलम्॥१॥

षट्खण्डागमवन्दना —

नमस्करोमि श्रीसिद्धान्, परमानन्दतृप्तकान्।
नृदेवमुनिवन्द्यांश्च, चैतन्यानन्दलिप्सया॥१॥
सिद्धार्थ - नन्दनं वीरं, सर्वसिद्धिप्रदायकं।
भक्त्या नमामि तज्जन्म-भूमिमपि स्वसिद्धये॥२॥
श्रीषट्खण्डागमं ग्रन्थं, भक्त्या वन्दे पुनः पुनः।
श्रीधरसेनसूर्यादीन्, नित्यं नौमि श्रुताप्तये॥३॥

श्रीभगवन्महावीरतीर्थकरगर्भजन्मदीक्षाकल्याणकपवित्रतीर्थकुण्डलपुरे वीराब्दे एकोनत्रिंशदधिक-
पंचविंशतितमे श्रावणकृष्णादशम्यां तिथौ प्रभोः प्रतिमासमक्षे उपविश्य सर्वसिद्धान् मनसि निधाय चतुर्विंशति-
तीर्थकरान् श्रीमहावीरस्वामिनमपि मुहुर्मुहुर्नमस्कृत्य जन्मभूमितीर्थं च प्रणम्य षट्खण्डागम-महाग्रन्थराजस्य
द्वादशग्रन्थस्य 'सिद्धान्तचिन्तामणिटीका' लेखनं मया प्रारभ्यते।

श्रीसरस्वतीदेवीकृपाप्रसादात् प्रारब्धा इयं टीका निर्विघ्नतया पूर्णोभूय मह्यं स्वात्मपरमोर्भेदविज्ञानं
दद्यात् परिणामविशुद्धिं निजसौख्यसिद्धिं च प्रयच्छेदिति भावयित्वा श्रीगौतमगणधरादिदेवान्
श्रीधरसेनाचार्यादि-गुरुवर्यान्पि प्रणमाम्यहम्।

अर्हन्त परमेश्वरी भगवान् मेरे चित्तरूपी कमल को विकसित करें तथा अर्हन्त अवस्था को प्राप्त ज्योतिःप्रभायुक्त
सूर्यस्वरूप वे ऋषभदेव से लेकर महानतम चौबीसों तीर्थकर भगवान् हम सबका मंगल करें॥१॥

षट्खण्डागम वन्दना

श्लोकार्थ — आत्मा के परम आनन्द से तृप्त, मनुष्य-देवता एवं मुनियों से वंद्य श्री सिद्ध भगवन्तों
को मैं चैतन्य के आनन्द की लिप्सा — इच्छा से नमस्कार करता हूँ॥१॥

सम्पूर्ण सिद्धियों के प्रदाता राजा सिद्धार्थ के नन्दन वीर भगवान् को एवं उनकी जन्मभूमि को भी
आत्मसिद्धि के लिए मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ॥२॥

श्रीषट्खण्डागम ग्रन्थ की मैं बारम्बार भक्तिपूर्वक वन्दना करता हूँ तथा धरसेन आदि आचार्यों को
श्रुतज्ञान की प्राप्ति हेतु मैं नित्य नमन करता हूँ॥३॥

श्री भगवान् महावीर तीर्थकर के गर्भ, जन्म और दीक्षाकल्याणक से पवित्र तीर्थ कुण्डलपुर में वीर
निर्वाण संवत् २५२९ में श्रावण कृष्णा दशमी तिथि के दिन भगवान् की प्रतिमा के समक्ष बैठकर समस्त सिद्ध
भगवन्तों को मन में धारण — स्मरण करके चौबीस तीर्थकरों को एवं श्री महावीर स्वामी को भी बारम्बार
नमस्कार करके तथा उनकी जन्मभूमि को नमन करके षट्खण्डागम महाग्रन्थराज के बारहवें ग्रन्थ की
सिद्धान्त चिन्तामणि टीका का लेखन मेरे द्वारा प्रारंभ किया जा रहा है।

श्री सरस्वती देवी की कृपाप्रसाद से प्रारम्भ की गई यह टीका निर्विघ्नतया पूर्ण होकर मुझे निजात्मतत्त्व
एवं पर को भेदविज्ञान देवे, मेरे परिणामों की विशुद्धि एवं आत्मसौख्य की सिद्धि करावे ऐसी भावना भाकर
श्रीगौतम गणधर आदि देवों को एवं श्रीधरसेनाचार्य आदि गुरुवरों को भी मैं नमस्कार करता हूँ।

षट्खण्डागम विषयः—

श्रीमद्भगवद्धरसेनाचार्यवर्यमुखकमलादधीत्य श्रीपुष्पदन्तभूतबलिसूरिभ्यां भव्यजनानुग्रहार्थं षट्खण्डागमनामधेयो ग्रन्थो विरचितः। अस्मिन् आगमे जीवस्थान-क्षुद्रकबन्ध-बन्धस्वामित्वविचय-वेदनाखण्ड-वर्गणाखण्ड-महाबन्धाश्चेति षट्खण्डाः सन्ति।

अत्र षट्खण्डमन्तरेण पञ्चखण्डेषु षट्सहस्र-अष्टशत-एकचत्वारिंशत्सूत्राणि सन्ति। तद्यथा—

अस्मिन् परमागमे प्रथमखण्डे द्विसहस्र-त्रिशत-पञ्चसप्ततिसूत्राणि, द्वितीयखण्डे षडन्यूनषोडशशतसूत्राणि, तृतीयखण्डे चतुर्विंशत्यधिक-त्रिशतसूत्राणि, चतुर्थखण्डे पञ्चविंशत्यधिकपञ्चदशशतसूत्राणि, पंचमखण्डे त्रयोविंशत्यधिक-सहस्राणि सूत्राणि सन्ति।

जीवस्थाननाम्नि प्रथमखण्डे सत्प्ररूपणा-द्रव्यप्रमाणानुगम-क्षेत्रानुगम-स्पर्शनानुगम-कालानुगम-अन्तरानुगम-भावानुगम-अल्पबहुत्वानुगमनामाष्टानुयोगद्वाराणि नवचूलिकाश्च सन्ति। द्वितीयखण्डे क्षुद्रकबन्धे बन्धकानां प्ररूपणायां “एकजीवेन स्वामित्वं एकजीवेन कालः” इत्यादि एकादशानुयोगद्वाराणि सन्ति। बन्धस्वामित्व-विचयनाम्नि तृतीयखण्डे बन्धपदेन बन्धकर्ता कथ्यते। अत्र ग्रंथे “किं बन्धः पूर्वं व्युच्छिद्यते? किं उदयः” इत्यादि त्रयोविंशतिपृच्छास्तासां उत्तराणीत्यादिरूपेण ज्ञानावरणादिकर्मणां कारणादीनि कथ्यन्ते।

पुनश्च द्वितीयाप्राणीयपूर्वस्य पूर्वान्त-अपरान्त-ध्रुव-अध्रुव-चयनलब्धि-अध्रुवसंप्रणिधान-कल्प-अर्थ-भौमावयाद्य-सर्वार्थ-कल्पनिर्याण-अतीतकालसिद्ध-अनागतकालसिद्ध-बुद्धाश्चेति चतुर्दशाधिकाराः सन्ति। तेभ्यः ‘चयनलब्धि’ नामपंचमवस्तुनो विंशतिप्राभृतेषु चतुर्थ ‘महाकर्मप्रकृतिनाम’ प्राभृतं वर्तते। अस्य

षट्खण्डागम का विषय— श्रीमान् भगवान् धरसेनाचार्यवर्य के मुखकमल से अध्ययन करके श्रीपुष्पदन्त और भूतबली आचार्य ने भव्यजनों पर अनुग्रह करने हेतु षट्खण्डागम नामक ग्रन्थ की रचना कर दी। इस आगम ग्रन्थ में जीवस्थान, क्षुद्रकबन्ध, बन्धस्वामित्व विचय, वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड और महाबन्ध ये छह खण्ड हैं।

यहाँ छठे खण्ड के अतिरिक्त पाँच खण्डों में छह हजार आठ सौ इकतालिस सूत्र हैं। जिनका वर्णन इस प्रकार है—

इस परमागम में प्रथम खण्ड में २३७५ सूत्र हैं, द्वितीय खण्ड में छह कम सोलह सौ अर्थात् १५९४ सूत्र हैं, तृतीय खण्ड में ३२४ सूत्र हैं, चतुर्थ खण्ड में १५२५ सूत्र हैं और पंचम खण्ड में १०२३ सूत्र हैं।

जीवस्थान नाम के प्रथम खण्ड में सत्प्ररूपणा-द्रव्यप्रमाणानुगम-क्षेत्रानुगम-स्पर्शनानुगम-कालानुगम-अन्तरानुगम-भावानुगम-अल्पबहुत्वानुगम नाम के आठ अनुयोग द्वार एवं नौ चूलिकाएँ हैं। क्षुद्रकबन्ध नाम के द्वितीय खण्ड में बन्धकों की प्ररूपणा में “एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व, एक जीव की अपेक्षा काल” इत्यादि ग्यारह अनुयोग द्वार हैं। बन्धस्वामित्वविचय नाम के तृतीय खण्ड में बन्धपद की अपेक्षा बन्धकर्ता का कथन किया है। इस ग्रंथ में “क्या बन्ध पूर्व में व्युच्छिन्न होता है? क्या उदय पूर्व में व्युच्छिन्न होता है?” इत्यादि तेईस पृच्छाएँ हैं, उनके उत्तर इत्यादिरूप से ज्ञानावरणादि कर्मों के कारण आदि कहे हैं।

पुनश्च द्वितीय अग्रायणीय पूर्व के पूर्वान्त-अपरान्त-ध्रुव-अध्रुव-चयनलब्धि-अध्रुवसंप्रणिधान-कल्प-अर्थ-भौमावयाद्य-सर्वार्थ-कल्पनिर्याण-अतीतकाल सिद्ध-अनागत कालसिद्ध और बुद्ध ये चौदह अधिकार हैं। उनमें से चयनलब्धि नामक पंचम वस्तु के बीस प्राभृतों में “महाकर्म प्रकृति प्राभृत” नाम का चतुर्थ प्राभृत है। इस प्राभृत के चौबीस अनुयोगद्वार हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—

प्राभृतस्य चतुर्विंशति-अनुयोगद्वाराणि — कृति-वेदना-स्पर्श-कर्म-प्रकृति-बंधन-निबंधन-प्रक्रम-उपक्रम-उदय-मोक्ष-संक्रम-लेश्या-लेश्याकर्म-लेश्यापरिणाम-सातासात-दीर्घह्रस्व-भवधारणीय-पुद्गलात्त-निधत्तानिधत्त-निकाचितानिकाचित-कर्मस्थिति-पश्चिमस्कंध-अल्पबहुत्वानि चेति।

वेदनानामचतुर्थखण्डे कृति-वेदनानामद्वि-अनुयोगद्वारयोर्विस्तृतविवेचनमस्ति। वर्गणानामपंचमखण्डे शेषस्पर्शादिद्वाविंशत्यनुयोगद्वाराणां कथनं ज्ञातव्यम्।

एवं नामनिरूपणरूपेण संक्षेपेण पंचखंडग्रन्थानां विषयविवेचना सूचितास्ति।

चतुर्थखण्डे वेदनानाम्नि नवमग्रन्थे कृति-अनुयोगद्वारं कथितमस्ति।

अस्मिन् वेदनानामखण्डान्तर्गते दशमग्रन्थादारभ्य वेदानुयोगद्वारमस्ति द्वादशग्रन्थपर्यंतमिति।

अस्मिन् वेदनानामनुयोगद्वारे षोडशाधिकाराः कथ्यन्ते —

तत्र तावत् तेषां नामानि — वेदनानिक्षेप-वेदनानयविभाषणता-वेदनानामविधान-वेदनाद्रव्यविधान-वेदनाक्षेत्रविधान-वेदनाकालविधान-वेदनाभावविधान-वेदनाप्रत्ययविधान-वेदनास्वामित्वविधान-वेदना-वेदनाविधान-वेदनागतिविधान-वेदनाअनंतरविधान-वेदनासन्निकर्षविधान-वेदनापरिमाणविधान-वेदनाभागा-भागविधान-वेदनाल्पबहुत्वानि चेति।

दशमग्रन्थे आद्याः पंचाधिकारा-अनुयोगद्वारनामभिः वर्णिताः सन्ति।

एकादशमग्रन्थे वेदनाकालविधानवेदनाभावविधाननामनी द्वे अनुयोगद्वारे कथिते स्तः।

अधुना द्वादशे ग्रन्थे शेषनवानुयोगद्वाराणि वर्णयिष्यन्ते।

तथाहि — कृतिवेदनादिचतुर्विंशत्यनुयोगद्वारेषु द्वितीयवेदानुयोगद्वारस्य षोडशभेदेषु अनुयोगद्वारनामधेयेष्वेव

कृति-वेदना-स्पर्श-कर्म-प्रकृति-बंधन-निबंधन-प्रक्रम-उपक्रम-उदय-मोक्ष-संक्रम-लेश्या-लेश्याकर्म-लेश्या परिणाम-सातासात-दीर्घह्रस्व-भव धारणीय-पुद्गलात्त-निधत्तानिधत्त-निकाचितानिकाचित-कर्मस्थिति-पश्चिमस्कंध और अल्पबहुत्व।

वेदना नाम के चतुर्थ खण्ड में कृति और वेदना नाम के दो अनुयोग द्वारों का विस्तृत विवेचन है। वर्गणा नाम के पंचम खण्ड में शेष स्पर्श आदि बाईस अनुयोग द्वारों का कथन जानना चाहिए।

इस प्रकार नाम निरूपण रूप से संक्षेप में पाँच खण्डों की विषय विवेचना सूचित की गई है।

वेदना नाम के चतुर्थ खण्ड के नवमें ग्रन्थ में कृति अनुयोग द्वार कहा गया है।

इस वेदना खण्ड के अन्तर्गत दशवें ग्रन्थ से बारहवें ग्रंथ तक वेदानुयोग द्वार है।

इस वेदना नामक अनुयोग द्वार में सोलह अधिकार कहे जा रहे हैं —

उनके नाम इस प्रकार हैं —

वेदना निक्षेप-वेदनानय विभाषणता-वेदनानामविधान-वेदनाद्रव्यविधान-वेदनाक्षेत्र विधान-वेदनाकाल विधान-वेदना भाव विधान-वेदना प्रत्यय विधान-वेदना स्वामित्वविधान-वेदनावेदनाविधान-वेदनागतिविधान-वेदनाअनंतर विधान-वेदना सन्निकर्ष विधान-वेदना परिमाण विधान-वेदना भागाभाग विधान और वेदना अल्प-बहुत्व।

दशवें ग्रन्थ में अनुयोग द्वार के नाम से प्रारम्भिक पाँच अधिकार कहे गये हैं।

ग्यारहवें ग्रंथ में वेदनाकाल विधान और वेदनाभाव विधान नाम के दो अनुयोगद्वार कहे गये हैं।

अब इस बारहवें ग्रन्थ में शेष नौ अनुयोग द्वारों का वर्णन किया जाएगा।

जो इस प्रकार है — कृतिवेदना आदि चौबीस अनुयोग द्वारों में द्वितीय वेदना अनुयोग द्वार के सोलह

सप्तानुयोगद्वाराणि दशम-एकादशमग्रन्थयोः कथितानि।

अधुना अस्मिन् द्वादशे ग्रन्थे नवानुयोगद्वाराणि —

वेदनाप्रत्ययविधानामष्टमानुयोगद्वारं, वेदनास्वामित्वविधानं नवमानुयोगद्वारं, वेदनावेदनाविधानं दशमानुयोगद्वारं, वेदनागतिविधानमेकादशानुयोगद्वारं, वेदनानन्तरविधानं द्वादशानुयोगद्वारं, वेदनासन्नि-
कर्षविधानं त्रयोदशानुयोगद्वारं, वेदनापरिमाणविधानं चतुर्दशानुयोगद्वारं, वेदनाभागाभागविधानं
पंचदशानुयोगद्वारं, वेदनाल्पबहुत्वं षोडशानुयोगद्वारं।

अत्र सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां द्वयोर्महाधिकारयोः प्रथमादि-अधिकाररूपेण कथिता सन्तीति ज्ञातव्यम्।

इति भूमिका।

अथ तावत् श्रीपुष्पदंतभूतबलिसूरिविरचितषट्खण्डागमग्रन्थस्य वेदनाखण्डनाम्नि चतुर्थखण्डे द्वादशे
ग्रंथे वेदनाप्रत्ययविधानादि-नवाधिकारनिरूपणार्थं त्रयस्त्रिंशदधिकपंचशतसूत्रेषु द्वौ महाधिकारौ विभज्येते।
प्रथम महाधिकारे पञ्चाधिकाराः करिष्यन्ते वेदनाप्रत्ययविधान-वेदनास्वामित्वविधान-वेदनावेदनाविधान-
वेदनागतिविधान-वेदनानन्तरविधाननामभिः। पुनश्च द्वितीये महाधिकारे वेदनासन्निकर्षविधान-वेदना-
परिमाणविधान-वेदनाभागाभागविधान-वेदनाल्पबहुत्वविधाननामानः चत्वारोऽधिकाराः कथयिष्यन्ते।

तत्र तावद् वेदनाप्रत्ययविधाननाम्नि प्रथमेऽधिकारे षोडशसूत्राणि सन्ति। ततः परं 'वेदनास्वामित्व-
विधान'-नामद्वितीयेऽधिकारे पञ्चदशसूत्राणि कथ्यन्ते। ततश्च 'वेदनावेदनाविधाननामतृतीयेऽधिकारे
अष्टपञ्चाशत् सूत्राणि वक्ष्यन्ते। तदनन्तरं 'वेदनागतिविधान' नामचतुर्थेऽधिकारे द्वादशसूत्राणि प्ररूप्यन्ते।

भेदों में कहे गये सोलह अनुयोग द्वार नामों से ही सात अनुयोग द्वार दशवें और ग्यारहवें ग्रन्थ में कहे गये हैं।

अब इस बारहवें ग्रन्थ में नौ अनुयोग द्वार इस प्रकार कहे जाते हैं —

वेदनाप्रत्ययविधान नाम का आठवां अनुयोग द्वार, वेदनास्वामित्वविधान नाम का नववां अनुयोग द्वार,
वेदनावेदनाविधान नाम का दशवां अनुयोग द्वार, वेदनागतिविधान नाम का ग्यारहवां अनुयोग द्वार, वेदनानन्तरविधान
नाम का बारहवां अनुयोगद्वार, वेदनासन्निकर्षविधान नाम का तेरहवां अनुयोगद्वार, वेदनापरिमाणविधान नाम
का चौदहवां अनुयोग द्वार, वेदनाभागाभाग विधान नाम का पन्द्रहवां अनुयोग द्वार एवं वेदनाअल्पबहुत्व नाम
का सोलहवां अनुयोग द्वार है। कुल मिलाकर आठवें से लेकर सोलहवें अनुयोग द्वार तक नौ अनुयोग द्वार इस
बारहवें ग्रन्थ में कहे जाएँगे।

यहाँ सिद्धान्त चिन्तामणि टीका में दो महाधिकारों में प्रथम आदि अधिकार रूप से ये कहे गये हैं ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार भूमिका समाप्त हुई।

श्रीपुष्पदन्त-भूतबली आचार्य द्वारा रचित षट्खण्डागम ग्रन्थ के वेदना नामक चतुर्थ खण्ड में बारहवें
ग्रंथ में वेदनाप्रत्ययविधान आदि नौ अधिकारों के निरूपण हेतु पाँच सौ तैंतीस सूत्रों में दो महाधिकार विभक्त
किये गये हैं। उनमें से प्रथम महाधिकार में पाँच अधिकार करेंगे। जिनके नाम इस प्रकार हैं —

वेदनाप्रत्ययविधान, वेदनास्वामित्वविधान, वेदनावेदनाविधान, वेदनागतिविधान और वेदनानन्तरविधान।
पुनः द्वितीय महाधिकार में वेदनासन्निकर्षविधान, वेदनापरिमाणविधान, वेदनाभागाभागविधान और वेदनाल्पबहुत्व
नाम वाले चार अधिकार कहेंगे।

उनमें से वेदनाप्रत्ययविधान नाम के प्रथम अधिकार में सोलह सूत्र हैं। उसके पश्चात् 'वेदना स्वामित्वविधान'
नाम के द्वितीय अधिकार में पन्द्रह सूत्र हैं। पुनः वेदनावेदना नाम के तृतीय अधिकार में अट्ठावन सूत्र कहेंगे।
तदनन्तर वेदनागतिविधान नाम के चतुर्थ अधिकार में बारह सूत्र प्ररूपित करेंगे। तत्पश्चात् वेदनाअनन्तर-

तत्पश्चात् 'वेदनाअनन्तरविधान' - नामपंचमेऽधिकारे एकादशसूत्राणि प्रतिपाद्यन्ते।

पुनः द्वितीये महाधिकारे वेदनासन्निकर्षविधाननाम-प्रथमेऽधिकारे विंशत्यधिकत्रिंशत्सूत्राणि वर्णयिष्यन्ते। ततः परं 'वेदना परिमाणविधाननाम' -द्वितीयेऽधिकारे त्रिपञ्चाशत्सूत्राणि निगद्यन्ते। पुनरपि वेदनाभागाभाग-विधाननाम्नि तृतीयेऽधिकारे एकविंशतिसूत्राणि निरूप्यन्ते। अनन्तरं 'वेदनाल्पबहुत्वविधान' -नाम्नि चतुर्थेऽधिकारे सप्तविंशतिसूत्राणि कथयिष्यन्ते। इति द्वयोर्महाधिकारयोः त्रयस्त्रिंशदुत्तरपञ्चशतकसूत्रैरियं समुदायपातनिका सूचिता भवति।

तत्र तावत् प्रथमे महाधिकारे पञ्चाधिकाराः सन्ति। अस्मिन् वेदनाप्रत्ययविधाननाम्नि प्रथमाधिकारे पञ्चभिःस्थलैः षोडशसूत्राणि सन्ति। प्रथमस्थले 'वेदनापच्चय' इत्यादिना अधिकार-स्मरणार्थं एकं सूत्रं। ततः परं द्वितीयस्थले 'पेगम' इत्यादिना ज्ञानावरणीयवेदनाप्रत्ययनिरूपणपराणि षट्सूत्राणि। ततश्च तृतीयस्थले 'एवं कोह-' इत्यादिना क्रोधादिभ्यो ज्ञानावरणीयवेदानिरूपणपराणि चत्वारिसूत्राणि ज्ञातव्यानि। तदनन्तरं चतुर्थस्थले 'उज्जुसुदस्स' इत्यादिना प्रकृतिप्रदेशरूपेणोत्पन्न-ज्ञानावरणीयवेदनाप्रत्ययकथनकारकसूत्रत्रयं। तत्पश्चात् पंचमस्थले 'सदृणयस्स' इत्यादिसूत्रमादिं कृत्वा अवक्तव्यप्रतिपादकसूत्रद्वयमिति पातनिका कथितास्ति।

अधुना वेदनाप्रत्ययविधानाधिकारसूचकप्रतिज्ञाकरणार्थं सूत्रमवतार्यते —

वेयणापच्चयविहाणे त्ति।।१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतदधिकारसंस्मरणकारकसूत्रमस्ति। किंच, अनवगताधिकारस्य अन्तेवासिनः

विधान नाम के पंचम अधिकार में ग्यारह सूत्र प्रतिपादित किये जाएँगे।

पुनः द्वितीय महाधिकार के अन्तर्गत 'वेदनासन्निकर्षविधान' नाम के प्रथम अधिकार में तीन सौ बीस सूत्रों का वर्णन करेंगे। आगे 'वेदनापरिमाणविधान' नाम के द्वितीय अधिकार में तिरेपन सूत्र कहे जा रहे हैं। पुनः वेदनाभागाभाग-विधान नाम के तृतीय अधिकार में इक्कीस सूत्रों का निरूपण किया है। अनन्तर 'वेदनाल्पबहुत्वविधान' नाम के चतुर्थ अधिकार में सत्ताइस सूत्रों का कथन करेंगे। इस प्रकार दोनों महाधिकारों के पाँच सौ तेतीस सूत्रों की यह समुदायपातनिका सूचित की गई है।

इनमें से प्रथम महाधिकार में पाँच अधिकार हैं। उनमें वेदनाप्रत्ययविधान नाम के प्रथम अधिकार में पाँच स्थलों के द्वारा सोलह सूत्र हैं। प्रथम स्थल में "वेदनापच्चय" इत्यादि सूत्र के द्वारा अधिकार का स्मरण कराने हेतु एक सूत्र है। उसके आगे द्वितीय स्थल में "पेगम" इत्यादि के द्वारा ज्ञानावरणीय वेदनाप्रत्यय का निरूपण करने वाले छह सूत्र हैं। पुनः तृतीय स्थल में "एवं कोह—" इत्यादि के द्वारा क्रोध आदि की अपेक्षा ज्ञानावरणीय वेदना का निरूपण करने वाले चार सूत्र जानना चाहिए। तदनन्तर चतुर्थ स्थल में "उज्जुसुदस्स" इत्यादि के द्वारा प्रकृति और प्रदेशरूप से उत्पन्न ज्ञानावरणीय वेदनाप्रत्यय का कथन करने वाले तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् पंचम स्थल में "सदृणयस्स" इत्यादि सूत्र को आदि में करके अवक्तव्य का प्रतिपादन करने वाले दो सूत्र हैं। इस प्रकार यह सूत्रों की समुदायपातनिका कही गई है।

अब वेदनाप्रत्ययविधान नामक अधिकार को सूचित करने की प्रतिज्ञा करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

वेदनाप्रत्ययविधान अधिकार प्राप्त है।।१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यह सूत्र अधिकार का स्मरण कराने वाला है, क्योंकि अधिकार से

प्ररूपणायाः फलाभावात्।

अत्र कश्चिदाशङ्कते —

सर्वं कर्म कार्यमेव, अकार्यस्य कर्मणः शशशृंगस्येव अभावापत्तेः। न चैवं, क्रोधादिकार्याणामस्तित्व-स्यान्यथानुपपत्तेः कर्मणामस्तित्वं सिध्यत्येव। कार्यं अपि सर्वं सहेतुकमेव, निष्कारणस्य कार्यस्यानुपलंभात्। तस्मात् सूत्रेण विनापि कर्मणां सहेतुकत्वसिद्धेः प्रत्ययविधानस्य आरम्भो नोचितोऽस्ति इति चेत् ?

आचार्यदेवोऽत्र परिहरति —

कर्मणां कार्यत्वं सकारणत्वं च युक्तेः सिद्धमेव। किन्तु प्रत्ययस्य विधानं प्रपञ्चो भेदोऽनेन प्ररूप्यते कारणविषयविप्रतिपत्तिनिराकरणार्थमिति ज्ञातव्यं।

एवं प्रथमस्थले वेदनाप्रत्ययविधानप्रतिपादकसूचनपरं सूत्रमेकं गतम्।

संप्रति नैगमादित्रिनयापेक्षया ज्ञानावरणीयवेदनाप्रत्ययनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

णेगम-ववहार-संगहाणं णाणावरणीयवेयणा पाणादिवादपच्चए।।२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — प्राणातिपातो नाम प्राणेभ्यः प्राणिनां वियोगः। सः येभ्यो मनोवचनकायव्या-पारादिभ्यस्तेऽपि 'प्राणातिपात' एव कथ्यन्ते।

के प्राणाः ?

अनभिज्ञ शिष्य के प्रति की जाने वाली प्ररूपणा का कोई फल नहीं है।

यहाँ कोई शंका करता है —

सब कर्म कार्यस्वरूप ही हैं, क्योंकि जो कर्म अकार्यस्वरूप होते हैं उनका खरगोश के सींग के समान अभाव का प्रसंग आता है। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि क्रोध आदिरूप कार्यों का अस्तित्व बिना कर्म के बन नहीं सकता, अतएव कर्म का अस्तित्व सिद्ध ही है। कार्य भी जितना है वह सब सकारण ही होता है, क्योंकि कारणरहित कार्य पाया नहीं जाता। इस कारण चूँकि सूत्र के बिना भी कर्मों की सकारणता सिद्ध है, अतः प्रत्ययविधान का प्रारम्भ करना उचित नहीं है ?

आचार्यदेव यहाँ उपर्युक्त शंका का उत्तर देते हैं —

कर्मों की कार्यरूपता और सकारणता तो युक्ति से सिद्ध ही है किन्तु उनके कारणविषयक विरोध का निराकरण करने के लिये इस अधिकार के द्वारा प्रत्यय अर्थात् कारण के विधान अर्थात् प्रपञ्च या भेद की प्ररूपणा की जा रही है ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में वेदनाप्रत्यय विधान के प्रतिपादन की सूचना देने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब नैगम आदि तीन नयों की अपेक्षा ज्ञानावरणीय वेदनाप्रत्यय का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित किया जाता है —

सूत्रार्थ —

नैगम, व्यवहार और संग्रहनय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय वेदना प्राणातिपात प्रत्यय से होती है।।२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — प्राणातिपात का अर्थ प्राणियों का प्राणों से वियोग करना है। वह जिन मन-वचन या काय के व्यापार आदिकों से होता है वे भी "प्राणातिपात" ही कहलाते हैं।

प्रश्न — प्राण कितने होते हैं ?

चक्षुः-श्रोत्र-घ्राण-जिह्वा-स्पर्शनिन्द्रिय-मनो-वचन-कायबल-उच्छ्वासनिःश्वास-आयूंषि इति दश प्राणाः भवन्ति। प्रत्ययो कारणं निमित्तमिति समानार्थकाः शब्दाः। प्राणातिपातश्च सः प्रत्ययश्च प्राणातिपातप्रत्ययः।

कश्चिदाशङ्कते — प्राणातिपातो नाम हिंसाविषयकजीवव्यापारः। असौ च पर्यायः। ततो नासौ कारणं, पर्यायस्य एकान्तस्य कारणत्वविरोधादिति ?

आचार्यः समाधत्ते —

नैतत्, पर्यायस्य प्रधानीभूतस्य आकर्षितपरपक्षस्य कारणत्वोपलम्भात्। तस्मिन् प्राणातिपातप्रत्यये ज्ञानावरणीयवेदना भवति।

प्रत्ययस्य सप्तमीविभक्तिः कथं संगता ?

नैतत्, प्राणातिपातप्रत्ययविषये ज्ञानावरणीयवेदना वर्तते इति संबन्ध्यमाने विषयार्थक सप्तमीविभक्तेः उत्पत्तिं प्रति विरोधाभावात्। अथवा तृतीयाविभक्त्यर्थे सप्तमीविभक्तिर्द्रष्टव्या। तथा च प्राणातिपातप्रत्ययेन ज्ञानावरणीयवेदना भवतीति सिद्धः सूत्रार्थः।

अत्र कश्चिदाशङ्कते —

प्राणातिपातो यदि ज्ञानावरणीयबन्धस्य प्रत्ययो भवेत् तर्हि त्रिभुवने स्थितकर्मणस्कन्धा ज्ञानावरणीयप्रत्ययेन अक्रमेण किञ्च परिणमन्ते, कर्मयोगत्वं प्रति विशेषाभावात् ?

उत्तर—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा एवं स्पर्शन ये पाँच इन्द्रियाँ, मन-वचन-काय ये तीन बल तथा आयु और स्वासोच्छ्वास ये दश प्राण होते हैं।

प्रत्यय, कारण और निमित्त ये समानार्थक शब्द हैं। प्राणातिपात रूप जो प्रत्यय वह प्राणातिपातप्रत्यय है, इस प्रकार यहाँ कर्मधारय समास है।

यहां कोई शंका करता है —

प्राणातिपात का अर्थ हिंसाविषयक जीव का व्यापार है। वह चूँकि पर्यायस्वरूप है अतः वह कारण नहीं हो सकता, क्योंकि एकान्त पर्याय के कारणता का विरोध है ?

आचार्य इसका समाधान करते हैं —

ऐसा नहीं है, क्योंकि यहाँ पर्याय प्रधान है और परपक्ष आकर्षित होकर उसमें गृहीत है इसलिए उसे कारण मानने में कोई विरोध नहीं आता है।

उसमें प्राणातिपात प्रत्यय — कारण के होने पर ज्ञानावरणीय वेदना होती है।

शंका — प्रत्यय शब्द की सप्तमी विभक्ति कैसे संगत है ?

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि प्राणातिपातप्रत्यय के विषय में ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना होती है, ऐसा सम्बन्ध करने पर विषयार्थक सप्तमी विभक्ति की उपपत्ति में विरोध नहीं आता है अथवा तृतीया विभक्ति के अर्थ में सप्तमी विभक्ति समझना चाहिये। इस प्रकार प्राणातिपातप्रत्यय से ज्ञानावरणीय वेदना होती है, यह सूत्र का अर्थ सिद्ध होता है।

यहाँ कोई शंका करता है —

यदि प्राणातिपात ज्ञानावरणीय के बन्ध का कारण है तो तीनों लोकों में स्थित कर्मण स्कन्ध ज्ञानावरणीय पर्याय स्वरूप से एक साथ क्यों नहीं परिणत होते हैं, क्योंकि उनमें कर्मयोग्यता की अपेक्षा कोई विशेषता नहीं पाई जाती है ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नैतद् वक्तव्यं, त्रिभुवनाभ्यन्तरकर्मणस्कंधैर्देशविषयकप्रत्यासत्तेरभावात्।

उक्तं च — एयक्खेतोगाढ, सव्वपदेसेहि कम्मणो जोगं।

बंधं जहुत्तहेदू, सादियमहणादियं वा वि^१।।

सूक्ष्मनिगोदजीवस्य शरीरं घनांगुलासंख्यातभागमात्रं जघन्यावगाहनाक्षेत्रमेकक्षेत्रं कथ्यते। तस्मिन् एकक्षेत्रेऽवगाहप्राप्तकर्मरूपपरिणमनयोग्यसाद्यनादिपुद्गलान् जीवो यथोक्तमिथ्यादर्शनादिकहेतु संयुक्तो भूत्वा समस्तात्मप्रदेशैर्बध्नाति।

पुनः कश्चिदाशङ्कते —

यदि एकक्षेत्रावगाढा कर्मणस्कंधाः प्राणातिपातात्कर्मपर्यायेण परिणमन्ति तर्हि सर्वलोकगतजीवानां प्राणाति-पातप्रत्ययेन सर्वे कर्मणस्कंधा अक्रमेण ज्ञानावरणीयपर्यायेण परिणता भवन्ति। न चैवं, द्वितीयादिसमयेषु कर्मणस्कंधाभावेन सर्वजीवानां ज्ञानावरणीयबंधस्य अभावप्रसंगात्। न चैवं संभवति, सर्वजीवानां निर्वाणगमनप्रसंगात्?

अत्राचार्यदेवः परिहरति —

आचार्यदेव समाधान देते हैं—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि तीनों लोकों के भीतर स्थित कर्मणस्कंधों से देशविषयक प्रत्यासत्ति का अभाव है।

कहा भी है —

गाथार्थ—एक क्षेत्र में अवगाढ रूप से स्थित और कर्मरूप परिणमन के योग्य अनादि अथवा सादि या उभयरूप जो पुद्गलद्रव्य है उसे यह जीव सर्वप्रदेशों से अपने-अपने निमित्त से बाँधता है।।

भावार्थ—यहाँ अभिप्राय यह है कि कर्मरूप पुद्गलों का आत्मप्रदेशों के साथ संश्लेष सम्बन्ध होना प्रदेश बन्ध कहलाता है। यहाँ सूक्ष्मनिगोदिया जीव की घनांगुल के असंख्यातवें भाग जघन्यरूप अवगाहना को एक जघन्य क्षेत्र जानना चाहिए।

सूक्ष्म निगोदिया जीव का शरीर घनांगुल के असंख्यातवें भाग मात्र जघन्य अवगाहना का क्षेत्र एक क्षेत्र कहा जाता है। उस एक क्षेत्र में अवगाह को प्राप्त व कर्मस्वरूप परिणमन के योग्य सादि अथवा अनादि पुद्गल द्रव्य को जीव यथोक्त मिथ्यादर्शन आदिक हेतुओं से संयुक्त होकर समस्त आत्मप्रदेशों के द्वारा बाँधता है।

पुनः कोई शंका करता है —

यदि एक क्षेत्रावगाहरूप हुए कर्मण स्कन्ध प्राणातिपात के निमित्त से कर्मपर्याय रूप परिणमते हैं तो समस्त लोक में स्थित जीवों के प्राणातिपात प्रत्यय के द्वारा सभी कर्मण स्कन्ध एक साथ ज्ञानावरणीय रूप पर्याय से परिणत हो जाने चाहिये। परन्तु ऐसा हो नहीं सकता, क्योंकि वैसा होने पर द्वितीयादिक समयों में कर्मण स्कन्धों का अभाव हो जाने से सब जीवों के ज्ञानावरणीय का बन्ध के अभाव का प्रसंग आता है। किन्तु ऐसा सम्भव नहीं है, क्योंकि इस प्रकार से समस्त जीवों के मुक्तिगमन का प्रसंग आता है ?

यहाँ आचार्यदेव उपर्युक्त शंका का परिहार करते हैं —

प्रत्यासत्त्यां एकावगाहनाविषयायां सत्यामपि न सर्वे कार्मणस्कंधा ज्ञानावरणीयस्वरूपेण एकसमयेन परिणमन्ति, प्राप्तदाहं दह्यमानदहने इव जीवे तथाविधशक्तेरभावात्।

जीवे तादृशी शक्तिर्नास्तीति किं कारणम् ?

स्वाभाविकात्।

पुनरपि कश्चित् शिष्य आशंकते —

कार्मणस्कंधा किं जीवेन समवेता सन्तो ज्ञानावरणीयपर्यायेण परिणमन्ति आहोस्वित् असमवेता? नादिपक्षः, औदारिकवैक्रियक-आहारक-तैजस शरीरसंज्ञितनोकर्मव्यतिरिक्तस्य कार्मणस्कंधस्य कर्मस्वरूपेण अपरिणतस्य जीवे समवेतस्य अनुपलंभात्। उपलम्भे वा प्रत्येकशरीरवर्गणायां स्थानप्ररूपणायां क्रियमाणायां औदारिक-वैक्रियक-तैजस-कार्मणशरीराण्याश्रित्य यथा प्ररूपणा कृता एवं जीवसमवेतकार्मणस्कंधानपि आश्रय स्थान-प्ररूपणा कुर्यात्। न चैवं, तथानुपलंभात्। न द्वितीयोऽपि पक्षो युज्यते, जीवेऽसमवेतानां कार्मणस्कंधानां ज्ञानावरणीयस्वरूपेण परिणमनविरोधात्। अविरोधे वा जीवो संसारावस्थायाममूर्तो भवेत्, किंच मूर्तद्रव्यैः संबंधाभावात्। न चैवं, जीवगमने शरीरस्य संबंधाभावेन अगमनप्रसंगात्। जीवात् पृथग्भूतं शरीरमिति अनुभवाभावात् च। न पश्चाद् द्वयोरपि संबंधः, कारणे अक्रमे सति कार्यस्य क्रमोत्पत्तिविरोधात् इति ?

आचार्यदेवोऽत्र समाधत्ते —

जीवसमवेतकाले चैव कार्मणस्कंधा न ज्ञानावरणीयस्वरूपेण परिणमन्ते इति न पूर्वोक्तदोषा ढौकन्ते।

एक अवगाहनाविषयक प्रत्यासत्ति के होने पर भी एक कार्मण स्कन्ध एक समय में ज्ञानावरणीय स्वरूप से नहीं परिणमते हैं, क्योंकि प्राप्त ईन्धन आदि दाह्य वस्तु को जलाने वाली अग्नि के समान जीव में उस प्रकार की शक्ति नहीं पाई जाती है।

शंका—जीव में वैसी शक्ति के न होने का क्या कारण है ?

समाधान—उसमें वैसी शक्ति न होने का कारण स्वभाव ही है।

पुनः कोई शिष्य शंका करता है —

कार्मण स्कन्ध क्या जीव में समवेत होकर ज्ञानावरणीय पर्यायरूप से परिणमते हैं अथवा समवेत नहीं होकर ? प्रथम पक्ष तो संभव नहीं है, क्योंकि औदारिक, वैक्रियक, आहारक और तैजस शरीर संज्ञा वाले नोकर्म से भिन्न और कर्मस्वरूप से अपरिणत हुआ कार्मण स्कन्ध जीव में समवेत नहीं पाया जाता। अथवा यदि पाया जाता है तो प्रत्येक शरीर की वर्गणा के स्थानों की प्ररूपणा करते समय औदारिक, वैक्रियक, तैजस और कार्मण शरीर का आश्रय करके जैसे प्ररूपणा की गई, इस प्रकार जीव समवेत कार्मण स्कन्धों का भी आश्रय करके स्थानप्ररूपणा करनी चाहिये थी। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि वह पायी नहीं जाती। दूसरा पक्ष भी युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि जीव में असमवेत कार्मण स्कन्धों के ज्ञानावरणीय स्वरूप से परिणत होने का विरोध देखा जाता है। यदि विरोध न माना जाय तो संसार अवस्था में जीव को अमूर्त होना चाहिये, क्योंकि मूर्त द्रव्यों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि जीव के गमन करने पर शरीर का सम्बन्ध न रहने से उसके गमन न करने का प्रसंग आता है। दूसरे, जीव से शरीर पृथक् है, ऐसा अनुभव भी नहीं होता। पीछे दोनों का सम्बन्ध होता है, ऐसा भी सम्भव नहीं है, क्योंकि कारण के क्रम रहित होने पर कार्य की क्रमिक उत्पत्ति का विरोध पाया जाता है ?

आचार्यदेव यहाँ उक्त शंका का परिहार करते हैं—

जीव से समवेत होने के समय में ही कार्मण स्कंध ज्ञानावरणीय स्वरूप से नहीं परिणमते हैं, अतएव पूर्वोक्त दोष यहाँ नहीं आते हैं।

कथमेकः प्राणातिपातोऽक्रमेण द्वयोः कार्ययोः संपादकः ?

न, एकस्मात् मुद्गरात् घातावयवविभागस्थानसंचालनक्षेत्रान्तरप्राप्तिरूपखर्परकार्याणामक्रमेणोत्पत्तिदर्शनात्।

कथमेकः प्राणातिपातः अनंतान् कर्मणस्कंधान् ज्ञानावरणीयस्वरूपेण अक्रमेण परिणामयति, बहुषु एकस्याक्रमेणवृत्ति विरोधात् ?

न, एकस्य प्राणातिपातस्यानन्तशक्तियुक्तस्य तदविरोधात्।

असत्यप्रत्ययनिमित्तज्ञानावरणीयवेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

मुसावादपच्चए॥३॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — असद्वचनं मृषावादः।

किमसद्वचनमिति चेत् ?

मिथ्यात्व-असंयम-कषाय-प्रमादोत्पन्नवचनकलापः। एतस्मिन् मृषावादप्रत्यये मृषावादप्रत्ययेन वा ज्ञानावरणीयवेदना जायते।

कश्चिदाह —

कर्मबंधो हि नाम शुभाशुभपरिणामाभ्यां जायते, शुद्धपरिणामेभ्यस्तयोर्द्वयोरपि निर्मूलक्षयो भवति। किंच —

‘ओदइया बंधयरा, उवसम-खय-मिस्सया य मोक्खयरा।

परिणामिओ दु भावो, करणोहयवज्जियो होदि’॥

शंका — प्राणातिपातरूप एक ही कारण युगपत् दो कार्यो का उत्पादक कैसे हो सकता है ?

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि एक मुद्गर से घात अवयव विभाग, स्थानसंचालन और क्षेत्रान्तर की प्राप्ति रूप खप्पर कार्यो की युगपत् उत्पत्ति देखी जाती हैं।

शंका — प्राणातिपातरूप एक ही कारण अनन्त कर्मण स्कन्धों को एक साथ ज्ञानावरणीय स्वरूप से कैसे परिणामाता है, क्योंकि बहुतों में एक ही युगपत् वृत्ति का विरोध देखा जाता है ?

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि प्राणातिपात रूप एक ही कारण के अनन्त शक्तियुक्त होने से वैसा होने में कोई विरोध नहीं आता है।

अब असत्य प्रत्ययों के निमित्त से होने वाली ज्ञानावरणीय वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ —

मृषावादप्रत्यय से ज्ञानावरणीय वेदना होती है॥३॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — असत् वचन का नाम मृषावाद है।

शंका — असत् वचन किसे कहते हैं ?

समाधान — मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और प्रमाद से उत्पन्न वचन समूह को असत् वचन कहते हैं। इस मृषावादप्रत्यय में अथवा मृषावादप्रत्यय के द्वारा ज्ञानावरणीय वेदना होती है।

यहाँ कोई शंका करता है —

कर्म का बन्ध शुभ व अशुभ परिणामों से होता है और शुद्ध परिणामों से उन (शुभ व अशुभ) दोनों का ही निर्मूल क्षय होता है, क्योंकि —

गाथार्थ — औदयिक भाव बन्ध के कारण और औपशमिक, क्षायिक व मिश्र भाव मोक्ष के कारण हैं।

‘इदिवयणादो’

असद्वचनं पुनर्न शुभपरिणामः, नाशुभपरिणामः, पुद्गलस्य तत्परिणामस्य वा जीवपरिणामस्य विरोधात्। अतः असत्यवचनं ज्ञानावरणीयबंधस्य कारणं न संभवति। नासद्वचनं ज्ञानावरणीयबंधस्य कारणं नासद्वचनकारणकषायप्रमादयोः असद्वचनव्यपदेशः, तयोः क्रोध-मान-माया-लोभप्रत्ययेषु अन्तर्भावेन पुनरुक्तिदोषप्रसंगात्।

न प्राणातिपातप्रत्ययोऽपि, भिन्नजीवविषयस्य प्राण-प्राणिवियोगस्य कर्मबंधहेतुत्वविरोधात्। न च प्राणप्राणि-वियोगकारणजीवपरिणामः प्राणातिपातः, तस्य राग-द्वेष-मोहप्रत्ययेषु अंतर्भावेन पुनरुक्तिदोषप्रसंगात् इति ?

अत्राचार्यदेवः परिहरति —

सर्वस्य कार्यकलापस्य कारणात् अभेदः सत्तादिभ्यः, इति नये अवलम्ब्यमाने कारणात् कार्यमभिन्नं, कार्यात् कारणमपि, असदकरणात् उपादानग्रहणात् सर्वसंभावात् शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च। कारणे कार्यमस्तीति विवक्षातो वा कारणात्कार्यमभिन्नम्। ज्ञानावरणीयबंधनिबंधनपरिणतो वर्तते प्राण-प्राणिवियोगो वचनकलापश्च। तस्मात् ततस्तेषामभेदः। तेनैव कारणेन ज्ञानावरणीयबंधस्य तेषां प्रत्ययत्वमपि सिद्धम्।

एवंविधव्यवहारः किमर्थं क्रियते ?

सुखेन ज्ञानावरणीयप्रत्ययप्रतिबोधार्थं कार्यप्रतिषेधेन कारणप्रतिषेधार्थं च।

पारिणामिक भाव बन्ध व मोक्ष दोनों के ही कारण नहीं हैं।। ऐसा आगमवचन है।

परन्तु असत्य वचन न तो शुभ परिणाम है और न अशुभ परिणाम है, क्योंकि पुद्गल के अथवा उसके परिणाम के जीव परिणाम होने का विरोध है। इस कारण असत्य वचन ज्ञानावरणीय के बन्ध का कारण नहीं हो सकता। यदि कहा जाय कि असत्य वचन के कारणभूत कषाय और प्रमाद की असत्य वचन संज्ञा है तो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि उनका क्रोध, मान, माया व लोभ प्रत्ययों में अन्तर्भाव होने से पुनरुक्ति दोष का प्रसंग आता है।

इसी प्रकार प्राणातिपात भी ज्ञानावरणीय का प्रत्यय नहीं हो सकता, क्योंकि अन्य जीवविषयक प्राण व प्राणिवियोग के कर्मबंध में कारण होने का विरोध है। यदि कहा जाय कि प्राण व प्राणी के वियोग का कारणभूत जीव का परिणाम प्राणातिपात कहा जाता है, सो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि उसका राग, द्वेष एवं मोह प्रत्ययों में अन्तर्भाव होने से पुनरुक्ति दोष का प्रसंग आता है ?

आचार्यदेव उपर्युक्त शंका का परिहार करते हैं —

सत्ता आदि की अपेक्षा सभी कार्यकलाप का कारण से अभेद है, इस नय का अवलंबन करने पर कारण से कार्य अभिन्न है तथा कार्य से कारण भी अभिन्न है, क्योंकि असत् कार्य कभी किया नहीं जा सकता है, नियत उपादान की अपेक्षा की जाती है, किसी एक कारण से सभी कार्य उत्पन्न नहीं हो सकते, समर्थ कारण के द्वारा शक्य कार्य ही किया जाता है तथा असत् कार्य के साथ कारण का संबंध भी नहीं बन सकता है।

‘कारण में कार्य है’ इस विवक्षा से भी कारण से कार्य अभिन्न है। प्रकृत में प्राण व प्राणिवियोग और वचनकलाप चूँकि ज्ञानावरणीय बन्ध के कारणभूत परिणाम से उत्पन्न होते हैं अतएव वे उससे अभिन्न हैं। इसी कारण वे ज्ञानावरणीय बन्ध के प्रत्यय भी सिद्ध होते हैं।

शंका — इस प्रकार का व्यवहार किसलिये किया जाता है ?

समाधान — सुखपूर्वक ज्ञानावरणीय के प्रत्ययों का प्रतिबोध कराने के लिये तथा कार्य के प्रतिषेध द्वारा कारण का प्रतिषेध करने के लिये भी उपर्युक्त व्यवहार किया जाता है।

संप्रति अदत्तादानप्रत्ययप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

अदत्तादानपच्चए॥४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अदत्तस्य आदानं ग्रहणं अदत्तादानं, सः चैव प्रत्ययोऽदत्तादानप्रत्ययः, तस्मिन् अदत्तादानप्रत्ययविषये ज्ञानावरणीयवेदना भवति। अत्रापि 'येन आदीयते अनेन आदीयते इति आदानं' तेन अदत्तपदार्थस्तद्ग्रहणपरिणामश्चादत्तादानं।

न च प्राणातिपात-मृषावाद-अदत्तादानानामन्तरंगाणां क्रोधादिप्रत्ययेषु अन्तर्भावः, कथंचित् तेषां तेभ्यो भेदोपलंभात्। अत्र बाह्यपदार्थानां पूर्वं प्रत्ययत्वं प्ररूपयितव्यं। न च प्रमादेन विना त्रिरत्नसाधनार्थं गृहीतबाह्यार्थो ज्ञानावरणीयप्रत्ययः, प्रत्ययात् अनुत्पन्नस्य प्रत्ययत्वविरोधात्।

संप्रति कर्मवेदनानिमित्तमैथुनप्रत्ययनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

मेहुणपच्चए॥५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — स्त्री-पुरुषविषयव्यापारो मनो-वचन-कायस्वरूपो मैथुनः। तेन मैथुनप्रत्ययेन ज्ञानावरणीयवेदना जायते। अत्रापि अंतरंगमैथुनस्यैव बहिरंगमैथुनस्य आस्रवभावो वक्तव्यः। न च मैथुनं अंतरंगरागे निपतति, तस्मात् कथंचित् एतस्य भेदोपलंभात्।

अब अदत्तादानप्रत्यय का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित करते हैं—

सूत्रार्थ—

अदत्तादानप्रत्यय से ज्ञानावरणीय वेदना होती है॥४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अदत्त अर्थात् नहीं दिये गये पदार्थ का आदान — ग्रहण करना अदत्तादान कहलाता है। वही प्रत्यय अदत्तादानप्रत्यय होता है। उस अदत्तादानप्रत्यय के विषय में ज्ञानावरणीय वेदना होती है। यहाँ भी चूँकि 'जिसके द्वारा ग्रहण किया जाय या जो ग्रहण किया जाय' इस प्रकार आदान शब्द की निरुक्ति की गई है अतएव उससे अदत्त पदार्थ और उसके ग्रहण करने का परिणाम दोनों ही अदत्तादान उहरते हैं। प्राणातिपात, मृषावाद और अदत्तादान इन अन्तरंग प्रत्ययों का क्रोधादिक प्रत्ययों में अन्तर्भाव नहीं हो सकता, क्योंकि उनसे इनका कथंचित् भेद पाया जाता है। यहाँ बाह्य पदार्थों को पूर्वं में प्रत्यय बतलाना चाहिये। इसका कारण यह है कि प्रमाद के बिना रत्नत्रय को सिद्ध करने के लिये ग्रहण किया गया बाह्य पदार्थ ज्ञानावरणीय के बन्ध का प्रत्यय नहीं हो सकता, क्योंकि जो प्रत्यय से उत्पन्न नहीं हुआ है उसे प्रत्यय स्वीकार करना विरुद्ध है।

अब कर्म वेदना के निमित्तभूत मैथुनप्रत्यय का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतीर्ण करते हैं —

सूत्रार्थ—

मैथुनप्रत्यय से ज्ञानावरणीय वेदना होती है॥५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — स्त्री और पुरुष के मन, वचन, कायस्वरूप विषयव्यापार को मैथुन कहा जाता है। उस मैथुनप्रत्यय के द्वारा ज्ञानावरणीय की वेदना होती है। यहाँ पर भी अन्तरंग मैथुन के ही समान बहिरंग मैथुन को भी कारण बतलाना चाहिये। मैथुन अन्तरंग राग में गर्भित नहीं होता क्योंकि उससे इसमें कथंचित् भेद पाया जाता है।

अधुना ज्ञानावरणीयवेदनानिमित्तपरिग्रहप्रत्ययनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

परिग्रहपच्चए॥६॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — परिगृह्यते इति परिग्रहः बाह्यार्थः क्षेत्रादिः, परिगृह्यते अनेनेति वा परिग्रहः बाह्यार्थ-ग्रहणहेतुरात्मपरिग्रहः। एतैः परिग्रहैः ज्ञानावरणीयवेदना समुत्पद्यते। अत्र बहिरंगस्य परिग्रहस्य पूर्वमिव प्रत्ययभावो वक्तव्यः।

संप्रति रात्रिभोजनप्रत्ययनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

रादिभोजनपच्चए॥७॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — भुज्यते इति भोजनमोदनः भुक्तिकारणपरिणामो वा भोजनं। रात्रौ भोजनं रात्रिभोजनं। तेन रात्रिभोजनप्रत्ययेन ज्ञानावरणीयवेदना समुत्पद्यते। येनेदं सूत्रं देशामर्शकं तेनात्र मधु-मांस-पञ्चोदुंबर-निंद्यभोजन-पुष्पभक्षण-सुरापान-अबेलाशनादीनामपि ज्ञानावरणप्रत्ययत्वं प्ररूपयितव्यं। एवमसंयमप्रत्ययः प्ररूपितः।

इतो विस्तरः — प्राणातिपात-मृषावाद-अदत्तादान-मैथुन-परिग्रहाः इमे पञ्च पापानि कथ्यन्ते। इमानि पापानि ज्ञानावरणीयादिकर्मणां बंधकारणानि सन्ति। एतेषां पूर्णतया त्यागः पञ्चमहाव्रतानि भवन्ति

अब ज्ञानावरणीय वेदना के निमित्तभूत परिग्रहप्रत्यय के निरूपण हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

परिग्रहप्रत्यय से ज्ञानावरणीय वेदना होती है॥६॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — “परिगृह्यते इति परिग्रहः” अर्थात् जो ग्रहण किया जाता है। इस निरुक्ति के अनुसार क्षेत्रादिरूप बाह्य पदार्थ परिग्रह कहा जाता है, तथा ‘परिगृह्यते अनेनेति परिग्रहः’ जिसके द्वारा ग्रहण किया जाता है वह परिग्रह है, इस निरुक्ति के अनुसार यहाँ बाह्य पदार्थ के ग्रहण में कारणभूत परिणाम परिग्रह कहा जाता है। इन दोनों प्रकार के परिग्रहों से ज्ञानावरणीय की वेदना उत्पन्न होती है। यहाँ बहिरंग परिग्रह को पहले के समान कारण बतलाना चाहिये।

अब रात्रिभोजनप्रत्यय का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित किया जा रहा है —

सूत्रार्थ —

रात्रिभोजनप्रत्यय से ज्ञानावरणीय वेदना होती है॥७॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — “भुज्यते इति भोजनम्” अर्थात् जो खाया जाता है वह भोजन है, इस व्युत्पत्ति के अनुसार ओदन — भात को भोजन कहा गया है अथवा आहारग्रहण के कारणभूत परिणाम को भी भोजन कहा जाता है। रात्रि में जो भोजन किया जाता है वह रात्रिभोजन है। इस रात्रिभोजनप्रत्यय से ज्ञानावरणीय वेदना उत्पन्न होती है। चूँकि यह सूत्र देशामर्शक है अतः उससे यहाँ मधु, मांस, पाँच उदुम्बर फल, निंद्य भोजन और फूलों के भक्षण, मद्यपान या असामयिक — असमय में भोजन आदि को भी ज्ञानावरणीय का प्रत्यय कहना चाहिए।

इस प्रकार असंयमप्रत्यय की प्ररूपणा की गई।

इसका विस्तार करते हैं — प्राणातिपात (हिंसा), मृषावाद (झूठ बोलना), अदत्तादान (चोरी), मैथुन (कुशील) और परिग्रह ये पाँच पाप कहे गये हैं। ये पाप ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के बंध के कारण हैं। इनका

एकदेशत्यागस्तु अणुव्रतैर्गीयते। रात्रिभोजनत्यागस्तु अणुव्रतनाम्नैव कथ्यते।

श्रीमद्गौतमस्वामिभिः पाक्षिकप्रतिक्रमणायां कथ्यते —

आहावरे छट्टे अणुव्वदे राइभोयणादो वेरमणं से असणं पाणं खाइयं साइयं चेदि चउव्विहो आहारो से तित्तो वा कडुओ वा कसाइलो वा अमिलो वा लवणो वा दुच्चिंतिओ दुब्भासिओ दुप्परिणामिओ दुस्सिमिणिओ रत्तीए भुत्तो भुंजवियो भुज्जिज्जंतो वा समणुमणिणादो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।^१

एवमेव अनेकस्थलेषु 'छट्टं अणुव्वदं राइभोयणादो वेरमणं' इत्यादयः पाठाः सन्ति।

अतएव मुनीनामपि रात्रिभोजनत्यागोऽणुव्रतेनैव गीयते।

एवं द्वितीयस्थले हिंसादि पञ्चपाप-रात्रिभोजनसहितेन कर्मप्रत्ययनिरूपणत्वेन षट् सूत्राणि गतानि।

अधुना कषायप्रत्ययप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं कोह-माण-माया-लोह-राग-दोस-मोह-पेम्पपच्चए।।८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — हृदयदाहाङ्गकंपाक्षिरागेन्द्रियापाटवादिनिमित्तजीवपरिणामः क्रोधः। विज्ञानैश्वर्य-जाति-कुल-तपो-विद्याजनितो जीवपरिणामः औद्धत्यात्मको मानः। स्वहृदयप्रच्छादनार्थमनुष्ठानं माया। बाह्यार्थेषु ममेदं बुद्धिर्लोभः। माया-लोभ-वेदत्रय-हास्य-रतयो रागः। क्रोध-मानारति-शोक-जुगुप्सा-भयानि

पूर्णरूप से त्याग करने से पंच महाव्रत होते हैं और एकदेशत्याग अणुव्रत कहलाता है, किन्तु रात्रिभोजन-त्याग अणुव्रत नाम से ही कहा गया है।

श्रीमान् गौतम गणधर स्वामी ने पाक्षिक प्रतिक्रमण में कहा है —

“रात्रिभोजनत्याग नाम के छठे अणुव्रत में मैंने अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य इन चारों प्रकार के आहार में तित्त, कटुक, कषायला, खट्टा, मीठा, नमकीन आदि को रात्रि में खाने का चिन्तन किया हो, किसी को रात्रि में खाने की प्रेरणा दी हो अथवा अयोग्य आहार किया हो या स्वप्न में मैंने खाया हो, पर को खिलाया या खाने की अनुमति दी हो तो वह सब मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।”

इसी प्रकार अनेक स्थलों पर “छट्टं अणुव्वदं राइभोयणादो वेरमणं” अर्थात् रात्रिभोजनत्याग नाम का छठा अणुव्रत इत्यादि पाठ आये हैं।

इसलिए मुनियों के भी रात्रिभोजनत्याग अणुव्रत रूप से ही माना गया है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में रात्रिभोजन सहित पाँच पापों को कर्मप्रत्यय रूप से निरूपण करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब कषायप्रत्यय की प्ररूपणा करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह और प्रेम प्रत्ययों से ज्ञानावरणीय वेदना होती है।।८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — हृदय दाह, अंगों में कम्पन होना, नेत्रों में लालिमा होना और इन्द्रियों की अपटुता आदि के निमित्तभूत जीव के परिणामों को क्रोध कहते हैं। विज्ञान, ऐश्वर्य, जाति, कुल, तप और विद्या इनके निमित्त से उत्पन्न उद्धतपना रूप जीव का परिणाम मान कहलाता है। अपने हृदय के विचार को

द्वेषः। क्रोध-मान-माया-लोभ-हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्री-पुं-नपुंसकवेद-मिथ्यात्वानां समूहो मोहः।

अत्र कश्चिदाह —

मोहप्रत्ययः क्रोधादिषु प्रविशति इति किन्नावनीयते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नैतद्, अवयव-अवयविनोः व्यतिरेकान्वयस्वरूपयोः अनेकैकसंख्ययोः कारणकार्ययोः एकानेकस्वभाव-योरैकत्वविरोधात्।

प्रियत्वं प्रेम। एतेषु प्रत्येकं प्रत्ययशब्दो योजनीयः, क्रोधप्रत्यये मानप्रत्यये मायाप्रत्यये लोभप्रत्यये रागप्रत्यये द्वेषप्रत्यये मोहप्रत्यये प्रेमप्रत्यये इति। एतैः प्रत्ययैर्ज्ञानावरणीयवेदना समुत्पद्यते।

पुनरपि कश्चिदाशङ्कते —

प्रेमप्रत्ययो लोभ-रागप्रत्यययोः प्रविशतीति पुनरुक्तदोषः किन्न जायते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

न जायते, तेभ्यः एतस्य कथंचिद् भेदोपलंभात्। तद्यथा —

बाह्यार्थेषु ममेदं भावो लोभः। न सः प्रेम, ममेदं बुद्ध्या अपरिगृहीतेऽपि द्राक्षाफले परदारे वा प्रेमोपलंभात्। न रागः प्रेम, माया-लोभ-हास्य-रति-प्रेमसमूहस्य रागस्य अवयविनः अवयवस्वरूपप्रेमत्वविरोधात्।

छुपाने की जो चेष्टा की जाती है उसे माया कहते हैं। बाह्य पदार्थों में जो 'यह मेरा है' इस प्रकार की जो बुद्धि होती है उसे लोभ कहा जाता है। माया, लोभ, तीन वेद, हास्य और रति इनका नाम राग है। क्रोध, मान, अरति, शोक, जुगुप्सा और भय इनको द्वेष कहा जाता है। क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेद और मिथ्यात्व इनके समूह का नाम मोह है।

यहाँ कोई शंका करता है —

मोह प्रत्यय चूँकि क्रोधादिक में प्रविष्ट है अतएव उसे कम क्यों नहीं किया जाता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं —

ऐसा नहीं है, क्योंकि क्रमशः व्यतिरेक व अन्वयस्वरूप अनेक व एक संख्या वाले, कारण व कार्यरूप तथा एक व अनेक स्वभाव से संयुक्त अवयव और अवयवी के एक होने का विरोध है। प्रियता का नाम प्रेम है। इनमें से प्रत्येक में प्रत्यय शब्द को जोड़ना चाहिये — क्रोधप्रत्यय, मानप्रत्यय, मायाप्रत्यय, लोभप्रत्यय, रागप्रत्यय, द्वेषप्रत्यय, मोहप्रत्यय और प्रेमप्रत्यय इनके द्वारा ज्ञानावरणीय की वेदना उत्पन्न होती है।

यहाँ पुनः कोई शंका करता है —

चूँकि प्रेमप्रत्यय लोभ व राग दोनों प्रत्ययों में प्रविष्ट होता है अतः वह पुनरुक्त क्यों नहीं होगा ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं —

ऐसा नहीं है, क्योंकि उनसे इसका कथंचित् भेद पाया जाता है। वह इस प्रकार से है — बाह्य पदार्थों में 'यह मेरा है' इस प्रकार के भाव को लोभ कहा जाता है। वह प्रेम नहीं हो सकता, क्योंकि 'यह मेरा है' ऐसी बुद्धि के अविषयभूत भी द्राक्षाफल अथवा परस्त्री के विषय में प्रेम पाया जाता है। राग भी प्रेम नहीं हो सकता, क्योंकि माया, लोभ, हास्य, रति और प्रेम के समूहरूप अवयवी कहलाने वाले राग के अवयवस्वरूप प्रेम रूप होने का विरोध है।

संप्रति निदानप्रत्ययरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

णिदाणपच्चए।।९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — चक्रवर्ति-बलदेव-नारायण-श्रेष्ठि-सेनापतिपदादिप्रार्थनं निदानं। सः प्रत्ययः, प्रमादमूलत्वान्मिथ्यात्वाविनाभावाद्वा। तेन ज्ञानावरणीयवेदना संपद्यते। न चैषः प्रत्ययो मिथ्यात्वप्रत्यये प्रविशति, मिथ्यात्वसहचारिणो मिथ्यात्वेन एकत्वविरोधात्। न प्रेमप्रत्यये प्रविशति, संपत्ति-असंपत्तिविषये प्रेम्णि संपद्विषये निदानस्य प्रवेशविरोधात्।

निदान प्रत्ययरूपणायै किमर्थं पृथक्सूत्रारंभः ?

मिथ्यात्व-क्रोध-मान-माया-लोभ-राग-द्वेष-मोह-प्रेमादिमूलोऽनन्तसंसारकारणो निदानप्रत्यय इति ज्ञापनार्थं पृथक् सूत्रारंभः कृतः।

अधुना अभ्याख्यानादिप्रत्ययज्ञानावरणवेदनाप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

अब्भक्खाण-कलह-पेसुण्ण-रइ-अरइ-उवहि-णियदि-माण-माय-मोस-मिच्छणाण-मिच्छदंसण-पओअपच्चए।।१०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — क्रोध-मान-माया-लोभादिभिः परेष्वविद्यमानदोषोद्भावनमभ्याख्यानम्। क्रोधादिवशादसि-दण्डासभ्यवचनादिभिः परसन्तापजननं कलहः। परेषां क्रोधादिना दोषोद्भावनं पैशुन्यं।

अब निदानप्रत्यय का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतीर्ण किया जा रहा है —

सूत्रार्थ—

निदानप्रत्यय से ज्ञानावरणीय वेदना होती है।।९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, श्रेष्ठी और सेनापति आदि पदों की प्रार्थना अर्थात् अभिलाषा करना निदान है। वह प्रमादमूलक अथवा मिथ्यात्व का अविनाभावी होने से प्रत्यय है। उससे ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना उत्पन्न होती है। यह प्रत्यय मिथ्यात्वप्रत्यय में प्रविष्ट नहीं होता, क्योंकि वह मिथ्यात्व का सहचारी (अविनाभावी) है अतः मिथ्यात्व के साथ उसकी एकता का विरोध है। वह प्रेमप्रत्यय में भी प्रविष्ट नहीं होता, क्योंकि प्रेम सम्पत्ति एवं असंपत्ति दोनों को विषय करने वाला है परन्तु निदान केवल संपत्ति को ही विषय करता है, अतएव उसका प्रेम में प्रविष्ट होना विरुद्ध है।

शंका—निदानप्रत्यय की प्ररूपणा के लिये पृथक् सूत्र किसलिये रचा गया है ?

समाधान—मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह और प्रेम आदि के निमित्त से होने वाला निदानप्रत्यय अनन्त संसार का कारण है, यह बतलाने के लिये पृथक् सूत्र की रचना की गई है।

अब अभ्याख्यान आदि प्रत्ययरूप ज्ञानावरण वेदना का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ—

अभ्याख्यान, कलह, पैशून्य, रति, अरति, उपधि, निकृति, मान, माया, मोष, मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन और प्रयोग इन प्रत्ययों से ज्ञानावरणीय वेदना होती है।।१०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — क्रोध, मान, माया और लोभ आदि के कारण दूसरों में अविद्यमान दोषों को प्रगट करना अभ्याख्यान कहा जाता है। क्रोधादि के वश होकर तलवार, लाठी और असभ्य वचनादि के

नष्ट-पुत्रकलत्रादिषु रमणं रतिः। तत्प्रतिपक्षा अरतिः। उपेत्य क्रोधादयो धीयन्ते अस्मिन्निति उपधिः, क्रोधाद्युत्पत्ति निबन्धनो बाह्यार्थ उपधिः। सोऽपि ज्ञानावरणीयबन्धनिबन्धनः, तेन विना कषायाभावतो बन्धाभावात्। निवृत्तिर्वञ्चना, मणि-सुवर्ण-रूप्याभासदानतो द्रव्यान्तरादानं निवृत्तिरित्यर्थः। मानं प्रस्थादिः हीनाधिकभावमापन्नः। सोऽपि कूटव्यवहारहेतुत्वाद् ज्ञानावरणीयस्य प्रत्ययः। मेयो यव-गोधूमादिः। सोऽपि ज्ञानावरणीयस्य प्रत्ययः, मातुरसद्व्यवहारस्य निबन्धनत्वात्।

कथं मेयस्य मायत्वं ?

नैष दोषः, प्राकृतव्याकरणेन निरूपितत्वात्।

उक्तं च —

एए छच्च समाणा, दोणिण य संझक्खरा सरा अट्ठ।

अण्णोण्णस्स परोप्परमुवेंति सव्वे समावेसं^१॥

अ आ इ ई उ ऊ स्वराः षट् समानाः ए ओ इति द्वौ सन्ध्यक्षरौ इमे अष्टौ स्वराः परस्परं आदेशं प्राप्नुवन्ति। इत्यनेन सूत्रेण प्राकृते एकारस्य आकारविधानात्।

मोषस्तेयः। न मोषः अदत्तादाने प्रविशति, हृत-पतित-प्रमुक्त-निहितादानविषये अदत्तादाने एतस्य प्रवेशविरोधात्। बौद्ध-नैयायिक-सांख्य-मीमांसक-चार्वाक-वैशेषिकादिदर्शनरुच्यनुबद्धं ज्ञानं मिथ्याज्ञानं। मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वं च मिथ्यादर्शनं। मनो-वचन-काययोगाः प्रयोगः। एतैः सर्वैः ज्ञानावरणीयवेदना

द्वारा दूसरों को सन्ताप उत्पन्न करना कलह कहलाता है। क्रोधादि के कारण दूसरों के दोषों को प्रगट करना पैशून्य है। नाती, पोते, पुत्र एवं स्त्री आदिकों में रमण करने का नाम रति है। इसकी प्रतिपक्षभूत अरति कही जाती है। “उपेत्य क्रोधादयो धीयन्त अस्मिन् इति उपधिः” अर्थात् आकर के क्रोधादिक जहाँ पर पुष्ट होते हैं उसका नाम उपधि है, इस निरुक्ति के अनुसार क्रोधादि परिणामों की उत्पत्ति में निमित्तभूत बाह्य पदार्थ को उपधि कहा गया है। वह भी ज्ञानावरणीय कर्म के बन्ध का कारण है, क्योंकि उसके बिना कषायरूप परिणाम का अभाव होने से बन्ध नहीं हो सकता। निवृत्ति का अर्थ धोखा देना है, अभिप्राय यह है कि नकली मणि, सुवर्ण, चाँदी देकर द्रव्यान्तर को प्राप्त करना निवृत्ति कही जाती है। हीनता व अधिकता को प्राप्त प्रस्थ (एक प्रकार का माप) आदि मान कहलाते हैं। वे भी कूट अर्थात् असत्य व्यवहार के कारण होने से ज्ञानावरणीय के प्रत्यय हैं। मापने के योग्य जौ और गेहूँ आदि मेय कहे जाते हैं। वे भी ज्ञानावरणीय के प्रत्यय हैं, क्योंकि वे मापने वाले के असत्य व्यवहार के कारण हैं।

शंका—मेय के स्थान में माय शब्द का प्रयोग कैसे दिया गया है ?

समाधान—‘यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि प्राकृत व्याकरण में इसका निरूपण है।

कहा भी है—

गाथार्थ—अ, आ, इ, ई, उ और ऊ, ये छह समान स्वर और ए-ओ ये दो सन्ध्यक्षर, इस प्रकार ये आठ स्वर परस्पर आदेश को प्राप्त होते हैं॥

इस सूत्र से प्राकृत में एकार के स्थान में आकार किया गया है।

मोष का अर्थ चोरी है। यह मोष अदत्तादान में प्रवेश नहीं करता है, क्योंकि हृत, पतित, प्रमुक्त और निहित पदार्थ के ग्रहणविषयक अदत्तादान में इसके प्रवेश का विरोध है। बौद्ध, नैयायिक, सांख्य, मीमांसक, चार्वाक और वैशेषिक आदि दर्शनों की रुचि से संबद्ध ज्ञान मिथ्याज्ञान कहलाता है। मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व

समुत्पद्यते। क्रोध-मान-माया-लोभ-राग-द्वेष-मोह-प्रेम-निदान-अभ्याख्यान-कलह-पैशून्य-रति-अरति-उपधि-निकृति-मान-माया-मोषैः कषायप्रत्ययः प्ररूपितः। मिथ्याज्ञान-मिथ्यादर्शनाभ्यां मिथ्यात्वप्रत्ययो निर्दिष्टः। प्रयोगेन योगप्रत्ययः प्ररूपितः।

अत्र कश्चिदाह —

प्रमादप्रत्ययः किन्नोक्तः ?

आचार्यः समाधत्ते —

एतेभ्यो बाह्यप्रमादानुपलंभात्।

कथमेकं कार्यमनेकेभ्य उत्पद्यते ?

नैतद, एकस्मात् कुम्भकारादुत्पन्नघटस्य अन्यस्मादपि उत्पत्तिदर्शनात्।

पुनरप्याह —

पुरुषं प्रति पृथक् पृथगुत्पद्यमानाः कुम्भोदंचनसरावादयो दृश्यन्ते इति चेत् ?

आचार्यः प्राह —

न, अत्रापि क्रमभाविक्रोधादिभ्यः उत्पद्यमानज्ञानावरणीयस्य द्रव्यादिभेदेन भेदोपलंभात्।

पुनः कश्चिदाशङ्कते —

ज्ञानावरणीयसमानत्वेन तदेकं चेत् ?

हैं, ये दोनों ही मिथ्यात्व हैं, उन्हीं को मिथ्यादर्शन कहा जाता है। मन, वचन एवं कायरूप योगों को प्रयोग शब्द से ग्रहण किया गया है। इन सभी से ज्ञानावरणीय की वेदना उत्पन्न होती है। क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह, प्रेम, निदान, अभ्याख्यान, कलह, पैशून्य, रति, अरति, उपधि, निकृति, मान, माया और मोष, इनसे कषायप्रत्यय की प्ररूपणा की गई है। मिथ्याज्ञान और मिथ्यादर्शन से मिथ्यात्वप्रत्यय की प्ररूपणा की गई है। प्रयोग शब्द से योगप्रत्यय की प्ररूपणा की गई है।

यहाँ कोई शंका करता है —

यहाँ प्रमादप्रत्यय क्यों नहीं बतलाया गया है ?

आचार्य इसका समाधान करते हैं —

क्योंकि इन प्रत्ययों से बाह्य प्रमादप्रत्यय पाया नहीं जाता है।

शंका — एक कार्य अनेक कारणों से कैसे उत्पन्न होता है ?

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि एक कुम्भकार से उत्पन्न किये जाने वाले घट की उत्पत्ति अन्य कारणों से भी देखी जाती है।

पुनः कोई कहता है —

पुरुष भेद से पृथक्-पृथक् उत्पन्न होने वाले कुंभ, उदंचन व शराव (सकोरा) आदि भिन्न कार्य देखे जाते हैं ?

इसके उत्तर में आचार्य कहते हैं —

ऐसा नहीं कहना, क्योंकि यहाँ भी क्रमभावी को — क्रम से होने वाले क्रोधादिकों से उत्पन्न होने वाले ज्ञानावरणीय कर्म का द्रव्यादिक के भेद से भेद पाया जाता है।

पुनः कोई शंका करता है —

ज्ञानावरणीयपने की समानता होने से क्या वह अनेक भेदरूप होकर भी एक ही है ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

न, बहुभ्यः समुत्पद्यमानघटानामपि घटभावेन एकत्वोपलंभात्।

पुनः शिष्यः कथयति —

भवतु नाम, ज्ञानावरणीयस्य एते प्रत्ययाः नैगमव्यवहारनययोः, न संग्रहनयापेक्षया, तत्र उपसंहरिताशेष-कार्यकारणकलापे कारणभेदानुपपत्तेः ?

आचार्यदेवः उत्तरयति —

नैतद् वक्तव्यं, संग्रहनये प्रधानीकृते संगृहीताशेषविशेषे कार्यकारणभेदोपपत्तेः।

अधुना शेषकर्मणां प्रत्ययनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं सत्तण्णं कम्माणं।।११।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यथा ज्ञानावरणीयस्य प्रत्ययप्ररूपणा कृता तथा शेषसप्तानामपि कर्मणां प्रत्ययप्ररूपणा कर्तव्या, विशेषाभावात्।

कश्चित् शिष्य पृच्छति —

मिथ्यात्व-असंयम-कषाय-योगप्रत्ययैः परिणतजीवेन सह एकावगाहनायां स्थितकार्मणवर्गणायां पुद्गलस्कंधा एकस्वरूपाः कथं जीवसंबंधेन अष्टभेदमापद्यन्ते ?

आचार्यदेवः उत्तरयति —

आचार्यदेव इसके उत्तर में कहते हैं कि —

ऐसा नहीं है, क्योंकि इस प्रकार यहाँ भी बहुतों के द्वारा उत्पन्न किये जाने वाले घटों में भी घटत्व रूप से अभेद पाया जाता है।

पुनः शिष्य शंका करता है —

नैगम और व्यवहारनय की अपेक्षा से भले ही ज्ञानावरणीय के प्रत्यय हों, परन्तु संग्रह नय की अपेक्षा से उसके प्रत्यय नहीं हो सकते, क्योंकि उसमें समस्त कार्य-कारण समूह का उपसंहार होने से कारणभेद बन नहीं सकता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं —

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि संग्रहनय को प्रधान करने पर समस्त विशेषों का संग्रह होते हुए भी कार्य-कारण भेद बन जाता है।

अब शेष कर्मों के प्रत्ययों का निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है —

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार शेष सात कर्मों में भी प्रत्ययों की प्ररूपणा करनी चाहिए।।११।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के प्रत्ययों की प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार शेष सात कर्मों के भी प्रत्ययों की प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि उनमें और कोई विशेषता नहीं है।

यहाँ कोई शिष्य प्रश्न पूछता है कि —

मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग प्रत्ययों से परिणत जीव के साथ एक अवगाहना में स्थित कार्मण वर्गणा के पौद्गलिक स्कंध एक स्वरूप होते हुए जीव के संबंध से आठ भेद को कैसे प्राप्त होते हैं ?

आचार्यदेव इसका उत्तर देते हैं —

नैतदाशंकनीयं, मिथ्यात्व-असंयम-कषाय-योगप्रत्ययावष्टंभबलेन समुत्पन्नाष्टशक्तिसंयुक्तजीवसंबंधेन कार्मणपुद्गलस्कंधानां अष्टकर्माधारेण परिणमनं प्रति विरोधाभावात्।

तात्पर्यमेतत् — क्रोधमानमायालोभ-रागद्वेषमोहप्रेमप्रत्ययाः कषायप्रत्ययाः ज्ञातव्याः। ततश्च “णिदाणपच्चए” सूत्रेण मिथ्यात्व-क्रोधादिनिमित्तेन निदानप्रत्ययेन अनंतसंसारो भवतीति निरूपितं। पुनश्च ‘अब्भक्खाण’ इत्यादि सूत्रेण मिथ्यात्वयोगप्रत्ययौ निरूपितौ स्तः। अनंतरं सप्तकर्मणामपि इमे एव प्रत्यया भवन्तीति ज्ञापनार्थं ‘एवं सत्तण्हं कम्माणं’ सूत्रमागतमस्ति इति ज्ञात्वा स्वाध्यायोपार्जितसम्यग्ज्ञानवैराग्य-भावनाबलेन इमान् प्रत्ययान् शनैः शनैः हासयित्वा स्वात्मभावनाबलेन स्वात्मानंदं अनुभवन् सन् निजात्मशक्तिर्वर्धनीया भव्यवरपुण्डरीकैः इति।

एवं तृतीयस्थले कषायमिथ्यात्वयोगप्रत्ययनिरूपकाणि चत्वारि सूत्राणि गतानि।

अधुना प्रकृतिप्रदेशनिमित्तोत्पन्नज्ञानावरणीयवेदनायां नयविवक्षाप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

उज्जुसुदस्स णाणावरणीयवेयणा जोगपच्चए पयडिपदेसगं॥१२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — प्रकृतिप्रदेशाग्रस्वरूपोत्पन्नज्ञानावरणीयवेदना ‘जोगपच्चए’ योगप्रत्ययेन भवति, किं च अस्मिन् सूत्रे ‘पयडिपदेसगं’ यत्कथितं तत् क्रियाविशेषत्वेन अभ्युपगतमिति ज्ञातव्यं।

अत्र शिष्य आशङ्कते —

ऐसी शंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगरूप प्रत्ययों के आश्रय से उत्पन्न हुई आठ शक्तियों से संयुक्त जीव के संबंध से कार्मण पुद्गल स्कन्धों का आठ कर्मों के आकार से परिणमन होने में कोई विरोध नहीं है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह, प्रेम ये प्रत्यय कषायप्रत्यय जानना चाहिए। “णिदाणपच्चए” इस सूत्र से मिथ्यात्व-क्रोध आदि के निमित्त से निदानप्रत्यय के द्वारा अनंत संसार बनता है ऐसा निरूपण किया गया है। पुनश्च “अब्भक्खाण” इत्यादि सूत्र से मिथ्यात्व और योग ये दो प्रत्यय कहे हैं। अनंतर सात कर्मों के भी ये प्रत्यय होते हैं ऐसा बतलाने हेतु “एवं सत्तण्हं कम्माणं” सूत्र आया है यह जानकर स्वाध्याय के द्वारा उत्पन्न हुए सम्यग्ज्ञान और वैराग्य भावना के बल से इन प्रत्ययों को धीरे-धीरे नष्ट करके निजात्म भावना के बल से आत्मा के आनंद का अनुभव करते हुए भव्यात्माओं को अपनी आत्मशक्ति को वृद्धिगंत करना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में कषाय मिथ्यात्व योग प्रत्ययों के निरूपक चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब प्रकृति एवं प्रदेशबंध के निमित्त से उत्पन्न ज्ञानावरणीय वेदना में नयविवक्षा का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना योगप्रत्यय से प्रकृति व प्रदेशाग्ररूप होती है॥१२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — प्रकृति व प्रदेशाग्रस्वरूप से उत्पन्न ज्ञानावरणीय की वेदना योगप्रत्यय के विषय में अर्थात् योगप्रत्यय से होती है, क्योंकि ‘पयडि-पदेसगं’ इस पद को सूत्र में क्रियाविशेषण रूप स्वीकार किया गया है, ऐसा जानना चाहिए।

यहाँ कोई शिष्य आशंका करता है —

न च योगानां वृद्धिं हानिं वा मुक्त्वा अन्येभ्यः कारणेभ्यः ज्ञानावरणीयप्रदेशाग्रस्य वृद्धिं हानिं वा न पश्यामः। तस्मात् ज्ञानावरणीयप्रदेशाग्रवेदना योगप्रत्ययेन भवतु नाम, न प्रकृतिवेदनायोगप्रत्ययेन भवति, तस्मात् तस्या वृद्धिहान्योरनुपलंभात् इति चेत्?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नैतदाशंकनीयं, योगेन विना ज्ञानावरणीयप्रकृतेः प्रादुर्भावादर्शनात्। श्रीवीरसेनाचार्यः कथयति-
“जेण विणा जं णियमेण णोवलब्भदे तं तस्स कज्जमियरं च कारणमिदि सयलणइयाइयजणप्पसिद्धं।’
तस्मात् प्रदेशाग्रवेदना इव प्रकृतिवेदनापि योगप्रत्ययेनेति सिद्धम्।

संप्रति स्थित्यनुभागवेदना कषायप्रत्ययेनेति निरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

कषायपच्यए द्विदि-अणुभागवेयणा।।१३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ज्ञानावरणीयस्थितिवेदना अनुभागवेदना च कषायप्रत्ययेन भवति, कषायवृद्धि-हानिभ्यां स्थिति-अनुभागयोर्वृद्धिहानिदर्शनात्। न प्राणातिपात-मृषावाद-अदत्तादान-मैथुन-परिग्रह-रात्रिभोजन-प्रत्ययैर्ज्ञानावरणीयं बध्यते, तेन विनापि अप्रमत्तसंयतादिषु बंधोपलंभात्। न क्रोध-मान-माया-लोभैर्बध्यते, कर्मोदयजातानां तेषामुदयविरहितकाले तद्बंधोपलंभात्। न निदान-अभ्याख्यान-कलह-पैशुन्य-अरति-उपधि-निकृति-मान-माया-मोष-मिथ्याज्ञान-मिथ्यादर्शनैर्बध्यते, तैर्विनापि सूक्ष्मसांपरायिकसंयतेषु

चूँकि योगों की वृद्धि अथवा हानि को छोड़कर अन्य कारणों से ज्ञानावरणीय के प्रदेशाग्र की वृद्धि अथवा हानि नहीं देखी जाती है अतएव ज्ञानावरणीय की प्रदेशाग्रवेदना भले ही योगप्रत्यय से हो, परन्तु उसकी प्रकृतिवेदना योगप्रत्यय से नहीं हो सकती, क्योंकि उससे इसकी प्रकृति वेदना की वृद्धि व हानि नहीं पायी जाती है ?

आचार्य इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि—

ऐसी शंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि योग के बिना ज्ञानावरणीय की प्रकृति वेदना का प्रादुर्भाव नहीं देखा जाता।

श्री वीरसेनाचार्य ने भी कहा है—जिसके बिना जो नियम से नहीं पाया जाता है वह उसका कार्य व दूसरा कारण होता है, ऐसा समस्त नैयायिकजनों में प्रसिद्ध है। इस कारण प्रदेशाग्रवेदना के समान प्रकृतिवेदना भी योगप्रत्यय से होती है, यह सिद्ध है।

अब स्थिति-अनुभाग की वेदना कषायप्रत्यय से होती है यह निरूपण करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है—
सूत्रार्थ—

कषायप्रत्यय से स्थिति व अनुभाग वेदना होती है।।१३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ज्ञानावरणीय कर्म की स्थितिवेदना और अनुभागवेदना कषायप्रत्यय से होती है, क्योंकि कषाय की वृद्धि और हानि से स्थिति व अनुभाग की वृद्धि व हानि देखी जाती है। प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह और रात्रिभोजन प्रत्ययों से ज्ञानावरणीय का बंध नहीं होता है, क्योंकि उसके बिना भी अप्रमत्त संयतादिकों में उसका बंध पाया जाता है। क्रोध, मान, माया व लोभ से भी उसका बंध नहीं होता, क्योंकि कर्म के उदय से होने वाले उक्त क्रोधादिकों के उदय से रहित काल में भी उसका बंध पाया जाता है। निदान, अभ्याख्यान, कलह, पैशुन्य, अरति, उपधि, निकृति, मान, माया, मोष, मिथ्याज्ञान और मिथ्यादर्शन इनसे भी उसका बंध नहीं होता, क्योंकि उसके बिना भी सूक्ष्म साम्परायिक संयतों में उसका बंध

तद्वन्धोपलंभात्। किं च —

“यद् यस्मिन् सत्येव भवति नासति तत्तस्य कारणमिति न्यायात्”। तस्मात् ज्ञानावरणीयवेदना योगकषायाभ्यां चैव भवतीति सिद्धम्।

उक्तं च — “जोगा पयडि-पदेसे द्विदि-अणुभागे कसायदो कुणदि”।।”

अत्र कश्चित् पृच्छति —

यद्येवं तर्हि द्रव्यार्थिकनयेषु पूर्वोक्तेषु त्रिष्वपि प्राणातिपातादीनां प्रत्ययत्वं कथं युज्यते ?

आचार्यदेव उत्तरयति —

नैतत्, तेषु सत्सु ज्ञानावरणीयबन्धोपलंभात्। नावश्यं कारणानि कार्यवन्ति भवन्ति, कुम्भमकुर्वत्यपि कुम्भकारे कुम्भकारव्यवहारोपलंभात्। न च पर्यायभेदेन वस्तुनो भेदः, तद्व्यतिरिक्तपर्यायाभावात् सकललोक-व्यवहारोच्छेदप्रसंगाच्च। ‘न्यायश्चर्च्यते लोकव्यवहारप्रसिद्धयर्थं, न तद्वहिर्भूतो न्यायः, तस्य न्यायाभासत्वात्।’ ततस्तत्र तेषां कारणत्वं युज्यते इति।

अत्रापि सप्तकर्मणां चतुर्विधबन्धस्य मूलप्रत्ययप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं सत्तण्णं कम्माणं।।१४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सर्वेषां कर्मणां स्थिति-अनुभाग-प्रकृति-प्रदेशभेदेन बन्धश्चतुर्विधश्चैव। तत्र

पाया जाता है। कहा भी है —

जो जिसके होने पर ही होता है और जिसके न होने पर नहीं होता है वह उसका कारण होता है, ऐसा न्याय है। इसी कारण ज्ञानावरणीय वेदना योग और कषाय से ही होती है, यह सिद्ध होता है। कहा भी है —

“योग से प्रकृति व प्रदेश बन्ध तथा कषाय से स्थिति व अनुभाग का बन्ध होता है।”

यहाँ कोई शंका करता है —

यदि ऐसा है तो पूर्वोक्त तीनों ही द्रव्यार्थिक नयों की अपेक्षा प्राणातिपातादिकों को प्रत्यय बतलाना कैसे उचित है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं —

ऐसा नहीं है, क्योंकि उनके होने पर ज्ञानावरणीय का बन्ध पाया जाता है। कारण कार्य वाले अवश्य हों, ऐसा संभव नहीं है, क्योंकि घट को न करने वाले भी कुम्भकार के कुम्भकार शब्द का व्यवहार पाया जाता है। दूसरे पर्याय के भेद से वस्तु का भेद नहीं होता है, क्योंकि वस्तु से भिन्न पर्याय का अभाव है तथा इस प्रकार से समस्त लोकव्यवहार के नष्ट होने का भी प्रसंग आता है। न्याय की चर्चा लोकव्यवहार की प्रसिद्धि के लिए ही की जाती है। लोकव्यवहार के बहिर्गत न्याय नहीं होता है किन्तु वह केवल न्यायाभास ही है इसीलिए उक्त प्राणातिपातादिकों को प्रत्यय बतलाना ठीक ही है।

यहाँ भी सातों कर्मों के चारों प्रकार के बन्ध के मूल प्रत्यय बतलाने हेतु सूत्र का अवतार किया जाता है — सूत्रार्थ —

जिस प्रकार ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय के प्रत्ययों की प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार शेष सात कर्मों के प्रत्ययों की भी प्ररूपणा करनी चाहिए।।१४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सभी कर्मों की स्थिति, अनुभाग, प्रकृति और प्रदेश के भेद से सर्व कर्मों

प्रकृतिप्रदेशौ योगात् स्थिति-अनुभागौ कषायादिति सप्तानामपि कर्मणां द्वौ चैव प्रत्ययौ भवतः।

अत्र शिष्यः पृच्छति —

कथं द्वौ एव प्रत्ययौ अष्टानां कर्मणां द्वात्रिंशद्भेदानां प्रकृति-स्थिति-अनुभाग-प्रदेशबन्धानां कारणत्वं प्रतिपद्यन्ते। अत्र अष्टविधकर्मणां प्रकृतिआदिचतुर्विधबन्धैः गुणितानां द्वात्रिंशद्भेदा ज्ञातव्या भवन्ति तेषां द्वावेव कारणत्वं कथमिति चेत् ?

आचार्यश्रीवीरसेनगुरुः उत्तरयति —

नैतद् वक्तव्यं, किं च — अशुद्धपर्यायार्थिकरूपे ऋजुसूत्रनये अनन्तशक्तिसंयुक्तैकद्रव्यास्तित्वं प्रति विरोधाभावात्।

पुनः कश्चिदाह —

वर्तमानकालविषयक-ऋजुसूत्रनयविषयवस्तुनो द्रवणाभावात् न तत्र द्रव्यमिति ज्ञानावरणीयवेदना नास्तीति चेत् ?

आचार्यः प्राह —

नैतद्, वर्तमानकालस्य व्यञ्जनपर्यायान् प्रतीत्य अवस्थितस्य स्वकाशेषावयवानां गतस्य द्रव्यत्वं प्रति विरोधाभावात्। अर्पितपर्यायेण वर्तमानत्वमापन्नस्य वस्तुनोऽनर्पितपर्यायेषु द्रवणविरोधाभावात् वा अस्ति ऋजुसूत्रनयविषये द्रव्यमिति।

एवं चतुर्थस्थले ऋजुसूत्रनयापेक्षया ज्ञानावरणीयवेदनाकथनरूपेण सूत्रत्रयं गतम्।

का बन्ध चार प्रकार का ही है। उनमें प्रकृति और प्रदेशबन्ध योग से तथा स्थिति और अनुभागबन्ध कषाय से होते हैं, इस प्रकार सातों ही कर्मों के दो ही प्रत्यय होते हैं।

यहाँ शिष्य पूछता है—

उक्त दो ही प्रत्यय आठ कर्मों के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशरूप बत्तीस बंधों की कारणता को कैसे प्राप्त हो सकते हैं ? यहाँ आठ प्रकार के कर्मों का प्रकृति आदि चार प्रकार के बन्ध से गुणित के बत्तीस भेद जानना चाहिए, तब उनके दो ही कारण कैसे हैं ?

आचार्य श्री वीरसेन गुरुदेव ने इसका उत्तर देते हुए कहा है कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि अशुद्ध पर्यायार्थिकरूप ऋजुसूत्र नय में अनन्तशक्तियुक्त एक द्रव्य के अस्तित्व में कोई विरोध नहीं आता है।

पुनः कोई शंका करता है—

वर्तमानकालविषयक ऋजुसूत्रनय की विषयभूत वस्तु का द्रवण नहीं होने से चूँकि उसका विषय द्रव्य हो नहीं सकता, अतः ज्ञानावरणीय वेदना उसका विषय नहीं है ?

ऐसा पूछने पर आचार्य उत्तर देते हैं कि—

ऐसा नहीं है, क्योंकि वर्तमान काल व्यञ्जन पर्यायों का आलम्बन करके अवस्थित है एवं अपने समस्त अवयवों को प्राप्त है अतः उसके द्रव्य होने में कोई विरोध नहीं है अथवा विवक्षित पर्याय से वर्तमानपने को प्राप्त वस्तु की अविवक्षित पर्यायों में द्रवण का विरोध न होने से ऋजुसूत्रनय के विषय में द्रव्य संभव ही है।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा ज्ञानावरणीयवेदना के कथनरूप से तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अधुना शब्दनयापेक्षया ज्ञानावरणीयादिवेदनानिरूपणार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

सद्गणयस्स अवक्तव्वं॥१५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — शब्दनयापेक्षया ज्ञानावरणीयवेदनायाः कथनमवक्तव्यमस्ति, किं च — तत्र नये समासाभावात्।

अत्र कश्चित् शिष्यः पृच्छति —

पदानां समासो नाम, किमर्थगतः पदगतः तदुभयगतो वा ?

आचार्यदेवः उत्तरयति —

न तावदर्थगतः, द्वयोः पदयोरर्थानामेकत्वाभावात्। न तावत् द्वयोः पदयोरर्थानामेकत्वं, तस्य आधाराभावात्। न तावत् पूर्वपदमाधारः, उत्तरपदोच्चारणस्य विफलत्वप्रसंगात्। नोत्तरपदमपि, पूर्वपदोच्चारणस्य निष्फलत्व-प्रसंगात्। न द्वावपि पदौ आधारौ, एकस्य निरवयवस्य अर्थस्य द्वयोरवस्थान-विरुद्धत्वात्। न च द्वयोरपि अर्थयोरेकत्वमापन्नयोः समासोऽपि अस्ति, द्वित्वेन — द्विभावेन विना समासविरोधात्।

अधुना द्वितीयपक्षस्य निराकरणं क्रियते —

पदगतोऽपि समासो न संभवति, द्वयोरपि पदयोः एकत्वमापन्नयोः द्वयोः पदयोः असवर्णप्रसंगात्। न चैवं, द्वाभ्यां व्यतिरिक्ततृतीयैकपदानामनुपलंभात्। उपलंभे वा न सः समासः, द्विभावेन विना समासविरोधात्।

अब शब्दनय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय आदि वेदनाओं का निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

शब्दनय की अपेक्षा अवक्तव्य है॥१५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सूत्र का अभिप्राय यह है कि शब्दनय की अपेक्षा से ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना का कथन अवक्तव्य है, क्योंकि उस नय में समास का अभाव है।

यहाँ कोई शिष्य पूछता है कि —

पदों का जो समास होता है वह क्या अर्थगत है, पदगत है अथवा तदुभयगत है ?

आचार्यदेव इसका उत्तर देते हैं कि —

अर्थगत तो हो नहीं सकता है, क्योंकि दो पदों के अर्थों में एकता संभव नहीं है। दो पदों के अर्थ में एकता इसलिए संभव नहीं है कि उसके आधार का अभाव है, तो क्या उसका पूर्व पद आधार है अथवा उत्तर पद। पूर्व पद तो आधार हो नहीं सकता, क्योंकि वैसा होने पर उत्तर पद का उच्चारण निष्फल ठहरता है। उत्तर पद भी आधार नहीं हो सकता, क्योंकि इस प्रकार से पूर्वपद का उच्चारण व्यर्थ ठहरता है। दोनों पद भी आधार नहीं हो सकते, क्योंकि निरवयव एक अर्थ का दो में अवस्थान विरुद्ध है। यदि कहा जाये कि एकता को प्राप्त हुए दो अर्थों में समास हो सकता है, सो यह भी संभव नहीं है, क्योंकि द्वित्व के बिना समास का विरोध है।

अब द्वितीयपक्ष का निराकरण करते हैं —

पदगत द्वितीय पक्ष समास भी संभव नहीं है, क्योंकि दोनों पदों के एकता को प्राप्त होने पर दोनों पदों के असवर्णता का प्रसंग आता है। परन्तु ऐसा हो नहीं सकता, क्योंकि दो पदों को छोड़कर कोई तृतीय एक पद पाया नहीं जाता। अथवा यदि पाया जाता है तो वह समास नहीं कहा जा सकता, क्योंकि द्वित्व के बिना समास का विरोध है।

अधुना तृतीयपक्षस्य निराकरणं ज्ञातव्यम्—

नोभयगतोऽपि, उभयपक्षगतदोषानुषंगात्। तस्मात् समासो नास्तीति सिद्धम्।

संप्रति समासाभावे सति एषोऽर्थः सूच्यते—

योगशब्दो योगार्थं भणति, प्रत्ययशब्दः प्रत्ययार्थं भणति, इति द्वाभ्यामपि पदाभ्यां एकोऽर्थो न प्ररूप्यते। तेन योगप्रत्ययेन प्रकृति-प्रदेशाग्रं, कषायप्रत्ययेन स्थित्यनुभागवेदना इति अवक्तव्यमस्ति।

अथवा न सत्कार्यं उत्पद्यते, सतः उत्पत्तिविरोधात्। नासच्च कार्यं उत्पद्यते खरशृंगस्यापि उत्पत्तिप्रसंगात्। न च सदसच्चोत्पद्यते उभयगतदोषानुषंगात्। तस्मात् कार्यकारणभावो नास्तीति ज्ञानावरणीयप्रकृतिप्रदेशाग्रवेदना योगप्रत्ययेन, स्थित्यनुभागवेदना कषायप्रत्ययेनेति अवक्तव्यम्।

अथवा न समानकाले वर्तमानानां कार्यकारणभावो युज्यते, द्वयोः सतोः असतोः सदसतोश्च कार्यकारण-भावविरोधात्। अविरोधे वा एकसमये चैव सर्वमुत्पद्य द्वितीयसमये कार्यकारणकलापस्य निर्मूलप्रलयो भवेत्। न चैवं, तथानुपलंभात्।

न च भिन्नकालेषु वर्तमानानां कार्यकारणभावः, द्वयोः सतोः असतोश्च कार्यकारणभावविरोधात्। न च सद्वस्तुनोऽसद्वस्तुनः उत्पत्तिः, विंध्याचलात् आकाशकुसुमानामपि उत्पत्तिप्रसंगात्। न चासद्वस्तुनः सद्वस्तुनः उत्पत्तिः, गर्दभशृंगात् भेकस्योत्पत्तिप्रसंगात्। न चासद्वस्तुनः असद्वस्तुनः उत्पत्तिः, गर्दभशृंगात्

अब तृतीय पद का निराकरण जानना चाहिए—

उभय (अर्थ व पद) गत भी समास नहीं हो सकता, क्योंकि दोनों पक्षों में दिये गये दोषों का प्रसंग आता है। इस कारण समास संभव नहीं है, यह सिद्ध है।

अब समास का अभाव होने से यह अर्थ सूचित करते हैं—

चूँकि योग शब्द योगार्थ को कहता है और प्रत्यय शब्द प्रत्ययार्थ को कहता है अतः दोनों ही पदों के द्वारा एक अर्थ की प्ररूपणा नहीं की जा सकती है। इसी कारण शब्द नय की अपेक्षा 'योगप्रत्यय से प्रकृति व प्रदेशाग्ररूप तथा कषायप्रत्यय से स्थिति व अनुभागरूप वेदना होती है' यह कहा नहीं जा सकता है।

अथवा सत् कार्य तो उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि सत् की उत्पत्ति का विरोध है। असत् कार्य भी उत्पन्न नहीं हो सकता, क्योंकि वैसा होने पर गधे के सींग की भी उत्पत्ति का प्रसंग आता है। सदसत् कार्य भी उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि इसमें दोनों पक्षों में दिये गये दोष का प्रसंग आता है। इस कारण कार्यकारण भाव न बन सकने से 'ज्ञानावरणीय की प्रकृति व प्रदेशाग्ररूप वेदना योगप्रत्यय से तथा स्थिति व अनुभागरूप वेदना कषाय प्रत्यय से होती है' यह शब्द नय की अपेक्षा अवक्तव्य है।

अथवा समानकाल में वर्तमान वस्तुओं में कार्यकारणभावयुक्त नहीं है, क्योंकि उन दोनों के सत्, असत् व उभय, इन तीनों पक्षों में कार्य-कारण का विरोध है और यदि विरोध न माना जाये तो एक समय में ही समस्त कार्य के उत्पन्न हो जाने पर द्वितीय समय में कार्य-कारण कलाप का निर्मूल नाश हो जावेगा परन्तु ऐसा संभव नहीं है, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता। समासकाल से भिन्न कालों में भी वर्तमान में उनके कार्यकारणभाव नहीं बनता, क्योंकि उन दोनों के सत्, असत् व उभय, इन तीनों पक्षों में कार्यकारणभाव का विरोध है। यदि सत् वस्तु से असत् वस्तु की उत्पत्ति स्वीकार की जाये तो वह संभव नहीं है, क्योंकि ऐसा होने पर विन्ध्याचल से आकाश कुसुमों के भी उत्पन्न होने का प्रसंग आता है। असत् वस्तु से सत् वस्तु की उत्पत्ति भी संभव नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर असत् गर्दभसींग से मेंढक की उत्पत्ति का प्रसंग आता है।

गगनकुसुमानामुत्पत्तिप्रसंगात्। ततः कार्यकारणभावो नास्तीति ज्ञानावरणीयवेदना अवक्तव्यास्ति।

अथवा त्रयाणां शब्दनयानामपेक्षया ज्ञानावरणीय पुद्गलस्कंधोदयजनिताज्ञानं ज्ञानावरणीयवेदना कथ्यते। न च सा योगकषायाभ्यामुत्पद्यते, निःशक्तेः शक्तिविशेषस्य उत्पत्तिविरोधात्। नोदयगतकर्मद्रव्यस्कंधात् उत्पद्यते, पर्यायव्यतिरिक्तद्रव्याभावात्। तेन त्रयाणां शब्दनयानामपेक्षया ज्ञानावरणीयवेदनाप्रत्ययोऽवक्तव्यो ज्ञातव्यः।

एवं सत्तण्णं कम्माणं॥१६॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—यथा ज्ञानावरणीयवेदना शब्दनयापेक्षया अवक्तव्या कथितास्ति नानायुक्तिकथनेन तथैव सप्तानामपि कर्मणां वेदना अवक्तव्या ज्ञातव्या, अलमतिविस्तरेणेति।

तात्पर्यमत्र—यद्यपि कर्मबंधकारणरूपेण मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगाश्रित्वाः प्रत्ययाः कथिताः। तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थे प्रमादाधिकेन पंचप्रत्ययाः प्रोक्ताः। अत्र ग्रन्थे ये ये प्रत्ययाः निरूपिताः। सर्वेषां प्रत्ययानां कर्मास्त्रवबंधकारणाणि ज्ञात्वा सर्वप्रत्ययेभ्यः स्वात्मानं पृथक्कृत्य शुद्धबुद्धिचिच्चैतन्यस्वरूपस्वात्मतत्त्वमेव चिन्तयितव्यमहर्निशम्।

इसी प्रकार असत् वस्तु से असत् वस्तु की उत्पत्ति भी संभव नहीं है, क्योंकि वैसा स्वीकार करने पर गर्दभसींग से आकाशकुसुमों के उत्पन्न होने का प्रसंग आता है। इस कारण चूँकि कार्य-कारणभाव बनता नहीं है अतएव ज्ञानावरण की वेदना अवक्तव्य है।

अथवा तीनों शब्द नयों की अपेक्षा ज्ञानावरणीय संबंधी पौद्गलिक स्कंधों के उदय से उत्पन्न अज्ञान को ज्ञानावरणीय वेदना कहा जाता है परन्तु वह वेदना योग व कषाय से उत्पन्न नहीं हो सकती, क्योंकि जिसमें जो शक्ति नहीं है, उससे शक्ति विशेष की उत्पत्ति मानने में विरोध आता है तथा उदयगत कर्मद्रव्यस्कंध से भी वेदना उत्पन्न नहीं हो सकती, क्योंकि इन नयों में पर्यायों से भिन्न द्रव्य का अभाव है। इस कारण तीनों शब्दनयों की अपेक्षा ज्ञानावरणीय वेदना का प्रत्यय अवक्तव्य जानना चाहिए।

सूत्रार्थ—

इसी प्रकार शेष सात कर्मों के विषय में भी प्ररूपणा करनी चाहिए॥१६॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना शब्दनय की अपेक्षा से नाना युक्तियों के कथन से अवक्तव्य कही गई है, उसी प्रकार से सातों ही कर्मों की वेदना अवक्तव्य जानना चाहिए, अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि—यद्यपि कर्मबंध के कारणरूप से मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये चार प्रत्यय कहे हैं। तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ में प्रमाद प्रत्यय को जोड़ देने से पाँच प्रत्यय कहे गये हैं। यहाँ इस ग्रंथ में जो-जो प्रत्यय निरूपित किये हैं, उन सभी प्रत्ययों के कर्मास्त्रव और बंध के कारण जानकर सभी प्रत्ययों से अपनी आत्मा को पृथक् करके शुद्ध-बुद्धि-चिच्चैतन्यस्वरूप स्वात्मतत्त्व का ही अहर्निश चिन्तन करना चाहिए।

इस प्रकार पंचमस्थल में ज्ञानावरणीय आदि कर्मों की वेदना शब्दनय की अपेक्षा अवक्तव्य है इस कथन रूप से दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार वेदना प्रत्ययविधान अधिकार में सोलह सूत्र पूर्ण हुए।

एवं पंचमस्थले ज्ञानावरणीयादिकर्मणां वेदना शब्दनयापेक्षया अवक्तव्यास्ति इति कथनरूपेण द्वे सूत्रे गते।
इति वेदनाप्रत्ययविधानाधिकारे षोडश सूत्राणि गतानि।

एवं वेदनाप्रत्ययविधाननामानुयोगद्वारं समाप्तम्।

इति श्रीमत्षट्खण्डागमस्य वेदनाखण्डनाम्नि चतुर्थखण्डे द्वादशे ग्रन्थे गणिनी-
ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां अष्टमवेदनाप्रत्ययविधानानुयोग-
द्वारनामायं प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

इस प्रकार वेदनाप्रत्यय विधान नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम के वेदनाखण्ड नाम के चतुर्थ खण्ड में बारहवें
ग्रंथ में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि
टीका में अष्टम वेदनाप्रत्ययविधानानुयोगद्वार नाम
का प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।



वेदनास्वामित्वविधानानुयोगद्वारम्

(वेदानुयोगद्वारान्तर्गत-नवमानुयोगद्वारम्)

द्वितीयोऽधिकारः

मंगलाचरणम्

श्री तीर्थकरनामकर्मवशतः, पंचापि कल्याणकान्।

कुर्वन्तो बहुभक्तितः सुरगणा श्रेष्ठोत्सवं तन्वते॥

ते सर्वे गणधारकैरपि नुतास्तीर्थाश्च काला अपि।

तत्कल्याणकक्षेत्रकालतिथयः, कुर्वन्तु मे (नो) मंगलम्॥१॥

अथ वेदनानामचतुर्थखंडे द्वितीयवेदानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गत-नवमे वेदनास्वामित्वविधानानुयोगद्वारे चतुर्भिः स्थलैः पंचदशसूत्रैः द्वितीयोऽधिकारः कथ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले विषयप्रतिपादन-प्रतिज्ञारूपेण 'वेयणासामित्त' इत्यादिना एकं सूत्रं। द्वितीयस्थले नैगमव्यवहारनयापेक्षया ज्ञानावरणीयादि-वेदनानिरूपणार्थ 'णेगमववहाराणं' इत्यादिना नवसूत्राणि कथ्यन्ते। तृतीयस्थले संग्रहनयापेक्षया वेदनाप्रतिपादनपराणि 'संग्रहणयस्स' इत्यादिना त्रीणि सूत्राणि वक्ष्यन्ते। पुनश्च चतुर्थस्थले शब्द-ऋजुसूत्रनयापेक्षया वेदनाप्ररूपकं 'सददुजु'-इत्यादि सूत्रद्वयमिति संक्षेपेण पातनिका सूचिता भवति।

वेदनास्वामित्वविधान अनुयोगद्वार

(वेदानुयोगद्वार के अन्तर्गत-नवमां अनुयोगद्वार)

द्वितीय अधिकार

-मंगलाचरण-

श्लोकार्थ—तीर्थकर नामकर्म के कारण जिन्होंने पंचकल्याणकों को प्राप्त किया है, सुरेन्द्रगण भक्तिपूर्वक जिनके पंचकल्याणकों में श्रेष्ठ महोत्सव सम्पन्न करते हैं। वे सभी गणधरों से वंद्य तीर्थकर भगवान्, उनका तीर्थकाल, उनके कल्याणक क्षेत्र, काल एवं कल्याणक की तिथियाँ हम सभी का मंगल करें॥१॥

अब वेदना नाम के चतुर्थखण्ड में द्वितीय वेदानुयोगद्वार के अन्तर्गत "वेदनास्वामित्व विधानानुयोगद्वार" नामक नवमें अनुयोगद्वार में चार स्थलों में पन्द्रह सूत्रों के द्वारा द्वितीय अधिकार का कथन किया जा रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में विषय के प्रतिपादन की प्रतिज्ञारूप से 'वेयणासामित्त' इत्यादि एक सूत्र है। द्वितीय स्थल में नैगम एवं व्यवहारनय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय आदि कर्मों की वेदना का निरूपण करने वाले "णेगम-ववहाराणं" इत्यादि नौ सूत्र कहे जाएंगे। तृतीय स्थल में संग्रहनय की अपेक्षा वेदना का प्रतिपादन करने हेतु "संग्रहणयस्स" इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे, पुनः चतुर्थ स्थल में शब्दनय एवं ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा वेदना का प्ररूपण करने वाले "सददुजु" इत्यादि दो सूत्र हैं। इस प्रकार संक्षेप में यहाँ सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अधुना विषयनिरूपणप्रतिज्ञास्वरूपप्रथमसूत्रमवतार्यते —

वेयणासामित्तविहाणे त्ति।।१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अत्र मंदमेधाविनामन्तेवासिनामधिकारस्मारणार्थं इदं सूत्रमागतमस्ति।

अत्र कश्चिदाह —

येन जीवेन यत्कर्म बद्धं तस्य वेदनायाः स एव स्वामी भवतीति विनोपदेशेन ज्ञायते, तस्मात् 'वेदनास्वामित्वविधानमिति' अनुयोगद्वारं न कथयितव्यम् ?

आचार्यदेवः प्राह —

यदि यस्मादुत्पन्नस्तत्रैव तिष्ठेत् कर्मस्कंधस्तर्हि स एव स्वामी भवेत्। न चैवं, कर्मणामेकस्मात् कस्मादपि उत्पत्तेरभावात्। तद्यथा-न तावज्जीवाच्चैव कर्मणामुत्पत्तिः, कर्मविरहितसिद्धेभ्योऽपि तदुत्पत्तिप्रसंगात्। नाजीवाच्चैव, जीवव्यतिरिक्तकालपुद्गलाकाशेभ्योऽपि तदुत्पत्तिप्रसंगात्। नासमवेतजीवाजीवेभ्यश्चैव समुत्पद्यते, सिद्धजीव-पुद्गलेभ्योऽपि कर्मोत्पत्तिप्रसंगात्। न च संयुक्तेभ्यश्चैव तदुत्पत्तिः, संयुक्तजीवपुद्गलेभ्योऽपि कर्मोत्पत्तिप्रसंगात्। न च समवेतजीवाजीवेभ्योऽपि तदुत्पत्तिः, अयोगिनोऽपि कर्मबंधप्रसंगात्।

तस्मात् कारणात् मिथ्यात्वासंयम-कषाय-योगजननक्षमपुद्गलद्रव्याणि जीवश्च कर्मबंधस्य कारणमिति

अब विषयनिरूपण की प्रतिज्ञास्वरूप प्रथम सूत्र का अवतार किया जा रहा है —

सूत्रार्थ —

अब वेदनास्वामित्वविधान प्रकृत है।।१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ मन्दबुद्धि शिष्यों को अधिकार की स्मृति दिलाने हेतु यह सूत्र आया है।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

जिस जीव के द्वारा जो कर्म बांधा गया है वह उक्त कर्म की वेदना का स्वामी है, यह बिना उपदेश के ही जाना जाता है अतएव वेदनस्वामित्वविधान अनुयोगद्वार का कथन नहीं करना चाहिए ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं —

कर्मस्कंध जिससे उत्पन्न हुआ है वहाँ ही यदि वह स्थित रहे, तो वही स्वामी हो सकता है परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि कर्मों की उत्पत्ति किसी एक से नहीं है। इसी को स्पष्ट करते हैं — यदि केवल जीव से ही कर्मों की उत्पत्ति स्वीकार की जाये, तो वह संभव नहीं है, क्योंकि इस प्रकार से कर्मरहित सिद्धों से भी कर्मों की उत्पत्ति का प्रसंग आ सकता है। एकमात्र अजीव से भी कर्मों की उत्पत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि ऐसा होने पर जीव से भिन्न काल पुद्गल एवं आकाश से भी कर्मों की उत्पत्ति का प्रसंग अनिवार्य होगा। असमवेत अर्थात् समवायरहित जीव व अजीव दोनों से भी कर्मों की उत्पत्ति संभव नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर 'समवाय रहित' सिद्ध जीव और पुद्गल से भी कर्मों की उत्पत्ति का प्रसंग आता है। इस प्रसंग के निवारणार्थ आदि संयुक्त जीव व अजीव से भी कर्मों की उत्पत्ति स्वीकार की जाती है तो वह भी नहीं बन सकती, क्योंकि ऐसा स्वीकार करने पर संयुक्त जीव और पुद्गल से भी उनकी उत्पत्ति का प्रसंग आता है। इस आपत्ति को टालने के लिए यदि समवेत (समवायप्राप्त) जीव व अजीव से उनकी उत्पत्ति स्वीकार करते हैं तो यह भी उचित नहीं है क्योंकि वैसा मानने पर (कर्मसमवेत) अयोगकेवली के भी कर्मबंध का प्रसंग अवश्यंभावी है।

इस कारण मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग को उत्पन्न करने में समर्थ पुद्गल द्रव्य और जीव

स्थितम्। स च जीवपुद्गलयोर्बन्धः प्रवाहस्वरूपेण आदिविरहितः, अन्यथा अमूर्तमूर्तयोः जीवपुद्गलयोः बंधानुपपत्तेः। बन्धविशेषं प्रतीत्य सादि-सान्तः, अन्यथा एकस्मिन् जीवे उत्पन्नदेवादिपर्यायाणामविनाशप्रसंगात्। तस्मात् द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिर्वा उत्पद्य जीवे एकीभावेन स्थितवेदना तत्र एकस्य चैव भवति, अन्यस्य न भवतीति न वक्तुं शक्यते।

एवं जातसंदेहस्य अन्तेवासिनः मतिव्याकुलताविनाशनार्थं वेदनास्वामित्वविधानं निरूपयितव्यम्।

एवं प्रथमस्थलेऽधिकारकथनसूचनपरत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

संप्रति नैगमव्यवहारनयापेक्षया ज्ञानावरणीयवेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

णेगम-ववहाराणं णाणावरणीयवेयणा सिया जीवस्स वा।।२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अस्मिन्नधिकारे सर्वेषु सूत्रेषु 'वा' शब्दाः सर्वे समुच्चयार्थे द्रष्टव्याः।

कश्चिदाह —

'स्यात्' शब्दौ द्वौ स्तः, एकः क्रियावाचकः अपरोऽनेकान्तवाचकः, तत्र कस्येदं ग्रहणमस्ति ?

आचार्यः प्राह —

अत्रानेकान्तवाचको गृहीतव्यः, तस्यानेकान्ते वृत्तिदर्शनात्। अतोऽत्र 'स्यात्' शब्दः सर्वथानियमपरिहारेण सर्वत्रप्ररूपकोऽस्ति प्रमाणानुसारित्वात्।

कर्मबंध के कारण है, यह सिद्ध होता है। वह जीव और पुद्गल का बंध भी प्रवाहस्वरूप से आदिविरहित अर्थात् अनादि है क्योंकि इसके बिना क्रमशः अमूर्त और मूर्त जीव पुद्गल में बंध नहीं हो सकता। बंध विशेष की अपेक्षा वह बंध सादि व सान्त है, क्योंकि इसके बिना एक जीव में उत्पन्न देवादिक पर्यायों के अविनश्वर होने का प्रसंग आता है। इस कारण दो, तीन अथवा चार से उत्पन्न होकर जीव में एकस्वरूप से स्थित वेदना उनमें से एक के ही होती है, अन्य के नहीं होती, ऐसा नहीं कहा जा सकता है।

इस प्रकार सन्देह को प्राप्त शिष्य की बुद्धिव्याकुलता को नष्ट करने के लिए वेदनास्वामित्व विधान का कथन करना योग्य है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में अधिकार कथन की सूचना देने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब नैगम और व्यवहारनय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय की वेदना के निरूपण हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ —

नैगम और व्यवहारनय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय की वेदना कथंचित् जीव के होती है।।२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस अधिकार में सभी सूत्रों में "वा" शब्द समुच्चय अर्थ में समझना चाहिए। कोई शंका करता है कि —

'स्यात्' शब्द दो हैं — एक क्रियावाचक और दूसरा अनेकान्तवाचक। उन दोनों में से यहाँ किसका ग्रहण किया गया है ?

आचार्यदेव इसका उत्तर देते हैं कि —

यहाँ अनेकान्तवाचक स्यात् शब्द को ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि उसकी अनेकान्त में वृत्ति देखी जाती है। उक्त स्यात् शब्द 'सर्वथा' नियम को छोड़कर सर्वत्र प्ररूपणा करने वाला है, क्योंकि वह प्रमाण का अनुसरण करता है।

उक्तं च —

सर्वथानियमत्यागी, यथादृष्टमपेक्षकः ।
स्याच्छब्दस्तावके न्याये, नान्येषामात्मविद्विषाम् ॥

ततः स्याज्जीवस्य वेदना। तद्यथा —

अनन्तानन्तविस्त्रसोपचयसहितकर्मपुद्गलस्कंधो हि स्याज्जीवः, जीवात् पृथग्भावेन तदनुपलंभात्। न चाभेदे सति एकयोगक्षमता नास्तीति वक्तुं युक्तं, अन्यत्र तथानुपलंभात्। एवंविधविवक्षायाः स्याज्जीवस्य वेदना इति सिद्धम्।^१

संप्रति नोजीवस्य वेदनाकथनार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया णोजीवस्स वा।।३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — नोजीवो नाम अनंतानंतविस्त्रसोपचयैरुपचितकर्मपुद्गलस्कंधः, प्राणधारणाभावात् ज्ञानदर्शनाभावाद्वा। तत्रतनजीवोऽपि स्यान्नोजीवः, तस्मात् पृथग्भूतस्य तस्यानुपलंभात्। ततः स्यात् नोजीवस्य वेदना।

कथमभिन्ने षष्ठीनिर्देशः ?

नैतत् 'खदिरस्स खंभो त्ति' अभेदेऽपि षष्ठीनिर्देशोपलंभात्। एते द्वे अपि सूत्रे संगृहीतनैगमनयस्यापि योजयितव्ये, बहूनामपि जीव-नोजीवानां जातिद्वारेण एकत्वोपपत्तेः।

कहा भी है—

श्लोकार्थ— हे अरहनाथ तीर्थंकर भगवान्! आपके न्याय में 'सर्वथा' नियम को छोड़कर यथादृष्ट वस्तु की अपेक्षा रखने वाला 'स्यात्' शब्द पाया जाता है। वह आत्मविद्वेषी अर्थात् अपने आपका अहित करने वाले अन्य के यहाँ नहीं पाया जाता है।।

इस कारण कथंचित् जीव के वेदना होती है। वह इस प्रकार है— अनन्तानन्त विस्त्रसोपचय सहित कर्मपुद्गलस्कंध कथंचित् जीव है, क्योंकि वह जीव से पृथक् नहीं पाया जाता। अभेद होने पर एक योग-क्षमता (अभीष्ट वस्तु का लाभ व संरक्षण) नहीं रहेगी, ऐसा कहना भी उचित नहीं है, क्योंकि अन्यत्र वैसा पाया नहीं जाता। इस प्रकार की विवक्षा से कथंचित् जीव के वेदना होती है, यह सिद्ध है।

अब नोजीव की वेदना को बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

कथंचित् वह वेदना नोजीव के होती है।।३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अनन्तानन्त विस्त्रसोपचयों से उपचय को प्राप्त कर्म-पुद्गलस्कंध प्राण धारण अथवा ज्ञानदर्शन से रहित होने के कारण नोजीव कहलाता है। उससे संबंध रखने वाला जीव भी कथंचित् नोजीव है, क्योंकि वह उससे पृथग्भूत नहीं पाया जाता है। इस कारण कथंचित् नोजीव के वेदना होती है।

शंका— अभेद में षष्ठी विभक्ति का निर्देश कैसे किया है ?

समाधान— ऐसा नहीं है, क्योंकि 'खैर का खंभा' यहाँ अभेद में षष्ठी का निर्देश पाया जाता है। इन दोनों सूत्रों को, संगृहीत नैगमनय में भी जोड़ना चाहिए, क्योंकि बहुत भी जीव और नोजीवों में जाति की अपेक्षा एकता पायी जाती है।

संप्रति बहुजीववेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया जीवाणं वा॥४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जीवाः एक-द्वि-त्रि-चतुः-पंचेन्द्रियभेदेन वा षट्कायभेदेन वा देशादिभेदेन वा अनेकविधाः सन्ति।

अत्र कश्चिदाह —

निश्चेतन-मूर्तपुद्गलस्कंधसमवायेन भृष्टस्वकस्वरूपस्य कथं जीवत्वं युज्यते ?

आचार्यदेवः प्राह —

नैतद् वक्तव्यं, अविनष्टज्ञानदर्शनानामुपलंभेन जीवस्यास्तित्वसिद्धेः। वास्तवेन तत्र पुद्गलस्कंधोऽपि नास्ति, प्रधानीकृतजीवभावात्। न च जीवे पुद्गलप्रवेशो बुद्धिकृतश्चैव, परमार्थेनापि तस्मात् तेषामभेदोपलंभात्। एवंविधार्पणायां ज्ञानावरणीयवेदना स्याज्जीवानां भवति।

पुनः कश्चिच्छिष्यः पृच्छति —

कथमेकस्याः वेदनाया बहवः स्वामिनः ?

आचार्यदेव उत्तरयति —

नैतत् 'अरहंताणं पूजा' इत्यत्र बहूनामपि एकस्याः पूजायाः स्वामित्वोपलंभात्।

अधुना कथंचित् नोजीवानां वेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

अब बहुत जीवों की वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

उक्त वेदना कथंचित् बहुत जीवों के होती है॥४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जीव एक, दो, तीन, चार और पाँच इन्द्रियों के भेद से अथवा छह कार्यों के भेद से अथवा देशादि के भेद से अनेक प्रकार के होते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है —

चेतना रहित मूर्त पुद्गल स्कंधों के साथ समवाय होने के कारण अपने स्वरूप (चैतन्य व अमूर्तत्व) से रहित हुए जीव के जीवत्व स्वीकार करना कैसे युक्तियुक्त है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं —

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि विनाश को नहीं प्राप्त हुए ज्ञान-दर्शन के पाये जाने से उसमें जीवत्व का अस्तित्व सिद्ध है। वस्तुतः उसमें पुद्गलस्कंध भी नहीं है, क्योंकि यहाँ जीव भाव की प्रधानता की गई है। दूसरे, जीव में पुद्गलस्कंधों का प्रवेश बुद्धिपूर्वक नहीं किया गया है, क्योंकि यथार्थतः भी उससे उनका अभेद पाया जाता है।

इस प्रकार की विवक्षा से ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना कथंचित् बहुत जीवों के होती है।

पुनः कोई शिष्य पूछता है —

एक वेदना के बहुत से स्वामी कैसे हो सकते हैं ?

आचार्यदेव इसका उत्तर देते हैं —

ऐसा नहीं है, क्योंकि 'अरहन्तों की पूजा' यहाँ बहुतों में भी एक पूजा का स्वामित्व पाया जाता है।

अब कथंचित् नोजीवों की वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है —

सिया णोजीवाणं वा।।५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — शरीराकारेण स्थिताः कर्म-नोकर्मस्कंधा नोजीवाः, निश्चेतनत्वात्। तत्र स्थिताः जीवा अपि नोजीवाः, तेषां तेभ्यो भेदाभावात्। ते च नोजीवा अनेके सन्ति, अनेकसंस्थान-देश-काल-वर्ण-गंधादिभेदापणर्यां। तेषां नोजीवानां च ज्ञानावरणीयवेदना भवति।

पुनः जीवनोजीववेदनाप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया जीवस्स च णोजीवस्स च।।६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जीवस्यापि वेदना भवति, तेन जीवेन विना पुद्गलाच्चैव तस्या वेदनाया अनुपलंभात्। नोजीवस्यापि भवति, नोकर्मपुद्गलस्कंधैर्विना जीवाच्चैव तदनुपलंभात्। एवंविधनयापेक्षया 'जीवस्य च नोजीवस्य च ज्ञानावरणीयवेदना भवति'।

संप्रति एकजीव बहुनोजीववेदना प्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया जीवस्स च णोजीवाणं च।।७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जीवस्यैकत्वं यदा जात्यपेक्षया गृहीतं तदा नोजीवबहुत्वं देश-संस्थान-शरीरारंभकपुद्गलभेदेन गृहीतव्यं। यदा जात्या विना जीवव्यक्तिगतमेकत्वमर्पितं भवति तदा कार्मणस्कंधानामनन्ता-नामनेकसंस्थानानामनेकदेशस्थितानामेकजीवविषयाणां भेदेन नोजीवबहुत्वं वक्तव्यं।

सूत्रार्थ —

कथंचित् वह वेदना बहुत नोजीवों के होती है।।५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — शरीर के आकाररूप से स्थित कर्म व नोकर्मस्वरूप स्कंधों को नोजीव कहा जाता है, क्योंकि वे चैतन्य भाव से रहित हैं। उनमें स्थित जीव भी नोजीव हैं, क्योंकि उनका उनसे भेद नहीं है। उक्त नोजीव अनेक संस्थान, देश, काल, वर्ण व गंध आदि के भेद की विवक्षा से अनेक हैं। उन नोजीवों के ज्ञानावरणीय वेदना होती है।

पुनः जीव-नोजीव दोनों की वेदना का प्ररूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

कथंचित् जीव और नोजीव दोनों के वेदना होती है।।६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जीव के भी वेदना होती है, क्योंकि जीव के बिना एकमात्र पुद्गल से ही वह नहीं पायी जाती। उक्त वेदना नोजीव के भी होती है, क्योंकि नोकर्मरूप पुद्गलस्कंधों के बिना एकमात्र जीव से ही वह नहीं पायी जाती है। इस प्रकार के नय में ज्ञानावरणीय की वेदना जीव के भी होती है और नोजीव के भी होती है।

अब एक जीव और बहुत नोजीवों की वेदना का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

कथंचित् जीव के और नोजीवों के वेदना होती है।।७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जब जाति की अपेक्षा से जीव की एकता ग्रहण की गई हो, तब देश, संस्थान और शरीर के आरंभक पुद्गलस्कंधों के भेद से नोजीवों के बहुत्व को ग्रहण करना चाहिए। जब जाति के बिना जीव के व्यक्तिगत एकता की प्रधानता होती है तब अनेक संस्थान से युक्त व अनेक देशों में स्थित

एवंविधायां अर्पणायां जीवस्य च नोजीवस्य च ज्ञानावरणीयवेदना भवति।

पुनश्चानेकजीव-एकनोजीववेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया जीवाणं च नोजीवस्स च॥८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदा जात्यपेक्षया नोजीवस्यैकत्वं विवक्षितं तदा काय-इन्द्रिय-संस्थान-देशादिभेदेन जीवानां बहुत्वं गृहीतव्यं। यदा नोजीवस्य व्यक्त्यपेक्षया एकत्वमर्पितं तदा प्रदेशादिभेदेन जीवबहुत्वं गृहीतव्यं। एवंविधविवक्षायाः स्यात् जीवानां च नोजीवस्य च वेदना भवति।

अधुना नानाजीव-नानानोजीववेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया जीवाणं च नोजीवाणं च॥९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदा जीव-नोजीवानां च अवयवविषयमनवयवविषयं च बहुत्वं विवक्षितं तदा जीवानां च नोजीवानां च ज्ञानावरणीयवेदना भवतीति ज्ञातव्यं।

संप्रति ज्ञानावरणीयव्यतिरिक्तशेषकर्मणां वेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं सत्तणं कम्माणं॥१०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यथा ज्ञानावरणीयवेदना एकजीव-एकनोजीव-नानाजीव-नानानोजीवाद्यपेक्षया

एक जीवविषयक अनन्तानंत कार्मण स्कंधों के भेद से नोजीवों के बहुत्व को कहना चाहिए। इस प्रकार की विवक्षा से जीव के और नोजीवों के भी उक्त ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना होती है।

अब आगे अनेक जीव और एक नोजीव वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

वह कथंचित् जीवों के और नोजीव के होती है॥८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जब जाति के द्वारा नोजीव की एकता विवक्षित हो, तब काय, इन्द्रिय, संस्थान और देश आदि के भेद से जीवों के बहुत्व को ग्रहण करना चाहिए। जब व्यक्ति द्वारा नोजीव की एकता विवक्षित हो, तब प्रदेशादिक के भेद से जीवों के बहुत्व को ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार की विवक्षा से कथंचित् जीवों के और नोजीव के भी ज्ञानावरणीय की वेदना होती है।

अब नानाजीव और नाना नोजीव की वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

कथंचित् वह वेदना नाना जीवों के और नाना नोजीवों के होती हैं॥९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जब जीवों और नोजीवों के अवयवविषयक और अनवयवविषयक बहुत्व की विवक्षा हो, तब जीवों के और नोजीवों के ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना होती है, ऐसा जानना चाहिए।

अब ज्ञानावरणीय से भिन्न शेष कर्मों की वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार शेष सात कर्मों के संबंध में कहना चाहिए॥१०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जैसे ज्ञानावरणीय कर्म संबंधी वेदना एक जीव, एक नोजीव और नाना जीव, नाना नोजीव आदि की अपेक्षा प्ररूपित की गई है, उसी प्रकार शेष सात कर्मों की वेदना की प्ररूपणा

प्ररूपिताः तथैव सप्तानां कर्मणां प्ररूपयितव्याः, विशेषाभावात्।

एवं द्वितीयस्थले नैगम-व्यवहारनयापेक्षया जीव-नोजीववेदनानिरूपणार्थपराणि नव सूत्राणि गतानि।

संप्रति संग्रहनयापेक्षया जीवस्य ज्ञानावरणीयवेदना प्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

संग्रहणयस्स पाणावरणीयवेयणा जीवस्स वा।।११।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यो यस्य फलमनुभवति सः तस्य स्वामी भवतीति सकललोकप्रसिद्धो व्यवहारः। न च कर्मफलं कर्माण्येव भुञ्जते, स्वकात्मनि क्रियाविरोधात्। निश्चेतनत्वेन ज्ञानदर्शनविरहितेषु पुद्गलस्कंधेषु ज्ञानावरणीयव्यापारस्य वैफल्यप्रसंगात् न च नोजीवस्य, किं तु जीवस्यैव वेदना भवति। न च जीवद्रव्यव्यतिरिक्तो नोजीवो भवति, जीवेन सह एकत्वमापन्नस्य नोजीवत्वविरोधात्। एतत् शुद्धसंग्रहनयवचनं, जीवानां तैः सह नोजीवानां च एकत्वाभ्युपगमात्।

अत्र कश्चिदाह —

अत्र सूत्रे 'स्याच्छब्दः' किन् प्रयुक्तः ?

आचार्यः प्राह —

नैष दोषः, प्रकारान्तराभावात्। यदि शुद्धसंग्रहनयेन वेदनायाः स्वामिनोऽन्योऽपि प्रकारोऽस्ति तर्हि स्याच्छब्दः उच्यते। न चास्ति तस्मात् स न प्रयुक्त इति ज्ञातव्यः।

करनी चाहिए, क्योंकि उसमें कुछ विशेषता नहीं है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में नैगम-व्यवहारनय की अपेक्षा जीव और नोजीव की वेदना का निरूपण करने वाले नौ सूत्र पूर्ण हुए।

अब संग्रहनय की अपेक्षा जीव की ज्ञानावरणीय वेदना का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —
सूत्रार्थ —

संग्रहनय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय की वेदना जीव के होती है।।११।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जो जिसके फल का अनुभव करता है वह उसका स्वामी होता है, यह व्यवहार सकल जनों में प्रसिद्ध है परन्तु कर्म के फल को कर्म ही तो भोगते नहीं हैं, क्योंकि अपने आपमें क्रिया का विरोध है तथा अचेतन होने से ज्ञान-दर्शन से रहित पुद्गलस्कंधों में ज्ञानावरणीय के व्यापार की विफलता का प्रसंग होने से भी उसकी वेदना नोजीव के नहीं होती, किन्तु जीव के ही होती है। दूसरी बात यह है कि जीव द्रव्य से भिन्न नोजीव है ही नहीं, क्योंकि जीव के साथ एकता को प्राप्त पुद्गलस्कंध के नोजीव होने का विरोध है। यह कथन शुद्ध संग्रहनय की अपेक्षा है, क्योंकि, जीवों की और उनके साथ नोजीवों की एकता स्वीकार की गई है।

यहाँ कोई शंका करता है —

यहाँ सूत्र में 'स्यात्' शब्द प्रयोग क्यों नहीं किया गया है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं —

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यहाँ दूसरा कोई प्रकार नहीं है। यदि शुद्ध संग्रहनय की अपेक्षा वेदना के स्वामी का कोई दूसरा भी प्रकार होता तो 'स्यात्' शब्द का प्रयोग करना योग्य था, परन्तु वह है नहीं, अतएव उसका प्रयोग नहीं किया गया है, ऐसा जानना चाहिए।

संप्रति अशुद्धसंग्रहनयविषये स्वामित्वप्ररूपणार्थं उत्तरसूत्रमवतार्यते —

जीवाणं वा।।१२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — संगृहीतनोजीव-जीवबहुत्वाभ्युपगमात्। एतदशुद्धसंग्रहनयवचनं। शेषं यथा शुद्धसंग्रहनयापेक्षया कथितं तथा वक्तव्यं, विशेषाभावात्।

अधुना सप्तकर्मणां संग्रहनयापेक्षया स्वामित्वनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं सत्तण्णं कम्माणं।।१३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यथा शुद्धाशुद्धसंग्रहनयौ आश्रित्य ज्ञानावरणीयवेदनायाः स्वामित्वप्ररूपणा कृता तथा सप्तानां कर्मणां वेदनायाः पृथक्-पृथक् स्वामित्वप्ररूपणा कर्तव्या, विशेषाभावात्।

एवं तृतीयस्थले संग्रहनयापेक्षया ज्ञानावरणीयवेदनास्वामित्वकथनत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अधुना शब्द-ऋजुसूत्रनयापेक्षया ज्ञानावरणीयवेदना स्वामित्वनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सददुजुसुदाणं णाणावरणीयवेयणा जीवस्स।।१४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — शब्दनयर्जुसूत्रनयाभ्यां ज्ञानावरणीयवेदनायाः स्वामी जीव एव भवति।

अब अशुद्ध संग्रहनय के विषय में स्वामित्व की प्ररूपणा करने हेतु उत्तर सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

अथवा जीवों के वेदना होती है।।१२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि संग्रहनय की अपेक्षा नोजीव और जीव बहुत स्वीकार किये गये हैं। यह अशुद्ध संग्रहनय की अपेक्षा कथन है। शेष प्ररूपणा जैसे शुद्ध संग्रहनय का आश्रय करके की गई है, वैसे ही करना चाहिए, क्योंकि इसमें उससे कोई विशेषता नहीं पाई जाती है।

अब संग्रहनय की अपेक्षा सात कर्मों के स्वामित्व का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार शेष सात कर्मों के विषय में कथन करना चाहिए।।१३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जिस प्रकार शुद्ध और अशुद्ध संग्रहनयों का आश्रय करके ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना के स्वामित्व की प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार शेष सात कर्मों की वेदना के स्वामित्व की प्ररूपणा पृथक्-पृथक् करनी चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में संग्रहनय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय वेदना का स्वामित्व बतलाने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब शब्द और ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय वेदना का स्वामित्व बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

शब्द एवं ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना जीव के होती है।।१४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — शब्दनय और ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा से ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना

अथ कश्चिदाह —

किमर्थं जीववेदनायाः शब्दजुसूत्रनयो बहुवचनं नेच्छतः ?

आचार्यदेवः प्राह —

नैष दोषः, बहुत्वाभावात्। तद्यथा — सर्वमपि वस्तु एकसंख्याविशिष्टमन्यथा तस्याभावप्रसंगात्। न चैकत्वप्रतिगृहीते वस्तुनि द्विभावादीनां संभवोऽस्ति, शीतोष्णानामिव तेषु सहानवस्थानलक्षणविरोधदर्शनात्। न च एकत्वाविशिष्टं वस्तु अस्ति येन अनेकत्वस्य तदाधारो भवेत्।

अत्र कश्चिदाशङ्कते —

एकस्मिन् स्तंभे मूलाग्रमध्यभेदेन अनेकत्वं दृश्यते इति चेत् ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नैतदाशङ्कनीयं, तत्र एकत्वं मुक्त्वा अनेकत्वस्यानुपलंभात्। न तावत्स्तंभगतमनेकत्वं, तत्र एकत्वोपलंभात्। न मूलगतमग्रगतं मध्यगतं वा, तत्रापि एकत्वं मुक्त्वा अनेकत्वानुपलंभात्। न त्रयाणामेकैकवस्तूनां समूहोऽनेकत्वस्य आधारः, तद्व्यतिरेकेण तत्समूहानुपलंभात्। तस्मान्नास्ति बहुत्वं तेनैव कारणेन न चात्र बहुवचनमपि। तस्मात् शब्द-ऋजुसूत्राणां ज्ञानावरणीयवेदना जीवस्य भवतीति भणितमत्र।

संप्रति सप्तकर्मणामपि एतद्वेदनास्वामित्वनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

का स्वामी जीव ही होता है, ऐसा सूत्र का अभिप्राय है।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

शब्द और ऋजुसूत्र ये दोनों नय व जीव वेदना के बहुवचन को क्यों नहीं स्वीकार करते हैं ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं —

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यहाँ बहुत्व की संभावना नहीं है। वह इस प्रकार है —

सभी वस्तु एक संख्या से सहित हैं, क्योंकि इसके बिना उसके अभाव का प्रसंग आता है। एकत्व को स्वीकार करने वाली वस्तु में द्वित्वादिक की संभावना भी नहीं है, क्योंकि उसमें शीत व उष्ण के समान सहानवस्थान रूप विरोध देखा जाता है। इसके अतिरिक्त एकत्व से रहित वस्तु है भी नहीं, जिससे कि वह अनेकत्व का आधार हो सके।

यहाँ कोई शंका करता है —

एक खम्भे में मूल, अग्र एवं मध्य के भेद से अनेकता देखी जाती है ?

ऐसी आशंका होने पर आचार्य उत्तर देते हैं कि —

ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उसमें एकत्व को छोड़कर अनेकत्व पाया नहीं जाता। कारण कि स्तंभ में तो अनेकत्व की संभावना है नहीं, क्योंकि उसमें एकता पायी जाती है। मूलगत, अग्रगत अथवा मध्यगत अनेकता भी संभव नहीं है, क्योंकि उनमें भी एकत्व को छोड़कर अनेकता नहीं पायी जाती। यदि कहा जाये कि तीन एक-एक वस्तुओं का समूह अनेकता का आधार है, सो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि उससे भिन्न उनका समूह पाया नहीं जाता। इस कारण इन नयों की अपेक्षा बहुत्व संभव नहीं है इसीलिए यहाँ बहुवचन भी नहीं है अतएव शब्द और ऋजुसूत्र नयों की अपेक्षा ज्ञानावरणीय की वेदना जीव के होती है, ऐसा कहा गया है।

अब सात कर्मों के भी यह वेदनास्वामित्व का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

एवं सत्तण्णं कम्माणं ।।१५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यथा ज्ञानावरणीयस्य प्ररूपितं तथा सप्तानां कर्मणां वेदनास्वामित्वं प्ररूपयितव्यं, विशेषाभावात्।

तात्पर्यमत्र — वेदनायाः स्वामित्वं विज्ञाय “जीवद्रव्येषु एव वेदना कर्मफलानुभवनं भवतीति” निश्चित्य शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धात्मा शुद्धभावमेवानुभवति न चाशुद्धभावानिति ज्ञात्वा च स्वशुद्धात्मा एव भावयितव्यः।

एवं चतुर्थस्थले शब्दजुसूत्रनयेन सप्तकर्मणां वेदनास्वामित्वनिरूपकं सूत्रद्वयं गतम्।

इत्थं वेदनास्वामित्वविधानं समाप्तं नवमानुयोगद्वारम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य वेदनानाम्नि चतुर्थखण्डे द्वादशे ग्रन्थे गणिनीज्ञानमती-
कृत-सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां नवम वेदनास्वामित्वविधानानुयोग-
द्वारनामायं द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार इन दोनों नयों की अपेक्षा शेष सात कर्मों की वेदना के स्वामित्व का कथन करना चाहिए ।।१५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जिस प्रकार ज्ञानावरणीय की वेदना के स्वामित्व की प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार शेष सात कर्मों की वेदना के स्वामित्व की प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि वेदना के स्वामित्व को जानकर “जीवद्रव्यों में ही वेदना अर्थात् कर्मफल का अनुभवन होता है” ऐसा निश्चय करके शुद्ध निश्चयनय से शुद्धात्मा शुद्ध भाव का ही अनुभव करता है, न कि अशुद्ध भावों का अनुभव करता है ऐसा जानकर अपनी शुद्ध आत्मा की ही भावना करना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में शब्द और ऋजुसूत्र नय से सातों कर्मों की वेदना के स्वामित्व का निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार वेदनास्वामित्वविधान नाम का अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के वेदना नामक चतुर्थ खण्ड में बारहवें
ग्रंथ में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिन्तामणि
टीका में नवमां वेदनास्वामित्व विधान अनुयोगद्वार नाम
का यह द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।



अथ वेदनावेदनाविधानानुयोगद्वारम्

(वेदानुयोगद्वारान्तर्गत-दशमानुयोगद्वारम्)

तृतीयोऽधिकारः

मंगलाचरणम्

या कैवल्यविभा निहंति भविनां, ध्वांतं मनस्थं महत्।
सा ज्योतिः प्रकटीक्रियान्मम मनो-मोहान्धकारं हरेत्॥
या आश्रित्य वसंति द्वादशगणा, वाणीसुधापायिनः।
तास्तीर्थेशसभा अनंतसुखदाः, कुर्वन्तु मे (नो) मंगलम्॥१॥

अथ द्वितीयवेदानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गतदशमवेदनावेदनाविधानानुयोगद्वारमस्ति। अत्र प्रथमे महाधिकारान्तर्गते तृतीयेऽधिकारे त्रयोदशस्थलैः अष्टपंचाशत्सूत्राणि निरूप्यन्ते। तत्र तावत् प्रथमस्थले प्रतिज्ञाकथनरूपेण “वेयणावेयण-” इत्यादिना एकं सूत्रं। द्वितीयस्थले नैगमनयापेक्षया ज्ञानावरणीय-वेदनास्यादुदीर्णा-स्यादुपशान्ता-स्याद्बध्यमानिका इत्यादिना “सर्वं पि कम्मं” इत्यादिप्रकारेण सप्त सूत्राणि कथ्यन्ते। तृतीयस्थले स्याद्बध्यमानिका-उदीर्णा चेति कथनमुख्यत्वेन “सिया बज्झमाणिचा च” इत्यादिना चत्वारि सूत्राणि वक्ष्यन्ते। चतुर्थस्थले “सिया बज्झमाणिचा च” इत्यादिना कथनत्वेन चत्वारि सूत्राणि। पंचमस्थले “सिया उदिण्णा च” इत्यादिना चत्वारि सूत्राणि निगद्यन्ते। षष्ठस्थले स्याद्बध्यमानिका च उदीर्णा च उपशान्ता चेति प्ररूपणपरत्वेन “सिया बज्झमाणिचा च” इत्यादिना नव सूत्राणि प्ररूप्यन्ते।

अथ वेदनावेदनाविधान अनुयोगद्वार

(वेदानुयोगद्वार के अन्तर्गत दशवाँ अनुयोगद्वार)

तृतीय अधिकार

मंगलाचरण

श्लोकार्थ — जो कैवल्यज्ञान की प्रभा भव्य प्राणियों के मन में स्थित महान् ध्वान्त — अंधकार को नष्ट करने वाली है, वह कैवल्यज्योति मेरे मन में प्रगट होवे और मेरे मन के मोहरूपी अंधकार का हरण करे। जिसका आश्रय लेकर — तीर्थंकर भगवान के जिस केवलज्ञान के कारण ही समवसरण रचना की द्वादश सभा बनती है और वहाँ उनकी दिव्यध्वनिरूपी अमृत का पान करने वाले भव्य जीव बैठते हैं, वह कैवल्यज्योति तथा तीर्थंकर भगवान की अनन्तसुखप्रदात्री समवसरण सभा हम सबका मंगल करे॥१॥

अब द्वितीय वेदानुयोगद्वार के सोलह भेदों के अन्तर्गत दशवाँ “वेदनावेदनाविधान” नाम का अनुयोगद्वार प्रारंभ होता है। यहाँ प्रथम महाधिकार के अन्तर्गत तृतीय अधिकार में तेरह स्थलों के द्वारा अष्टावन सूत्रों का निरूपण करते हैं। उनमें से प्रथम स्थल में प्रतिज्ञाकथन रूप से “वेयणावेयण” इत्यादि एक सूत्र है। द्वितीय स्थल में नैगमनय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय वेदना की कथंचित् उदीरणा, कथंचित् उपशान्त और कथंचित् बध्यमानपने का कथन करने हेतु “सर्वं पि कम्मं” इत्यादि प्रकार से सात सूत्र कहेंगे। तृतीय स्थल में कथंचित् बध्यमानिका और उदीरणा के कथन की मुख्यता से “सिया वज्झमाणिचा च” इत्यादि चार सूत्र

सप्तमस्थले व्यवहारनयापेक्षया ज्ञानावरणीयवेदना स्याद् बध्यमानिका वेदना इत्यादिप्ररूपणत्वेन “व्यवहारणयस्स” इत्यादिना पंचसूत्राणि निगद्यन्ते। तदनु अष्टमस्थले स्याद् बध्यमानिका च उदीर्णा चेति प्रतिपादनत्वेन “सिया बज्झमाणिआ” इत्यादिना चत्वारि सूत्राणि भवन्ति। तदनन्तरं नवमस्थले स्यादुदीर्णा चोपशान्ता च उभयप्रतिपादनपरत्वेन “सिया उदिण्णा च” इत्यादिना चतुःसूत्राणि सन्ति। तत्पश्चात् दशमस्थले स्याद् बध्यमानिका इत्यादिप्रतिपादनत्वेन “सिया बज्झमाणिआ च” इत्यादिना त्रिसंयोगभंगसूत्रकत्वेन पंचसूत्राणि प्रतिपाद्यन्ते। पुनः एकादशमस्थले संग्रहनयापेक्षया ज्ञानावरणीयवेदना बध्यमानिका वेदना इति निरूपणत्वेन “संगहणयस्स” इत्यादिना अष्टौ सूत्राणि वक्ष्यन्ते। पुनश्च द्वादशमस्थले ऋजुसूत्रनयापेक्षया ज्ञानावरणीयवेदना उदीर्णफलप्राप्तविपाका इत्यादिकथनमुख्यत्वेन “उजुसुदस्स” इत्यादिसूत्रकथनत्वेन द्वे सूत्रे स्तः। ततश्च त्रयोदशमस्थले शब्दनयापेक्षा अवक्तव्यनिरूपणत्वेन “सहणयस्स” इत्यादिना एकं सूत्रमिति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अधुना वेदनावेदनाधिकारे प्रतिज्ञाकथनमुख्यत्वेन प्रथमं सूत्रमवतार्यते —

वेयणावेयणाविहाणे ति।।१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतदधिकारस्मरणकारकं सूत्रमस्ति।

कश्चिदाह —

अधिकारस्य स्मरणं किमर्थं कार्यते ?

कहेंगे। चतुर्थस्थल में “सियाबज्झमाणिआ च” इत्यादि रूप से कथन करने वाले चार सूत्र हैं। पंचम स्थल में “सिया उदिण्णा च” इत्यादि चार सूत्र कहेंगे। छठे स्थल में स्याद् बध्यमानिका, उदीर्णा और उपशान्तपने का प्ररूपण करने वाले “सिया बज्झमाणिआ च” इत्यादि नौ सूत्र हैं। सातवें स्थल में व्यवहारनय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय वेदना स्याद् बध्यमानिका वेदना है इत्यादिरूप से प्ररूपणा करने वाले “व्यवहारणयस्स” इत्यादि पाँच सूत्र कहेंगे। पुनः आठवें स्थल में स्याद् बध्यमानिका और उदीर्णा का प्रतिपादन करने हेतु “सिया बज्झमाणिआ” इत्यादि चार सूत्र हैं। तदनन्तर नवमें स्थल में स्यात् उदीर्णा और उपशान्त दोनों का प्रतिपादन करने वाले “सिया उदिण्णा च” इत्यादि चार सूत्र हैं। तत्पश्चात् दशवें स्थल में स्यात् बध्यमानिका इत्यादि का प्रतिपादन करने हेतु “सिया बज्झमाणिआ च” इत्यादि के द्वारा त्रिसंयोगी भंग को सूचित करने वाले पाँच सूत्र कहेंगे। पुनः ग्यारहवें स्थल में संग्रहनय की अपेक्षा से ज्ञानावरणीय वेदना बध्यमानिका वेदना है ऐसा निरूपण करने हेतु “संगहणयस्स” इत्यादि आठ सूत्र कहें जायेंगे। पुनश्च बारहवें स्थल में ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय वेदना की उदीरणा फल-विपाक इत्यादि कथन की मुख्यता वाले “उजुसुदस्स” इत्यादि दो सूत्र हैं। अन्तिम तेरहवें स्थल में शब्दनय की अपेक्षा अवक्तव्यपने का निरूपण करने वाला “सहणयस्स” इत्यादि एक सूत्र है। इस प्रकार सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब वेदनावेदना अधिकार में प्रतिज्ञा कथन की मुख्यता वाला प्रथम सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

वेदनावेदनाविधान अनुयोगद्वार का यहाँ अधिकार प्रारंभ होता है।।१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यह सूत्र अधिकार का स्मरण कराने वाला है।

कोई शंका करता है कि —

अधिकार का स्मरण किसलिए कराया गया है ?

आचार्यः प्राह —

एतन्न कथयितव्यं, किं च — अन्यथा प्ररूपणायाः फलाभावप्रसंगात्। अर्थोऽयं अधिकारस्मरणकरणेन विना प्ररूपणायाः निष्फलत्वं प्रसज्यते अतः प्रतिज्ञासूत्रमवश्यमेव निरूपयितव्यं।

कश्चित् शिष्यः पृच्छति —

का वेदना ?

आचार्यः प्राह —

वेद्यते वर्तमानकाले वेदिष्यते वा भाविकाले इति वेदनाशब्दसिद्धेः। अष्टविधकर्मपुद्गलस्कंधो वेदना अस्ति।

पुनः कश्चिदाशङ्कते —

नोकर्मपुद्गला अपि वेदिष्यन्ते इति तेषां वेदनासंज्ञा किं न इष्यते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नेष्यते, अष्टविधकर्मप्ररूपणायाः प्ररूप्यमाणायां नोकर्मप्ररूपणायाः संभवाभावात्। अनुभवनं वेदना, वेदनायाः वेदना 'वेदनावेदना' अष्टकर्मपुद्गलस्कंधानुभव इत्यर्थः। विधीयते क्रियते निरूप्यते इति विधानम् वेदनावेदनायाः विधानं वेदनावेदनाविधानम्। तत्र प्ररूपणा क्रियते इति यदुक्तं भवति।

एवं प्रथमस्थले अधिकारनामकथनत्वेन प्रथमं सूत्रमेकं गतम्।

आचार्य इसका समाधान करते हैं कि —

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि उसके बिना प्ररूपणा के निष्फलपने का प्रसंग आता है अतः प्रतिज्ञासूत्र को अवश्य ही निरूपित करना चाहिए।

कोई शिष्य प्रश्न करता है कि —

वेदना किसे कहते हैं ?

आचार्य इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि —

जिसका वर्तमान में अनुभव किया जाता है, या भविष्य में किया जावेगा वह वेदना है, इस निरुक्ति के अनुसार आठ प्रकार के कर्मपुद्गलस्कंध को वेदना कहा गया है।

पुनः कोई शंका करता है —

नोकर्म भी तो अनुभव के विषय होते हैं, फिर उनकी वेदना संज्ञा क्यों अभीष्ट नहीं है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं —

यह ठीक नहीं है, क्योंकि आठ प्रकार के कर्म की प्ररूपणा का निरूपण करते समय नोकर्मप्ररूपणा की संभावना ही नहीं है।

अनुभवन करने का नाम वेदना है। वेदना की भावना वेदनावेदना है, अर्थात् आठ प्रकार के कर्मपुद्गलस्कंधों के अनुभव करने का नाम वेदनावेदना है। 'विधीयते क्रियते प्ररूप्यते इति विधानम्' अर्थात् जो किया जाये या जिसकी प्ररूपणा की जाये, वह विधान है तथा वेदनावेदना का विधान वेदनावेदना विधान है। उसके विषय में प्ररूपणा की जाती है, यह उसका अभिप्राय है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में अधिकार के नाम का कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

संप्रति नैगमनयापेक्षया प्रतिपादनकरणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सर्वं पि कम्मं पयडि त्ति कट्टु णेगमणयस्स।।२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदस्ति तत्सत् स तद्व्ययमतिलङ्घ्य न वर्तते इति नैकगमो नैगमः, गौणमुख्यत्वा-पेक्षया द्वयमपि विषयीकरोति एष नैगमनयः कथ्यते इत्यर्थः। तस्याभिप्रायेण बद्धोदीर्णोपशान्तभेदेन स्थितसर्वमपि कर्म प्रकृतिर्भवति, प्रक्रियते अज्ञानादिकं फलमनया आत्मनः इति प्रकृतिशब्दव्युत्पत्तेः।

अत्र कश्चिदाशङ्कते —

फलदातृत्वेन परिणतः कर्मपुद्गलस्कंधः उदीर्णः। मिथ्यात्वाविरतिप्रमाद-कषाय-योगैः कर्मरूपतामापद्यमानः कर्मणपुद्गलस्कंधो बध्यमानः। द्वाभ्यामाभ्यां व्यतिरिक्तः कर्मपुद्गलस्कंधः उपशान्तः। तत्र उदीर्णस्य भवतु नाम प्रकृतिव्यपदेशः फलदातृत्वेन परिणतत्वात्। न बध्यमानोपशान्तयोः तत्र तदभावादिति?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नैतद् वक्तव्यं, त्रिष्वपि कालेषु प्रकृतिशब्दसिद्धेः। तेन यः कर्मस्कंधो जीवस्य वर्तमानकाले फलं ददाति यश्च दास्यति, एतयोर्द्वयोरपि कर्मस्कंधयोः प्रकृतित्वं सिद्धं।

अथवा, यथा उदीर्ण — उदयप्राप्तं कर्म वर्तमानकाले फलं ददाति, एवं बध्यमानोपशान्तौ अपि

अब नैगमनय की अपेक्षा से प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ —

नैगमनय की अपेक्षा सभी कर्म को प्रकृति मानकर यह प्ररूपणा की जा रही है।।२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जो है वह सत् रूप में विद्यमान है। वह भेद व अभेद दोनों का उल्लंघन करके नहीं रहता, इस प्रकार जो एक को विषय नहीं करता है अर्थात् गौण व मुख्यता की अपेक्षा दोनों को ही विषय करता है, उसे नैगमनय कहते हैं। उस नैगमनय के अभिप्राय से बद्ध, उदीर्ण और उपशान्त के भेद से स्थित सभी कर्म प्रकृतिरूप हैं। 'प्रक्रियते अज्ञानादिकं फलमनया आत्मनः इति प्रकृतिः' अर्थात् जिसके द्वारा आत्मा को अज्ञानादिरूप फल किया अर्थात् दिया जाता है वह प्रकृति है, यह प्रकृति शब्द की व्युत्पत्ति है।

यहाँ कोई शंका करता है —

फलदान स्वरूप से परिणत हुआ कर्मपुद्गलस्कंध उदीर्ण कहा जाता है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग के द्वारा कर्मस्वरूप को प्राप्त होने वाला कर्मण पुद्गलस्कंध बध्यमान कहा जाता है। इन दोनों से भिन्न कर्मपुद्गलस्कंध को उपशान्त कहते हैं। उनमें उदीर्ण कर्मपुद्गलस्कंध की प्रकृति संज्ञा भले ही हो, क्योंकि वह फलदान स्वरूप से परिणत है। बध्यमान और उपशान्त कर्मपुद्गलस्कंधों की यह संज्ञा नहीं बन सकती, क्योंकि उनमें फलदान स्वरूप का अभाव है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं —

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि तीनों ही कालों में प्रकृति शब्द की सिद्धि की गई है। इस कारण जो कर्मस्कंध वर्तमान काल में जीव को फल देता है और जो भविष्य में फल देगा, इन दोनों कर्मस्कंधों की प्रकृति संज्ञा सिद्ध है।

अथवा, जिस प्रकार उदीर्ण — उदय को प्राप्त कर्म वर्तमान काल में फल देता है उसी प्रकार बध्यमान

वर्तमानकालेऽपि फलं दत्तः, ताभ्यां विना कर्मोदयस्याभावात्। उत्कृष्टस्थितिसत्त्वे उत्कृष्टानुभागे च सत्त्वे बध्यमाने च सम्यक्त्व-संयम-संयमासंयमानां ग्रहणाभावात्। उक्तं च —

“उक्कस्सट्ठिदिसंते उक्कस्साणुभागे च संते बज्झमाणे च सम्मत्त-संजम-संजमासंजमाणं गहणाभावादो”।”

भूतभविष्यत्पर्यायाणां वर्तमानाभ्युपगमाद् वा नैगमनये एषा व्युत्पत्तिर्घटते। तेन नैगमनयस्य त्रिविधमपि कर्म प्रकृतिः इति कृत्वा इयं प्ररूपणा क्रियते। नैगमनयः बध्यमान-उदीर्ण-उपशान्तानां त्रयाणामपि कर्मणां वेदनाव्यपदेशमिच्छति इति अत्र भणितं भवति।

संप्रति ज्ञानावरणीयवेदनाबध्यमानिकाप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

णाणावरणीयवेयणा सिया बज्झमाणिया वेयणा॥३॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य सूत्रस्यार्थ उच्यते। तद्यथा — अत्र ‘स्यात्’ शब्दोऽनेकेषु अर्थेषु यद्यपि वर्तते तर्ह्यप्यत्रानेकान्ते गृहीतव्यः।

अत्र कश्चिदाह —

प्रशंसास्तित्वानेकान्त-विधि-विचारणाद्यर्थेषु वर्तमानोऽपि स्याच्छब्दः अमुष्मिन्नेवार्थे गृह्यत इति कथम-वगम्यते ?

आचार्यः प्राह —

प्रकरणात्। या ज्ञानावरणीयस्य वेदना सा प्ररूप्यते।

और उपशम भाव को प्राप्त कर्म वर्तमान काल में भी फल देते हैं, क्योंकि उनके बिना कर्मोदय का अभाव है। क्योंकि, उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व और उत्कृष्ट अनुभाव सत्त्व के होने पर तथा उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट अनुभाग के बंधने पर सम्यक्त्व, संयम एवं संयमासंयम का ग्रहण संभव नहीं है।

कहा भी है —

“उत्कृष्ट स्थिति की सत्ता और उत्कृष्ट अनुभाग की सत्ता होने पर तथा उत्कृष्ट स्थिति और अनुभाग का बंध होने पर सम्यक्त्व-संयम तथा संयमासंयम के ग्रहण का अभाव देखा जाता है।”

अथवा, भूत व भविष्यत् पर्यायों को वर्तमान रूप स्वीकार कर लेने से नैगमनय में यह व्युत्पत्ति घट जाती है इसलिए नैगमनय की अपेक्षा उक्त तीन प्रकार के कर्म को प्रकृति मानकर यह प्ररूपणा की जा रही है। अभिप्राय यह है कि नैगमनय बध्यमान, उदीर्ण और उपशान्त इन तीनों ही कर्मों की वेदना संज्ञा स्वीकार करता है।

अब ज्ञानावरणीय वेदना की बध्यमानिका प्रतिपादित करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

ज्ञानावरणीय वेदना कथंचित् बध्यमान वेदना है॥३॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस सूत्र का अर्थ कहा जाता है। वह इस प्रकार है —

यहाँ ‘स्यात्’ शब्द यद्यपि अनेक अर्थों में वर्तमान है तो भी यहाँ उसे अनेकांत अर्थ में ही ग्रहण करना चाहिए।

यहाँ कोई शंका करता है —

प्रशंसा, अस्तित्व, अनेकान्त, विधि और विचारणा आदि अर्थों में वर्तमान भी ‘स्यात्’ शब्द अनेकांत अर्थ में ही ग्रहण किया जाता है, यह कैसे ज्ञात होता है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं —

किमर्थं ज्ञानावरणीयवेदना इति निर्दिश्यते ?

प्ररूपयिष्यमाणप्रकृतिस्मारणार्थं। स्याद् बध्यमानिका वेदना भवति, तस्याः अज्ञानादिफलोत्पत्तिदर्शनात्।

पुनः कश्चित् पृच्छति —

बध्यमानस्य कर्मणः फलमकुर्वतः कथं वेदनाव्यपदेशः ?

आचार्यदेव उत्तरयति —

नैतद् वक्तव्यं, उत्तरकाले फलदातृत्वस्यान्यथानुपपत्तेः बंधसमयेऽपि वेदनाभावसिद्धेः।

पुनरपि आशङ्कते —

अत्र कुत एकवचननिर्देशः ?

आचार्यः समाधत्ते —

जीव-प्रकृति-समयानां बहुत्वेन विना एकत्वार्पणायाः एकवचन निर्देशः क्रियते। अत्र जीवप्रकृत्योः एकवचन-बहुवचनानि स्थापयित्वा कालस्य एकवचनं च $\begin{matrix} १ & १ & १ \\ ३ & ३ & ३ \end{matrix}$ एतस्य सूत्रस्य आलापः क्रियते।

तद्यथा — एकजीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा स्यात् बध्यमानिका वेदनास्ति।

सूत्रेण अनिर्दिष्टानां जीव-प्रकृति-समयानां कथमत्र निर्देशः क्रियते ?

वह प्रकरण से ज्ञात हो जाता है।

जो ज्ञानावरणीय की वेदना है उसकी प्ररूपणा की जाती है।

शंका — सूत्र में “ज्ञानावरणीय वेदना” यह निर्देश किसलिए किया गया है ?

समाधान — उसका निर्देश प्ररूपित की जाने वाली प्रकृति का स्मरण कराने के लिए किया गया है, कथंचित् बध्यमान वेदना होती है, क्योंकि उससे अज्ञानादि रूप फल की उत्पत्ति देखी जाती है।

पुनः कोई पूछता है —

चूँकि बांधा जाने वाला कर्म उस समय फल को करता नहीं है अतः उसकी वेदना संज्ञा कैसे हो सकती है ?

आचार्यदेव उत्तर देते हैं —

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि इसके बिना वह उत्तरकाल में फलदाता नहीं बन सकता अतएव बंध समय में भी उसे वेदनाव्यपदेश सिद्ध है।

पुनरपि कोई शंका करता है —

यहाँ एकवचन का निर्देश क्यों किया गया है ?

आचार्य इसका समाधान करते हैं —

जीव, प्रकृति और समय इनके बहुत्व की अपेक्षा न कर एकत्व की मुख्यता से एकवचन का निर्देश किया गया है।

यहाँ जीव व प्रकृति के एकवचन व बहुवचन को तथा काल के एकवचन को स्थापित कर $\begin{matrix} १ & १ & १ \\ ३ & ३ & ३ \end{matrix}$ इस सूत्र का आलाप कहते हैं —

वह इस प्रकार है — एक समय में बांधी गई एक जीव की एक प्रकृति कथंचित् बध्यमान वेदना है।

शंका — सूत्र में अनिर्दिष्ट जीव, प्रकृति और समय, इनका निर्देश यहाँ कैसे किया जा रहा है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं —

आचार्येण कथ्यते — प्रकृतिस्तावत् सूत्रोद्दिष्टा चेव 'ज्ञानावरणीयवेयणा' इति सूत्रे भणितत्वात्। समयोऽपि सूत्रनिर्दिष्टश्चैव, "बज्जमाणिता" इति वर्तमानकालनिर्देशात्। तथा जीवोऽपि सूत्रोद्दिष्टः, मिथ्यात्वा-संयम-कषाय-योगप्रत्ययपरिणतजीवेन विना बंधो नास्तीति प्रत्ययविधाने प्ररूपितत्वात्। ततो जीवप्रकृतिसमयाः सूत्रनिबद्धाश्चैवेति द्रष्टव्याः।

कालस्य बहुवचनमत्र किञ्च इष्यते ?

नेष्यते, बंधस्य द्वितीयसमये उपशान्तभावमापद्यमानस्य एकसमयं मुक्त्वा बहूनां समयानामनुपलंभात्। अत्र जीव-प्रकृति-समय-एकवचन-बहुवचनानामेषः प्रस्तारः —

भाषायां प्रस्तारः —

११२२	जीव	एक	एक	अनेक	अनेक
१२१२	प्रकृति	एक	अनेक	एक	अनेक
११११	समय	एक	एक	एक	एक

अत्र एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिका इति एतत्प्रथमप्रस्तारालापमाश्रित्य सूत्रमिदमवस्थितम्।

संप्रति उदीर्णवेदनाप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया उदिण्णा वेयणा॥४॥

प्रकृति का निर्देश सूत्र में किया ही गया है, क्योंकि 'ज्ञानावरणीय वेदना' ऐसा सूत्र में कहा गया है। समय भी सूत्रनिर्दिष्ट ही है, क्योंकि 'बध्यमान' इस प्रकार से वर्तमान काल का निर्देश किया गया है। जीव भी सूत्रोद्दिष्ट ही है, क्योंकि मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग प्रत्यय से परिणत जीव के बिना बंध नहीं हो सकता, ऐसी प्ररूपणा प्रत्ययविधान में की जा चुकी है इसलिए जीव, प्रकृति और समय, ये सूत्र निबद्ध ही हैं ऐसा समझना चाहिए।

शंका — यहाँ काल को बहुवचन क्यों नहीं स्वीकार किया गया है ?

समाधान — नहीं किया गया है, क्योंकि बंध के द्वितीय समय में उपशान्तभाव को प्राप्त होने वाले कर्मबंध के एक समय को छोड़कर बहुत समय पाये नहीं जाते।

यहाँ जीव, प्रकृति और समय के एकवचन व बहुवचन का यह प्रस्तार है —

११२२	जीव	एक	एक	अनेक	अनेक
१२१२	प्रकृति	एक	अनेक	एक	अनेक
११११	समय	एक	एक	एक	एक

यहाँ एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान है, इस प्रकार इस प्रथम प्रस्तार के आलाप का आश्रय करके यह सूत्र अवस्थित है।

अब उदीर्ण वेदना का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

ज्ञानावरणीय की वेदना कथंचित् उदीर्ण वेदना है॥४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ‘ज्ञानावरणीयवेयणा’ इति सर्वत्रानुवर्तते —

बंधसूत्रानन्तरं उदीर्णसूत्रं किमर्थमुच्यते ?

नैतद् वक्तव्यं, किं च — बध्यमानोदीर्णव्यतिरिक्तः सर्वः कर्मपुद्गलस्कंधः उपशान्तसंज्ञितः इति ज्ञापनार्थं तदुक्तेः। अत्र जीव-प्रकृति-समयानां एकवचन-बहुवचनानि स्थापयित्वा

१	१	१
२	२	२

पुनः अत्र अक्षपरावर्तनं

कृत्वा उत्पादितोदीर्णप्रस्तारसंदृष्टिः एषा जीव-प्रकृति-समयप्रतिबद्धा।

१	१	१	१	२	२	२	२
१	१	२	२	१	१	२	२
१	२	१	२	१	२	१	२

अत्र उपरिम-

पंक्तिः जीवानां, मध्यमपंक्तिः प्रकृतीनां, अधस्तनपंक्तिः समयानां। अत्र एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रतिबद्धा स्यात् उदीर्णा वेदनास्ति। एतेन प्रथमालापेन एतत्सूत्रं प्ररूपितं भवति।

अत्र उदीर्णं प्ररूप्यमाणे कथं कालस्य बहुत्वं लभ्यते ?

नैतद् वक्तव्यं, किंच-अनेकेषु समयेषु बद्धानामेकसमये उदयोपलंभात्।

संप्रति उपशान्तवेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया उवसंता वेयणा॥५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — “ज्ञानावरणीय वेदना” इसकी सब सूत्रों में अनुवृत्ति चली आ रही है।

शंका — बंध सूत्र के अनन्तर उदीर्ण सूत्र को क्यों कहा गया है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि बध्यमान और उदीर्ण से भिन्न सब कर्मपुद्गलस्कंध की उपशान्त संज्ञा है, यह बतलाने के लिए बंधसूत्र के पश्चात् उदीर्णसूत्र कहा गया है।

यहाँ जीव, प्रकृति और समय के एकवचन व बहुवचन को स्थापित कर

१	१	१
२	२	२

पश्चात् अक्षपरावर्तन

करके उत्पन्न की गई उदीर्ण कर्मपुद्गलस्कंध की जीव, प्रकृति एवं समय से संबद्ध प्रस्तारित यह संदृष्टि है —

जीव	एक	एक	एक	एक	अनेक	अनेक	अनेक	अनेक
प्रकृति	एक	एक	अनेक	अनेक	एक	एक	अनेक	अनेक
समय	एक	अनेक	एक	अनेक	एक	अनेक	एक	अनेक

यहाँ ऊपर की पंक्ति जीवों की है, मध्य की पंक्ति प्रकृतियों की है और अधस्तन पंक्ति समयों की है। यहाँ एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई कथंचित् उदीर्ण वेदना है। इस प्रथम आलाप से इस सूत्र की प्ररूपणा हो जाती है।

शंका — यहाँ उदीर्ण की प्ररूपणा करते समय काल का बहुत्व कैसे पाया जाता है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि अनेक समयों में बांधी गई प्रकृतियों का एक समय में उदय पाया जाता है।

अब उपशान्तवेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

ज्ञानावरणीयवेदना कथंचित् उपशान्त वेदना है॥५॥

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — पुनः एतस्य सूत्रस्यार्थे भण्यमाणे जीव-प्रकृति-समयानामेक-बहुवचनानि स्थापयित्वा

१	१	१
२	२	२

 अक्षपरावर्तनं कृत्वा प्रस्तार उत्पादयितव्यः। एतस्य संदृष्टिः जीवप्रकृति-समयप्रबद्धा

एषा

१	१	१	२	२	२
१	१	२	१	१	२
१	२	१	१	२	१

 ।

जीव	एक	एक	एक	एक	अनेक	अनेक	अनेक	अनेक
प्रकृति	एक	एक	अनेक	अनेक	एक	एक	अनेक	अनेक
समय	एक	अनेक	एक	अनेक	एक	अनेक	एक	अनेक

अत्र उपरिमपंक्तिः जीवानां, मध्यमपंक्तिः प्रकृतीनां, अधस्तनपंक्तिः समयानां। अत्र एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा स्यादुपशांता वेदना इति एतेन प्रथमालापेन एतत्सूत्रं प्ररूपितं भवति। अनेकसमयप्रबद्धानां सत्त्वस्वरूपेण उपलंभात् अत्र कालबहुत्वमुपलभ्यते। शेषं सुगमं।

एवं बध्यमान-उदीर्ण-उपशान्तानामेकसंयोगस्य एकवचनसूत्रालापः समाप्तः।

संप्रति बध्यमानवेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया बज्झमाणियाओ वेयणाओ।।६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — अत्र एतस्य एकसंयोग-बहुवचनप्रथमसूत्रस्य अर्थे भण्यमाने बध्यमानिकायाः जीवप्रकृत्योः एकबहुवचनानि समयस्य एकवचनं च स्थापयित्वा तेषां त्रिसंयोगेन जातप्रस्तारं च स्थापयित्वा

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — पुनः इस सूत्र के अर्थ की प्ररूपणा करते समय जीव, प्रकृति और समय, इनके एकवचन व बहुवचन को स्थापित कर

१	१	१
२	२	२

 अक्षपरावर्तन करके प्रस्तार को उत्पन्न कराना चाहिए। इसकी जीव, प्रकृति और समय से संबंधित संदृष्टि यह है —

जीव	एक	एक	एक	एक	अनेक	अनेक	अनेक	अनेक
प्रकृति	एक	एक	अनेक	अनेक	एक	एक	अनेक	अनेक
समय	एक	अनेक	एक	अनेक	एक	अनेक	एक	अनेक

इसमें ऊपर की पंक्ति जीवों की, मध्य पंक्ति प्रकृतियों की और अधस्तन पंक्ति समयों की है। यहाँ एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई कथंचित् उपशान्त वेदना है, इस प्रकार इस प्रथम आलाप से इस सूत्र की प्ररूपणा हो जाती है। चूँकि अनेक समयों में बांधी गई प्रकृतियाँ सत् स्वरूप से पायी जाती हैं अतः यहाँ कालबहुत्व उपलब्ध है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार बध्यमान, उदीर्ण और उपशांत, इनके एक संयोगजनित एकवचन सूत्र का आलाप समाप्त हुआ।

अब बध्यमान वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ —

कथंचित् बध्यमान वेदनाएँ होती हैं।।६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ इस सूत्र के द्वारा एक संयोग-बहुवचन से संबंधित अर्थ की प्ररूपणा करते समय बध्यमान वेदना में जीव और प्रकृति के एक व बहुवचनों को तथा समय के एकवचन को स्थापित कर उनके त्रिसंयोग से उत्पन्न प्रस्तार को भी स्थापित करके इस सूत्र के अर्थ की प्ररूपणा की जाती है।

एतस्य सूत्रस्यार्थप्ररूपणा क्रियते। तद्यथा — समयगतं तावद् बहुत्वं नास्ति, बध्यमानस्य कर्मणः तदसंभवात्। जीवेषु प्रकृतिषु च तत्र बहुत्वं लभ्यते। तत्र बध्यमानिकाया वेदनाया बहुत्वमिच्छति नैगमनयः। तेनैतस्य प्रथमोच्चारणं मुक्त्वा शेषास्तिस्रः उच्चारणाः भवन्ति। ताः कथ्यन्ते—

एकस्य जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः कथंचित् बध्यमानिका वेदनाः। अत्र एका उच्चारणशलाका लभ्यते (१)। अनेकैः जीवैः एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा कथंचित् बध्यमानिका वेदनाः। एवं द्वे उच्चारणशलाके स्तः (२)।

अत्र कश्चिदाह —

कथं जीवबहुत्वेन वेदनाबहुत्वं ?

आचार्यः प्राह —

नैतद्, एकस्या वेदनाया जीवभेदेन भेदमुपगताया बहुत्वविरोधाभावात्। अथवा, अनेकेषां जीवानां अनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः कथंचित् बध्यमानिका वेदनाः सन्ति एवं तिस्रः उच्चारणशलाकाः (३)।

एवं बध्यमानिकाया बहुवचनसूत्रालापः समाप्तः।

अधुना उदीर्णवेदनाप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया उदिण्णाओ वेयणाओ॥७॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य उदीर्णबहुवचनसूत्रस्य आलापे भण्यमाने जीव-प्रकृति-समयानां

वह इस प्रकार है —

यहाँ समयगत बहुत्व नहीं है, क्योंकि बध्यमान कर्म के उसकी संभावना नहीं है। जीवों और प्रकृतियों में वहाँ बहुत्व पाया जाता है। नैगमनय बध्यमान वेदना के बहुत्व को स्वीकार करता है इसलिए इसके प्रथम उच्चारण को छोड़कर शेष तीन उच्चारणाएँ होती हैं। उनको कहते हैं —

एक जीव की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई कथंचित् बध्यमान वेदनाएँ हैं। यहाँ एक उच्चारण शलाका पायी जाती है (१)।

अनेक जीवों के द्वारा एक समय में बांधी गई एक प्रकृति कथंचित् बध्यमान वेदनाएँ हैं। इस प्रकार दो उच्चारण शलाकाएँ हुई (२)।

यहाँ कोई शंका करता है —

जीवों के बहुत्व से वेदना का बहुत्व कैसे संभव है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं —

ऐसा नहीं है, क्योंकि जीवों के भेद से भेद को प्राप्त हुई एक वेदना के बहुत होने में कोई विरोध नहीं है। अथवा, अनेक जीवों की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई कथंचित् बध्यमान वेदनाएँ हैं। इस प्रकार तीन उच्चारण शलाकाएँ हुई (३)।

इस प्रकार बध्यमान के बहुवचन संबंधी सूत्र का आलाप समाप्त हुआ।

अब उदीर्णवेदना का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

कथंचित् उदीर्ण वेदनाएँ होती हैं॥७॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस उदीर्ण वेदनाओं संबंधी बहुवचन सूत्र के आलापों की प्ररूपणा करते समय

एकबहुवचनानि स्थापयित्वा तेषामक्षसंचारजनितप्रस्तारं च स्थापयित्वा तत्र एकवचनालापं पूर्वप्ररूपितं मुक्त्वा शेषसप्तालापान् कथयन्ति। तद्यथा —

एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा कथंचित् उदीर्णा वेदनाः। अत्र यद्यपि एकेन जीवेन एका चैव प्रकृतिः उदये निक्षिप्ता तर्ह्यपि तस्या बहुत्वं भवति, अनेकेषु समयेषु प्रबद्धत्वात्। अत्र एका उच्चारणशलाका भवति (१)।

अथवा, एकस्य जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः कथंचित् उदीर्णा वेदनाः सन्ति। एवं द्वे उच्चारणशलाके स्तः (२)।

अथवा, एकस्य जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः अनेकसमयप्रबद्धाः कथंचित् उदीर्णा वेदनाः सन्ति। एवं तिस्रः उच्चारणाः (३)।

अथवा, अनेकेषां जीवानां एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा कथंचित् उदीर्णा वेदनाः सन्ति। अत्र जीवबहुत्वमपेक्ष्य उदीर्णबहुत्वं गृहीतं एवं चतस्रः उच्चारणाः सन्ति (४)।

अथवा, अनेकेषां जीवानामेका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा कथंचित् उदीर्णा वेदनाः। एवं पञ्च उच्चारणाः (५)।

अथवा, अनेकेषां जीवानामनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः कथंचित् उदीर्णा वेदनाः सन्ति। एवं षट् उच्चारणाः। (६)।

अथवा, अनेकेषां जीवानां अनेकाः प्रकृतयः अनेकसमयप्रबद्धाः कथंचित् उदीर्णा वेदनाः। एवं सप्त उच्चारणाः (७)।

एवं उदीर्णस्य बहुवचनसूत्रप्ररूपणा गता।

जीव-प्रकृति एवं समय के एक व बहुवचनों को स्थापित कर तथा उनके अक्षसञ्चार से उत्पन्न प्रस्तार को भी स्थापित करके उनमें से पूर्व में कहे गये एकवचन आलाप को छोड़कर शेष सात आलाप को कहते हैं। वह इस प्रकार हैं—

एक जीव की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई कथंचित् उदीर्ण वेदनाएँ हैं। यद्यपि यहाँ एक जीव के द्वारा एक ही प्रकृति उदय में निक्षिप्त की गई है तो भी वह बहुत होती है, क्योंकि वह अनेक समयों में बांधी गई है। यहाँ एक उच्चारण शलाका हुई (१)।

अथवा, एक जीव की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई, कथंचित् उदीर्ण वेदनाएँ हैं।

इस प्रकार दो उच्चारणशलाकाएँ हुई (२)।

अथवा, एक जीव की अनेक प्रकृतियाँ अनेक समयों में बांधी गई कथंचित् उदीर्ण वेदनाएँ हैं।

इस प्रकार तीन उच्चारणाएँ हुई (३)।

अथवा, अनेक जीवों की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई कथंचित् उदीर्ण वेदनाएँ हैं। यहाँ जीवों के बहुत्व की अपेक्षा उदीर्ण वेदना का बहुत्व ग्रहण किया गया है। इस प्रकार चार उच्चारणाएँ हुई (४)।

अथवा, अनेक जीवों की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई कथंचित् उदीर्ण वेदनाएँ हैं।

इस प्रकार पाँच उच्चारणाएँ हुई (५)।

अथवा, अनेक जीवों की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई कथंचित् उदीर्ण वेदनाएँ हैं।

इस प्रकार छह उच्चारणाएँ हुई (६)।

अथवा, अनेक जीवों की अनेक प्रकृतियाँ अनेक समयों में बांधी गई कथंचित् उदीर्ण वेदनाएँ हैं। इस प्रकार सात उच्चारणाएँ हुई (७)।

इस प्रकार उदीर्ण वेदना के बहुवचन संबंधी सूत्र की प्ररूपणा समाप्त हुई।

संप्रति उपशांतवेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया उवसंताओ वेयणाओ॥८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य उपशांतबहुवचनसूत्रस्यालापे भण्यमाने जीव-प्रकृति-समयानामेक-बहुवचनानि स्थापयित्वा तेषामक्षसंचारजनितप्रस्तारं च स्थापयित्वा तत्र एकवचनप्रथमालापं मुक्त्वा शेषसप्तभिः विकल्पैः एतस्य सूत्रस्यार्थप्ररूपणा कर्तव्या। तद्यथा — एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिरनेकसमयप्रबद्धा कथंचित् उपशान्ता वेदनाः। एवमेकोच्चारणा (१)।

एषा यद्यपि एकस्य जीवस्य एका चैव प्रकृतिर्भवति, तर्ह्यपि अनेकेषु समयेषु बद्धत्वात् उपशान्तवेदनाया बहुत्वं युज्यते।

अथवा, एकस्य जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः कथंचित् उपशान्ता वेदनाः। एवं द्वे उच्चारणे स्तः (२)।

अथवा, एकस्य जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः अनेकसमयप्रबद्धाः कथंचित् उपशांता वेदनाः। एवं तिस्रः उच्चारणाः (३)।

अथवा, अनेकेषां जीवानामेका प्रकृतिरेकसमयप्रबद्धा कथंचित् उपशान्ता वेदनाः। एवं चतस्रः उच्चारणाः (४)।

अत्र जीवबहुत्वमपेक्ष्य उपशांतवेदनाया एकसमयप्रबद्ध-एकप्रकृतेः बहुत्वं गृहीतं।

अब उपशान्तवेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

कथंचित् उपशान्त वेदनाएँ होती हैं॥८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस उपशान्तवेदना के बहुवचन संबंधी सूत्र के आलापों का कथन करते समय जीव, प्रकृति और समय इनके एक व बहुवचनों को स्थापित करके तथा उनके अक्षसंचार से उत्पन्न प्रस्तार को भी स्थापित करके उनमें एकवचनरूप प्रथम आलाप को छोड़कर शेष सात विकल्पों द्वारा इस सूत्र के अर्थ की प्ररूपणा करनी चाहिए। वह इस प्रकार है —

एक जीव की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई कथंचित् उपशांत वेदनाओं स्वरूप है। इस प्रकार एक उच्चारणा हुई (१)।

यद्यपि यह एक जीव की एक ही प्रकृति है, तो भी अनेक समयों में बांधे जाने के कारण यहाँ उपशांत वेदना का बहुत्व युक्तियुक्त है।

अथवा, एक जीव की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई कथंचित् उपशांत वेदनाएँ हैं। इस प्रकार दो उच्चारणाएँ हुई (२)।

अथवा, एक जीव की अनेक प्रकृतियाँ अनेक समयों में बांधी गई कथंचित् उपशांत वेदनाएँ हैं। इस प्रकार तीन उच्चारणाएँ हुई (३)।

अथवा, अनेक जीवों की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई कथंचित् उपशांत वेदनाओं स्वरूप है। इस प्रकार चार उच्चारणाएँ हुई (४)।

यहाँ जीव बहुत्व की अपेक्षा करके उपशांत वेदनारूप एक समय में बांधी गई एक प्रकृति के बहुत्व को ग्रहण किया गया है।

अथवा, अनेकेषां जीवानामेका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा कथंचित् उपशांता वेदनाः। एवं पंच उच्चारणाः (५)।

अथवा, अनेकेषां जीवानामनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः कथंचित् उपशांता वेदनाः। एवं षट् उच्चारणाः (६)।

अथवा, अनेकेषां जीवानामनेकाः प्रकृतयः अनेकसमयप्रबद्धाः स्यात् उपशान्ता वेदनाः। एवं सप्त उच्चारणाः (७)।

एवं उपशान्तवेदनायाः सप्तबहुवचनभंगाः प्ररूपिताः।

एवं बध्यमान-उदीर्ण-उपशान्तानामेक-बहुवचनप्रतिबद्धसूत्रषट्कं प्ररूपितम्।

एवं द्वितीयस्थले नैगमनयापेक्षया कथनं प्रतिज्ञाप्य ज्ञानावरणीयवेदना कथंचित् बध्यमानिकेति प्रारंभ्य उदीर्ण-उपशांतादिकथनरूपेण सप्तसूत्राणि गतानि।

संप्रति द्विसंयोगभंगप्ररूपणार्थं उत्तरसूत्रमवतार्यते —

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च।।९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — वेदना इति अनुवर्तते। तेन वेदनाशब्दः एतस्य सूत्रस्य अवयवभावेन द्रष्टव्यः। एतस्य सूत्रस्यार्थं भण्यमाने बध्यमान-उदीर्णानां द्विसंयोगसूत्रप्रस्तारं

११	२२
१२	१२

 स्थापयित्वा पुनः बध्यमानवेदनाया जीवप्रकृतिसमयप्रस्तारं —

अथवा, अनेक जीवों की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई कथंचित् उपशांत वेदनाएं रूप हैं। इस प्रकार पाँच उच्चारणाएँ हुई (५)।

अथवा अनेक जीवों की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई कथंचित् उपशांत वेदनाएँ हैं। इस प्रकार छह उच्चारणाएँ हुई (६)।

अथवा, अनेक जीवों की अनेक प्रकृतियाँ अनेक समयों में बांधी गई कथंचित् उपशांत वेदनाएँ हैं। इस प्रकार सात उच्चारणाएँ हुई (७)।

इस प्रकार उपशांत वेदना संबंधी सात बहुवचन भंगों की प्ररूपणा की गई है।

इस प्रकार से बध्यमान, उदीर्ण और उपशांत वेदना के एक व बहुवचनों से संबद्ध छह सूत्रों की प्ररूपणा की गई है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में नैगमनय की अपेक्षा से कथन करने की प्रतिज्ञा करके ज्ञानावरणीय वेदना कथंचित् बध्यमानिक है, ऐसा प्रारंभ करके उदीर्ण-उपशान्त आदि कथनरूप से सात सूत्र पूर्ण हुए।

अब द्विसंयोगभंग की प्ररूपणा हेतु उत्तर सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

कथंचित् बध्यमान और उदीर्ण वेदना है।।९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ 'वेदना' शब्द अनुवृत्ति में चला आ रहा है इसलिए वेदना शब्द को इस सूत्र के अवयवरूप समझना चाहिए। इस सूत्र के अर्थ की प्ररूपणा करते समय बध्यमान और उदीर्ण वेदना के द्विसंयोग सूत्रप्रस्तार

बध्यमान	एक	एक	अनेक	अनेक
उदीर्ण	एक	अनेक	एक	अनेक

को स्थापित करके जीव, प्रकृति व समय

११	२२
१२	१२
११	११

पुनः उदीर्णायाः जीव-प्रकृति-समयानामेक बहुवचनप्रस्तारं

च स्थापयित्वा

११ ११	२२ २२
११ २२	११ २२
१२ १२	१२ १२

पुनः पश्चादुच्यते।

तद्यथा — एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिका तस्यैव जीवस्य एकप्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा उदीर्णा कथंचित् बध्यमानिका च उदीर्णा च वेदना। एवं द्विसंयोगप्रथमसूत्रस्य एका चैव उच्चारणा भवति।

संप्रति बध्यमानोदीर्णारूपद्विसंयोगभंगनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च।।१०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अत्र वेदना इति अनुवर्तते-तेन वेदनाशब्दोऽसन्नपि अध्याहारयितव्यः, कथंचित् बध्यमानिकाः च उदीर्णाश्च वेदना इति। संप्रति एतस्य सूत्रस्यार्थप्ररूपणा क्रियते। तद्यथा —

एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिका, तस्यैव जीवस्य एका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा उदीर्णाः कथंचित् बध्यमानिकाश्च उदीर्णाश्च वेदना। एवं द्विसंयोगद्वितीयसूत्रस्य प्रथमोच्चारणा (१)।

जीव	एक	एक	अनेक	अनेक
प्रकृति	एक	अनेक	एक	अनेक
समय	एक	एक	एक	एक

इनके प्रस्तार को तथा उदीर्ण वेदना संबंधी जीव, प्रकृति और समय इनके एक व बहुवचनों के प्रस्तार को भी स्थापित करके पुनः पश्चात् प्ररूपणा की जाती है।

जीव	एक	एक	एक	एक	अनेक	अनेक	अनेक	अनेक
प्रकृति	एक	एक	अनेक	अनेक	एक	एक	अनेक	अनेक
समय	एक	अनेक	एक	अनेक	एक	अनेक	एक	अनेक

वह इस प्रकार है —

एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान और उसी जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई उदीर्ण, यह कथंचित् बध्यमान और उदीर्ण वेदना है। इस प्रकार द्विसंयोगरूप प्रथम सूत्र की एक ही उच्चारणा होती है।

अब बध्यमान और उदीर्णारूप द्विसंयोगीभंग का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ —

कथंचित् बध्यमान (एक) और उदीर्ण (अनेक) वेदनाएँ हैं।।१०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ वेदना शब्द की अनुवृत्ति चली आ रही है इसलिए वेदना शब्द के न होते हुए भी उसका अध्याहार करना चाहिए-कथंचित् बध्यमान और उदीर्ण वेदनाएँ हैं। अब इस सूत्र के अर्थ की प्ररूपणा की जाती है। वह इस प्रकार है —

एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान, उसी जीव की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उदीर्ण, इस प्रकार कथंचित् बध्यमान और उदीर्ण वेदनाएँ हैं। इस प्रकार द्विसंयोगरूप द्वितीय सूत्र की प्रथम उच्चारणा हुई (१)।

अथवा, एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिका, तस्यैव जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धा उदीर्णाः कथंचित् बध्यमानिका च उदीर्णाश्च वेदना। द्वौ भंगौ स्तः (२)।

अथवा, एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिका, तस्यैव जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः अनेकसमयप्रबद्धाः उदीर्णाः कथंचित् बध्यमानिका च उदीर्णाश्च वेदना। एवं त्रयो भंगाः (३)।

पुनः उदीर्णाया द्वितीयसूत्रस्य शेषबहुवचनभंगा न लभ्यन्ते।

कुतः?

बध्यमान-उदीर्णानामाधारभूतैकजीवाभावात्।

संप्रति बध्यमानोदीर्णवेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया बज्झमाणियाओ च उदिण्णा च।।११।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — वेदनेति अनुवर्तते। एतस्य सूत्रस्य भंगा उच्यन्ते। तद्यथा — एकस्य जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिकाः, तस्यैव जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा उदीर्णा, कथंचित् बध्यमानिका वेदनाश्च उदीर्णा च वेदनाः। एवं तृतीयसूत्रस्य एकश्चैव भंगः (१)। पुनः बध्यमानोदीर्णानां द्विसंयोगतृतीयसूत्रस्य शेषभंगा न लभ्यन्ते, जीवैः व्यधिकरणत्वप्रसंगात्।

पुनश्च बध्यमानोदीर्णवेदनाप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया बज्झमाणियाओ च उदिण्णाओ च।।१२।।

अथवा एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान, उसी जीव की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई उदीर्ण, कथंचित् बध्यमान और उदीर्ण वेदनाएं हैं। ये दो भंग हुए (२)।

अथवा, एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान, उसी जीव की अनेक प्रकृतियाँ अनेक समयों में बांधी गई उदीर्ण, कथंचित् बध्यमान और उदीर्ण वेदनाएं हैं। इस प्रकार तीन भंग हुए (३)।

पुनः उदीर्ण वेदना संबंधी द्वितीय सूत्र के शेष बहुवचन भंग नहीं पाये जाते हैं।

ऐसा क्यों है ?

क्योंकि, बध्यमान और उदीर्ण वेदना के आधारभूत एक जीव का अभाव पाया जाता है।

अब बध्यमान उदीर्ण वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार किया जा रहा है —

सूत्रार्थ —

कथंचित् बध्यमान वेदनाएं और उदीर्ण वेदना है।।११।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — वेदना की अनुवृत्ति पीछे से चली आ रही है। इस सूत्र के भंग कहते हैं — एक जीव की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई बध्यमान, उसी जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई उदीर्ण, कथंचित् बध्यमान वेदनाएं और उदीर्ण वेदना है। इस प्रकार तृतीय सूत्र का एक ही भंग होता है (१)।

पुनः बध्यमान और उदीर्ण संबंधी द्विसंयोग वाले तृतीय सूत्र के शेष भंग नहीं पाये जाते, क्योंकि जीवों के साथ व्यधिकरणता (अर्थात् दोनों का आधार एक नहीं) का प्रसंग आता है।

अब बध्यमान उदीर्ण वेदना का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

कथंचित् बध्यमान और उदीर्ण वेदनाएं होती हैं।।१२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — वेदनेति अनुवर्तते। एतस्य बध्यमानोदीर्णानां द्विसंयोगचतुर्थसूत्रस्यार्थः उच्यते। तद्यथा —

एकस्य जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिकाः, तस्यैव जीवस्य एका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा उदीर्णाः कथंचित् बध्यमानिकाश्च उदीर्णाश्च वेदनाः। एवं चतुर्थसूत्रस्य प्रथमभंगः (१)।

अथवा, एकस्य जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिकाः, तस्यैव जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः उदीर्णाः कथंचित् बध्यमानिकाश्च उदीर्णाश्च वेदनाः। एषः द्वितीयो भंगः (२)।

अथवा, एकस्य जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः बध्यमानिकाः, तस्य चैव जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः अनेकसमयप्रबद्धाः उदीर्णाः कथंचित् बध्यमानिका वेदनाश्च उदीर्णाश्च वेदनाः। एवं चतुर्थसूत्रस्य त्रयो भंगाः (३)।

संप्रति बध्यमानोदीर्णानां एकजीवमाश्रित्य त्रयश्चैव भंगा भवन्ति अधिका नोत्पद्यन्ते, बध्यमानोदीर्णानां व्यधिकरणतापत्तेः।

संप्रति एतस्यैव द्विसंयोगचतुर्थसूत्रस्य बध्यमानोदीर्णानां नानाजीवानाश्रित्य शेषभंगा वक्ष्यन्ते। तद्यथा — अनेकेषां जीवानां एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिकाः, तेषामेव जीवानामेका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा उदीर्णाः कथंचित् बध्यमानिकाश्च उदीर्णाश्च वेदनाः। एवं चतुर्थसूत्रस्य चत्वारो भंगाः (४)।

अथवा, अनेकेषां जीवानामेका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा च बध्यमानिकाः तेषामेव जीवानामेका प्रकृतिरनेकसमयप्रबद्धा उदीर्णाः कथंचित् बध्यमानिकाश्चोदीर्णाश्च वेदनाः। एवं चतुर्थसूत्रस्य पञ्च भंगाः (५)।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — 'वेदना' शब्द की अनुवृत्ति चली ही आ रही है। अब बध्यमान और उदीर्ण संबंधी द्विसंयोग वाले इस चतुर्थ सूत्र का अर्थ कहते हैं।

वह इस प्रकार है —

एक जीव की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई बध्यमान उसी जीव की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उदीर्ण, कथंचित् बध्यमान और उदीर्ण वेदनाएं हैं। इस प्रकार चतुर्थ सूत्र का प्रथम भंग हुआ (१)।

अथवा एक जीव की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई बध्यमान वेदनाएं उसी जीव के अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई उदीर्ण वेदनाएं कथंचित् बध्यमान और उदीर्ण वेदनाएं हैं। यह द्वितीय भंग हुआ (२)।

अथवा एक जीव की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई बध्यमान वेदनाएं उसी जीव की अनेक प्रकृतियाँ अनेक समयों में बांधी गई उदीर्ण वेदनाएं कथंचित् बध्यमान वेदनाएं और उदीर्ण वेदनाएं हैं। इस प्रकार चतुर्थ सूत्र के तीन भंग होते हैं (३)।

अब बध्यमान और उदीर्ण वेदनाओं के एक जीव का आश्रय करके तीन ही भंग होते हैं, अधिक नहीं उत्पन्न होते हैं, क्योंकि बध्यमान और उदीर्ण में व्यधिकरणता की आपत्ति आती है।

अब इसी द्विसंयोग वाले चतुर्थ सूत्र की बध्यमान और उदीर्ण वेदनाओं के नाना जीवों का आश्रय करके शेष भंगों को कहेंगे। वह इस प्रकार है —

अनेक जीवों की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान, उन्हीं जीवों की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई उदीर्ण, कथंचित् बध्यमान और उदीर्ण वेदनाएं हैं। इस प्रकार चतुर्थ सूत्र के चार भंग हुए (४)।

अथवा, अनेक जीवों की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान, उन्हीं जीवों की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उदीर्ण, कथंचित् बध्यमान और उदीर्ण वेदनाएं हैं। इस प्रकार चतुर्थ सूत्र के पाँच भंग हुए (५)।

अथवा, अनेकेषां जीवानामेका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा च बध्यमानिकाः, तेषां चैव जीवानामनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः उदीर्णाः, कथंचित् बध्यमानिकाश्च उदीर्णाश्च वेदनाः। एवं षट् भंगाः (६)।

अथवा, अनेकेषां जीवानां एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिकाः, तेषां चैव जीवानामनेकाः प्रकृतयः अनेकसमयप्रबद्धाः उदीर्णाः, कथंचित् बध्यमानिकाश्च उदीर्णाश्च वेदनाः। एवं सप्तभंगाः (७)।

अथवा, अनेकेषां जीवानामनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः बध्यमानिकाः, तेषां चैव जीवानामेका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा उदीर्णाः, कथंचित् बध्यमानिकाश्चोदीर्णाश्च वेदनाः। एवमष्टौ भंगाः (८)।

अथवा, अनेकेषां जीवानामनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः बध्यमानिकाः, तेषां चैव जीवानामेका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा उदीर्णाः, कथंचित् बध्यमानिकाश्च उदीर्णाश्च वेदनाः। एवं नव भंगाः (९)।

अथवा, अनेकेषां जीवानामनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः बध्यमानिकाः, तेषामेव जीवानामनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः उदीर्णाः, कथंचित् बध्यमानिकाश्च उदीर्णाश्च वेदनाः। एवं दश भंगाः (१०)।

अथवा, अनेकेषां जीवानामनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः बध्यमानिकाः, तेषां चैव जीवानामनेकाः प्रकृतयः अनेकसमयप्रबद्धाः उदीर्णाः कथंचित् बध्यमानिकाश्च उदीर्णाश्च वेदनाः। एवं चतुर्थसूत्रस्य एकादश भंगाः (११)।

एवं बध्यमानोदीर्णानां द्विसंयोगसूत्राणामर्थप्ररूपणा कृता।

एवं तृतीयस्थले बध्यमानोदीर्णानां द्विसंयोगभंगनिरूपणपराणि चत्वारि सूत्राणि गतानि।

अथवा, अनेक जीवों की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान, उन्हीं जीवों की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई उदीर्ण, कथंचित् बध्यमान और उदीर्ण वेदनाएं हैं। इस प्रकार छह भंग हुए (६)।

अथवा, अनेक जीवों की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान, उन्हीं जीवों की अनेक प्रकृतियाँ अनेक समयों में बांधी गई उदीर्ण, कथंचित् बध्यमान और उदीर्ण वेदनाएं हैं। इस प्रकार सात भंग हुए (७)।

अथवा, अनेक जीवों की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई बध्यमान, उन्हीं जीवों की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान, उन्हीं जीवों की अनेक प्रकृतियाँ अनेक समयों में बांधी गई उदीर्ण, कथंचित् बध्यमान और उदीर्ण वेदनाएं हैं। इस प्रकार आठ भंग हुए (८)।

अथवा अनेक जीवों की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई बध्यमान, उन्हीं जीवों की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उदीर्ण, कथंचित् बध्यमान और उदीर्ण वेदनाएं हैं। इस प्रकार नौ भंग हुए (९)।

अथवा, अनेक जीवों की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई बध्यमान, उन्हीं जीवों की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई उदीर्ण, कथंचित् बध्यमान और उदीर्ण वेदनाएं हैं। इस प्रकार दस भंग हुए (१०)।

अथवा अनेक जीवों की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई बध्यमान, उन्हीं जीवों की अनेक प्रकृतियाँ अनेक समयों में बांधी गई उदीर्ण, कथंचित् बध्यमान और उदीर्ण वेदनाएं हैं। इस प्रकार चतुर्थ सूत्र के ग्यारह भंग हुए (११)।

इस प्रकार बध्यमान और उदीर्ण वेदनाओं के द्विसंयोग संबंधी सूत्रों के अर्थ की प्ररूपणा की गई है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में बध्यमान और उदीर्णा के द्विसंयोगी भंग के निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

संप्रति बध्यमानोपशान्तानां द्विसंयोगजनितवेदनाभंगप्ररूपणार्थमुत्तरसूत्रमवतार्यते —

सिया बज्झमाणिया च उवसंता च॥१३॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — वेदनेति अनुवर्तते। एतस्य सूत्रस्यार्थे भण्यमाने बध्यमानोदीर्णानामिव त्रीन् प्रस्तारान् स्थापयित्वा वक्तव्यं। तद्यथा —

एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिका तस्यैव जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा उपशान्ता, स्याद् बध्यमानिका च उपशान्ता च वेदना। एवं प्रथमसूत्रस्य एकश्चैव भंगः (१)।

संप्रति बध्यमानोपशान्तादिद्वितीयसूत्रस्य भंगनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया बज्झमाणिया च उवसंताओ च॥१४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य द्वितीयसूत्रस्य भंगप्ररूपणा क्रियते। तद्यथा —

एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिका, तस्य चैव जीवस्य एका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा उपशान्ता स्याद् बध्यमानिका च उपशान्ता च वेदना। एवं द्वितीयसूत्रस्य प्रथमभंगः (१)।

अथवा, एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिका, तस्यैव जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः उपशान्ताः, कथंचित् बध्यमानिका च उपशान्ताश्च वेदनाः एवं द्वौ भंगौ स्तः (२)।

अथवा, एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिका, तस्यैव जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः

अब बध्यमान और उपशांत वेदनाओं के द्विसंयोग से उत्पन्न वेदना के भंगों की प्ररूपणा करने हेतु उत्तर सूत्र को अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ —

कथञ्चित् बध्यमान और उपशान्त वेदना होती है॥१३॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — 'वेदना' इस शब्द की अनुवृत्ति है। इस सूत्र के अर्थ की प्ररूपणा करते समय बध्यमान और उदीर्ण वेदना के समान तीन प्रस्तारों को स्थापित करके कथन करना चाहिए। वह इस प्रकार से है —

एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान है, उसी जीव के एक प्रकृति एक समय में बांधी गई उपशांत है कथंचित् बध्यमान और उपशांत वेदना है। इस प्रकार प्रथम सूत्र का एक ही भंग होता है।

अब बध्यमान-उपशान्त आदि द्वितीय सूत्र के भंगों का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ —

कथञ्चित् बध्यमान (एक) और उपशान्त (अनेक) वेदनाएँ होती हैं॥१४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस द्वितीय सूत्र के भंगों की प्ररूपणा यहाँ की जा रही है। वह इस प्रकार है —

एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान, उसी जीव की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उपशांत, कथंचित् बध्यमान और उपशांत वेदना है। इस प्रकार द्वितीय सूत्र का प्रथम भंग हुआ (१)।

अथवा एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान, उसी जीव की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् बध्यमान और उपशान्त वेदनाएँ हैं। इस प्रकार दो भंग हुए (२)।

अथवा, एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान, उसी जीव की अनेक प्रकृतियाँ अनेक

अनेकसमयप्रबद्धाः उपशान्ताः, स्याद् बध्यमानिका च उपशान्ताश्च वेदनाः। एवं त्रयो भंगाः (३)।

एवं द्वितीयसूत्रस्य त्रयश्चैव भंगा लभ्यन्ते, न शेषाः निरुद्धैकजीवत्वात्।

पुनश्च बध्यमानोपशान्तानां भंगनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया बज्झमाणियाओ च उवसंता च॥१५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य तृतीयसूत्रस्य भंगप्ररूपणा क्रियते। तद्यथा —

एकस्य जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः बध्यमानिकाः, तस्यैव जीवस्य एकप्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा उपशान्ता, स्याद् बध्यमानिका च उपशान्ता च वेदना। एवं तृतीयसूत्रस्य एकश्चैव भंगः (१)। शेषभंगा न लभ्यन्ते।

कुतः ?

निरुद्धैकजीवत्वात्।

पुनश्च बध्यमानोपशान्तानां चतुर्थसूत्रे भंगनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया बज्झमाणियाओ च उवसंताओ च॥१६॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य चतुर्थसूत्रस्य भंगप्ररूपणा क्रियते। तद्यथा —

एकस्य जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः बध्यमानिकाः, तस्यैव जीवस्य एका प्रकृतिः अनेक-समयप्रबद्धा उपशान्ताः, कथंचित् बध्यमानिकाश्च उपशान्ताश्च वेदनाः। एषः चतुर्थसूत्रस्य प्रथमभंगः

समयों में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् बध्यमान और उपशान्त वेदनाएं हैं। इस प्रकार तीन भंग हुए (३)।

इस प्रकार द्वितीय सूत्र के तीन ही भंग पाये जाते हैं, शेष नहीं पाये जाते हैं क्योंकि यहाँ एक जीव की विवक्षा है।

पुनश्च बध्यमान-उपशान्त के भंगनिरूपण हेतु सूत्र का अवतार हो रहा है —

सूत्रार्थ —

कथञ्चित् बध्यमान (अनेक) और उपशान्त (एक) वेदना है॥१५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस तृतीय सूत्र की भंग प्ररूपणा की जा रही है। वह इस प्रकार है —

एक जीव की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई बध्यमान, उसी जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् बध्यमान और उपशान्त वेदना है।

इस प्रकार तृतीय सूत्र का एक ही भंग है (१), शेष भंग नहीं पाये जाते हैं।

क्यों ?

क्योंकि, एक जीव की विवक्षा है।

पुनश्च बध्यमान उपशान्त कर्मों की वेदना का चतुर्थ सूत्र में भंग निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

कथंचित् बध्यमान (अनेक) और उपशान्त (अनेक) वेदनाएँ हैं॥१६॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यह चतुर्थ सूत्र की भंगप्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है —

एक जीव की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई बध्यमान, उसी जीव की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् बध्यमान और उपशान्त वेदनाएँ हैं। यह चतुर्थ सूत्र का प्रथम भंग है (१)।

(१)। अथवा, एकस्य जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः, बध्यमानिकाः, तस्यैव जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः एक समयप्रबद्धाः उपशान्ताः, कथंचित् बध्यमानिकाश्च उपशान्ताश्च वेदनाः। एवं चतुर्थसूत्रस्य द्वौ भंगौ (२)। अथवा, एकस्य जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः बध्यमानिकाः, तस्यैव जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः अनेकसमयप्रबद्धाः उपशान्ताः, कथंचित् बध्यमानिकाश्च उपशान्ताश्च वेदनाः। एवं चतुर्थसूत्रस्य त्रयश्चैव भंगाः भवन्ति। (३)। वर्धिमा न भवन्ति, बध्यमान-उपशान्तेषु निरुद्धैकजीवात्।

संप्रति बध्यमानोपशान्तेषु नानाजीवानाश्रित्य चतुर्थसूत्रस्य शेषभंगान् वक्ष्यामि। तद्यथा —

अनेकेषां जीवानामेका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिकाः, तेषां चैव जीवानामेका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा उपशान्ताः कथंचित् बध्यमानिकाश्चोपशान्ताश्च वेदनाः। एवं चतुर्थसूत्रस्य चत्वारो भंगाः (४)।

अथवा, अनेकेषां जीवानामेका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिकाः, तेषां चैव जीवानामेका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा उपशान्ताः, कथंचित् बध्यमानिकाश्च उपशान्ताश्च वेदनाः। एवं पञ्च भंगाः (५)।

अथवा, अनेकेषां जीवानामेका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिकाः, तेषामेव जीवानामनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाश्च उपशान्ताः, कथंचित् बध्यमानिकाश्च उपशान्ताश्च वेदनाः। एवं षट्भंगाः (६)।

अथवा, अनेकेषां जीवानामेकाः प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिका तेषां चैव जीवानामनेकाः प्रकृतयः अनेकसमयप्रबद्धाः उपशान्ताः, कथंचित् बध्यमानिकाश्च उपशान्ताश्च वेदनाः। एवं सप्त भंगाः (७)।

अथवा एक जीव की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई बध्यमान, उसी जीव की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् बध्यमान और उपशान्त वेदनाएं हैं। इस प्रकार चतुर्थ सूत्र के दो भंग हुए (२)।

अथवा, एक जीव की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई बध्यमान, उसी जीव की अनेक प्रकृतियाँ अनेक समयों में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् बध्यमान और उपशान्त वेदनाएं हैं। इस प्रकार चतुर्थ सूत्र के तीन ही भंग होते हैं (३)। अधिक नहीं होते हैं, क्योंकि बध्यमान और उपशान्त वेदनाओं में एक जीव की विवक्षा है।

अब बध्यमान और उपशान्त वेदनाओं में नाना जीवों का आश्रय लेकर चतुर्थ सूत्र के शेष भंगों को कहते हैं। वह इस प्रकार है —

अनेक जीवों की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान, उन्हीं जीवों की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् बध्यमान और उपशान्त वेदनाएं हैं। इस प्रकार चतुर्थ सूत्र के चार भंग हुए (४)।

अथवा, अनेक जीवों की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान, उन्हीं जीवों की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् बध्यमान और उपशान्त वेदनाएं हैं। इस प्रकार पाँच भंग हुए (५)।

अथवा, अनेक जीवों की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान, उन्हीं जीवों की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् बध्यमान और उपशान्त वेदनाएं हैं। इस प्रकार छह भंग हुए (६)।

अथवा अनेक जीवों की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान, उन्हीं जीवों की अनेक प्रकृतियाँ अनेक समयों में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् बध्यमान और उपशान्त वेदनाएं हैं। इस प्रकार सात भंग हुए (७)।

अथवा, अनेकेषां जीवानामनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः बध्यमानिकाः, तेषां चैव जीवानामेका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा उपशान्ताः, कथंचित् बध्यमानिकाश्च उपशान्ताश्च वेदनाः। एवमष्टौ भंगाः (८)।

अथवा, अनेकेषां जीवानामनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः बध्यमानिकाः, तेषां चैव जीवानामेका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा उपशान्ताः, कथंचित् बध्यमानिकाश्च उपशान्ताश्च वेदनाः। एवं नव भंगाः (९)।

अथवा, अनेकेषां जीवानामनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः बध्यमानिकाः, तेषां चैव जीवानामनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः उपशान्ताः, कथंचित् बध्यमानिकाश्च उपशान्ताश्च वेदनाः। एवं दश भंगाः (१०)।

अथवा, अनेकेषां जीवानामनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः बध्यमानिकाः, तेषां चैव जीवानामनेकाः प्रकृतयः अनेकसमयप्रबद्धाः उपशान्ताः, कथंचित् बध्यमानिकाश्च उपशान्ताश्च वेदनाः। एवं चतुर्थसूत्रस्य एकादश भंगाः (११)।

एवं बध्यमानोपशान्तानां द्विसंयोगसूत्रप्ररूपणा समाप्ता।

इति चतुर्थस्थले बध्यमानोपशान्तद्विसंयोगवेदनानिरूपकानि चत्वारि सूत्राणि गतानि।

संप्रति उदीर्ण-उपशान्तानां द्विसंयोगजनितवेदनाविकल्पप्ररूपणार्थमुत्तरसूत्रमवतार्यते —

सिया उदिण्णा च उवसंता च।।१७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य सूत्रस्यार्थप्ररूपणायां क्रियमाणायां पूर्वं तावदुदीर्णोपशान्तानां द्विसंयोगसूत्रप्रस्तारं स्थापयित्वा पुनः उदीर्णस्य जीव-प्रकृति-समयानामेकबहुवचनानां प्रस्तारं उदीर्ण-

अथवा, अनेक जीवों की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई बध्यमान, उन्हीं जीवों की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई उपशांत, कथंचित् बध्यमान और उपशांत वेदनाएं हैं। इस प्रकार आठ भंग हुए (८)।

अथवा, अनेक जीवों की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई बध्यमान उन्हीं जीवों की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उपशांत, कथंचित् बध्यमान और उपशांत वेदनाएं हैं। इस प्रकार नौ भंग हुए (९)।

अथवा अनेक जीवों की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई बध्यमान, उन्हीं जीवों की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई उपशांत, कथंचित् बध्यमान और उपशान्त वेदनाएं हैं।

इस प्रकार दस भंग हुए (१०)।

अथवा, अनेक जीवों की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई बध्यमान, उन्हीं जीवों की अनेक प्रकृतियाँ अनेक समय में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् बध्यमान और उपशांत वेदनाएं हैं। इस प्रकार चतुर्थ सूत्र के ग्यारह भंग हुए (११)।

इस प्रकार बध्यमान और उपशान्त वेदना संबंधी द्विसंयोग वाले सूत्रों की प्ररूपणा समाप्त हुई।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में बध्यमान और उपशान्त वेदना के द्विसंयोगी भंगों का निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब उदीर्ण और उपशांत प्रकृतियों के द्विसंयोग से उत्पन्न वेदनाविकल्पों की प्ररूपणा करने के लिए अगला सूत्र कहते हैं —

सूत्रार्थ —

कथञ्चित् उदीर्ण और उपशान्त वेदना है।।१७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस सूत्र के अर्थ की प्ररूपणा करते समय पहले उदीर्ण उपशांत वेदना के द्विसंयोग सूत्र के प्रस्तार को स्थापित करके

उदीर्ण	एक	एक	अनेक	अनेक
उपशांत	एक	अनेक	एक	अनेक

फिर उदीर्ण

उपशान्त-जीव-प्रकृति-समय प्रस्तारं च परिपाट्या —

११११	२२२२
११२२	११२२
१२१२	१२१२

भंगायामपमाणं, लहुओ गरुओ त्ति अक्खणिक्खो।

तत्तो च दुगुण - दुगुणो, पत्थारो विण्णसेयव्वो^१।।

एतस्या गाथायाः अनुसारेण स्थापयित्वा अर्थप्ररूपणा कर्तव्या।

११११	२२२२
११२२	११२२
१२१२	१२१२

अथवा —

१११	१११	१११
२२०	२२२	२२२

बध्यमान-उदीर्ण-उपशान्तेषु जीव-प्रकृति-समयानामेक-बहुवचनानि स्थापयित्वा —

पढमक्खो अंतगओ, आदिगए संकमेदि विदियक्खो।

दोणिण गंतूणंतं, आदिगदे संकमेदि तदियक्खो^२।।

वेदनासंबंधी जीव, प्रकृति और समय, इनके एक व बहुवचनों के प्रस्तार को तथा उदीर्ण एवं उपशांत वेदना के विषय में जीव, प्रकृति और समय के प्रस्तार को भी परिपाटी से—

जीव	एक	एक	एक	एक	अनेक	अनेक	अनेक	अनेक
प्रकृति	एक	एक	अनेक	अनेक	एक	एक	अनेक	अनेक
समय	एक	अनेक	एक	अनेक	एक	अनेक	एक	अनेक

गाथार्थ — भंगों के आयामप्रमाण अर्थात् प्रथम पंक्तिगत भंगों का जितना प्रमाण हो उतने बार लघु और गुरु इस प्रकार से अक्षनिक्षेप किया जाता है तथा आगे द्वितीयादि पंक्तियों में दुगुणे-दुगुणे प्रस्तार का विन्यास करना चाहिए।

इस गाथा के अनुसार स्थापित करके अर्थ की प्ररूपणा करनी चाहिए।

अथवा बध्यमान, उदीर्ण और उपशान्त वेदना के संबंध में जीव, प्रकृति और समय तथा इनके एक और बहुवचनों को स्थापित करके—

बध्यमान			उदीर्ण			उपशान्त		
जीव	प्रकृति	समय	जीव	प्रकृति	समय	जीव	प्रकृति	समय
एक	एक	एक	एक	एक	एक	एक	एक	एक
अनेक	अनेक	०	अनेक	अनेक	अनेक	अनेक	अनेक	अनेक

गाथार्थ — प्रथम अक्ष अन्त को प्राप्त होकर जब पुनः आदि को प्राप्त होता है तब द्वितीय अक्ष बदलता है। जब प्रथम और द्वितीय दोनों ही अक्ष अन्त को प्राप्त होकर पुनः आदि को प्राप्त होते हैं तब तृतीय अक्ष बदलता है।

एतस्या गाथायाः प्रस्तारं आनीय स्थापयितव्या। पुनः पश्चात् सूत्रप्ररूपणा कर्तव्या। तद्यथा —
 एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा उदीर्णा, तस्यैव जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा
 उपशान्ता, स्यात् उदीर्णा च उपशान्ता च वेदना। एवं प्रथमसूत्रस्य एको भंगः (१)।

उदीर्ण-उपशान्तावेदना निरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया उदिण्णा च उवसंताओ च॥१८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य द्वितीयसूत्रस्य भंगप्ररूपणां करिष्यन्त्याचार्यदेवाः। तद्यथा —
 एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा उदीर्णा, तस्यैव जीवस्य एका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा
 उपशान्ताः, कथंचित् उदीर्णा च उपशान्ताः वेदनाः। एवं द्वितीयसूत्रस्य एषः प्रथमभंगः (१)। अथवा,
 एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः-एकसमयप्रबद्धा उदीर्णा, तस्यैव जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः
 उपशान्ताः, कथंचित् उदीर्णा च उपशान्ताश्च वेदनाः। एवं द्वौ भंगौ (२)। अथवा, एकस्य जीवस्य एका
 प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा उदीर्णा, तस्यैव जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः अनेकसमयप्रबद्धाः उपशान्ताः, स्यात्
 उदीर्णा च उपशान्ताश्च वेदनाः। एवं द्वितीयसूत्रस्य त्रयश्चैव भंगाः, निरुद्धैकजीवत्वात्।

अधुना उदीर्ण-उपशान्तबहु-एकजीवानां भंगनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया उदिण्णाओ च उवसंता च॥१९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य तृतीयसूत्रस्य भंगप्ररूपणां करिष्यन्ति। तद्यथा —

इस गाथा के अनुसार प्रस्तार को लाकर स्थापित करना चाहिए। पुनः पश्चात् सूत्र की प्ररूपणा करनी चाहिए। वह इस प्रकार है —

एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई उदीर्ण, उसी जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् उदीर्ण और उपशान्त वेदना है। इस प्रकार प्रथम सूत्र का एक ही भंग है (१)।

अब उदीर्ण और उपशान्त वेदनाओं का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

कथंचित् उदीर्ण (एक) और उपशान्त (अनेक) वेदनाएँ हैं॥१८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ इस द्वितीय सूत्र की प्ररूपणा आचार्यदेव करेंगे। जो इस प्रकार है —

एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई उदीर्ण, उसी जीव की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् उदीर्ण और उपशान्त वेदनाएँ हैं। इस प्रकार द्वितीय सूत्र का यह प्रथम भंग है (१)। अथवा एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई उदीर्ण, उसी जीव की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् उदीर्ण और उपशान्त वेदनाएँ हैं। इस प्रकार दो भंग हुए (२)। अथवा, एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई उदीर्ण, उसी जीव की अनेक प्रकृतियाँ अनेक समयों में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् उदीर्ण और उपशान्त वेदनाएँ हैं। इस प्रकार द्वितीय सूत्र के तीन ही भंग हैं, क्योंकि एक जीव की विवक्षा है।

अब उदीर्ण और उपशान्त बहुत एवं एकजीव के भंग निरूपण करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ —

कथञ्चित् उदीर्ण (अनेक) और उपशान्त (एक) वेदनाएँ हैं॥१९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस तृतीय सूत्र के भंगों की प्ररूपणा यहाँ करेंगे। जो इस प्रकार है —

एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा उदीर्णाः, तस्यैव जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा उपशान्ता, कथंचित् उदीर्णाश्च उपशान्ता च वेदनाः। एषः तृतीयसूत्रस्य प्रथमभंगः (१)।

एवमेव तृतीयसूत्रस्य द्वितीयतृतीयभंगाः आनेतव्याः। धवलाटीकाया आधारेण।

अधुना उदीर्णोपशान्तबहुजीवानां पंचविंशतिभंगोत्पादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया उदिण्णाओ च उवसंताओ च॥२०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य चतुर्थसूत्रस्य भंगप्ररूपणा क्रियते। तद्यथा —

एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा उदीर्णाः, तस्यैव जीवस्य एका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा उपशान्ताः, कथंचित् उदीर्णाश्च उपशान्ताश्च वेदनाः। एषः चतुर्थसूत्रस्य प्रथमभंगः (१)।

एवमेव धवलाटीकाधारेण पंचविंशतिभंगा उत्पादयितव्याः।

एवं बध्यमान-उदीर्ण-उपशान्तानामेकद्विसंयोगे निबद्धसूत्रप्ररूपणा समाप्ता।

इति पंचमस्थले बध्यमानाद्विसंयोगभंगनिरूपणपराणि चत्वारि सूत्राणि गतानि।

अधुना बध्यमानोदीर्णोपशान्तानां त्रिसंयोगानाश्रित्य वेदनाविकल्पप्ररूपणार्थमुत्तरसूत्रमवतार्यते —

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च उवसंता च॥२१॥

एक जीव की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उदीर्ण, उसी जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् उदीर्ण (अनेक) और उपशान्त (एक) वेदनाएं हैं। यह तृतीय सूत्र का प्रथम भंग हुआ (१)।

इसी प्रकार तृतीय सूत्र के द्वितीय-तृतीय भंग भी धवला टीका के आधार से लाना चाहिए।

अब उदीर्ण और उपशान्त बहुत जीवों के पच्चीस भंगों को उत्पन्न कराने हेतु सूत्र का अवतार किया जाता है —

सूत्रार्थ —

कथञ्चित् उदीर्ण (अनेक) और उपशान्त (अनेक) वेदनाएं हैं॥२०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस चतुर्थ सूत्र के भंग की प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है — एक जीव की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उदीर्ण, उसी जीव की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् उदीर्ण और उपशान्त वेदनाएं हैं। यह चतुर्थ सूत्र का प्रथम भंग है (१)।

इसी प्रकार धवला टीका के आधार से पच्चीस भंग उत्पन्न कराना चाहिए।

इस प्रकार बध्यमान-उदीर्ण और उपशान्त संबंधी एक व दो के संबंध से निबद्ध सूत्र की प्ररूपणा समाप्त हुई।

इस प्रकार पंचम स्थल में बध्यमान आदि द्विसंयोगी भंगों का निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब बध्यमान उदीर्ण और उपशान्त वेदनाओं के त्रिसंयोगी भंगों का आश्रय लेकर वेदनाओं के विकल्प का प्ररूपण करने हेतु उत्तर सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

कथञ्चित् बध्यमान, उदीर्ण और उपशान्त वेदना हैं॥२१॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—एतस्य सूत्रस्यार्थे भण्यमाने बध्यमान-उदीर्ण-उपशान्तानामेकबहुवचनसंदृष्टिं स्थापयित्वा

१	१	१
२	२	२

पुनः अत्र अक्षसंचारेण उत्पादितत्रिसंयोगसूत्रप्रस्तारं स्थापयित्वा

११११	२२२२
११२२	११२२
१२१२	१२१२

पुनः बध्यमान-उदीर्ण-उपशान्तजीव-प्रकृतिसमयानामेक-बहुवचनसंदृष्टीः परिपाद्या स्थापयित्वा एतेभ्यः अक्षसंचारेणोत्पादित-त्रीनपि प्रस्तारान् च स्थापयित्वा

१११	१११	१११
२२०	२२२	२२२

अत्र उपरिमपंक्तिः बध्यमानिका, मध्यमपंक्तिः उदीर्णा, अधस्तनपंक्तिः उपशान्ता प्ररूपणा क्रियते।

११२२	११११	२२२२	११११	२२२२
१२१२	११२२	११२२	११२२	११२२
११११	१२१२	१२१२	१२१२	१२१२

तद्यथा—एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिका, तस्यैव जीवस्य एका प्रकृतिः

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—इस बध्यमान-उदीर्ण और उपशांत, इनके स्थापित करके पश्चात् यहाँ अक्षसंचार

बध्य	उदीर्ण	उपशांत
एक	एक	एक
अनेक	अनेक	अनेक

सूत्र के अर्थ की प्ररूपणा करते समय एक व बहुवचनों की संदृष्टि को से उत्पन्न कराये गये त्रिसंयोगरूप

बध्यमान	एक	एक	एक	एक	अनेक	अनेक	अनेक	अनेक
उदीर्ण	एक	एक	अनेक	अनेक	एक	एक	अनेक	अनेक
उपशांत	एक	अनेक	एक	अनेक	एक	अनेक	एक	अनेक

बध्यमान			उदीर्ण			उपशान्त		
एक	एक	एक	एक	एक	एक	एक	एक	एक
अनेक	अनेक	०	अनेक	अनेक	अनेक	अनेक	अनेक	अनेक

जीव	प्रकृति	समय			
बध्य	उदीर्ण	उपशांत	अनेक	अनेक	एक
एक	एक	एक	अनेक	अनेक	अनेक
एक	अनेक	एक	एक	एक	एक
अनेक	एक	एक	एक	एक	अनेक
अनेक	अनेक	एक	एक	अनेक	एक
एक	एक	एक	एक	अनेक	अनेक
एक	एक	अनेक	अनेक	एक	एक
एक	अनेक	एक	अनेक	एक	अनेक
एक	अनेक	अनेक	अनेक	अनेक	एक
अनेक	एक	एक	अनेक	अनेक	अनेक
अनेक	एक	अनेक			

सूत्र के प्रस्तार को स्थापित कर पुनः बध्यमान, उदीर्ण, उपशांत, जीव, प्रकृति व समय, इनके एक व बहुवचन की संदृष्टियों को परिपाटी से स्थापित करके

इनमें अक्षसंचार के द्वारा उत्पन्न कराये गये तीनों ही प्रस्तारों को स्थापित करके यहाँ ऊपर की पंक्ति में बध्यमान, मध्यम पंक्ति में उदीर्ण व अधस्तन पंक्ति में उपशांत की प्ररूपणा की जाती है।

वह इस प्रकार है—एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान, उसी जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई उदीर्ण, उसी जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी

एकसमयप्रबद्धा उदीर्णा, तस्यैव जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा उपशान्ता, स्याद् बध्यमानिका च उदीर्णा च उपशान्ता च वेदना। एवं प्रथमसूत्रस्य एकश्चैव भंगः (१)।

संप्रति बध्यमानोदीर्णैक-उपशान्तानेकवेदना निरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च उवसंताओ च॥२२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य त्रिसंयोगद्वितीयसूत्रस्य भंगप्ररूपणा क्रियते। तद्यथा — एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिका, तस्यैव जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा उदीर्णा, तस्यैव जीवस्य एका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा उपशान्ताः, स्यात् बध्यमानिका च उदीर्णा च उपशान्ताश्च वेदनाः। एवं द्वितीयसूत्रस्य प्रथमभंगः (१)।

अथवा, एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिका, तस्यैव जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा उदीर्णा, तस्य चैव जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धा उपशान्ताः, स्यात् बध्यमानिका च उदीर्णा च उपशान्ताश्च वेदनाः। एवं द्वौ भंगौ (२), अथवा एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिका, तस्य चैव जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा उदीर्णा, तस्यैव जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः अनेकसमयप्रबद्धा उपशान्ताः, स्यात् बध्यमानिका च उदीर्णा च उपशान्ताश्च वेदनाः। एवं द्वितीयसूत्रस्य त्रयश्चैव भंगाः (३)।

कुतः ?

गई उपशान्त, कथंचित् बध्यमान, उदीर्ण और उपशान्त वेदना है। इस प्रकार प्रथम सूत्र का एक ही भंग है (१)।

अब बध्यमान और उदीर्ण एक तथा उपशान्त अनेक वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

कथञ्चित् बध्यमान (एक), उदीर्ण (एक) और उपशान्त (अनेक) वेदनाएं हैं॥२२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — तीनों के संयोगरूप इस द्वितीय सूत्र के भंगों की प्ररूपणा की जाती है। वह इस प्रकार है —

एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान उसी जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई उदीर्ण, उसी जीव की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् बध्यमान, उदीर्ण और उपशान्त वेदनाएं हैं। इस प्रकार द्वितीय सूत्र का प्रथम भंग है।

अथवा एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान, उसी जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई उदीर्ण, उसी जीव की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् बध्यमान, उदीर्ण और उपशान्त वेदनाएं हैं। इस प्रकार दो भंग हुए (२)। अथवा एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान, उसी जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई उदीर्ण, उसी जीव की अनेक प्रकृतियाँ अनेक समयों में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् बध्यमान, उदीर्ण और उपशान्त वेदनाएं हैं। इस प्रकार द्वितीय सूत्र के तीन ही भंग होते हैं (३)।

ऐसा क्यों है ?

बध्यमानोदीर्णयोः एकवचननिरोधात्।

संप्रति बध्यमानस्य उदीर्णानां उपशान्तस्य च वेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया बज्झमाणिआ च उदिण्णाओ च उवसंता च ॥२३॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — एतस्य तृतीयसूत्रस्य भंगप्रमाणप्ररूपणा क्रियते। तद्यथा — एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिका, तस्यैव जीवस्य एका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा उदीर्णाः, तस्यैव जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा उपशान्ता, स्यात् बध्यमानिका च उदीर्णाश्च उपशान्ता च वेदनाः। एवं त्रिसंयोग तृतीयसूत्रस्य प्रथमो भंगः (१) अथवा, एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिका, तस्यैव जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः एकसमयप्रबद्धाः उदीर्णाः तस्य चैव जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा उपशान्ता, स्यात् बध्यमानिका चोदीर्णाश्च उपशान्ता च वेदनाः। एवं द्वौ भंगौ (२)। अथवा, एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिका तस्य चैव जीवस्य अनेकाः प्रकृतयः अनेकसमयप्रबद्धाः उदीर्णाः तस्य चैव जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा उपशान्ता, कथंचित् बध्यमानिका च उदीर्णाश्च उपशान्ता च वेदनाः। एवं तृतीयसूत्रस्य त्रयश्चैव भंगाः (३) कारणं ज्ञात्वा वक्तव्यं।

संप्रति बध्यमानस्य उदीर्णोपशान्तानां च वेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया बज्झमाणिआ च उदिण्णाओ च उवसंताओ च ॥२४॥

क्योंकि बध्यमान और उदीर्ण में एकवचन की विवक्षा है।

अब बध्यमान की उदीरणा का और उपशान्त की वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

कथंचित् बध्यमान (एक), उदीर्ण (अनेक) और उपशान्त (एक) वेदना है ॥२३॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इस तृतीय सूत्र के भंगों के प्रमाण की प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है — एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान, उसी जीव की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उदीर्ण, उसी जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् बध्यमान उदीर्ण और उपशान्त वेदनाएं हैं। इस प्रकार तीनों के संयोगरूप तृतीय सूत्र का यह प्रथम भंग है (१) अथवा, एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान, उसी जीव की अनेक प्रकृतियाँ एक समय में बांधी गई उदीर्ण, उसी जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् बध्यमान, उदीर्ण और उपशान्त वेदनाएं हैं। इस प्रकार दो भंग हुए (२)। अथवा, एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान, उसी जीव की अनेक प्रकृतियाँ अनेक समयों में बांधी गई उदीर्ण, उसी जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् बध्यमान, उदीर्ण और उपशान्त वेदनाएं हैं। इस प्रकार तृतीय सूत्र के तीन ही भंग हैं (३)। इसके कारण को जानकर कथन करना चाहिए।

अब बध्यमान उदीरणा और उपशान्त की वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

कथंचित् बध्यमान (एक), उदीर्ण (अनेक) और उपशान्त (अनेक) वेदनाएं हैं ॥२४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य त्रिसंयोगचतुर्थसूत्रस्य भंगप्रमाणप्ररूपणां कथयिष्यन्त्याचार्यदेवाः। तद्यथा — एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा बध्यमानिका, तस्यैव जीवस्य एका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा उदीर्णाः, तस्य चैव जीवस्य एका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धाः उपशान्ताः, कथंचित् बध्यमानिका च उदीर्णाश्च उपशान्ताश्च वेदनाः। एवं चतुर्थसूत्रस्य प्रथमभंगः (१)।

एवमेव अस्य चतुर्थसूत्रस्य नव भंगा ज्ञातव्याः। विस्तरस्तु धवलाटीकायां अवलोकनीयाः^१।

अधुना पंचमसूत्रस्य भंग प्रमाणकथनार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया बज्झमाणियाओ च उदिण्णा च उवसंता च॥२५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य पंचमसूत्रस्य भंगप्रमाणप्ररूपणां निरूपयन्ति। एतस्य सूत्रस्याधारेण एक एव भंगः, ततस्तु धवलाटीकायां पठितव्यः।

संप्रति विविधभंगनिरूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

सिया बज्झमाणियाओ च उदिण्णा च उवसंताओ च॥२६॥

सिया बज्झमाणियाओ च उदिण्णाओ च उवसंता च॥२७॥

सिया बज्झमाणियाओ च उदिण्णाओ च उवसंताओ च॥२८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — त्रिसंयोगरूप इस चतुर्थ सूत्र के भंगों के प्रमाण की प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है —

एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई बध्यमान, उसी जीव की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उदीर्ण, उसी जीव की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उपशान्त, कथंचित् बध्यमान, उदीर्ण और उपशान्त वेदनाएं हैं। इस प्रकार चतुर्थ सूत्र का यह प्रथम भंग है (१)।

इसी प्रकार इस चतुर्थ सूत्र के नौ भंगों को भी जानना चाहिए। विस्तार से इसका वर्णन धवला टीका में देखना चाहिए।

अब पंचम सूत्र के भंगों का प्रमाण बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

कथंचित् बध्यमान (अनेक), उदीर्ण (एक) और उपशान्त (एक) वेदना है॥२५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस पंचम सूत्र के भंगों के प्रमाण की प्ररूपणा का निरूपण करते हैं। इस सूत्र के आधार से एक ही भंग है उसको धवला टीका में पढ़ना चाहिए।

अब विविध भंगों के निरूपण हेतु तीन सूत्रों का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

कथंचित् बध्यमान (अनेक), उदीर्ण (एक) और उपशान्त (अनेक) वेदनाएं हैं॥२६॥

कथंचित् बध्यमान (अनेक), उदीर्ण (अनेक) और उपशान्त (एक) वेदना है॥२७॥

कथंचित् बध्यमान (अनेक), उदीर्ण (अनेक) और उपशान्त (अनेक) वेदनाएं हैं॥२८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य त्रिसंयोगषष्ठसूत्रस्य भंगप्रमाणानि त्रीण्येव संति। त्रिसंयोगसप्तमसूत्रस्य भंगप्रमाणानि त्रीण्येव ज्ञातव्यानि। अष्टमसूत्रस्य भंगप्रमाणानि एकचत्वारिंशत् भवन्ति। एवं नैगमनयेन बध्यमान-उदीर्ण-उपशान्तानामेकसंयोग-द्विसंयोग-त्रिसंयोगैः ज्ञानावरणीयप्ररूपणा कृता। विस्तरेण तु धवलाटीकायां पठितव्याः भवन्ति।

अधुना शेषनवकर्मणां वेदनावेदनाविधाननिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं सत्तण्णं कम्माणं॥२९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यथा ज्ञानावरणीयस्य वेदनावेदनाविधानं नैगमनयस्याभिप्रायेण प्ररूपितं तथा सप्तानां कर्मणां प्ररूपयितव्यं, विशेषाभावात्।

एवं षष्ठस्थले विविधभंगनिरूपणपराणि नव सूत्राणि गतानि।

संप्रति व्यवहारनयमाश्रित्य वेदनावेदनाविधानप्ररूपणार्थमुत्तरसूत्रमवतार्यते —

व्यवहारणयस्स णाणावरणीयवेयणा सिया बज्झमाणिया वेयणा॥३०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य सूत्रस्यार्थं भण्यमाने तावत् जीव प्रकृति-समयानामेकवचनानि जीवानां बहुवचनं च स्थापयितव्यं १११
२०० ।

किमर्थं समयबहुवचनमपनीतं ?

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ त्रिसंयोगी छठे सूत्र के भंगों का प्रमाण तीन ही है। त्रिसंयोगी सातवें सूत्र के भंगों का प्रमाण तीन ही जानना चाहिए। आठवें सूत्र के भंगों के प्रमाण इकतालिस होते हैं। इस प्रकार नैगमनय की अपेक्षा बध्यमान, उदीर्ण और उपशांतों के एक संयोगी, द्विसंयोगी और त्रिसंयोगी भंगों के संयोग से ज्ञानावरणीय कर्म की प्ररूपणा की गई है। इनका विस्तृत वर्णन धवला टीका में पढ़ना चाहिए।

अब शेष नौ कर्मों के वेदनावेदनाविधान का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित किया जाता है —

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार शेष सात कर्मों के वेदनावेदनाविधान की प्ररूपणा करनी चाहिए॥२९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जिस प्रकार ज्ञानावरणीय के वेदनावेदनाविधान की प्ररूपणा नैगमनय के अनुसार की गई है उसी प्रकार सातों कर्मों के वेदनावेदनाविधान का प्ररूपण करना चाहिए, उसमें कोई विशेषता नहीं है।

इस प्रकार छठे स्थल में विविध भंगों का निरूपण करने वाले नौ सूत्र पूर्ण हुए।

अब व्यवहारनय के आश्रय से वेदनावेदनाविधान का प्ररूपण करने हेतु आगे का सूत्र अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ —

व्यवहारनय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना कथंचित् बध्यमान वेदना है॥३०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस सूत्र के अर्थ का कथन करते समय पहले जीव, प्रकृति और समय, इनके एकवचन तथा जीवों के बहुवचन स्थापित करना चाहिए।

शंका — समय के बहुवचन को कम क्यों कर दिया गया है ?

जीव	प्रकृति	समय
एक	एक	एक
अनेक	०	०

ज्ञानावरणीयस्य बध्यमानत्वमेकस्मिन् चैव समये भवतीति ज्ञापनार्थं समयस्य बहुवचनमपनीतं।
अतीतानागतसमया अत्र किन्न गृहीताः ?

न गृहीताः, किं च — अतीते काले बद्धकर्मस्कंधानामुपशान्तभावेन बध्यमानत्वाभावात्। न अनागतानामपि
कर्मस्कंधानां बध्यमानत्वं, तेषां संप्रति जीवेऽभावात् तस्मात् कालस्य एकत्वं चैव, न बहुत्वमिति सिद्धं।

प्रकृतेः बहुवचनं किमर्थमपसारितं ?

ज्ञानावरणभावं मुक्त्वा तत्र अन्यभावानुपलंभात्। आवरणीयस्य भेदे आवरणप्रकृतिभेदो भवति। न
चावरणीयस्य केवलज्ञानस्य भेदोऽस्ति येन प्रकृतिभेदो भवेत्। तस्मात् सिद्धं प्रकृतेः एकत्वं।

जीवस्य बहुत्वमस्ति। न च जीवबहुत्वेन प्रकृतिभेदो भवेत् प्रकृतेः एकस्वरूपत्वदर्शनात्। तस्मात्
जीव-प्रकृति-समयानामेकत्वं जीवबहुत्वं च बध्यमानकर्मस्कंधस्य संभवतीति सिद्धम्।

अत्र अक्षपरावर्ते कृते बध्यमानिकायाः वेदनायाः जीवप्रकृति-समयप्रस्तारः उत्पद्यते। तस्य संदृष्टिः
धवलाटीकायां द्रष्टव्या। एवं बध्यमानिकाया वेदनाया द्वौ एव भंगौ प्रथमसूत्रे स्तः।

संप्रति उदीर्णकवचनभंगकथनार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया उदिण्णा वेयणा।।३१।।

समाधान — ज्ञानावरणीय का 'बध्यमान' स्वरूप एक समय में ही होता है, यह प्रकट करने के लिए
समय के बहुवचन को कम किया गया है।

शंका — अतीत और अनागत समयों को यहाँ क्यों नहीं ग्रहण किया गया है ?

समाधान — नहीं किया है, क्योंकि अतीतकाल में बांधे गये कर्मस्कंधों के उपशम भाव से परिणत होने
के कारण उनके उस समय बध्यमान स्वरूप का अभाव है। अनागत भी कर्मस्कंध बध्यमान नहीं हो सकते,
क्योंकि, इस समय जीव में उनका अभाव है। इस कारण काल का एकवचन ही है, बहुवचन संभव नहीं है
ऐसा सिद्ध है।

शंका — प्रकृति के बहुवचन को क्यों अलग किया गया है ?

समाधान — चूँकि उसमें ज्ञानावरण स्वरूप को छोड़कर और कोई दूसरा स्वरूप नहीं पाया जाता है,
अतः उसके बहुवचन को अलग किया गया है। आवरणीय (आवरण के योग्य) का भेद होने पर ही आवरण
प्रकृति का भेद होता है परन्तु आवरण करने के योग्य केवलज्ञान का कोई भेद है ही नहीं, जिसमें कि प्रकृति
का भेद हो सके। इस कारण प्रकृति का अभेद (एकता) सिद्ध ही है। जीवों का बहुत्व संभव है। यदि कहा
जाये कि जीवों के बहुत्व से प्रकृति का बहुत्व भी संभव है, तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि प्रकृति में एक
स्वरूपता देखी जाती है। इस कारण बध्यमान कर्मस्कंध के संबंध में जीव, प्रकृति और समय, इनके एक
वचन और जीवों के बहुवचन की संभावना है, यह सिद्ध है।

यहाँ अक्षपरावर्तन करने पर बध्यमान वेदना संबंधी जीव, प्रकृति व समय का प्रस्तार उत्पन्न होता है।
उसकी संदृष्टि धवला टीका में देखना चाहिए।

इस प्रकार बध्यमान वेदना के दो ही भंग प्रथम सूत्र में कहे गये हैं।

अब उदीर्ण एकवचन का भंग बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

कथञ्चित् उदीर्ण वेदना होती है।।३१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—संप्रति एतस्य सूत्रस्यार्थे भण्यमाने जीव-प्रकृति-समयानामेकवचनं जीवसमयानां बहुवचनं च स्थापयित्वा

१	१	१
२	०	२

 अत्र अक्षपरावर्ते कृते उदीर्णवेदनाया जीवप्रकृतिसमयानां प्रस्तार उत्पद्यते

११	२२
११	११
१२	१२

 ।

अत्र उदीर्णायां नास्ति प्रकृति बहुवचनं, एकस्या ज्ञानावरणीयप्रकृतेः बहुत्वाभावात्। जीवबहुवचनमस्ति। न तस्मात् उदीर्णाबहुत्वं, समयबहुत्वात् चैव उदीर्णाया बहुत्वव्यवहारोपलंभात्। न च लोकव्यवहारबाह्यं किमपि अस्ति, अव्यवहारणीयस्य अस्तित्वविरोधात्। संप्रति एतस्य सूत्रस्यार्थो निगद्यते। तद्यथा—एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा कथंचित् उदीर्णा वेदना। एवमेको भंगः (१)।

अथवा, अनेकेषां जीवानामेका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा कथंचित् उदीर्णा वेदना। एवमुदीर्णैकवचनसूत्रस्य द्वौ भंगौ ज्ञातव्यौ।

संप्रति उपशान्तवेदनाकथनार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया उवसंता वेयणा॥३२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—एतस्य सूत्रस्यार्थप्ररूपणायां क्रियमाणायां जीव-प्रकृति-समयानामेकवचनं जीवसमयानां बहुवचनं च स्थापयित्वा

१	१	१
२	०	२

 अक्षपरावर्ते कृते उपशान्तवेदनायां जीव-प्रकृति-समय-

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—अब इस सूत्र के अर्थ की प्ररूपणा करते समय जीव-प्रकृति और समय के एकवचन तथा जीव व समय के बहुवचनों को भी स्थापित करके यहाँ अक्षपरावर्तन करने पर उदीर्ण वेदना संबंधी जीव, प्रकृति एवं समय इन सबका प्रस्तार उत्पन्न होता है।

जीव	एक	एक	अनेक	अनेक
प्रकृति	एक	एक	एक	एक
समय	एक	अनेक	एक	अनेक

यहाँ उदीर्ण वेदना में

जीव	प्रकृति	समय
एक	एक	एक
अनेक	०	अनेक

प्रकृति का बहुवचन संभव नहीं है, क्योंकि यहाँ बहुत्व का अभाव देखा जाता है अर्थात् एक ज्ञानावरणीय प्रकृति का बहुत होना असंभव है परन्तु उससे उदीर्ण प्रकृति का बहुत्व संभव नहीं है, क्योंकि समय बहुत्व से ही उदीर्ण प्रकृति के बहुत्व का व्यवहार पाया जाता है और लोकव्यवहार के बाहर कुछ भी नहीं है, क्योंकि अव्यवहारणीय पदार्थ के अस्तित्व का विरोध है। अब इस सूत्र का अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है—

एक जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई कथंचित् उदीर्ण वेदना है। इस प्रकार एक भंग हुआ (१)। अथवा अनेक जीवों की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई कथंचित् उदीर्ण वेदना है। इस प्रकार उदीर्ण वेदना संबंधी एकवचन सूत्र के दो भंग होते हैं (२)। ऐसा जानना चाहिए।

अब उपशान्त वेदना का कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

कथञ्चित् उपशान्त वेदना होती है॥३२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—इस सूत्र के अर्थ की प्ररूपणा करते समय जीव-प्रकृति व समय इन

प्रस्तारो भवति

११	२२
११	११
१२	१२

 ।

एतस्य सूत्रस्य द्वौ भंगौ (२)।

एवं बध्यमान-उदीर्ण-उपशान्तानामेकवचनप्ररूपणा कृता।

अधुना उदीर्णवेदनानां भंगस्थापनार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया उदिण्णाओ वेयणाओ॥३३॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कथंचिद् उदीर्णाः वेदनाः सन्ति।

बध्यमानिकाया वेदनाया किन्न बहुत्वं प्ररूपितम् ?

न प्ररूपितं, व्यवहारनये तस्याः बहुत्वाभावात्। न तावत् जीवबहुत्वेन बध्यमानिकाया बहुत्वं, जीवभेदेन तस्या भेदव्यवहारानुपलंभात्। न प्रकृतिभेदेन भेदः, एकस्या ज्ञानावरणीयप्रकृतेः भेदव्यवहारदर्शनात् (भेदव्यवहारदर्शनात्)। न समयभेदेन भेदः, बध्यमानिकाया वर्तमानविषयाया कालबहुत्वाभावात्। तस्मात् बध्यमानिकाया वेदनाया नास्ति बहुवचनमिति गृहीतव्यं।

संप्रति उदीर्णाया अपि न जीवबहुत्वेन बहुत्वं, तथाविधव्यवहाराभावात्। न प्रकृतिबहुत्वेन

सभी के एकवचन तथा जीव और समय के बहुवचन को स्थापित करके अक्षपरावर्तन करने पर उपशान्त वेदना संबंधी जीव, प्रकृति व समय का प्रस्तार होता है।

जीव	प्रकृति	समय
एक	एक	एक
अनेक	०	अनेक

इस सूत्र के दो भंग हैं।

इस प्रकार बध्यमान-उदीर्ण और उपशान्त वेदनाओं के एकवचन की प्ररूपणा की गई।

जीव	एक	एक	अनेक	अनेक
प्रकृति	एक	एक	एक	एक
समय	एक	अनेक	एक	अनेक

अब उदीर्ण वेदनाओं के भंगों की स्थापना करने हेतु

सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

कथञ्चित् उदीर्ण वेदनाएं हैं॥३३॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सूत्र का अभिप्राय यह है कि कथंचित् उदीर्ण वेदनाएं होती हैं।

शंका — बध्यमान वेदना के बहुत्व की प्ररूपणा क्यों नहीं की गई है ?

समाधान — नहीं प्ररूपित किया है, क्योंकि व्यवहारनय की अपेक्षा उसके बहुत्व की संभावना नहीं है। कारण कि जीवों के बहुत्व से तो बध्यमान वेदना के बहुत्व की संभावना है नहीं, क्योंकि जीवों के भेद से उसके भेद का व्यवहार नहीं पाया जाता है। प्रकृति भेद से भी उसका भेद संभव नहीं है, क्योंकि एक ज्ञानावरणीय प्रकृति के भेद का व्यवहार देखा नहीं जाता है। समय भेद से भी उसका भेद नहीं हो सकता है, क्योंकि वर्तमानकाल को विषय करने वाली बध्यमान वेदना में काल के बहुत्व की संभावना ही नहीं है। इस कारण बध्यमान वेदना के बहुवचन नहीं है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए। जीव बहुत्व से उदीर्ण वेदना का भी बहुत्व संभव नहीं है, क्योंकि वैसा व्यवहार नहीं पाया जाता है। प्रकृति बहुत्व से भी उदीर्ण वेदना का बहुत्व असंभव है, क्योंकि एक ही प्रकृति की विवक्षा है अतएव एकमात्र

उदीर्णवेदनाया बहुत्वं, निरुद्धैकप्रकृतित्वात्। कालबहुत्वमेवाश्रित्य बहुवचनसूत्रभंगप्ररूपणायां द्वौ भंगौ वक्तव्यौ। धवलाटीकायां द्रष्टव्या।

अधुना उपशान्तवेदनानां भंगप्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया उवसंताओ वेयणाओ॥३४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य सूत्रस्य भंगप्रमाणप्ररूपणां करिष्यन्ति। तद्यथा — एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा कथंचित् उपशान्ता वेदनाः। एवमेको भंगः (१)।

अथवा, अनेकेषां जीवानामेका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा कथंचित् उपशान्ताः। एवमेतस्य सूत्रस्य द्वौ भंगौ एव (२)।

एवं सप्तमस्थले व्यवहारनयापेक्षया ज्ञानावरणीयवेदनाभंगनिरूपणपराणि पञ्चसूत्राणि गतानि।

संप्रति द्विसंयोगप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च॥३५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य सूत्रस्यार्थे भण्यमाने तावत् बध्यमानोदीर्णानां

१	१
१	२

 द्विसंयोगसूत्र-
प्रस्तारं

१	१
१	२

 तेषां जीव-प्रकृति-समयप्रस्तारान् च स्थापयित्वा पश्चात्

१२	११	२२
११	११	११
११	१२	१२

 एतस्य सूत्रस्य
भंगप्रमाणप्ररूपणां करिष्यन्ति। तद्धवलाटीकायां

११	१२	१२
----	----	----

 द्रष्टव्यं। एतस्य

कालबहुत्व का आश्रय करके बहुवचन सूत्र के भंगों की प्ररूपणा में दो ही भंग कहना चाहिए। इनका विस्तृत वर्णन धवला टीका में देखना चाहिए।

अब उपशान्त वेदनाओं के भंग का प्रमाण निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

कथञ्चित् उपशान्त वेदनाएं हैं॥३४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस सूत्र के भंगों के प्रमाण की प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है — एक जीव की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई कथंचित् उपशांत वेदनाएं हैं। इस प्रकार एक भंग हुआ (१) अथवा अनेक जीवों की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई कथंचित् उपशांत वेदनाएं हैं। इस प्रकार इस सूत्र के दो ही भंग हैं (२)।

इस प्रकार सप्तम स्थल में व्यवहारनय की अपेक्षा ज्ञानावरणीयवेदना के भंग निरूपण करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब दो के संयोग की प्ररूपणा के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

कथञ्चित् बध्यमान और उदीर्ण वेदना होती है॥३५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस सूत्र के अर्थ का कथन करते समय पहले बध्यमान और उदीर्ण दोनों के द्विसंयोगरूप प्रस्तार करके पश्चात् इस सूत्र की भंगप्ररूपणा को कहेंगे। उसको धवला टीका में देखना चाहिए।

ब.	उ.
एक	एक
एक	अनेक

को तथा उनके जीव, प्रकृति व समय संबंधी प्रस्तार को स्थापित

	बध्यमान		उदीर्ण			
जीव	एक	अनेक	एक	एक	अनेक	अनेक
प्रकृति	एक	एक	एक	एक	एक	एक
समय	एक	अनेक	एक	अनेक	एक	एक

द्विसंयोगप्रथम-सूत्रस्य द्वौ एव भंगौ स्तः।

अधुना द्विसंयोगद्वितीयसूत्रस्य भंगनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णाओ च ॥३६॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य द्विसंयोगद्वितीयसूत्रस्य भंगप्ररूपणायां द्वौ भंगौ ज्ञातव्यौ।

कथंचित् बध्यमानोपशान्तवेदनाभंगनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया बज्झमाणिया च उवसंता च ॥३७॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य बध्यमान-उपशान्तानां द्विसंयोगप्रथमसूत्रस्यार्थे भण्यमाने तावत् बध्यमानानां उपशान्तानां द्विसंयोगसूत्रप्रस्तारं

११	११
१२	१२

 पुनः बध्यमान-उपशान्तजीव-प्रकृति-समयप्रस्तारं च स्थापयित्वा

१२	११	२२
११	११	११
१२	१२	११

 पश्चात् एतस्य सूत्रस्य भंगप्रमाणप्ररूपणा ज्ञातव्या। धवलाटीकायां द्वौ भंगौ स्तः।

संप्रति बध्यमानोपशान्तभंगप्ररूपणानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया बज्झमाणिया च उवसंताओ च ॥३८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — संप्रति एतस्य द्वितीयसूत्रस्य भंगप्रमाणप्ररूपणायां द्वौ भंगौ ज्ञातव्यौ।

इस द्विसंयोग वाले प्रथम सूत्र के दो ही भंग हैं।

अब द्विसंयोगरूप द्वितीय सूत्र के भंग का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ —

कथंचित् बध्यमान (एक) और उदीर्ण (अनेक) वेदनाएँ हैं ॥३६॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस द्विसंयोगरूप द्वितीय सूत्र की भंग प्ररूपणा में दो भंग जानना चाहिए।

अब कथंचित् बध्यमान और उपशान्त वेदना के भंग निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

कथंचित् बध्यमान (एक) और उपशान्त (एक) वेदना है ॥३७॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इन बध्यमान और उपशान्त दो के संयोगरूप प्रथम सूत्र के अर्थ का कथन करते समय पहले बध्यमान और उपशान्त इन दो के संयोगरूप सूत्र के प्रस्तार को तथा बध्यमान, उपशान्त, जीव, प्रकृति और समय,

इनके प्रस्तार को भी स्थापित करके

पश्चात् इस सूत्र के भंगों के प्रमाण

जानना चाहिए। धवला टीका में दो

	बध्यमान		उदीर्ण			
जीव	एक	अनेक	एक	एक	अनेक	अनेक
प्रकृति	एक	एक	एक	एक	एक	एक
समय	एक	एक	एक	अनेक	एक	अनेक

बं.	उप.
एक	एक
एक	अनेक

की प्ररूपणा भंग बताए हैं।

अब बध्यमान और उपशान्त भंगों की प्ररूपणा निरूपित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

कथंचित् बध्यमान (एक) और उपशान्त (अनेक) वेदनाएँ हैं ॥३८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ इस द्वितीय सूत्र के भंगप्रमाण की प्ररूपणा में दो भंग जानना चाहिए।

इस प्रकार बध्यमान और उपशान्त इन दो के संयोग की प्ररूपणा की गई है।

एवं बध्यमानोपशान्तानां द्विसंयोगप्ररूपणा कृता भवति।
इति अष्टमस्थले द्विसंयोगप्ररूपणाभंगनिरूपणपराणि चत्वारि सूत्राणि गतानि।
संप्रति उदीर्णोपशान्तानां द्विसंयोगजनित-वेदनाप्ररूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया उदिण्णा च उवसंता च॥३९॥

११
२२

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य सूत्रस्यार्थं भण्यमाने तावत् उदीर्ण-उपशान्तैक बहुवचन
जनितसूत्रप्रस्तारं ११ २२ १२ १२ स्थापयित्वा पुनः उदीर्ण-उपशान्तानां जीव-प्रकृति-समयैकवचनैः जीवसमययोः बहु-
वचनैः च उत्पन्नप्रस्तारं च स्थापयित्वा ११ २२ ११ २२ ११ २२ ११ २२ पश्चात् भंगोत्पत्तिं दर्शयन्ति। एतद् धवला-
टीकायां द्रष्टव्याः।

संप्रति एकबहुवचनोदीर्णोपशान्तानां भंगनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया उदिण्णा च उवसंताओ च॥४०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य द्वितीयसूत्रस्य भंगे कथ्यमाने एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा
उदीर्णा, तस्यैव जीवस्य एका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा उपशान्ताः, कथंचित् उदीर्णाश्च उपशान्ताश्च
वेदनाः। एवमेको भंगः (१)। अथवा, अनेकेषां जीवानामेका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा उदीर्णा, तेषां चैव

इस प्रकार आठवें स्थल में द्विसंयोगरूप प्ररूपणा के भंगों का निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।
अब उदीर्ण और उपशान्त इन दो के संयोग से उत्पन्न वेदना की प्ररूपणा करने हेतु सूत्र अवतरित
होता है —

सूत्रार्थ —

कथंचित् उदीर्ण और उपशान्त वेदना है॥३९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस सूत्र के अर्थ का कथन करते समय पहले उदीर्ण और उपशांत के
एक व बहुवचन से ब. उप. उदीर्ण एक एक अनेक अनेक उत्पन्न सूत्र के प्रस्तार को
स्थापित करके फिर एक एक उप. एक अनेक एक अनेक उदीर्ण व उपशांत संबंधी जीव,
प्रकृति और समय के अनेक अनेक एक वचन तथा जीव व समय के बहुवचन से उत्पन्न प्रस्तार को भी

उदीर्ण					उपशान्त			
जीव	एक	एक	अनेक	अनेक	एक	एक	अनेक	अनेक
प्रकृति	एक	एक	एक	एक	एक	एक	एक	एक
समय	एक	अनेक	एक	अनेक	एक	अनेक	एक	अनेक

स्थापित करके पश्चात् भंगों की उत्पत्ति को कहते हैं। यह प्रकरण धवला टीका में देखना चाहिए।

अब एक और बहुवचन उदीर्ण-उपशान्त के भंगों का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

कथंचित् उदीर्ण (एक) और उपशान्त (अनेक) वेदनाएं हैं॥४०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस द्वितीय सूत्र के भंगों को कहने पर एक जीव की एक प्रकृति एक
समय में बांधी गई उदीर्ण, उसी जीव की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उपशांत, कथंचित् उदीर्ण और
उपशांत वेदनाएं हैं। इस प्रकार एक भंग हुआ (१)। अथवा, अनेक जीवों की एक प्रकृति एक समय में बांधी

जीवानामेका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा उपशान्ताः, कथंचित् उदीर्णा च उपशान्ताश्च वेदनाः। एवं द्वौ भंगौ (२) एतस्य सूत्रस्य ज्ञातव्यौ भवतः।

संप्रति बहुवचनैकवचनोदीर्णोपशान्तभंगनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया उदिण्णाओ च उवसंता च॥४१॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य तृतीयसूत्रस्य भंगे कथ्यमाने एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा उदीर्णाः, तस्यैव जीवस्य एका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा उपशान्ता, कथंचित् उदीर्णाश्च उपशान्ता च वेदनाः। एवमेको भंगः (१)। अथवा, अनेकेषां जीवानामेका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा उदीर्णाः, तेषां चैव जीवानामेका प्रकृतिः एकसमयप्रबद्धा उपशान्ता, कथंचित् उदीर्णाश्च उपशान्ता च वेदनाः। एवं द्वौ भंगौ (२) एतस्य सूत्रस्य ज्ञातव्यौ।

संप्रति बहुवचनोदीर्णोपशान्तभंगनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिया उदिण्णाओ च उवसंताओ च॥४२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य चतुर्थसूत्रस्य भंगे उच्यमाने एकस्य जीवस्य एका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा उदीर्णाः, तस्यैव जीवस्य एका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा उपशान्ताः, कथंचित् उदीर्णाश्च उपशान्ताश्च वेदनाः। एवमेको भंगः (१)। अथवा, अनेकेषां जीवानामेका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा उदीर्णाः, तेषां चैव जीवानामेका प्रकृतिः अनेकसमयप्रबद्धा उपशान्ताः, कथंचित् उदीर्णाश्च उपशान्ताश्च

गई उदीर्ण, उन्हीं जीवों की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उपशांत, कथंचित् उदीर्ण और उपशांत वेदनाएं हैं। इस प्रकार इस सूत्र के दो भंग हैं (२) ऐसा जानना चाहिए।

अब बहुवचन और एकवचन वाली उदीर्णा और उपशान्त भंगों का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —
सूत्रार्थ —

कथंचित् उदीर्ण (अनेक) और उपशान्त (एक) वेदनाएं हैं॥४१॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस तृतीय सूत्र के भङ्गों को कहने पर एक जीव की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उदीर्ण, उसी जीव की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई उपशांत, कथंचित् उदीर्ण और उपशांत वेदनाएं हैं। इस प्रकार एक भंग हुआ (१)। अथवा, अनेक जीवों की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उदीर्ण, उन्हीं जीवों की एक प्रकृति एक समय में बांधी गई उपशांत, कथंचित् उदीर्ण और उपशांत वेदनाएं हैं। इस प्रकार इस सूत्र के दो भंग जानना चाहिए।

अब बहुवचन वाले उदीर्ण और उपशान्त भंगों का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —
सूत्रार्थ —

कथंचित् उदीर्ण (अनेक) और उपशान्त (अनेक) वेदनाएँ हैं॥४२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस चतुर्थ सूत्र के भंगों को कहने पर एक जीव की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उदीर्ण, उसी जीव की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उपशांत, कथंचित् उदीर्ण और उपशांत वेदनाएं हैं। इस प्रकार एक भंग हुआ (१)। अथवा, अनेक जीवों की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उदीर्ण, उन्हीं जीवों की एक प्रकृति अनेक समयों में बांधी गई उपशांत, कथंचित् उदीर्ण और उपशांत

वेदनाः। एवं द्वौ भंगौ (२)। उदीर्णोपशान्तानां द्विसंयोगचतुर्थसूत्रस्य ज्ञातव्यौ भवतः।

एवं नवमस्थले उदीर्णोपशान्तद्विसंयोगभंगनिरूपकानि चत्वारि सूत्राणि गतानि।

संप्रति त्रिसंयोगजनितवेदनावेदनाविधानप्ररूपणार्थं सूत्रपंचकमवतार्यते —

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च उवसंता च॥४३॥

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च उवसंताओ च॥४४॥

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णाओ च उवसंता च॥४५॥

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णाओ च उवसंताओ च॥४६॥

एवं सत्तण्णं कम्माणं॥४७॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य त्रिसंयोगप्रथमसूत्रस्य अर्थे भण्यमाने बध्यमान-उदीर्ण-उपशान्तानामेकवचनैः उदीर्णोपशान्तबहुवचनैः

१	१	१
०	२	२

 जनित त्रिसंयोगसूत्रस्य प्रस्तारं

११	११
११	२२
१२	१२

 बध्यमान-

उदीर्ण-उपशान्तानां जीव-प्रकृति-समयप्रस्तारान् च स्थापयित्वा

१२	११ २२	११ २२
११	११ ११	११ ११
११	१२ १२	१२ १२

 पश्चात् भंगोत्पत्तिं कथयिष्यन्ति।

वेदनाएँ हैं। इस प्रकार उदीर्ण और उपशांत इन दो के संयोगरूप चतुर्थ सूत्र के दो ही भंग हैं (२), ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार नवमें स्थल में उदीर्ण और उपशान्तरूप द्विसंयोगी भंगों का निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब त्रिसंयोगजनित वेदनावेदनाविधान का प्ररूपण करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

कथंचित् बध्यमान, उदीर्ण और उपशान्त वेदना है॥४३॥

कथंचित् बध्यमान (एक), उदीर्ण (एक) और उपशान्त (अनेक) वेदनाएँ हैं॥४४॥

कथंचित् बध्यमान (एक), उदीर्ण (अनेक) और उपशान्त (एक) वेदना है॥४५॥

कथंचित् बध्यमान (एक), उदीर्ण (अनेक) और उपशान्त (अनेक) वेदनाएँ हैं॥४६॥

इसी प्रकार शेष सात कर्मों के वेदनावेदनाविधान की प्ररूपणा करनी चाहिए॥४७॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस त्रिसंयोगरूप प्रथम सूत्र के अर्थ की प्ररूपणा करते समय बध्यमान, उदीर्ण और उपशान्त, इनके एकवचन तथा उदीर्ण और उपशान्त, इनके बहुवचन

से उत्पन्न तीनों के संयोगरूप सूत्र के प्रस्तार तथा बध्यमान, उदीर्ण और उपशान्त संबंधी जीव

बध्य.	एक	एक	एक	एक
उदीर्ण	एक	एक	अनेक	अनेक
उपशांत	एक	अनेक	एक	अनेक

बध्य.	उदीर्ण	उप.
एक	एक	एक
०	अनेक	अनेक

एवं प्रथम द्वितीयतृतीयचतुर्थसूत्राणां द्वौ द्वौ भंगौ धवलाटीकायां विस्तरेण पठितव्यौ।

एवं बध्यमान-उदीर्ण-उपशान्तानामेक-द्वि-त्रिसंयोगैः व्यवहारनयमाश्रित्य ज्ञानावरणीयवेदना-वेदनाविधानं प्ररूपितं।

यथात्र ज्ञानावरणीयकर्मणो व्यवहारनयापेक्षया वेदनावेदनाविधानं कथितं तथा शेषसप्तकर्मणां प्ररूपयितव्यं, विशेषाभावात्।

एवं दशमस्थले त्रिसंयोगभंगनिरूपणत्वेन सूत्रपंचकं गतम्।

अधुना संग्रहनयापेक्षया एक-द्वि-त्रिसंयोगभंगनिरूपणार्थं सूत्राष्टकमवतार्यते —

संग्रहणयस्स पाणावरणीयवेयणा सिया बज्झाणिया वेयणा॥४८॥

सिया उदिण्णा वेयणा॥४९॥

सिया उवसंता वेयणा॥५०॥

सिया बज्झमाणिया च वेयणा च॥५१॥

प्रकृति व समय के

	बध्यमान		उदीर्ण			
जीव	एक	अनेक	एक	एक	अनेक	अनेक
प्रकृति	एक	एक	एक	एक	एक	एक
समय	एक	एक	एक	अनेक	एक	अनेक

उपशान्त			
एक	एक	अनेक	अनेक
एक	एक	एक	एक
एक	अनेक	एक	अनेक

प्रस्तारों को भी स्थापित करके पश्चात् भंगों की उत्पत्ति को कहेंगे।

इस प्रकार से प्रथम-द्वितीय-तृतीय और चतुर्थ सूत्र के दो-दो भंग धवला टीका में विस्तार से पढ़ना चाहिए।

इस प्रकार बध्यमान-उदीर्ण और उपशान्त इनके एक-दो और तीनों के संयोग से व्यवहारनय का आश्रय करके ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना का विधान प्ररूपित किया गया है।

जिस प्रकार व्यवहारनय का आश्रय करके ज्ञानावरणीय कर्म की वेदनावेदना के विधान की प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार शेष सात कर्मों की वेदनावेदना के विधान की प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

इस प्रकार दशवें स्थल में त्रिसंयोगी भंगों का निरूपण करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब संग्रहनय की अपेक्षा एक-दो और तीन संयोगी भंगों का निरूपण करने हेतु आठ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

संग्रहनय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय की वेदना कथंचित् बध्यमान वेदना है॥४८॥

कथंचित् उदीर्ण वेदना भी होती है॥४९॥

कथंचित् उपशान्त वेदना होती है॥५०॥

कथंचित् बध्यमान और उदीर्ण वेदना होती है॥५१॥

सिया बज्झमाणिया च उवसंता च।।५२।।

सिया उदिण्णा च उवसंता च।।५३।।

सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च उवसंता च।।५४।।

एवं सत्तण्णं कम्माणं।।५५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — संग्रहनयापेक्षया ज्ञानावरणीयवेदनायां भण्यमानायां जीवप्रकृतिसमयानां एकवचनं

जीवबहुवचनं च स्थापयित्वा

१	१	१
२	०	०

 पुनः अत्राक्षपरावर्तनं कृत्वा जनितप्रस्तारं च स्थापयित्वा अत्र

१	२
१	१
१	१

 प्ररूपणां करिष्यन्ति।

एवं अत्र त्रिभिः सूत्रैः कथंचित् बध्यमानिका वेदना, कथंचित् उदीर्णा वेदना, कथंचित् उपशान्ता वेदना, एतासां द्वौ द्वौ भंगौ निरूपितौ स्तः। पुनश्च द्विसंयोगभंगानां कथ्यमाने त्रीणि सूत्राणि प्ररूपितानि एतेषां अपि द्वौ द्वौ भंगौ कथितौ ज्ञातव्यौ। ततश्च त्रिसंयोगभंगनिरूपणायां एकं सूत्रं कथितमस्ति। अग्रे यथा संग्रहनयमाश्रित्य ज्ञानावरणीय वेदनावेदनाविधानं प्ररूपितं तथा शेषसप्तानां कर्मणां प्ररूपयितव्यं, विशेषाभावात्। विस्तरस्तु धवलाटीकायां पठितव्यम्।

एवं एकादशमस्थले संग्रहनयापेक्षया भंगनिरूपणपराणि अष्टौ सूत्राणि गतानि।

कथंचित् बध्यमान और उपशान्त वेदना होती है।।५२।।

कथंचित् उदीर्ण और उपशान्त वेदना होती है।।५३।।

कथंचित् बध्यमान, उदीर्ण और उपशान्त वेदना होती है।।५४।।

इसी प्रकार शेष सात कर्मों के संबंध में कथन करना चाहिए।।५५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — संग्रहनय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय वेदना का कथन करने पर जीव,

प्रकृति और समय इनके एकवचन तथा जीव के बहुवचन को स्थापित करके फिर यहाँ अक्षपरावर्तन करके उत्पन्न हुए प्रस्तार को स्थापित करके यहाँ अर्थ की

जीव	एक	अनेक
प्रकृति	एक	एक
समय	एक	एक

प्ररूपणा करेंगे।

जीव	प्रकृति	समय
एक	एक	एक
अनेक	०	०

इस प्रकार यहाँ तीन सूत्रों के द्वारा कथंचित्

बध्यमान वेदना, कथंचित् उदीर्ण वेदना और कथंचित् उपशान्त वेदना इनके दो-दो भंग निरूपित किये हैं पुनः द्विसंयोगी भंगों का कथन करने हेतु तीन सूत्र

प्ररूपित किये हैं, इनके भी दो-दो भंग कहे गये हैं। उसके पश्चात् त्रिसंयोगी भंगों के निरूपण में एक सूत्र कहा है। आगे जिस प्रकार संग्रहनय का आश्रय लेकर ज्ञानावरणीय का वेदनावेदनाविधान प्ररूपित किया है उसी प्रकार शेष सातों कर्मों के वेदनावेदनाविधान को भी प्ररूपित करना चाहिए, क्योंकि वहाँ और कोई विशेषता नहीं पाई जाती है। इनका विस्तृत वर्णन धवला टीका में पढ़ना चाहिए।

इस प्रकार ग्यारहवें स्थल में संग्रहनय की अपेक्षा भंगों का निरूपण करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

अब ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा कर्मवेदना का निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

अधुना ऋजुसूत्रनयापेक्षया कर्मवेदनानिरूपणार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

उजुसुदस्स णाणावरणीयवेयणा उदिण्णफलपत्तविवागा वेयणा।।५६।।

एवं सत्तण्णं कम्माणं।।५७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उदीर्णस्य फलं उदीर्णफलं, तत्प्राप्तो विपाको यस्यां सा उदीर्णफल-प्राप्तविपाका वेदना भवति, नापरा। यः कर्मस्कंधो यस्मिन् समये अज्ञानमुत्पादयति सः तस्मिन्नेव समये ज्ञानावरणीयवेदना भवति, नोत्तरक्षणे; विनष्टकर्मपर्यायत्वात्। न पूर्वक्षणेऽपि, तस्याज्ञानजननशक्तेरभावात्। न च वेदनाया अकारणं वेदना भवति, अव्यवस्थाप्रसंगात्। तस्मात् बध्यमान-उपशान्तकर्मणी वेदने न भवतः, उदीर्णं चैव वेदना भवतीति भणितं भवति।

यथा ऋजुसूत्रनयापेक्षया ज्ञानावरणीयविषये वेदना प्ररूपिता तथैव शेषसप्तानां कर्मणामपि प्ररूपयितव्यम्।

एवं द्वादशमस्थले ऋजुसूत्रनयेन कर्मणां वेदनाकथनसूचकं सूत्रद्वयं गतम्।

अधुना शब्दनयापेक्षया कर्मवेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सद्दणयस्स अवत्तव्वं।।५८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — शब्दनयविषये द्रव्याभावात्। ज्ञानावरणीय-वेदनाशब्दयोः भिन्नार्थयोः

सूत्रार्थ —

ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना उदीर्ण फल को प्राप्त विपाक वाली वेदना होती है।।५६।।

इसी प्रकार शेष सात कर्मों के संबंध में कहना चाहिए।।५७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उदीरणा का फल उदीर्णफल कहलाता है। उसको प्राप्त है विपाक जिसमें, वह उदीर्ण फल प्राप्त विपाक वेदना है, अपरा — दूसरी नहीं है। जो कर्मस्कंध जिस समय में अज्ञान को उत्पन्न कराता है, उसी समय में ही वह ज्ञानावरणीय की वेदनारूप होता है, न कि उत्तर क्षण में, क्योंकि उत्तर क्षण में उसकी कर्मरूप पर्याय नष्ट हो जाती है। पूर्व क्षण में ही उक्त कर्मस्कंध ज्ञानावरणीय की वेदनारूप नहीं होता, क्योंकि उस समय उसमें अज्ञान को उत्पन्न करने की शक्ति का अभाव है और जो वेदना का कारण ही नहीं है वह वेदना नहीं होता है, क्योंकि वैसा होने पर अव्यवस्था का प्रसंग आता है। इस कारण बध्यमान व उपशांत कर्म वेदना नहीं होते हैं, किन्तु उदीर्ण कर्म ही वेदना होता है, यह सूत्र का अभिप्राय है।

जिस प्रकार ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा से ज्ञानावरणीय के संबंध में वेदना की प्ररूपणा की गई है। उसी प्रकार शेष सात कर्मों के संबंध में भी प्ररूपणा करना चाहिए।

इस प्रकार बारहवें स्थल में ऋजुसूत्र नय से कर्मों की वेदना का कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब शब्दनय की अपेक्षा कर्मवेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

शब्दनय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय वेदना अवक्तव्य है।।५८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसमें कारण यह है कि शब्दनय के विषय में द्रव्य का अभाव है।

भिन्नस्वरूपयोः समासाभावात् वा पृथग्भूतेषु अपृथग्भूतेषु च तस्येदमिति संबंधाभावात् वा त्रयाणां शब्दनयानां — शब्दसमभिरूढ-एवंभूतनयानामवक्तव्यं ज्ञातव्यं भवति।

तात्पर्यमत्र — एतद्वेदनावेदनाविधानानुयोगद्वारं पठित्वा ‘वेद्यते वेदिष्यते इति वेदनाशब्दसिद्धेः।’ अतः अष्टविधकर्मपुद्गलस्कंधः वेदना ज्ञातव्या। तथा च अनुभवनं वेदना, वेदनाया वेदना वेदनावेदना, अष्टविधकर्मपुद्गलस्कंधानुभवः इत्यर्थः। अत्र चिन्तयितव्यं — ममात्मा निश्चयनयेन पूर्णतया शुद्ध एव कर्मानुभवेभ्यः पृथगेवातो मया शुद्धात्मतत्त्वमेवाभ्यसनीयम्।

एवं त्रयोदशमस्थले शब्दनयेन कर्मवेदनानिरूपकं एकं सूत्रं गतम्।

इत्थं त्रयोदशभिरन्तराधिकारैः अष्टपंचाशत्सूत्रैः वेदनावेदनाविधाननाम-अनुयोगद्वारं समाप्तं।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य वेदनानाम्नि चतुर्थखण्डे द्वादशे ग्रन्थे गणिनीज्ञानमती-
कृत-सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां वेदनावेदनाविधानानुयोगद्वारनामायं
तृतीयोऽधिकारः समाप्तः।

अथवा, ज्ञानावरणीय और वेदना इन भिन्न अर्थ व स्वरूप वाले दोनों शब्दों का समास न हो सकने से अथवा पृथग्भूत और अपृथग्भूत उनमें ‘यह उसका है’ इस प्रकार का संबंध न बन सकने से भी तीनों शब्द नयों की अपेक्षा अर्थात् शब्द-समभिरूढ और एवंभूत इन तीनों नयों की अपेक्षा वह अवक्तव्य है।

तात्पर्य यह है कि इस वेदनावेदनाविधान अनुयोगद्वार को पढ़कर “वेदन — अनुभवन कराने अर्थ में वेदना शब्द की सिद्धि होती है।” अतः आठ प्रकार के कर्मरूप पुद्गल स्कंधों को वेदना जानना चाहिए और उन कर्मों का अनुभवन वेदना है, वेदना की वेदना वेदनावेदना कहलाती है, इस प्रकार आठ प्रकार के कर्मरूप पुद्गल स्कंध का अनुभव वेदना है, ऐसा अभिप्राय है। यहाँ चिन्तन करना चाहिए कि मेरी आत्मा निश्चयनय से पूर्णतया शुद्ध ही है, कर्म के अनुभव से पृथक् ही है अतः मुझे शुद्धात्मतत्त्व का ही अभ्यास करना चाहिए।

इस प्रकार तेरहवें स्थल में शब्दनय से कर्मवेदना का निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार तेरह अन्तराधिकारों में अट्ठावन सूत्रों के द्वारा वेदनावेदनाविधान नाम का अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम ग्रंथ में वेदना नाम के चतुर्थ खण्ड में बारहवें ग्रंथ में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिन्तामणिटीका में वेदनावेदना-विधान अनुयोगद्वार नाम का यह तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।



वेदनागतिविधानानुयोगद्वारम् (वेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-एकादशानुयोगद्वारम्)

चतुर्थोऽधिकारः

मंगलाचरणम्

ये त्रिंशत् चतुरुत्तरा अतिशया, ये प्रातिहार्या वसुः।
येष्वानन्त्यचतुष्टया गुणमया, दोषाः किलाष्टादश॥
ये दोषैः रहिता गुणैश्च सहिता, देवाश्चतुर्विंशतिः।
ते सर्वस्वगुणा अनंतगुणिताः, कुर्वन्तु मे (नो) मंगलम्॥१॥

अथ द्वितीयवेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गत-एकादशं वेदनागतिविधानानुयोगद्वारमस्ति। अत्र प्रथममहाधिकारान्तर्गते चतुर्भिःस्थलैः द्वादशसूत्रैः वेदनागतिविधाननाम-चतुर्थोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले प्रतिज्ञासूचनपरेण 'वेयणागदि' इत्यादिना एकं सूत्रम्। द्वितीयस्थले नैगम-संग्रह-व्यवहारनयापेक्षया ज्ञानावरणीयादिकर्मवेदनानिरूपणपराणि "णेगम-ववहार" इत्यादिना सप्त सूत्राणि निगद्यन्ते। तृतीयस्थले ऋजुसूत्रनयापेक्षया ज्ञानावरणीयादिवेदनाप्रतिपादनपरं "उजुसुदस्स" इत्यादि सूत्रत्रयं। पुनश्च चतुर्थस्थले शब्दनयापेक्षया ज्ञानावरणीयादिवेदनासूचकं "सदणयस्स" इत्यादिना एकं सूत्रमिति संक्षेपेण समुदायपातनिका कथिता।

अधुना अनुयोगद्वारकथनप्रतिज्ञापनार्थं सूत्रमवतार्यते —

वेदनागतिविधान अनुयोगद्वार (वेदनानुयोगद्वार के अन्तर्गत-ग्यारहवाँ अनुयोगद्वार)

चतुर्थ अधिकार

मंगलाचरण

श्लोकार्थ — जो चौतिस अतिशय, आठ प्रातिहार्य तथा अनन्तचतुष्टयरूप गुणों से सहित हैं तथा अठारह दोषों से रहित हैं ऐसे वे सर्वस्व गुणों के साथ-साथ अनंत गुणों से मण्डित चौबीसों तीर्थकर भगवान् हम सभी का मंगल करें॥१॥

अब प्रथम महाधिकार के अन्तर्गत चार स्थलों में बारह सूत्रों से समन्वित वेदनागतिविधान नाम का चतुर्थ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में प्रतिज्ञा को सूचित करने वाला "वेयणागदि" इत्यादि एक सूत्र है। द्वितीय स्थल में नैगम, संग्रह और व्यवहारनय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय आदि कर्मवेदना का निरूपण करने वाले "णेगम-ववहार" इत्यादि सात सूत्र कहे हैं। तृतीय स्थल में ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय आदि की वेदना का प्रतिपादन करने हेतु "उजुसुदस्स" इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनश्च चतुर्थ स्थल में शब्दनय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय आदि वेदना का सूचक "सदणयस्स" इत्यादि एक सूत्र है। इस प्रकार संक्षेप में सूत्रों की समुदायपातनिका कही गई है।

अब अनुयोगद्वार का कथन प्रतिज्ञापित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

वेयणागदिविहाणे त्ति।।१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतत्सूत्रं अधिकारस्मरणार्थमागतं। वेदनायाः गतिर्गमनं विधीयते प्ररूप्यते अनेनेति वेदनागतिविधानम्।

अथ कश्चित् पृच्छति —

कथं जीवप्रदेशेषु समवेतानां कर्मणां गमनं युज्यते ?

आचार्यदेवः उत्तरयति —

नैष दोषः, जीवप्रदेशेषु योगवशेन संचारमाणेषु तदपृथग्भूतानां कर्मस्कंधानामपि संचरणं प्रति विरोधाभावात्।

किमर्थं वेदनागतिविधानमुच्यते ?

आचार्यः प्राह —

यदि कर्मप्रदेशाः स्थिताश्चैव भवन्ति तर्हि जीवेन देशान्तरगतेन सिद्धसमानेन भवितव्यं, सकलकर्माभावात्। न तावत् पूर्वसंचितकर्माणि सन्ति, तेषां पूर्वप्रदेशे स्थिरस्वरूपेणावस्थितानामत्रागमनाभावात्। न वर्तमानकालेऽपि कर्मसंचयोऽस्ति, मिथ्यात्वादित्ययानां कर्मभिः सह स्थितानामत्र संभवाभावादिति।

न कर्मस्कंधानामवस्थानमपि युज्यते, सर्वजीवानां मुक्तिप्रसंगात्। तद्यथा न तावदर्पितद्वितीयसमये कर्माणि संति, अवस्थानाभावेन निर्मूलतो विनष्टत्वात्। न तावत् उत्पन्नप्रथमसमयेऽपि फलं ददति, बध्यमानसमये

सूत्रार्थ —

वेदनागतिविधान अनुयोगद्वार का अधिकार प्राप्त है।।१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यह सूत्र अधिकार का स्मरण कराने हेतु आया है। वेदना की गति अर्थात् गमन की इसके द्वारा प्ररूपणा की जाती है, वह वेदनागतिविधान कहलाता है।

यहाँ कोई प्रश्न पूछता है कि —

जीव प्रदेशों में समवाय को प्राप्त हुए कर्मों का गमन कैसे संभव है ?

आचार्यदेव इसका उत्तर देते हैं कि —

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि योग के कारण जीवप्रदेशों का संचरण होने पर उनसे अपृथग्भूत कर्मस्कंधों के भी संचार में कोई विरोध नहीं आता।

शंका — वेदनागतिविधान अनुयोगद्वार किसलिए कहा जा रहा है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं —

यदि कर्मप्रदेश स्थित ही हों तो देशान्तर को प्राप्त हुए जीव को सिद्ध जीव के समान हो जाना चाहिए, क्योंकि उस समय उसके समस्त कर्मों का अभाव है। यह कहना कि उसके पूर्वसंचित कर्म विद्यमान हैं, ठीक नहीं है, क्योंकि वे पूर्व स्थान में ही स्थिररूप से अवस्थित हैं, उनका यहाँ देशान्तर में आना असंभव है। वर्तमानकाल में भी उसके कर्मों का संचय नहीं है, क्योंकि कर्मों के साथ स्थित मिथ्यात्वादिक प्रत्ययों की यहाँ संभावना नहीं है। कर्मस्कंधों का अवस्थान स्वीकार करना भी योग्य नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर सब जीवों की मुक्ति का प्रसंग आता है।

यथा — विवक्षित द्वितीय समय में कर्मों का अस्तित्व नहीं है, क्योंकि अवस्थान के न होने से उनका निर्मूल नाश हो गया है। उत्पन्न होने के प्रथम समय में वे फल नहीं देते हैं, क्योंकि बंध होने के समय में कर्मों

कर्मणां विपाकाभावात्। भावे व कर्म-कर्मफलयोर्द्वयोरेकसमये चैव संभवो भूत्वा द्वितीयसमयेषु बंधसत्त्वाभावो भवेत्, तत्र बंधकारणमिथ्यात्वादिकर्मफलानामभावात्। एवं च सति सर्वजीवानां तत्र मुक्तिप्रसंगेन भवितव्यम्। न चैवं तथानुपलंभात्।

न च उभयपक्षोऽपि युज्यते उभयपक्षकथितदोषानुषंगत्। इति पर्यायदृष्टिप्राप्तशिष्यस्य जीवकर्मणोः पारतंत्रिकलक्षणसंबंधज्ञापनार्थं जीवप्रदेशपरिस्पन्दनहेतुश्चैव योग इति ज्ञापनार्थं च वेदनागतिविधानं प्ररूपयिष्यते।

एवं प्रथमस्थले प्रतिज्ञासूचनपरं एकं सूत्रं गतम्।

अधुना वेदनागतिविधानाधिकारे नैगमादिनयापेक्षया ज्ञानावरणीयवेदनाप्रतिपादनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

णेगम-ववहार-संगहाणं णाणावरणीयवेयणा सिया अवट्टिदा।।२।।

सिया ट्टिदाट्टिदा।।३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — रागद्वेषकषायैः वेदनाभिर्वा भयेन अध्वानजनितपरिश्रमेण वा जीवप्रदेशेषु अभ्यस्थितजलमिव संचरन्तेषु तत्र समवेतकर्मप्रदेशानामपि संचरणोपलंभात्। जीवप्रदेशेषु पुनः कर्मप्रदेशाः स्थिताश्चैव, पूर्वोक्तदेशं मुक्त्वा देशान्तरे स्थितजीवप्रदेशेषु समवेतकर्मस्कंधोपलंभात्।

कुत एवमुपलभ्यते ?

का फल देना असंभव है अथवा यदि बंध समय में फल का देना स्वीकार किया जाये तो फिर कर्म और कर्मफल इन दोनों की एक समय में ही संभावना होकर द्वितीय समय में बंध और सत्त्व का अभाव हो जाना चाहिए, क्योंकि दूसरे समय में बंध के कारण मिथ्यात्वादि का तथा कर्मफल का अभाव है और ऐसा होने पर उस समय सब जीवों की मुक्ति हो जानी चाहिए परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता है।

यदि उभय पक्ष को स्वीकार किया जाये तो वह भी ठीक नहीं है, क्योंकि वैसा स्वीकार करने पर उभय पक्षों में दिये गये दोषों का प्रसंग आता है। इस प्रकार से पर्यायदृष्टि वाले शिष्य के लिए जीव व कर्म के पारतन्त्र्यस्वरूप संबंध को बतलाने के लिए तथा जीव प्रदेशों के परिस्पन्दन का हेतु योग ही है, इस बात को भी बतलाने के लिए 'वेदनागतिविधान' की प्ररूपणा करेंगे।

इस प्रकार प्रथम स्थल में प्रतिज्ञा को सूचित करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब वेदनागतिविधान अधिकार में नैगम आदि नय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय वेदना को प्रतिपादित करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

नैगम, व्यवहार और संग्रहनयों की अपेक्षा ज्ञानावरणीय की वेदना कथंचित् अवस्थित है।।२।।

उक्त वेदना कथंचित् स्थित-अस्थित है।।३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — राग, द्वेष और कषाय से अथवा वेदनाओं से, भय से अथवा अध्वान से उत्पन्न परिश्रम से मेघों में स्थित जल के समान जीवप्रदेशों का संचार होने पर उनमें समवाय को प्राप्त कर्म प्रदेशों का भी संचार पाया जाता है परन्तु जीव प्रदेशों में कर्मप्रदेश स्थित ही रहते हैं, क्योंकि जीव प्रदेशों के पूर्व के देश को छोड़कर देशान्तर में जाकर स्थित होने पर उनमें समवाय को प्राप्त कर्मस्कंध पाये जाते हैं।

शंका — यह अर्थ किस प्रमाण से उपलब्ध होता है ?

सूत्रे 'सिया' शब्दोच्चारणान्यथानुपपत्तेः देशे इव जीवप्रदेशेष्वपि अस्थितत्वे अभ्युपगम्यमाने पूर्वोक्तदोषप्रसंगाच्च।

अत्र कश्चिदाशङ्कते —

अष्टानां मध्यमजीवप्रदेशानां संकोचो विकोचो वा नास्तीति तत्र स्थितकर्मप्रदेशानामपि अस्थितत्वं नास्ति इति। ततः सर्वे जीवप्रदेशाः कश्मिन्नपि काले अस्थिता भवन्तीति सूत्रवचनं न घटते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नैष दोषः, तान् अष्टमध्यमजीवप्रदेशान् मुक्त्वा शेषजीवप्रदेशानाश्रित्य एतस्य सूत्रस्य प्रवृत्तेः।

पुनः कश्चिदाह —

कथं पुनः एषोऽर्थविशेष उपलभ्यते ?

आचार्यः प्राह —

सूत्रे 'सिया' स्यात् शब्दप्रयोगादेवोपलभ्यते।

पूर्वोक्तवेदना कथंचित् स्थितास्थिता अस्ति।

व्याधि-वेदना-भयादिक्लेशविरहितस्य छद्मस्थस्य जीवप्रदेशानां केषामपि चलनाभावात् तत्र स्थितकर्मस्कंधा अपि स्थिताश्चैव भवन्ति, तत्रैव केषां जीवप्रदेशानां संचालनोपलंभात् तत्र स्थितकर्मस्कंधा अपि संचलन्ति, तेन ते अस्थिताः इति भण्यन्ते। तयोर्द्वयोः समुदायो वेदना इति एका भवति। तेन सा स्थितास्थिता इति द्विस्वभावा भण्यते।

समाधान — एक तो ऐसा अर्थ ग्रहण किये बिना 'स्यात्' शब्द का उच्चारण घटित नहीं होता।

दूसरे देश के समान जीवप्रदेशों में भी कर्मप्रदेशों को अवस्थित स्वीकार करने पर पूर्वोक्त दोष का प्रसंग आता है।

यहाँ कोई शंका करता है —

चूँकि जीव के आठ मध्यम प्रदेशों का संकोच अथवा विस्तार नहीं होता अतः उनमें स्थित कर्मप्रदेशों का भी अस्थितपना नहीं बनता है और इसलिए सब जीवप्रदेश किसी भी समय अस्थित होते हैं, यह सूत्र वचन घटित नहीं होता ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं —

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जीव के उन आठ मध्यम प्रदेशों को छोड़कर शेष जीवप्रदेशों का आश्रय करके इस सूत्र की प्रवृत्ति हुई है।

पुनः कोई शंका करता है —

इस अर्थविशेष की उपलब्धि किस प्रकार से होती है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं —

उसकी उपलब्धि सूत्र में 'स्यात्' शब्द के प्रयोग से होती है।

पूर्वोक्त वेदना कथंचित् स्थित अस्थित है।

व्याधि, वेदना एवं भय आदिक क्लेशों से रहित छद्मस्थ के किन्हीं जीवप्रदेशों का चूँकि संचार नहीं होता अतएव उनमें स्थित कर्मप्रदेश भी स्थित ही होते हैं तथा उसी छद्मस्थ के किन्हीं जीवप्रदेशों का चूँकि संचार पाया जाता है अतएव उनमें स्थित कर्मप्रदेश भी संचार को प्राप्त होते हैं इसलिए वे अस्थित कहे जाते हैं अतः उन दोनों के समुदायस्वरूप वेदना एक है अतः वह स्थित अस्थित इन दो स्वभाव वाली कही जाती है।

अत्र कश्चिदाह —

ये जीवप्रदेशाः अस्थिताः तेषां कर्मबंधो भवतु नाम, सयोगत्वात्। ये पुनः स्थिताः तेषां जीवप्रदेशानां नास्ति कर्मबन्धः, योगाभावात्।

अत्र प्रतिशंका अवतरति —

सोऽपि कुतो ज्ञायते ?

अस्याः प्रतिशंकायाः समाधानं —

जीवप्रदेशानां परिस्पन्दाभावात्। न च परिस्पन्दविरहितजीवप्रदेशेषु योगो नास्ति, सिद्धानामपि सयोगत्वापत्तेः इति ?

अत्र शंकायाः समाधानं ददात्याचार्यदेवः —

अधुनाः परिहारः उच्यते —

मनोवचनकायक्रियासमुत्पत्तौ जीवस्योपयोगो योगो नाम। स च कर्मबंधस्य कारणं। स च योगः स्तोकेषु जीवप्रदेशेषु न भवति, एकजीवप्रवृत्तस्य स्तोकावयवेषु चैव वृत्तिविरोधात् एकस्मिन् जीवे खंडखंडेन प्रवृत्तिविरोधाद्वा। तस्मात् स्थितेषु जीवप्रदेशेषु कर्मबंधोऽस्ति इति ज्ञायते। न च योगात् नियमेन जीवप्रदेशपरिस्पन्दो भवति, तस्य ततः अनियमेन समुत्पत्तेः।

न च एकान्तेन नियमो नास्ति चैव, यदि जीवप्रदेशेषु परिस्पन्दः उत्पद्यते तर्हि तस्माद् योगाच्चैव उत्पद्यते इति नियमोपलंभात्। ततः स्थितानामपि योगोऽस्ति इति कर्मबंधभूयमेषितव्यम्।

अधुना शेषसप्तकर्मणां वेदनाप्रतिपादनार्थं पंचसूत्राण्यवतार्यन्ते —

यहाँ कोई शंका करता है —

इनमें जो जीवप्रदेश अस्थित हैं, उनके कर्मबंध भले ही हों, क्योंकि वे योग सहित हैं किन्तु जो जीवप्रदेश स्थित हैं, उनके कर्मबंध का होना संभव नहीं है, क्योंकि वे योग से रहित हैं।

पुनः यहाँ प्रतिशंका उठती है —

वह भी किस प्रमाण से जाना जाता है ?

आचार्यदेव इस प्रतिशंका का समाधान देते हैं —

जीवप्रदेशों का परिस्पन्दन न होने से ही जाना जाता है कि वे योग से रहित हैं और परिस्पन्दन से रहित जीवप्रदेशों में योग की संभावना नहीं है, क्योंकि वैसा होने पर सिद्ध जीवों के भी सयोग होने की आपत्ति आती है ?

यहाँ उपर्युक्त शंका का परिहार करते हुए आचार्यदेव कहते हैं —

मन, वचन एवं काय संबंधी क्रिया की उत्पत्ति में जो जीव का उपयोग होता है, वह योग है और वह कर्मबंध का कारण है परन्तु वह थोड़े से जीवप्रदेशों में नहीं हो सकता, क्योंकि एक जीव में प्रवृत्त हुए उक्त योग की थोड़े से ही अवयवों में प्रवृत्ति मानने में विरोध आता है, अथवा एक जीव में उसके खण्ड-खण्ड रूप से प्रवृत्त होने में विरोध आता है इसलिए स्थित जीवप्रदेशों में कर्मबंध होता है, यह जाना जाता है। दूसरे योग से जीवप्रदेशों में नियम से परिस्पन्द होता है, ऐसा नहीं है, क्योंकि योग से अनियम से उसकी उत्पत्ति होती है।

तथा एकान्ततः नियम नहीं है, ऐसी भी बात नहीं है, क्योंकि यदि जीवप्रदेशों में परिस्पन्द उत्पन्न होता है तो वह योग से ही उत्पन्न होता है, ऐसा नियम पाया जाता है। इस कारण स्थित जीवप्रदेशों में भी योग के होने से कर्मबंध को स्वीकार करना चाहिए।

अब शेष सात कर्मों की वेदना का प्रतिपादन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं॥४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यथा ज्ञानावरणीयस्य द्विविधा गतिविधानप्ररूपणा कृता तथा एतेषां त्रयाणामपि कर्मणां कर्तव्या, छद्मस्थेषु चैव वर्तमानत्वेन भेदाभावात्।

वेयणीयवेयणा सिया द्विदा॥५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अयोगिकेवलनि भगवति नष्टाशेषयोगे जीवप्रदेशानां संकोचविकोचाभावेन अवस्थानोपलंभात्।

सिया अद्विदा॥६॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सुगममेतत्सूत्रं, ज्ञानावरणीयप्ररूपणायाश्चैव अवगतस्वरूपत्वात्।

सिया द्विद्विदा॥७॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्यापि प्ररूपणा ज्ञानावरणीयसमाना ज्ञातव्या।

एवमाउव-णामा-गोदाणं॥८॥

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्मों के विषय में कहना चाहिए॥४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के गतिविधान की दो प्रकार की प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार इन तीन कर्मों की भी प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि ये कर्म छद्मस्थों के ही विद्यमान रहते हैं, इसलिए इनकी प्ररूपणा में ज्ञानावरणीय की प्ररूपणा से कोई भेद नहीं है।

सूत्रार्थ —

वेदनीय कर्म की वेदना कथंचित् स्थित है॥५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि अयोगकेवली भगवान में समस्त योगों के नष्ट हो जाने से जीवप्रदेशों का संकोच व विस्तार नहीं होता है, अतएव वे वहाँ अवस्थित पाये जाते हैं।

सूत्रार्थ —

कथंचित् वह अस्थित है॥६॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यह सूत्र सुगम है, क्योंकि ज्ञानावरणीय कर्म की प्ररूपणा से ही उसके स्वरूप का ज्ञान हो जाता है।

सूत्रार्थ —

कथंचित् वह स्थित अस्थित है॥७॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसकी प्ररूपणा भी ज्ञानावरणीय कर्म के समान जानना चाहिए।

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार आयु, नाम और गोत्र कर्म के संबंध में जानना चाहिए॥८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यथा वेदनीयस्य कर्मणो गतिविधानं प्ररूपितं तथा एतेषां त्रयाणां कर्मणां वक्तव्यं, भेदाभावात्।

एवं द्वितीयस्थले नैगमसंग्रहव्यवहारनयापेक्षया वेदनागतिविधानप्रतिपादनत्वेन सप्तसूत्राणि गतानि।

संप्रति ऋजुसूत्रनयापेक्षया ज्ञानावरणीयादिकर्मणां वेदनानिरूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

उजुसुदस्स णाणावरणीयवेयणा सिया ढ्ढिदा॥९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ऋजुसूत्रनयापेक्षया ज्ञानावरणीयवेदना कथंचित् स्थिता अस्ति।

अत्र कश्चिदाह —

छद्मस्थेषु सयोगेषु ऋजुसूत्रनयेन कथं सर्वेषां जीवप्रदेशानां स्थितत्वं भवति ?

आचार्यः प्राह —

क एवं भणति, ऋजुसूत्रनयः सर्वेषां जीवप्रदेशानां कस्मिन्नपि काले स्थितत्वं चैव इच्छतीति। किन्तु ये स्थितास्ते स्थिताश्चैव, नास्थिताः, स्थितेषु अस्थितत्वविरोधादिति। एषः ऋजुसूत्रनयाभिप्रायो ज्ञातव्यः।

सिया अढ्ढिदा॥१०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जिस प्रकार वेदनीय कर्म के गतिविधान की प्ररूपणा की गई उसी प्रकार इन तीन कर्मों के गतिविधान की प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में नैगम-संग्रह और व्यवहारनय की अपेक्षा वेदनागतिविधान का प्रतिपादन करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

अब ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय आदि कर्मों की वेदना का निरूपण करने के लिए तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना कथंचित् स्थित है॥९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा से ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना कथंचित् स्थित है, ऐसा यहाँ सूत्र का अभिप्राय है।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

योगसहित छद्मस्थ जीवों में ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा सभी जीवप्रदेश स्थित कैसे हो सकते हैं ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं कि —

ऐसा कौन कहता है कि ऋजुसूत्र नय सब जीव प्रदेशों को किसी भी काल में स्थित ही स्वीकार करता है ? किन्तु जो जीव प्रदेश स्थित हैं, वे स्थित ही रहते हैं, उस काल में वे अस्थित नहीं हो सकते। क्योंकि स्थित प्रदेशों के अस्थित होने का विरोध है। यह ऋजुसूत्र नय का अभिप्राय जानना चाहिए।

सूत्रार्थ —

कथंचित् वह अस्थित है॥१०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ये अस्थितजीवप्रदेशास्तेऽस्थिताश्चैव न च स्थितभूयाः, स्थितास्थितानामेकत्र एकसमये अवस्थानाभावात्। तेन कारणेन ऋजुसूत्रनयेन द्विसंयोगभंगो नास्तीति न परिगणितः। न पूर्वोक्तनयमाश्रित्य या प्ररूपणा कृता तस्याः असत्यत्वं, स्याच्छब्देन तस्याः अपि सत्यत्वप्ररूपणात्।

एवं सत्तण्णं कम्माणं।।११।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ऋजुसूत्रनयमाश्रित्य यथा ज्ञानावरणीयप्ररूपणा कृता तथा शेषसप्तानां कर्मणां प्ररूपणा कर्तव्या, स्थितभावेन अस्थितभावेन च विशेषाभावात्।

एवं तृतीयस्थले ऋजुसूत्रनयापेक्षया जीवप्रदेशस्थितास्थितकथनपरेण सूत्रत्रयं गतम्।

अधुना शब्दनयापेक्षया अवक्तव्यप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

सहणयस्स अवत्तव्वं।।१२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — तस्य शब्दनयस्य विषये द्रव्याभावात् तस्य विषये स्थितास्थितानामभावाद्वा। तद्यथा — न तावत् स्थितमस्ति, अस्मिन् नये सर्वपदार्थानामनित्यत्वाभ्युपगमात्। न अस्थितभूयमपि, असति प्रतिषेधानुपपत्तेरिति।

तात्पर्यमत्र — कर्मणां निमित्तेन जीवानां गमनागमनं संसारे भवति, कर्मबन्धाभावे जीवेषु मुक्तेषु सत्सु

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जो जीव प्रदेश अस्थित हैं वे अस्थित ही रहते हैं, न कि स्थित, क्योंकि इस नय की अपेक्षा स्थित-अस्थित जीवप्रदेशों का एक जगह एक समय में अवस्थान नहीं हो सकता। इस कारण ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा द्विसंयोग भंग नहीं है अतः वह परिगणित नहीं किया गया है। पूर्वोक्त नय का आश्रय लेकर जो प्ररूपणा की गई है, उसके असत्यपना घटित नहीं होता है, क्योंकि स्यात् शब्द से उसके भी सत्यपने का प्ररूपण हो जाता है।

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार सात कर्मों के विषय में जानना चाहिए।।११।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ऋजुसूत्र नय का आश्रय करके जिस प्रकार ज्ञानावरणीय की प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार शेष सात कर्मों की प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि स्थित रूप व अस्थित रूप से इसमें उससे कोई विशेषता नहीं है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा से जीवप्रदेशों के स्थित-अस्थितपने का कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब शब्दनय की अपेक्षा अवक्तव्य का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

शब्दनय की अपेक्षा वह अवक्तव्य है।।१२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि द्रव्य शब्दनय का विषय नहीं है अथवा स्थित व अस्थित शब्दनय के विषय नहीं हैं। स्पष्टीकरण इस प्रकार है —

उक्त नय का विषय स्थित तो बनता नहीं है, इस नय में समस्त पदों व उनके अर्थों को अनित्य स्वीकार किया गया है। अस्थित स्वरूप भी नहीं बनता क्योंकि असत् का प्रतिषेध बन नहीं सकता है।

यहाँ इस अध्याय के स्वाध्याय का तात्पर्य यह है कि संसार में जीवों का गमनागमन कर्मों के निमित्त

केवलं सिद्धालयस्योपरि एव गमनं, पुनश्च पुनरागमनं नास्तीति विज्ञाय तस्याः सिद्धगतेः प्राप्त्यर्थमेव प्रयासो विधातव्यः।

एवं चतुर्थस्थले शब्दनयेन अवक्तव्यकथनमुख्यत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य वेदनानाम्नि चतुर्थखण्डे द्वादशे ग्रन्थे गणिनीज्ञानमती-
कृत सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां वेदनागतिविधानानुयोगद्वारनामायं-
चतुर्थोऽधिकारः समाप्तः।

से होता है, कर्मबंध के अभाव में यह जीव मुक्त होकर केवल सिद्धालय के ऊपर ही गमन करता है और उसके पश्चात् उसका संसार में पुनरागमन नहीं होता है, ऐसा जानकर उस सिद्धगति की प्राप्ति का ही उपाय हम सभी को करना चाहिए।

इस प्रकार से चतुर्थ स्थल में शब्दनय से अवक्तव्य का कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के वेदना नामक चतुर्थ खण्ड में बारहवें ग्रंथ
में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका
में वेदनागतिविधान अनुयोगद्वार नाम का यह
चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।



वेदना-अनन्तरविधानानुयोगद्वारम्

(वेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-द्वादशानुयोगद्वारम्)

पञ्चमोऽधिकारः

मंगलाचरणम्

भाषासर्वमयो ध्वनिर्जिनपते-र्दिव्यध्वनिर्गीयते।
आनन्त्यार्थसुभृत् मनोगततमो, हन्ति क्षणात्प्राणिनः॥
दिव्यास्थानगतामसंख्यजनता-माल्हादयन् निःसृतः।
ते दिव्यध्वनयस्त्रिलोकसुखदाः, कुर्वन्तु मे (नो) मंगलम्॥१॥

अथ षट्खण्डागमग्रन्थे वेदनानाम्नि चतुर्थखण्डे द्वितीयवेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गतद्वादशं वेदनानन्तर- विधानानुयोगद्वारमस्ति। तत्र तावत् प्रथमे महाधिकारे वेदना-अनन्तरविधाननाम्नि पञ्चमेऽधिकारे पंचस्थलैः एकादशसूत्राणि निगद्यन्ते। तत्र तावत्प्रथमस्थले प्रतिज्ञासूचनपरम् 'वेयणाअणंतर-' इत्यादिना एकं सूत्रं। द्वितीयस्थले नैगमव्यवहारनयापेक्षया अनन्तरबंधादिरूपणत्वेन 'णेगम-' इत्यादिना चतुःसूत्राणि कथ्यन्ते। तृतीयस्थले संग्रहनयमाश्रित्य अनन्तरबंधादिकथनत्वेन 'संगहणयस्स' इत्यादिना त्रीणि सूत्राणि सन्ति। चतुर्थस्थले ऋजुसूत्रनयेन ज्ञानावरणीयवेदनाबंधनिरूपणत्वेन "उजुसुदस्स" इत्यादिना सूत्रद्वयं ज्ञातव्यं। पंचमस्थले शब्दनयेन अवक्तव्यकथनपरेण "सद्वणयस्स" इत्यादिना एकं सूत्रं इति समुदायपातनिका

वेदना-अनन्तरविधान अनुयोगद्वार

(वेदनानुयोगद्वार के अन्तर्गत-बारहवाँ अनुयोगद्वार)

पंचम अधिकार

-मंगलाचरण-

श्लोकार्थ—जिनेन्द्र भगवान की दिव्यध्वनि सर्वभाषामयी अर्थात् ७१८ भाषामय परिणत होने से दिव्यध्वनि नाम को सार्थक करती है। अनन्त अर्थ से भरित वह दिव्यध्वनि भव्य प्राणियों के मन में छिपे मिथ्यात्व अंधकार को क्षण भर में नष्ट कर देती है। समवसरण की दिव्य सभा में बैठे हुए असंख्य जनसमूह को आल्हादित करती हुई भगवान की जो दिव्यध्वनि प्रगट होती है, तीनों लोकों के लिए सुखप्रदात्री वह दिव्यध्वनि मेरा और सभी का मंगल करे॥१॥

इस षट्खण्डागम ग्रंथ में वेदना नामक चतुर्थ खण्ड में द्वितीय वेदनानुयोगद्वार के सोलह भेदों के अन्तर्गत बारहवाँ वेदनानन्तरविधान अनुयोगद्वार है। उनमें से प्रथम महाधिकार में वेदना-अनन्तर विधान नाम के पंचम अधिकार में पाँच स्थलों के द्वारा ग्यारह सूत्र कहेंगे। उनमें से प्रथम स्थल में प्रतिज्ञा की सूचना देने वाला "वेयणाअणंतर" इत्यादि एक सूत्र है। द्वितीय स्थल में नैगम एवं व्यवहारनय की अपेक्षा अनन्तर बंध आदि का निरूपण करने हेतु "णेगम" इत्यादि चार सूत्र हैं। तृतीय स्थल में संग्रह नय का आश्रय लेकर अनन्तरबंध आदि का कथन करने वाले "संगहणयस्स" इत्यादि तीन सूत्र हैं। चतुर्थ स्थल में ऋजुसूत्र नय से ज्ञानावरणीय वेदनाबंध का निरूपण करने वाले "उजुसुदस्स" इत्यादि दो सूत्र जानना चाहिए। पंचम स्थल में शब्दनय की अपेक्षा अवक्तव्य का कथन करने वाला "सद्वणयस्स" इत्यादि एक सूत्र है। यह सूत्रों की

सूचिता जाता।

अधुना अधिकारप्रतिज्ञासूचनार्थं सूत्रमवतार्यते —

वेयणा-अणन्तरविहाणे त्ति॥१॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अधिकारस्मारणार्थमिदं सूत्रं भवति।

किमर्थमेषोऽधिकार उच्यते ?

पूर्वं वेदनावेदनाविधाने बध्यमानमपि कर्म वेदना, उदीर्णमपि उपशान्तमपि वेदना इति प्ररूपितं, तत्र यत् तत् बध्यमानकर्म, तत् किं बध्यमानस्य चैव समये पचित्वा फलं ददाति आहोस्वित् द्वितीयादिसमयेषु फलं ददाति इति पृच्छायां एवं फलं ददाति इति ज्ञापनार्थं वेदनाअनन्तरविधानमागतम्।

तत्र बंधो द्विविधः — अनन्तरबंधः परंपरबंधश्चेति।

कोऽनन्तरबंधो नाम ?

कार्मणवर्गणायाः स्थितपुद्गलस्कंधाः मिथ्यात्वादिप्रत्ययैः कर्मभावेन परिणतप्रथमसमये अनन्तरबंधः कथ्यते।

कथमेतेषां अनन्तरबंधत्वं ?

कार्मणवर्गणापर्यायपरित्यागानन्तरसमये चैव कर्मपर्यायेण परिणतत्वात्।

कः परंपरबंधो नाम ?

समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब अधिकार की प्रतिज्ञा सूचित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

अब वेदनाअनन्तरविधान अनुयोगद्वार का अधिकार प्राप्त है॥१॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अधिकार का स्मरण कराने हेतु यह सूत्र दिया गया है।

शंका — इस अधिकार की प्ररूपणा किसलिए की जा रही है ?

समाधान — पहले वेदनावेदनाविधान अनुयोगद्वार में बध्यमान कर्म भी वेदना है, उदीर्ण और उपशांत कर्म भी वेदना है, यह प्ररूपणा की जा चुकी है। उनमें जो बध्यमान कर्म है वह क्या बांधने के समय में ही परिपाक को प्राप्त होकर फल देता है अथवा द्वितीयादिक समयों में फल देता है, ऐसा पूछने पर वह इस प्रकार से फल देता है यह ज्ञात कराने के लिए वेदनाअनन्तरविधान अनुयोगद्वार का अवतार हुआ है।

बंध दो प्रकार का है — अनन्तरबंध और परम्पराबंध।

शंका — अनन्तरबंध किसे कहते हैं ?

समाधान — कार्मणवर्गणा स्वरूप से स्थित पुद्गलस्कंधों का मिथ्यात्वादिक प्रत्ययों के द्वारा कर्मस्वरूप से परिणत होने के प्रथम समय में जो बंध होता है, उसे अनन्तर बंध कहते हैं।

शंका — इन पुद्गलस्कंधों की अनन्तरबंध संज्ञा कैसे है ?

समाधान — चूँकि वे कार्मणवर्गणारूप पर्याय को छोड़ने के अनन्तर समय में ही कर्मरूप पर्याय से परिणत हुए हैं, अतः उनकी अनन्तरबंध संज्ञा है।

शंका — परम्पराबंध किसे कहते हैं ?

बंधद्वितीयसमयप्रभृति कर्मपुद्गलस्कंधानां जीवप्रदेशानां च यो बंधः सः परंपरबंधो नाम।

अथ कश्चित् पृच्छति —

कथं बंधस्य परंपरा भवति ?

आचार्यदेवः उत्तरयति —

प्रथमसमये बंधो जातः, द्वितीयसमयेऽपि तेषां पुद्गलानां बंधश्चैव, तृतीयसमयेऽपि बंधश्चैव, एवं बंधस्य निरन्तरभावो बंधपरंपरा नाम। तस्याः बंधाः परम्परबंधा इति द्रष्टव्याः।

एवं प्रथमस्थले अधिकारसूचकप्रतिज्ञापरेण एकं सूत्रं गतम्।

अधुना नैगमव्यवहारनयापेक्षया कर्मणां अनन्तरबंधपरम्पराबंधनिरूपणार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

णेगम-ववहाराणं णाणावरणीयवेयणा अणन्तरबंधा॥२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — बंधप्रथमसमये चैव जीवस्य परतन्त्रभावोत्पादनेन वेदनाभावोपलंभात्। उदीर्णद्रव्याद् बध्यमानद्रव्यस्य भेदाभावात् बध्यमानद्रव्यस्य ज्ञानावरणीयवेदनाभावो युज्यते। न चावस्थाभेदेन द्रव्यभेदोऽस्ति, द्रव्यात् पृथग्भूतावस्थानुपलंभात्।

परंपरबंधा॥३॥

समाधान — बंध होने के द्वितीय समय से लेकर कर्मरूप पुद्गलस्कंधों और जीवप्रदेशों का जो बंध होता है, उसे परम्पराबंध कहते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है —

बंध की परम्परा कैसे संभव होती है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं —

प्रथम समय में बंध हुआ, द्वितीय समय में भी उन पुद्गलों का बंध ही है, तृतीय समय में भी बंध ही है, इस प्रकार से बंध की निरन्तरता का नाम बंध परम्परा है। उस परम्परा से होने वाले बंधों को परम्पराबंध समझना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में अधिकारसूचक प्रतिज्ञा वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब नैगमनय और व्यवहारनय की अपेक्षा कर्मों के अनन्तरबंध और परम्परा बंध का निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

नैगम और व्यवहारनय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय वेदना अनन्तरबंध है॥२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — बंध के प्रथम समय में ही जीव की परतन्त्रता उत्पन्न कराने के कारण उसमें वेदनाभाव पाया जाता है अथवा उदीर्ण द्रव्य की अपेक्षा बध्यमान द्रव्य में चूँकि कोई भेद नहीं है इसलिए इन दोनों नयों की अपेक्षा बध्यमान द्रव्य को ज्ञानावरणीय के वेदनास्वरूप मानना समुचित है। यदि कहा जाये कि अवस्था भेद से द्रव्य का भी भेद संभव है, तो यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि (इन नयों की दृष्टि में) द्रव्य से पृथग्भूत अवस्था नहीं पाई जाती है।

सूत्रार्थ —

वह परम्पराबंध भी है॥३॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — परंपराबंधा अपि ज्ञानावरणीयवेदना भवति।

कुतः? बंधद्वितीयादिसमयेषु स्थितकर्मस्कंधानां उदीर्णकर्मस्कंधेभ्यः द्रव्यद्वारेण एकत्वोपलंभात्।

तदुभयबंधा ॥४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ज्ञानावरणीयवेदना तदुभयबंधा अपि भवति, जीवद्वारेण द्वयोरपि ज्ञानावरणीयबंधयोरेकत्वोपलंभात्। बंधोदयसत्त्वानां वेदनाविधानं वेदनावेदनाविधाने चैव प्ररूपितं इति एतेषां सूत्राणां न एषः अर्थः इति एवमेतेषामर्थप्ररूपणा कर्तव्या। तद्यथा-ज्ञानावरणीयकर्मस्कंधा अनंतानंता निरन्तरमन्योऽन्यैः संबद्धा भूत्वा ये स्थितास्ते अनंतरबंधा नाम। एतेन एकादिपरमाणूनां संबंधविरहितानां ज्ञानावरणभावः प्रतिषिद्धः द्रष्टव्यः।

अनंतरबंधानां चैव ज्ञानावरणीयभावे संप्राप्ते परंपराबंधा अपि ज्ञानावरणीयवेदना भवतीति ज्ञापनार्थं द्वितीयसूत्रं प्ररूपितं। अनंतानंताः कर्मपुद्गलस्कंधा अन्योऽन्यसंबद्धा भूत्वा शेषकर्मस्कंधैः असंबद्धा जीवद्वारेण इतरेः संबंधमुपगताः परंपराबंधा नाम। एतेऽपि ज्ञानावरणीयवेदना भवन्तीति भणितं भवति। एतेन सर्वे ज्ञानावरणीयकर्मपुद्गलस्कंधाः एकजीवाधारा अन्योऽन्यं समवेताश्चैव भूत्वा ज्ञानावरणीयवेदना भवन्तीति एष एकान्तो निराकृत इति द्रष्टव्यः। शेषं सुगमम्।

एवं सत्तण्णं कम्माणं ॥५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ज्ञानावरणीयवेदना परम्पराबंध भी होती है। ऐसा क्यों है ?

इसका उत्तर यह है कि चूँकि बंध के द्वितीयादिक समयों में स्थित कर्मस्कंधों की उदीर्ण कर्मस्कंधों के साथ द्रव्य के द्वारा एकता पायी जाती है।

सूत्रार्थ —

वह तदुभयबंध है ॥४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ज्ञानावरणीय वेदना तदुभयबंध भी है, क्योंकि जीव के द्वारा दोनों ही ज्ञानावरणीय बंधों के एकता पायी जाती है। बंध, उदय और सत्त्व के वेदनाविधान की प्ररूपणा चूँकि वेदना-वेदनाविधान में ही की जा चुकी है, अतएव इन सूत्रों का यह अर्थ नहीं है इसलिए इनके अर्थ की प्ररूपणा इस प्रकार से करनी चाहिए। वह इस प्रकार है —

जो अनन्तानन्त ज्ञानावरणीय कर्मरूप स्कंध निरन्तर परस्पर में संबद्ध होकर स्थित हैं वे अनन्तरबंध हैं। इससे संबंध रहित एक आदि परमाणुओं को ज्ञानावरणीयपने का प्रतिषेध किया गया समझना चाहिए।

अनन्तरबंध स्कंधों को ही ज्ञानावरणीयपना प्राप्त होने पर परम्पराबंध भी ज्ञानावरणीय वेदना होती है, यह बतलाने के लिए द्वितीय सूत्र की प्ररूपणा की गई है। जो अनन्तानन्त कर्मपुद्गलस्कंध परस्पर में संबद्ध होकर शेष कर्मस्कंधों से असम्बद्ध होते हुए जीव के द्वारा इतर स्कन्धों से संबंध को प्राप्त होते हैं वे परम्पराबंध कहे जाते हैं। ये भी ज्ञानावरणीय वेदनास्वरूप होते हैं, यह उसका अभिप्राय है। इससे एक जीव के आश्रित सब ज्ञानावरणीय कर्मरूप पुद्गलस्कंध परस्पर समवेत होकर ज्ञानावरणीय वेदनास्वरूप होते हैं, इस एकान्त का निराकरण किया गया समझना चाहिए, शेष कथन सुगम है।

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार शेष सात कर्मों के विषय में जानना चाहिए ॥५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यथा ज्ञानावरणीयस्य द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां परंपरानन्तर-तदुभयबंधानां प्ररूपणा कृता तथा शेषसप्तानां कर्मणां प्ररूपणा कर्तव्या।

एवं द्वितीयस्थले नैगम-व्यवहारनयापेक्षया द्विविधबंधनिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

अधुना संग्रहनयापेक्षया कर्मणां बंधनिरूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

संग्रहणयस्स णाणावरणीयवेयणा अणंतरबंधा॥६॥

परंपरबंधा॥७॥

एवं सत्तण्णं कम्माणं॥८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य सूत्रस्यार्थे भण्यमाने पूर्वमिव द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां अर्थो वक्तव्यः। अत्रापि पूर्वमिव द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां अर्थप्ररूपणा कर्तव्या। तदुभयबंधा न सन्ति। कुतः? एतासु चैव तस्याः अन्तर्भावात्। यथा ज्ञानावरणीयस्य संग्रहनयमाश्रित्य द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां अर्थप्ररूपणा कृता तथा शेषसप्तानां कर्मणां प्ररूपणा कर्तव्या।

एवं तृतीयस्थले संग्रहनयेन द्विविधबंधप्रतिपादनपराणि त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अधुना ऋजुसूत्रनयापेक्षया कर्मणां परंपराबंधनिरूपणार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के परम्पराबंध, अनन्तरबंध और तदुभयबंध की प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार शेष सात कर्मों के उन बंधों की प्ररूपणा करनी चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में नैगम और व्यवहारनय की अपेक्षा दो प्रकार के बंध का निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब संग्रहनय की अपेक्षा कर्मों का बंध निरूपित करने हेतु तीन सूत्र अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ —

संग्रहनय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय वेदना अनन्तरबंध है॥६॥

वह परम्पराबंध भी है॥७॥

इसी प्रकार शेष सात कर्मों के विषय में प्ररूपणा करना चाहिए॥८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ छठे सूत्र के अर्थ की प्ररूपणा करते समय पहले के समान दो प्रकार से अर्थ का कथन करना चाहिए।

तथा सातवें सूत्र के अनुसार पहले के ही समान दो प्रकार से अर्थ की प्ररूपणा करनी चाहिए। वह तदुभय बंध नहीं है, क्यों नहीं है ? क्योंकि इन दोनों में उसका अन्तर्भाव हो जाता है।

जिस प्रकार ज्ञानावरण कर्म की संग्रहनय की अपेक्षा दो प्रकार से प्ररूपणा की है, उसी प्रकार शेष सात कर्मों की प्ररूपणा करनी चाहिए, ऐसा आठवें सूत्र का अभिप्राय है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में संग्रहनय की अपेक्षा दो प्रकार के बंध का प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा कर्मों के परम्पराबंध का निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

उजुसुदस्स णाणावरणीयवेयणा परंपरबंधा॥९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ज्ञानावरणीयवेदना ऋजुसूत्रनयापेक्षया अनन्तरबंधा नास्ति, परंपरबंधा चैव, उदयागतकर्मस्कंधादेवाज्ञानभावोपलंभात्।

अत्र कश्चिदाह —

द्वितीयार्थेऽवलम्ब्यमाने कथमत्र प्ररूपणा क्रियते ?

आचार्यः प्राह —

अत्रापि ज्ञानावरणीयवेदना परंपराबंधा चैव, जीवद्वारेणैव सर्वेषां कर्मस्कंधानां बंधोपलंभात्।

पुनः कश्चिदाशंकते —

जीवद्वारेण विना कर्मस्कंधानामन्योऽन्यैर्बन्धो लभ्यते इति चेत् ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नैतद् वक्तव्यं, तस्यापि अन्योन्यबंधस्य जीवादेव समुत्पत्तिदर्शनात्।

पुनः कश्चित् शंकां विधत्ते —

कर्मणवर्गणावस्थायामपि एष अन्योऽन्यबंध उपलभ्यते इति चेत् ?

आचार्यदेवः समाधानं करोति —

नैतत् कथयितव्यं, एतस्य विशिष्टस्य बंधस्य अनन्तान्तैः कर्मणवर्गणास्कंधैः निष्पन्नस्य जीवादेव

सूत्रार्थ —

ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा ज्ञानावरणीयवेदना परम्पराबंध है॥९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ज्ञानावरणीयवेदना ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा से अनन्तर बंध नहीं है, परम्परा बंध ही है, क्योंकि उदय में आये हुए कर्मस्कंधों से ही अज्ञानभाव पाया जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है —

द्वितीय अर्थ का अवलम्बन करने पर यहाँ प्ररूपणा कैसे की जाती है ?

आचार्यदेव इस शंका का उत्तर देते हैं —

यहाँ पर भी द्वितीय अर्थ का अवलम्बन करने पर ज्ञानावरणीय वेदना परम्परा बंध ही है, क्योंकि जीव के द्वारा ही सब कर्मस्कंधों का बंध पाया जाता है।

पुनः कोई शंका करता है —

जीव का आलम्बन लिए बिना भी कर्मस्कंधों का परस्पर बंध पाया जाता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं —

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि उस परस्पर में बंध की भी उत्पत्ति जीव से ही देखी जाती है।

पुनरपि कोई शंका करता है —

यह परस्परबंध कर्मण वर्गणा की अवस्था में भी पाया जाता है ?

आचार्यदेव इसका भी समाधान देते हैं —

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि अनन्तान्त कर्मण वर्गणा रूप स्कंधों से उत्पन्न इस विशिष्ट बंध की उत्पत्ति जीव से ही देखी जाती है। अनन्तरबंध वेदना उदीर्ण होकर फल को प्राप्त हुए विपाक वाली नहीं है,

समुत्पत्तिदर्शनात्। न च अनन्तरबंधा उदीर्णफलप्राप्तविपाका, परम्पराबद्धायां वेदनायां उदीर्णफलप्राप्त-
विपाकत्वोपलंभात्। न च समुदायकार्यमेकस्य भवति, विरोधात्।

एवं सत्तणं कम्माणं॥१०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यथा ऋजुसूत्रनयापेक्षया ज्ञानावरणीयवेदना परंपराबंधा प्ररूपिता तथैव
सप्तानामपि कर्मणां ज्ञातव्या भवति।

एवं चतुर्थस्थले ऋजुसूत्रनयेन कर्मणां बंधनिरूपणपरं सूत्रद्वयं गतम्।

संप्रति शब्दनयापेक्षया कर्मणां बंधनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सहणयस्स अवत्तव्वं॥११॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — त्रयाणां शब्दनयानां शब्द-समभिरूढ-एवंभूतनयानां विषये द्रव्याभावात्,
अनन्तरबंधा-परम्पराबंधा-तदुभयबंधा शब्दानां पृथग्भूतार्थप्ररूपकानां शब्दतोऽर्थतश्च समासाभावाद्वा शब्दनयेन
कर्मणां बंधा अवक्तव्या ज्ञातव्या।

एवं पंचमस्थले शब्दनयेन कर्मणां बंधावक्तव्यं कथनमुख्यत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

इत्थं वेदना-अनन्तरविधानानुयोगद्वारनाम-पंचमोऽधिकारः समाप्तः।

क्योंकि परम्पराबद्ध वेदना में ही उदीर्णफलप्राप्तविपाक पाया जाता है और समुदाय के द्वारा किया गया कार्य
एक का नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें विरोध आता है।

सूत्रार्थ—

इसी प्रकार शेष सात कर्मों के संबंध में प्ररूपणा करनी चाहिए॥१०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जैसे ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा ज्ञानावरणीय वेदना का परम्पराबंध निरूपित
किया गया है, उसी प्रकार शेष सात कर्मों की भी प्ररूपणा करनी चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा कर्मों का बंध निरूपण करने वाले दो सूत्र
पूर्ण हुए।

अब शब्दनय की अपेक्षा कर्मों का बंध निरूपण करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ—

शब्दनय की अपेक्षा वह अवक्तव्य है॥११॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि एक तो शब्द, समभिरूढ तथा एवंभूत इन
तीनों शब्द नयों का विषय द्रव्य नहीं है। दूसरे अनन्तर बंध, परम्पराबंध और तदुभयबंध ये शब्द पृथक्-
पृथक् अर्थ के वाचक होने से इनका शब्द और अर्थ की अपेक्षा समास नहीं हो सकता, इसलिए वह इस
नय की अपेक्षा अवक्तव्य है, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार पंचम स्थल में शब्दनय की अपेक्षा कर्मों के बंध अवक्तव्य के कथन की मुख्यता वाला एक
सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार वेदनाअनन्तरविधान अनुयोगद्वार नाम का पाँचवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

सर्वं जानन्ति सर्वज्ञाः, केवलज्ञानचक्षुषा।

तान् नौमि पूर्णज्ञानाप्यै, भक्तिरागेण कोटिशः॥१॥

इति श्रीमत्पुष्पदन्तभूतबलिसूरिप्रणीतषट्खण्डागमस्य श्रीभूतबलिसूरिविरचित-वेदनानाम्नि चतुर्थ-
खण्डे द्वादशग्रन्थे श्रीवीरसेनाचार्यविरचितधवलाटीकाप्रमुखनानाग्रन्थाधारेण विंशतितमे शताब्दौ
प्रथमाचार्यश्चारित्रचक्रवर्ती-श्रीशांतिसागरगुरुदेवस्तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागरा-
चार्यस्तस्यशिष्या-जम्बूद्वीपरचना-तीर्थकरजन्मभूमिविकासप्रेरिकागणिनीज्ञानमती-
कृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां वेदनाप्रत्ययविधानादि पञ्चानुयोग-
द्वार-समन्वितोऽयं प्रथमो महाधिकारः समाप्तः।

श्लोकार्थ — जो अपने केवलज्ञान चक्षु के द्वारा सभी को — सम्पूर्ण चराचर जगत् को जानते हैं वे सर्वज्ञ कहलाते हैं, उन सभी सर्वज्ञ भगवन्तों को पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हेतु मेरा भक्तिरागपूर्वक कोटिशः नमोऽस्तु होवे॥१॥

इस प्रकार श्रीमान् पुष्पदन्त-भूतबली आचार्य प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ में श्री भूतबली सूरि द्वारा रचित वेदना नामक चतुर्थ खण्ड के बारहवें ग्रंथ में श्रीवीरसेनाचार्य विरचित धवला टीका को प्रमुख करके नाना ग्रंथों के आधार से रचित बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्र-चक्रवर्ती श्री शांतिसागरगुरुदेव उनके प्रथम पट्टाधीश श्री वीरसागर आचार्य उनकी शिष्या-जम्बूद्वीप रचना की एवं तीर्थकर जन्मभूमि विकास की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती माताजी कृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में वेदनाप्रत्ययविधान आदि पञ्च अनुयोगद्वार समन्वित यह प्रथम महाधिकार समाप्त हुआ।



वेदनासन्निकर्षविधानानुयोगद्वारम्

द्वितीयो महाधिकारः

(वेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-त्रयोदशानुयोगद्वारम्)

प्रथमोऽधिकारः

मंगलाचरणम्

ये तीर्थकरशिष्यतामुपगताः, सर्वर्द्धिसिद्धीश्वराः।

ये ग्रन्थंति किलांगपूर्वमयसच्छास्त्रं ध्वनेराश्रयात्॥

ये ते विघ्नविनाशका गणधरास्तेषां समस्तर्द्धयः।

ते शांतिं परमां च सर्वसिद्धिं, कुर्वन्तु मे (नो) मंगलम्॥१॥

अथ द्वितीयवेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गतत्रयोदशं वेदनासन्निकर्षविधानानुयोगद्वारमस्ति। अत्र द्वितीयमहाधिकारे द्वाविंशतिस्थलैः विंशत्यधिकत्रिंशत्सूत्रैः वेदनासन्निकर्षविधाननाम प्रथमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले अधिकारप्रतिज्ञासूचनपरेण भेदप्रभेदकथनमुख्यत्वेन च “वेयणा सणिण्यास” इत्यादिना पञ्चसूत्राणि कथ्यन्ते। द्वितीयस्थले ज्ञानावरणीयवेदनायाः द्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षया कथनप्रधानत्वेन “जस्स णाणावरणीयवेयणा” इत्यादिना षट्त्रिंशत्सूत्राणि वक्ष्यन्ते। तृतीयस्थले दर्शनावरणीय-मोहनीय-अन्तरायाणां वेदनासन्निकर्षकथनत्वेन “एवं दंसणावरणीय-” इत्यादिना एकं सूत्रं। चतुर्थस्थले वेदनीयवेदना-

वेदनासन्निकर्षविधानानुयोगद्वार

द्वितीय महाधिकार

(वेदनानुयोगद्वार के अन्तर्गत-तेरहवाँ अनुयोगद्वार)

प्रथम अधिकार

मंगलाचरण

श्लोकार्थ — तीर्थकर भगवान की शिष्यता को प्राप्त करके जो सम्पूर्ण ऋद्धि एवं सिद्धि के स्वामी बन गये तथा तीर्थकर प्रभु की दिव्यध्वनि के आश्रय से जिन्होंने समस्त अंग और पूर्व रूप सच्चे शास्त्रों की रचना की है, वे विघ्नविनाशक गणधर देव एवं उनकी समस्त ऋद्धियाँ हमें परम शांति एवं सर्वसिद्धि को प्रदान करें तथा मेरे लिए मंगलकारी होवें, यही मंगल भावना है।

द्वितीय वेदनानुयोगद्वार के सोलह भेदों के अन्तर्गत तेरहवाँ वेदनासन्निकर्ष विधान अनुयोगद्वार है। यहाँ द्वितीय महाधिकार में बाईस स्थलों के द्वारा तीन सौ बीस सूत्रों में वेदनासन्निकर्ष विधान नाम का प्रथम अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में अधिकार की प्रतिज्ञा को सूचित करने वाले और भेद-प्रभेद कथन की मुख्यता वाले “वेयणासणिण्यास” इत्यादि पाँच सूत्र कहेंगे। द्वितीय स्थल में ज्ञानावरणीय वेदना का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा कथन की प्रधानतारूप “जस्स णाणावरणीय वेयणा” इत्यादि छत्तीस सूत्र कहेंगे। तृतीय स्थल में दर्शनावरणीय-मोहनीय-अन्तराय कर्मों का वेदनासन्निकर्ष बतलाने हेतु “एवं

द्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षया उत्कृष्टानुत्कृष्टकथनत्वेन “जस्स वेयणीयवेयणा” इत्यादिना सप्तविंशतिसूत्राणि सन्ति। पंचमस्थले नामगोत्रवेदनाप्रतिपादनत्वेन “एवं णामा-” इत्यादिना एकं सूत्रं। पुनश्च षष्ठस्थले आयुर्वेदनानिरूपणत्वेन “जस्स आउअवेयणा-” इत्यादिना चतुर्विंशतिसूत्राणि। ततः परं सप्तमस्थले जघन्यरूपेण स्वस्थानवेदनासन्निकर्ष-भेदकथनत्वेन “जो सो थप्पो-” इत्यादिना एकं सूत्रं। अष्टमस्थले ज्ञानावरणीयजघन्यसन्निकर्षकथनत्वेन “जस्स णाणावरणीयवेयणा” इत्यादिना चतुर्विंशतिसूत्राणि प्रतिपाद्यन्ते। नवमस्थले दर्शनावरणीय-मोहनीय-अन्तरायकर्मणां वेदनाप्रतिपादनत्वेन “एवं दंसणावरणीय-” इत्यादिना एकं सूत्रं। दशमस्थले वेदनीयवेदना- निरूपणत्वेन “जस्स वेयणीयवेयणा” इत्यादिना षट्त्रिंशत्सूत्राणि सन्ति।

ततश्च एकादशमस्थले आयुर्वेदनाकथनत्वेन “जस्स आउअवेयणा” इत्यादिना अष्टादशसूत्राणि भवन्ति। द्वादशमस्थले नामवेदनाप्रतिपादनत्वेन “जस्स णामवेयणा” इत्यादिना अष्टादशसूत्राणि सन्ति। त्रयोदशमस्थले गोत्रवेदनानिरूपणपरेण “जस्स गोदवेयणा” इत्यादिना चतुर्विंशतिसूत्राणि कथ्यन्ते। चतुर्दशमस्थले परस्थानसन्निकर्षवेदना भेदादिप्रतिपादनत्वेन “जो सो परत्थाण-” इत्यादि सूत्रत्रयम्। पंचदशमस्थले ज्ञानावरणीयादिकर्मणां द्रव्यापेक्षया सन्निकर्षविधानकथनत्वेन “जस्स णाणावरणीयवेयणा” इत्यादिना नवसूत्राणि। षोडशमस्थले ज्ञानावरणीयादिकर्मणां क्षेत्रापेक्षया वेदनाकथनत्वेन “जस्स णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो” इत्यादिना नवसूत्राणि। सप्तदशमस्थले ज्ञानावरणीयादिकर्मणां कालापेक्षया वेदनाकथनमुख्यत्वेन

दंसणावरणीय” इत्यादि एक सूत्र है। चतुर्थ स्थल में वेदनीय कर्म की वेदना का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा उत्कृष्ट-अनुत्कृष्ट कथन करने वाले “जस्स वेयणीयवेयणा” इत्यादि सत्ताईस सूत्र हैं। पंचम स्थल में नाम और गोत्र कर्म की वेदना का प्रतिपादन करने वाला “एवं णामा” इत्यादि एक सूत्र है। पुनश्च छठे स्थल में आयुर्कर्म की वेदना का निरूपण करने वाले “जस्स आउअवेयणा” इत्यादि चौबीस सूत्र हैं। आगे सातवें स्थल में जघन्य रूप से स्वस्थानवेदनासन्निकर्ष के भेद बतलाने वाला “जो सो थप्पो” इत्यादि एक सूत्र है। आठवें स्थल में ज्ञानावरणीय का जघन्य सन्निकर्ष कहने वाले “जस्स णाणावरणीयवेयणा” इत्यादि चौबीस सूत्र हैं। नवमें स्थल में दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्म की वेदना को प्रतिपादित करने वाला “एवं दंसणावरणीय” इत्यादि एक सूत्र है। दशवें स्थल में वेदनीय कर्म की वेदना का निरूपण करने वाले “जस्स वेयणीयवेयणा” इत्यादि छत्तीस सूत्र हैं।

पुनः ग्यारहवें स्थल में आयुर्कर्म की वेदना का कथन करने वाले “जस्स आउअवेयणा” इत्यादि अठारह सूत्र हैं। बारहवें स्थल में नामकर्म की वेदना बतलाने वाले “जस्स णामवेयणा” इत्यादि अठारह सूत्र हैं। तेरहवें स्थल में गोत्रकर्म की वेदना का निरूपण करने हेतु “जस्स गोदवेयणा” इत्यादि चौबिस सूत्र कहेंगे। चौदहवें स्थल में परस्थान सन्निकर्षवेदना के भेदादि का कथन करने वाले “जो सो परत्थाण” इत्यादि तीन सूत्र हैं। पन्द्रहवें स्थल में ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का द्रव्य की अपेक्षा सन्निकर्ष विधान बतलाने वाले “जस्स णाणावरणीयवेयणा” इत्यादि नौ सूत्र हैं। सोलहवें स्थल में ज्ञानावरणीय आदि कर्म की क्षेत्र की अपेक्षा वेदना को कहने वाले “जस्स णाणावरणीय वेयणा खेत्तदो” इत्यादि नौ सूत्र हैं। सत्रहवें स्थल में ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का काल की अपेक्षा वेदना कथन करने हेतु “जस्स णाणावरणीयवेयणा कालदो” इत्यादि आठ सूत्र हैं। पुनः अठारहवें स्थल में ज्ञानावरणीय आदि कर्मों की भाव की अपेक्षा वेदना बतलाने वाले “जस्स णाणावरणीयवेयणा भावदो” इत्यादि सोलह सूत्र कहेंगे। तत्पश्चात् उन्नीसवें स्थल में जघन्यपरस्थान

“जस्स णाणावरणीयवेयणा- कालदो” इत्यादिना अष्टौ सूत्राणि। पुनः अष्टादशमस्थले ज्ञानावरणीयादिकर्मणां भावापेक्षया वेदनानिरूपणत्वेन “जस्स णाणावरणीयवेयणा भावदो” इत्यादिना षोडशसूत्राणि वक्ष्यन्ते। तत्पश्चात् एकोनविंशतितमे स्थले जघन्यपरस्थानभेदकथनत्वेन ज्ञानावरणादिकर्मसु द्रव्यापेक्षया सन्निकर्षकथनमुख्यत्वेन च “जो सो थप्पो जहण्णओ” इत्यादिना त्रयोविंशतिसूत्राणि निगद्यन्ते। ततश्च विंशतितमे स्थले ज्ञानावरणादिकर्मणां क्षेत्रापेक्षया जघन्यसन्निकर्षवेदनाप्रतिपादनत्वेन “जस्स णाणावरणीयवेयणा-” इत्यादिना सूत्रत्रयं। पुनश्च एकविंशतितमे स्थले ज्ञानावरणीयादिकर्मणां कालापेक्षया वेदनाकथनत्वेन “जस्स णाणावरणीयवेयणा कालदो” इत्यादिना द्वादशसूत्राणि वक्ष्यन्ते। ततः परं द्वाविंशतितमे स्थले ज्ञानावरणीयादिकर्मणां भावापेक्षया वेदनाकथनत्वेन “जस्स णाणावरणीयवेयणा भावदो” इत्यादिना एकविंशतिसूत्राणि कथ्यन्ते इति विंशत्युत्तरत्रिंशतसूत्राणां समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अधुना अधिकारसूचनार्थं प्रतिज्ञासूत्रमवतार्यते —

वेयणासण्णियासविहाणे त्ति।।१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतत्सूत्रं अधिकारस्मरणार्थं अवतारितमस्ति, अन्यथानुक्ततुल्यत्वप्रसंगात्।

संप्रति वेदनासन्निकर्षभेदप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

जो सो वेयणासण्णियासो सो दुविहो — सत्थाणवेयणासण्णियासो चेव परत्थाणवेयणासण्णियासो चेव।।२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — वेदनासन्निकर्षो द्विविधः — स्वस्थानवेदनासन्निकर्षः परस्थानवेदना-सन्निकर्षश्चेति।

के भेद बतलाने हेतु एवं ज्ञानावरणादि कर्मों में द्रव्य की अपेक्षा सन्निकर्ष का कथन करने वाले “जो सो थप्पो जहण्णओ” इत्यादि तेईस सूत्र कहेंगे। बीसवें स्थल में ज्ञानावरणादि कर्म की क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य सन्निकर्ष वेदना को प्रतिपादित करने हेतु “जस्स णाणावरणीयवेयणा” इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनश्च इक्कीसवें स्थल में ज्ञानावरणीय आदि कर्म की काल की अपेक्षा वेदना बतलाने हेतु “जस्स णाणावरणीयवेयणा कालदो” इत्यादि बारह सूत्र कहेंगे। उसके पश्चात् बाईसवें स्थल में ज्ञानावरणीय आदि कर्म की भाव की अपेक्षा वेदना बतलाने वाले “जस्स णाणावरणीयवेयणा भावदो” इत्यादि इक्कीस सूत्र कहेंगे। इस प्रकार अधिकार के प्रारंभ में तीन सौ बीस सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब अधिकार को सूचित करने हेतु प्रतिज्ञासूत्र अवतरित किया जा रहा है —

सूत्रार्थ —

वेदनासन्निकर्षविधान अनुयोगद्वार का अधिकार प्राप्त है।।१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यह सूत्र अधिकार का स्मरण कराने हेतु अवतरित किया गया है, क्योंकि इसके बिना अनुक्त के समान होने का प्रसंग प्राप्त होता है।

अब वेदनासन्निकर्ष के भेद बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

जो वह वेदनासन्निकर्ष है, वह दो प्रकार का है — स्वस्थानवेदनासन्निकर्ष और परस्थानवेदनासन्निकर्ष।।२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सूत्र में वेदनासन्निकर्ष के दो भेद बताये हैं — स्वस्थान वेदना सन्निकर्ष

द्वयोरर्थः उच्यते—अर्पितैककर्मणो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावविषयः स्वस्थानसन्निकर्षो नाम। अष्टकर्मविषयः परस्थानसन्निकर्षो नाम।

सन्निकर्षस्य कोऽर्थः?

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावेषु जघन्योत्कृष्टभेदभिन्नेषु एकस्मिन् निरुद्धे शेषाणि किमुत्कृष्टानि किमनुत्कृष्टानि किं जघन्यानि किमजघन्यानि वा पदानि भवन्तीति या परीक्षा सः सन्निकर्षो नाम। सः द्विविधश्चैव भवति।

कश्चिदाह—

स्वस्थान-परस्थानसंयोगेन सह त्रिविधः सन्निकर्षः किन्न जायते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—

नैष दोषः, द्विसंयोगस्य प्रत्येकमन्तर्भावेन तस्य पृथगनुपलंभात्।

संप्रति प्रथमसन्निकर्षभेदप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते—

जो सो सत्थाणवेयणासणियासो सो दुविहो—जहण्णओ सत्थाण-वेयणा-सणियासो चेव उक्कस्सओ सत्थाणवेयणासणियासो चेव।।३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—एवं स्वस्थानवेदनासन्निकर्षो द्विविधश्चैव, जघन्योत्कृष्टाभ्यां विना तृतीयविकल्पाभावात्।

और परस्थान वेदना सन्निकर्ष। इन दोनों का अर्थ कहते हैं—किसी विवक्षित एक कर्म का जो द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव सन्निकर्ष होता है वह स्वस्थानसन्निकर्ष कहा जाता है और आठों कर्मोविषयक सन्निकर्ष परस्थानसन्निकर्ष कहलाता है।

शंका—सन्निकर्ष किसे कहते हैं ?

समाधान—जघन्य व उत्कृष्ट भेदरूप द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भावों में से किसी एक को विवक्षित करके उसमें शेष पद क्या उत्कृष्ट है, क्या अनुत्कृष्ट हैं, क्या जघन्य हैं और क्या अजघन्य हैं, इस प्रकार की जो परीक्षा की जाती है, उसे सन्निकर्ष कहते हैं। इस प्रकार से सन्निकर्ष दो प्रकार का ही है।

यहाँ कोई शंका करता है—

स्वस्थान और परस्थान के संयोगरूप भेद के साथ तीन प्रकार का सन्निकर्ष क्यों नहीं होता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं—

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि दोनों के संयोग का प्रत्येक में अन्तर्भाव होने से वह पृथक् नहीं पाया जाता है।

अब प्रथम सन्निकर्ष के भेद प्रतिपादित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

जो वह स्वस्थानवेदनासन्निकर्ष है, वह दो प्रकार का है—जघन्य स्वस्थानवेदना सन्निकर्ष और उत्कृष्ट स्वस्थानवेदनासन्निकर्ष।।३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—इस प्रकार से स्वस्थानवेदनासन्निकर्ष दो प्रकार का ही है, क्योंकि जघन्य और उत्कृष्ट के सिवाय तीसरा कोई भेद नहीं है।

संप्रति जघन्यभेदस्थगितं कृत्वोत्कृष्टं कथयन्तीति निरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

जो सो जहण्णओ सत्थाणवेयणासणियासो थप्पो सो॥४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — किमर्थं स्थगितं क्रियते जघन्यसन्निकर्षः इति चेत् ?

उच्यते — द्वयोरक्रमेण प्ररूपणोपायाभावात्।

उत्कृष्टः किन्न स्थगितं क्रियते इति चेत् ?

नैष दोषः, उत्कृष्टसन्निकर्षेऽवगते तस्मात् तदुत्पत्तेः जघन्यसन्निकर्षः सुखेनावगम्यते इति मनसि निश्चित्य तस्य स्थगितभावाकरणात्। पश्चादानुपूर्वीं निरुद्धा इति वा सः स्थगितो न क्रियते।

संप्रति उत्कृष्टस्य भेदप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

जो सो उक्कस्सओ सत्थाणवेयणासणियासो सो चउव्विहो — दव्वदो खेत्तदो कालदो भावदो चेदि॥५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एवं चतुर्विधश्चैव उत्कृष्टसन्निकर्षो, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावेभ्यः पृथग्भूतोत्कृष्टस्यात्र वेदनायां अनुपलंभात्।

एवं प्रथमस्थले अधिकारनाम-भेद-प्रभेदसूचकत्वेन सूत्रपंचकं गतम्।

अधुना ज्ञानावरणीयवेदनाविषयनिरूपणार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

अब जघन्यभेद को स्थगित करके उत्कृष्ट का कथन करते हैं, ऐसा निरूपण करने के लिए सूत्र अवतीर्ण किया जा रहा है —

सूत्रार्थ —

जो वह जघन्य स्वस्थानवेदनासन्निकर्ष है, उसे स्थगित किया जाता है॥४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जघन्य सन्निकर्ष क्यों स्थगित किया जाता है ? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देते हैं — चौंक दोनों की प्ररूपणा एक साथ नहीं की जा सकती है, अतः उसे स्थगित किया जा रहा है।

शंका — उत्कृष्ट स्वस्थानवेदनासन्निकर्ष को स्थगित क्यों नहीं किया जाता है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि उत्कृष्ट सन्निकर्ष के परिज्ञात हो जाने पर उससे उत्पन्न होने के कारण जघन्य सन्निकर्ष का ज्ञान सुखपूर्वक हो सकता है, ऐसा मन में निश्चित करके उत्कृष्ट स्वस्थानवेदनासन्निकर्ष को स्थगित नहीं किया गया है अथवा पश्चादानुपूर्वी की विवक्षा होने से उत्कृष्ट स्वस्थानवेदनासन्निकर्ष को स्थगित नहीं किया जाता है।

अब उत्कृष्ट सन्निकर्ष के भेद प्रतिपादित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

जो वह उत्कृष्ट स्वस्थानवेदनासन्निकर्ष है वह चार प्रकार का है — द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से॥५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस प्रकार उत्कृष्ट सन्निकर्ष चार प्रकार का ही है, क्योंकि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से पृथग्भूत उत्कृष्ट सन्निकर्ष यहाँ वेदना में नहीं पाया जाता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में अधिकार के नाम-भेद-प्रभेद के सूचक पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब ज्ञानावरणीय वेदना का विषय निरूपण करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

जस्स णाणावरणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सा तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।।६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यस्य ज्ञानावरणीयद्रव्यवेदना उत्कृष्टा भवति तस्य जीवस्य ज्ञानावरणीय-
क्षेत्रवेदना किमुत्कृष्टा चैव भवति आहोस्वित् किमनुत्कृष्टा चैव भवतीति पृच्छासूत्रमेतत्।

एवं पृच्छायां तस्य पृच्छतो शिष्यस्य संदेहविनाशनार्थं उत्तरसूत्रं अवतार्यते —

णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा।।७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सप्तम्यां पृथिव्यां चरमसमयवर्तिनारकजीवे पञ्चशतधनुरुत्सेधे
उत्कृष्टद्रव्योपलंभात्। उत्कृष्टद्रव्यस्वामिनः क्षेत्रं संख्यातानि प्रमाणघनांगुलानि।

कुतः ?

पञ्चशतधनुरुत्सेध-अष्टमभागविष्कंभक्षेत्रे समीकरणे कृते संख्यातप्रमाणघनांगुलोपलंभात्।
समुद्घातगतमहामत्स्य-उत्कृष्टक्षेत्रं पुनः असंख्याताः श्रेण्यः।

कुतः ?

अर्द्धाष्टमरज्जु-आयामेन संख्यातप्रतरांगुलेषु गुणितेषु असंख्यातश्रेणिमात्रक्षेत्रोपलंभात्। एवं
महामत्स्योत्कृष्टक्षेत्रमवलोक्य नारकस्य उत्कृष्टद्रव्यस्वामिनः उत्कृष्टक्षेत्रमूनमिति कृत्वा नियमात् क्षेत्रवेदना
अनुत्कृष्टा इति भणितं।

अनुत्कृष्टा भवती अपि तस्मात् असंख्यातगुणहीना, उत्कृष्टद्रव्यकस्य उत्कृष्टक्षेत्रेण महामत्स्योत्कृष्टक्षेत्रे

सूत्रार्थ —

जिसके ज्ञानावरणीय वेदना द्रव्य की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है, उसके वह क्षेत्र की
अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?।।६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जिस जीव के ज्ञानावरणीय की द्रव्यवेदना उत्कृष्ट होती है उसके ज्ञानावरणीय
की क्षेत्रवेदना क्या उत्कृष्ट ही होती है अथवा अनुत्कृष्ट ही, इस प्रकार यह पृच्छासूत्र हुआ।

इस प्रकार पूछने पर उस पूछने वाले शिष्य का संदेह दूर करने के लिए आगे का सूत्र कहते हैं —

सूत्रार्थ —

वह नियम से अनुत्कृष्ट असंख्यातगुणी हीन होती है।।७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सातवीं पृथ्वी में पाँच सौ धनुष ऊँचे अंतिम समयवर्ती नारकी के उत्कृष्ट
द्रव्य पाया जाता है। उत्कृष्ट द्रव्य के स्वामी का क्षेत्र संख्यात घनांगुल प्रमाण होता है। कैसे ? क्योंकि पाँच सौ
धनुष ऊँचे और उसके आठवें भागमात्र विष्कंभ वाले क्षेत्र का समीकरण करने पर संख्यात प्रमाण घनांगुल
उत्पन्न होते हैं परन्तु समुद्घात को प्राप्त हुए महामत्स्य का उत्कृष्ट क्षेत्र असंख्यात जगत्श्रेणी प्रमाण है।

क्यों ?

क्योंकि साढ़े सात राजु आयाम से संख्यात प्रतरांगुलों को गुणित करने पर असंख्यात जगत्श्रेणी प्रमाण
क्षेत्र उपलब्ध होता है। इस प्रकार महामत्स्य के उत्कृष्ट क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट द्रव्य के स्वामी नारकी का
उत्कृष्ट क्षेत्र चौँकि हीन है, अतएव 'क्षेत्र वेदना नियम से अनुत्कृष्ट होती है' ऐसा कहा है। ऐसी होती हुई भी
वह उससे असंख्यातगुणी हीन है, क्योंकि उत्कृष्ट द्रव्य संबंधी स्वामी के उत्कृष्ट क्षेत्र का महामत्स्य के उत्कृष्ट

भागे हते श्रेण्याः असंख्यातभागोपलंभात्।

अत्र कश्चिदाशङ्कते —

सप्तमपृथिवीचरमसमयनारकस्य उत्कृष्टद्रव्यस्वामिनो मुक्तमारणान्तिकस्य उत्कृष्टक्षेत्रे गृहीते संख्यातगुण-
हीना किन्न लभ्यते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नोपलभ्यते, मुक्तमारणान्तिकस्य उत्कृष्टसंक्लेशभावेन उत्कृष्टयोगाभावेन च उत्कृष्टद्रव्यस्वामित्वविरोधात्।

पुनरपि आशङ्कते —

मुक्तमारणान्तिकस्य उत्कृष्टसंक्लेशो न भवतीति कुतो ज्ञायते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

एतस्मात् “असंखेज्जगुणहीणा” इति सूत्रादेव ज्ञायते।

संप्रति ज्ञानावरणीयवेदना कालापेक्षया किमुत्कृष्टा इत्यादि प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।।८।।

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा।।९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि नारकजीवस्य चरमसमये उत्कृष्टस्थितिसंक्लेशो भवेत् तर्हि कालापेक्षयापि

क्षेत्र में भाग देने पर जगत्श्रेणी का असंख्यातवाँ भाग उपलब्ध होता है।

यहाँ कोई शंका करता है —

जो सप्तम पृथिवी स्थित अन्तिम समयवर्ती नारकी उत्कृष्ट द्रव्य का स्वामी है और जो मारणान्तिक समुद्घात को कर चुका है उसके उत्कृष्ट क्षेत्र को ग्रहण करने पर वह क्षेत्रवेदना संख्यातगुणी हीन क्यों नहीं पायी जाती है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं —

नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि मुक्त मारणान्तिक जीव के न तो उत्कृष्ट संक्लेश होता है और न उत्कृष्ट योग ही होता है, अतएव वह उत्कृष्ट द्रव्य का स्वामी नहीं हो सकता।

पुनः कोई शंका करता है —

मुक्त मारणान्तिक जीव के उत्कृष्ट संक्लेश नहीं होता है यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि —

वह ‘असंख्यातगुणी हीन है’ इसी सूत्र से जाना जाता है।

अब ज्ञानावरणीय वेदना काल की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

काल की अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है अथवा अनुत्कृष्ट होती है ?।।८।।

उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है।।९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि नारकी जीव के अंतिम समय में उत्कृष्ट स्थितिसंक्लेश होता है तो

ज्ञानावरणीयवेदना उत्कृष्टा भवेत्, उत्कृष्टसंक्लेशेण उत्कृष्टस्थितिं मुक्त्वा अन्यस्थितीनां बंधाभावात्। यदि चरमसमये उत्कृष्टस्थितिसंक्लेशो न भवति तर्हि ज्ञानावरणीयवेदना कालतो नियमात् अनुत्कृष्टत्वं प्रतिपद्यते, चरमसमये उत्कृष्टस्थितिबंधाभावात्।

उत्कृष्टात् अनुत्कृष्टं किं विशेषहीनं संख्यातगुणहीनं इति पृच्छायां तन्निर्णयार्थमुत्तरसूत्रं भण्यते —

उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणा॥१०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सा ज्ञानावरणीयवेदना उत्कृष्टापेक्षया अनुत्कृष्टा समयोना भवति।

अत्र द्विसमयोनादिविकल्पा किन्न लभ्यन्ते ?

न लभ्यन्ते, नारकस्य द्विचरमसमये उत्कृष्टद्रव्यं मत्वा उत्कृष्टसंक्लेशे नियमिते सति उत्कृष्टस्थितिं मुक्त्वा अन्यस्थितीनां बंधाभावात्। न च द्विचरमसमये उत्कृष्टस्थितौ बंधायां सत्यां चरमसमये समयोनत्वं मुक्त्वा द्विसमयोनत्वादिविकल्पः संभवति, अधःस्थितौ द्रव्यादिस्थितीनां गलनाभावात्।

अधुना ज्ञानावरणीयवेदना भावापेक्षया किमुत्कृष्टेत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा॥११॥

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा॥१२॥

काल की अपेक्षा भी ज्ञानावरणीय वेदना उत्कृष्ट होती है, क्योंकि उत्कृष्ट संक्लेश से उत्कृष्ट स्थिति को छोड़कर अन्य स्थितियों का बंध नहीं होता है और यदि अंतिम समय में उत्कृष्ट स्थितिसंक्लेश नहीं होता है तो ज्ञानावरणीयवेदना काल की अपेक्षा नियमतः अनुत्कृष्टता को प्राप्त होती है, क्योंकि अंतिम समय में उत्कृष्ट स्थितिबंध का अभाव है।

उत्कृष्ट की अपेक्षा वह अनुत्कृष्ट क्या विशेष हीन होती है या संख्यातगुणी हीन होती है, ऐसा पूछने पर उसके निर्णय के लिए आगे का सूत्र कहते हैं —

सूत्रार्थ —

वह उत्कृष्ट की अपेक्षा अनुत्कृष्ट एक समय हीन होती है॥१०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — वह ज्ञानावरणीयवेदना उत्कृष्ट की अपेक्षा से अनुत्कृष्ट एक समय हीन होती है।

शंका — यहाँ दो समय हीन आदि विकल्प क्यों नहीं बतलाये हैं ?

समाधान — वहाँ दो समय हीन आदि विकल्प नहीं पाये जाते हैं, क्योंकि नारक भव के द्विचरम समय में उत्कृष्ट द्रव्य का बंध हुआ, ऐसा मान लेने पर उत्कृष्ट स्थिति को छोड़कर अन्य स्थितियों का बंध नहीं होता और जब द्विचरम समय में उत्कृष्ट स्थिति का बंध हुआ तो चरम समय में एक समय हीन विकल्प को छोड़कर दो समय हीन आदि विकल्पों की संभावना ही नहीं है, क्योंकि अधःस्थिति गलना के द्वारा एक साथ दो आदिक स्थितियों का गलन नहीं हो सकता है।

अब ज्ञानावरणीय भाव की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके भाव की अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है अथवा अनुत्कृष्ट होती है ?॥११॥

उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी॥१२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि द्विचरमसमयवर्ती नारको जीवः उत्कृष्टसंक्लेशेण उत्कृष्टविशेषप्रत्ययेन उत्कृष्टानुभागं बध्नाति तर्हि भाववेदना उत्कृष्टा भवति। अथ नास्ति उत्कृष्टविशेषप्रत्ययः तर्हि नियमात् अनुत्कृष्टा इति भणितं भवति। उत्कृष्टमपेक्ष्य अनुत्कृष्टभावः षड्विधासु हानिषु कुत्र भवतीति प्रश्ने सति —
तन्निर्णयार्थमुत्तरसूत्रमवतार्यते —

उक्कस्सादो अणुक्कस्सा छट्ठाणपदिदा।।१३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उत्कृष्टमपेक्ष्य अनुत्कृष्टभावः अनन्तभागहीन-असंख्यातभागहीन-संख्यातभागहीन-संख्यातगुणहीन-असंख्यातगुणहीन-अनन्तगुणहीनस्वरूपेण अवस्थितषट्स्थानेषु पतितो भवति।

अत्र कश्चिदाह —

एकसंक्लेशात् असंख्यातलोकमात्र अनुभागषट्स्थानानां बंधः कथं युज्यते ?

आचार्यदेवः प्राह —

नैष दोषः, एकसंक्लेशात् असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानसहितानुभागबंधाध्यवसानस्थानसहकारिकारणानां भेदेन सहकारिकारणमात्रानुभागस्थानानां बंधाविरोधात्।

अधुना तत्षट्स्थाननामनिर्देशार्थं सूत्रमवतार्यते —

**अणंतभागहीणा वा असंखेज्जभागहीणा वा संखेज्जभागहीणा वा
संखेज्जगुणहीणा वा असंखेज्जगुणहीणा वा अणंतगुणहीणा वा।।१४।।**

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि द्विचरमसमयवर्ती नारकी जीव उत्कृष्ट संक्लेश के द्वारा और उत्कृष्ट विशेष प्रत्यय के द्वारा उत्कृष्ट अनुभाग को बांधता है तो उसके भाव वेदना उत्कृष्ट होती है। यदि उसके उत्कृष्ट विशेष प्रत्यय नहीं है तो नियम से अनुत्कृष्ट भाव वेदना होती है, यह उक्त सूत्र का अभिप्राय है।

उत्कृष्ट की अपेक्षा अनुत्कृष्ट भाव छह प्रकार की हानियों में से किस हानि में होता है, ऐसा प्रश्न पूछने पर उसका निर्णय करने के लिए आगे का सूत्र कहते हैं —

सूत्रार्थ —

वह उत्कृष्ट की अपेक्षा अनुत्कृष्ट वेदना षट्स्थानपतित होती है।।१३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उत्कृष्ट की अपेक्षा करके अनुत्कृष्ट भाव अनन्तभागहीन, असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन, संख्यातगुणहीन, असंख्यातगुणहीन और अनन्तगुणहीनस्वरूप से अवस्थित छहस्थान पतित होता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

एक संक्लेश से असंख्यात लोक प्रमाण अनुभाग संबंधी छह स्थानों का बंध कैसे बन सकता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि —

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि एक संक्लेश से असंख्यात लोक प्रमाण छह स्थानों से सहित अनुभागबंधाध्यवसान स्थानों के सहकारी कारणों के भेद से सहकारी कारणों के बराबर अनुभागस्थानों के बंध में कोई विरोध नहीं आता है।

अब उन छह स्थानों के नाम बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

वह अनन्तभागहीन, असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन, संख्यातगुणहीन, असंख्यातगुणहीन तथा अनन्तगुणहीन नाम से छह भेदरूप होती है।।१४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — नारकस्य जीवस्य द्विचरमसमये उत्कृष्टसंक्लेशेन अनन्तभागहीनउत्कृष्टविशेष-प्रत्ययेन अनन्तभागहीनोत्कृष्टानुभागं बंधयित्वा नारकस्य चरमसमये वर्तमानस्यानुभागः उत्कृष्टानुभागात् अनन्तभागहीनो भवति। द्विचरमसमये उत्कृष्टसंक्लेशेन चरमद्विचरमप्रक्षेपाभ्यां ऊनमनुभागं बंधयित्वा चरमसमये वर्तमानस्य स्वकोत्कृष्टानुभागात् अनन्तभागहानिश्चैव। एवमंगुलस्य असंख्यातभागमात्रानन्तभागवृद्धिप्रक्षेपे यावत् परिपाट्या हापयित्वा बध्नाति तावत् अनन्तभागहानिश्चैव।

पुनः पूर्वोक्तानन्तभागवृद्धिप्रक्षेपैः सह असंख्यातभागवृद्धिप्रक्षेपान् हापयित्वा बंधे उत्कृष्टानुभागात् एषः अनुभागः असंख्यातभागहीनो भवति। पुनः तस्मात् अधस्तनप्रक्षेपान् परिहाप्य बद्धेऽपि असंख्यातभागहानिश्चैव। एवमसंख्यातभागहानेः काण्डकाधिककाण्डकमात्रस्थानानि अवतीर्य यावद् बध्नाति तावत् निरन्तरमसंख्यात-भागहानिश्चैव भवति।

तस्मात् अधः संख्यातभागहानिश्चैव यावद् प्रथमद्विगुणहानिं न प्राप्नोति। तस्मिन् प्राप्ते संख्यातगुणहानिर्भवति। एवमेतेन विधानेन अवतारयितव्यं यावद् उत्कृष्टसंख्यातगुणहीनस्थानं प्राप्तमिति।

ततः समयाविरोधेन अधः अवतीर्य प्रथममसंख्यातगुणहीनस्थानं भवति। एवमसंख्यातगुणहीनक्रमेण तावत् अवतारयितव्यं यावद् चरम-असंख्यातगुणहीनस्थानं प्राप्तमिति। पुनः अधस्तन-ऊर्वके बद्धे अनन्तगुणहीन-स्थानं भवति।

एवमेतस्मात् प्रभृति अनन्तगुणहीनं भूत्वा तावद् गच्छति यावद् असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानानि अवतीर्य बद्धानि इति।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — नारकी जीव के द्विचरम समय में अनन्तभागहीन उत्कृष्ट विशेष प्रत्यय संयुक्त उत्कृष्ट संक्लेश अनन्तभागहीन उत्कृष्ट अनुभाग को बांधकर नारक भव के चरम समय में वर्तमान उक्त नारकी का अनुभाग उत्कृष्ट अनुभाग की अपेक्षा अनन्तभाग हीन होता है। द्विचरम समय में उत्कृष्ट संक्लेश से चरम और द्विचरम प्रक्षेपों से हीन अनुभाग को बांधकर चरम समय में वर्तमान नारकी जीव के अपने उत्कृष्ट अनुभाग की अपेक्षा अनन्तभागहीन ही होती है। इस प्रकार जब तक वह अंगुल के असंख्यातवें भाग-प्रमाण अनन्तभागवृद्धि प्रक्षेपों को परिपाटीक्रम से ही करके अनुभाग को बांधता है, तब तक अनन्तभागहानि ही चालू रहती है।

तत्पश्चात् पूर्वोक्त अनन्तभागवृद्धि प्रक्षेपों के साथ असंख्यातभागवृद्धि प्रक्षेपों को कम करके अनुभाग के बांधने पर उत्कृष्ट अनुभाग की अपेक्षा यह अनुभाग असंख्यातभागहीन होता है। पश्चात् उससे नीचे के प्रक्षेपों को हीन करके बांधने पर भी असंख्यात भागहानि ही होती है। इस प्रकार जब तक वह असंख्यातभागहानि से एक काण्डक से अधिक काण्डकप्रमाण स्थान नीचे उतरकर अनुभाग बांधता है, तब तक निरन्तर असंख्यातभागहानि ही होती है।

उसके नीचे प्रथम द्विगुणहानि के प्राप्त होने तक संख्यातभागहानि ही होती है और द्विगुणहानि के प्राप्त होने पर संख्यातगुणहानि होती है। इस प्रकार इस विधि से उत्कृष्ट संख्यातगुणहीन स्थान के प्राप्त होने तक उतारना चाहिए।

तत्पश्चात् समयाविरोध से नीचे उतरकर प्रथम असंख्यातगुणहीन स्थान होता है। इस प्रकार असंख्यातगुणहीन क्रम से तब तक उतारना चाहिए, जब तक कि अंतिम असंख्यातगुणहीन स्थान प्राप्त नहीं होता है। पश्चात् अधस्तन ऊर्वक का बंध होने पर अनन्तगुणहीन स्थान होता है। इस प्रकार यहाँ से लेकर अनन्तगुण हीन होकर तब तक जाता है, जब तक कि असंख्यात लोक प्रमाण छह स्थान नीचे उतरकर स्थान बांधते हैं, ऐसा सूत्र का अभिप्राय है।

अधुना ज्ञानावरणीयवेदना क्षेत्रापेक्षया किमुत्कृष्टेत्यादि प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

जस्स णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा

अणुक्कस्सा।।१५।।

णियमा अणुक्कस्सा।।१६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उत्कृष्टा न भवति, उत्कृष्टावगाहनावति महामत्स्ये अर्द्धाष्टमरज्जु-आयामेन सप्तमीं पृथ्वीं प्रति मारणान्तिकसमुद्घाते क्रियमाणे सति गुणितोत्कृष्टसंक्लेशाभावेन द्रव्यस्य उत्कृष्टत्वविरोधात्। न च सप्तमपृथ्वीनारकस्य चरमसमये उत्कृष्टयोगसंक्लेशेन गुणितभावनिवन्धनेन जातोत्कृष्टद्रव्यं महामत्स्ये भवति, विरोधात्। न च कारणेन विना कार्यमुत्पद्यते, अतिप्रसंगात्। तस्मात् द्रव्यवेदना अनुत्कृष्टा इति भणितं भवति।

चउट्टाणपदिदा-असंखेज्जभागहीणा वा संखेज्जभागहीणा वा संखेज्ज-

गुणहीणा वा असंखेज्जगुणहीणा वा।।१७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उत्कृष्टक्षेत्रस्वामिद्रव्यवेदना नियमेन अनुत्कृष्टभावमुपगता स्वकौघोत्कृष्ट-द्रव्यमपेक्ष्य कथं भवतीति पृच्छायां चतुःस्थानपतितेति निर्दिष्टं। कानि तानि चतुःस्थानानि इति भणिते तेषां नामनिर्देशः कृतः अनंतभागहीन-अनंतगुणहीनप्रतिषेधार्थं।

अब ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है, उसके वह द्रव्य की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है अथवा अनुत्कृष्ट होती है ?।।१५।।

वह नियम से अनुत्कृष्ट होती है।।१६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — वह उत्कृष्ट नहीं होती है, क्योंकि उत्कृष्ट अवगाहना वाले महामत्स्य के साढ़े सात राजु प्रमाण आयाम से सातवीं पृथिवी के प्रति मारणान्तिक समुद्घात के करने पर वहाँ गुणित उत्कृष्ट संक्लेश का अभाव होने से उत्कृष्ट द्रव्य का सद्भाव मानने में विरोध है और सातवीं पृथिवी में स्थित नारकी के चरम समय में गुणित भाव के कारणभूत उत्कृष्ट योग व संक्लेश से जो उत्कृष्ट द्रव्य होता है वह महामत्स्य के संभव नहीं है, क्योंकि वैसा होने में विरोध आता है। कारण के बिना कहीं भी कार्य की उत्पत्ति नहीं होती है, क्योंकि वैसा होने पर अतिप्रसंग दोष आता है। इसी कारण द्रव्यवेदना अनुत्कृष्ट होती है, ऐसा कहा गया है।

सूत्रार्थ —

वह अनुत्कृष्ट द्रव्यवेदना असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन, संख्यातगुणहीन अथवा असंख्यातगुणहीन इन चार स्थानों में पतित है।।१७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उत्कृष्ट क्षेत्र स्वामी की द्रव्यवेदना नियम से अनुत्कृष्ट भाव को प्राप्त होकर अपने सामान्य उत्कृष्ट द्रव्य की अपेक्षा कैसी होती है, ऐसा पूछने पर 'वह चतुःस्थान पतित होती है'

अत्र तावत् चतसृणां हानीनां प्ररूपणा क्रियते। तद्यथा — एको गुणितकर्मांशिकः सप्तमपृथिवीनारकः त्रयस्त्रिंशदायुःस्थितिकः स्वकभवस्थितेः चरमसमये द्रव्यमुत्कृष्टं कृत्वा कालं प्राप्य त्रसकाधिकेषु एकेन्द्रियेषु च अन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा महामत्स्यो जातः, पर्याप्तको भूत्वा अन्तर्मुहूर्तेण अर्द्धाष्टमरज्जु-आयामप्रमाणं मारणान्तिकं कृत्वा उत्कृष्टक्षेत्रस्वामी जातः। तत्काले तस्य द्रव्यं ओघोत्कृष्टद्रव्यमपेक्ष्य असंख्यातभागहीनं भवति। पल्योपमस्य असंख्यातभागं विरल्य ओघोत्कृष्टद्रव्यं समखण्डं कृत्वा दत्ते एकैकस्य रूपस्य नष्टद्रव्यप्रमाणं भवति। तत्र एकखण्डं नष्टं, शेषबहुखण्डानि उत्कृष्टक्षेत्रं कृत्वा स्थितमहामत्स्यस्य उत्कृष्टद्रव्यं भवति। पुनः एतस्मात् द्रव्यादेकद्विपरमाण्वादिं कृत्वा ऊनितासंख्यातभागहानिप्ररूपणा तावत् प्ररूपयितव्या यावत् जघन्यपरीतासंख्यातेन उत्कृष्टद्रव्ये खण्डिते तत्र एकखंडं परिहीना इति। पुनरपि एकादिपरमाणुहानिं कृत्वा तावन्नेतव्यं यावद् ओघोत्कृष्टद्रव्यं उत्कृष्टसंख्यातेन खण्डयित्वा तत्रैकखण्डं नष्टमिति। तदानीं असंख्यातभागहानेः अन्तं भूत्वा संख्यातभागहानेश्च आदिर्जाता।

अतः प्रभृति संख्यातभागहानिश्चैव भूत्वा गच्छति यावद् रूपाधिकमुत्कृष्टद्रव्यस्य अर्द्धं च स्थितमिति। पुनः तस्मात् एकपरमाणुहानौ जातायां द्विगुणहानिर्भवति। संप्रति संख्यातगुणहानेरादिर्जाता। पुनः उत्कृष्टद्रव्यस्य त्रीणि खण्डानि कृत्वा तत्र एकखण्डेन सह उत्कृष्ट क्षेत्रे कृते द्रव्यं संख्यातगुणहीनं भवति। पुनः उत्कृष्टद्रव्यस्य चत्वारि खण्डानि कृत्वा तत्र एकखण्डेन सह उत्कृष्टक्षेत्रे कृते द्रव्यं संख्यातगुणहीनमेव भवति। एवं नेतव्यं

ऐसा सूत्र में निर्देश किया गया है। वह चतुःस्थान कौन से हैं, ऐसा पूछने पर अनंतभाग हीन और अनंतगुणहीन इन दो स्थानों का प्रतिषेध करने के लिए उन चार स्थानों के नामों का निर्देश किया गया है।

यहाँ पहले चार हानियों की प्ररूपणा करते हैं, वह इस प्रकार है—

एक गुणित कर्मांशिक तेतीस सागरोपम प्रमाण आयुःस्थिति वाला सातवीं पृथिवी का नारकी अपनी भवस्थिति के अंतिम समय में द्रव्य को उत्कृष्ट करके मरण को प्राप्त हो त्रसकाधिक और एकेन्द्रियों में अन्तर्मुहूर्त तक रहकर महामत्स्य हुआ। वह अन्तर्मुहूर्त में पर्याप्त होकर साढ़े सात राजु आयाम प्रमाण मारणान्तिक समुद्रघात को करके उत्कृष्ट क्षेत्र का स्वामी हुआ। उस समय उसका द्रव्य सामान्य उत्कृष्ट द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातवें भाग हीन होता है, क्योंकि पल्योपम के असंख्यातवें भाग को विरलित करके ओघ उत्कृष्ट द्रव्य को समखण्ड करके देने पर एक-एक अंक के प्रति नष्ट द्रव्य का प्रमाण प्राप्त होता है। उसमें से वहाँ एक खण्ड नष्ट होता है, शेष बहुखण्ड प्रमाण द्रव्य उत्कृष्ट क्षेत्र को करके स्थित महामत्स्य का उत्कृष्ट द्रव्य होता है। पुनः इस द्रव्य में से एक-दो परमाणुओं को लेकर हीन करते हुए असंख्यात भागहीन की प्ररूपणा तब तक करनी चाहिए, जब तक कि उत्कृष्ट द्रव्य को जघन्य परीतासंख्यात से खण्डित करने पर उसमें से एक खण्ड हीन नहीं हो जाता है। फिर भी एक आदिक परमाणुओं की हानि को करके तब तक ले जाना चाहिए, जब तक कि ओघ उत्कृष्ट द्रव्य को उत्कृष्ट संख्यात से खण्डित करने पर उसमें से एक खण्ड प्रमाण नष्ट नहीं हो जाता है। उस समय असंख्यात भागहानि का अन्त होकर संख्यातभागहानि का प्रारंभ होता है।

यहाँ से लेकर संख्यात भागहानि ही होकर जाती है, जब तक कि उत्कृष्ट द्रव्य का एक अधिक आधा भाग स्थित रहता है, फिर उसमें से एक परमाणु की हानि होने पर दुगुणहानि होती है। अब संख्यातगुणहानि का प्रारंभ हो जाता है। पुनः उत्कृष्टद्रव्य के तीन खण्ड करके उनमें से एक खण्ड के साथ उत्कृष्ट क्षेत्र के करने पर द्रव्य संख्यातगुणा हीन होता है। पुनः उत्कृष्ट द्रव्य के चार खण्ड करके उसमें से एक खण्ड के साथ उत्कृष्ट क्षेत्र के करने पर द्रव्य संख्यातगुणा हीन ही होता है। इस प्रकार से उत्कृष्ट द्रव्य के उत्कृष्ट संख्यात प्रमाण खण्ड करके

यावदुत्कृष्टद्रव्यं उत्कृष्टसंख्यातमात्रखंडानि कृत्वा तत्र एकखण्डेन सह उत्कृष्टक्षेत्रं कृत्वा स्थितमिति।

पुनरपि उपरि एव ज्ञात्वा नेतव्यं यावदुत्कृष्टद्रव्यं जघन्यपरीतासंख्यातेन खण्डयित्वा तत्र एकखण्डं रूपाधिकं च स्थितमिति। पुनः तदेकपरमाणुना ऊनं कृत्वा उत्कृष्ट क्षेत्रे कृते असंख्यातगुणहानिर्भवति। एतस्मात् प्रभृति असंख्यातगुणहीनं भूत्वा द्रव्यं गच्छति यावत् तत्प्रायोग्यपल्लोपमस्य असंख्यातभागेन ओघोत्कृष्टं द्रव्यं खण्डयित्वा तत्रैकखण्डेन सह उत्कृष्टक्षेत्रं कृत्वा स्थितः इति।

अत्र कश्चिदाह —

एतज्जघन्यद्रव्यं केन लक्षणेन आगतस्य भवति ?

आचार्यः प्राह —

एको जीवः क्षपितकर्मांशिकलक्षणेन आगत्य विपरीतगमनप्रायोग्य निर्विकल्पकालावशेषे विपरीतं गत्वा महामत्स्येषु उत्पद्य उत्कृष्टक्षेत्रं कृत्वा स्थितो तस्य भवति।

एतस्मादधः एतद् द्रव्यं न हीयते, उत्कृष्टद्रव्याद् निर्विकल्पमसंख्यातगुणहीनत्वमुपगत्य स्थितत्वात्। यस्मिन् यस्मिन् सूत्रे द्रव्यं चतुःस्थानपतितमिति भणितं तस्मिन् तस्मिन् एषः अत्र उक्तक्रमः निश्चित्य प्ररूपयितव्यः।

अधुना कालापेक्षया किमुत्कृष्टेत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

तस्स कालदो किं उक्कस्सा अणुक्कस्सा।।१८।।

उनमें से एक खण्ड के साथ उत्कृष्ट क्षेत्र को करके स्थित होने तक ले जाना चाहिए।

फिर भी आगे इसी प्रकार जानकर उत्कृष्ट द्रव्य को जघन्य परीतासंख्यात से खण्डित करके उनमें से एक अधिक खण्ड के स्थित होने तक ले जाना चाहिए। तत्पश्चात् उसे एक परमाणु से हीन करके उत्कृष्ट क्षेत्र के करने पर असंख्यात गुणहानि होती है। यहाँ से लेकर तत्प्रायोग्य पल्लोपम के असंख्यातवें भाग से आधे उत्कृष्ट द्रव्य को खण्डित करके उसमें से एक खण्ड के साथ उत्कृष्ट क्षेत्र को करके स्थित होने तक द्रव्य असंख्यातगुणा हीन होकर जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

यह जघन्य द्रव्य किस स्वरूप से आगत जीव के होता है ?

ऐसा पूछे जाने पर आचार्यदेव उत्तर में कहते हैं कि —

जो एक जीव क्षपितकर्मांशिक स्वरूप से आकर विपरीत गमन के योग्य निर्विकल्पकाल के शेष रहने पर विपरीत गमन करके महामत्स्य में उत्पन्न होकर उत्कृष्ट क्षेत्र को करके स्थित है उसके उक्त जघन्य द्रव्य होता है।

इसके नीचे यह द्रव्य हीन नहीं होता है, क्योंकि वह उत्कृष्ट द्रव्य की अपेक्षा निर्विकल्प असंख्यातगुणी हीनता को प्राप्त होकर स्थित है। जिस-जिस सूत्र में 'द्रव्य चतुःस्थानपतित है' ऐसा कहा गया है। उस-उस सूत्र में यहाँ कहे गये इस क्रम का निश्चय करके प्ररूपणा करनी चाहिए।

अब काल की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके उक्त-ज्ञानावरणीय की वेदना काल की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?।।१८।।

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा।।१९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—यदि उत्कृष्टक्षेत्रं कृत्वा स्थितमहामत्स्यः उत्कृष्टसंकलेशं गच्छति तर्हि ज्ञानावरणीयवेदना कालापेक्षया उत्कृष्टा चैव भवति, चरमस्थितप्रायोग्यपरिणामेषु पत्योपमस्य असंख्यातभागेन खण्डितेषु तत्र चरमखंडपरिणामैः उत्कृष्टस्थितिं मुक्त्वा अन्यस्थितीनां बंधाभावात्। अथ चरमखण्डपरिणामान् मुक्त्वा यदि अन्यैः परिणामैः स्थितिं बध्नाति तर्हि अनुत्कृष्टा भवति, तैः परिणामैः उत्कृष्टस्थितिश्चैव बध्यते इति नियमाभावात्।

उक्कस्सादो अणुक्कस्सा तिट्ठाणपदिदा-असंखेज्जभागहीणा वा संखेज्जभागहीणा वा संखेज्जगुणहीणा वा।।२०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—अनंतभागहानि-असंख्यातगुणहानि-अनंतगुणहान्यः काले न सन्तीति ज्ञापनार्थं अत्र सूत्रे तिसृणां हानीनां नाम निर्देशः क्रियते। तत्र तावत्तासां हानीनां स्वरूपप्ररूपणां करिष्यन्ति। तद्यथा-उत्कृष्टक्षेत्रं कृत्वा स्थितमहामत्स्येन त्रिंशत्सागरोपमकोटिकोटिषु समयोनासु प्रबद्धासु ज्ञानावरणीयकालवेदना अनुत्कृष्टा भवति, ओघोत्कृष्टस्थितिमपेक्ष्य समयोनत्वात्।

एतस्या हानेः को भागहारो भवति ?

उत्कृष्टस्थितिश्चैव भागहारो भवति, किंच—उत्कृष्टस्थितिं विरलय्य तं चैव समखण्डं कृत्वा दत्ते रूपं

उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है।।१९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—यदि उत्कृष्ट क्षेत्र को स्थित करके महामत्स्य उत्कृष्ट संकलेश को प्राप्त होता है तो ज्ञानावरणीय की वेदना काल की अपेक्षा उत्कृष्ट ही होती है, क्योंकि अंतिम स्थिति के योग्य परिणामों को पत्योपम के असंख्यातवें भाग से खण्डित करने पर उनमें अंतिम खण्ड संबंधी परिणामों के द्वारा उत्कृष्ट स्थिति को छोड़कर अन्य स्थितियों का बंध नहीं होता और यदि वह अंतिम खण्ड संबंधी परिणामों को छोड़कर अन्य परिणामों के द्वारा स्थिति को बांधता है, तो उक्त वेदना काल की अपेक्षा अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि उन परिणामों के द्वारा उत्कृष्ट स्थिति ही बंधती है, ऐसा नियम नहीं है।

सूत्रार्थ—

वह उत्कृष्ट की अपेक्षा अनुत्कृष्ट असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन या संख्यातगुणहीन इन तीन स्थानों में पतित है।।२०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—अनन्तभागहानि, असंख्यातगुणहानि और अनन्तगुणहानि, ये तीन हानियाँ काल में नहीं हैं, इसके ज्ञापनार्थ यहाँ सूत्र में उन तीन हानियों का नाम निर्देश किया गया है।

अब सर्वप्रथम उन हानियों के स्वरूप की प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार से है—

उत्कृष्ट क्षेत्र को करके स्थित महामत्स्य के द्वारा एक समय कम तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण स्थितियों के बांधे जाने पर ज्ञानावरणीय की कालवेदना अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि ओघ उत्कृष्ट स्थिति की अपेक्षा वह एक समय कम है।

शंका—इस हानि का भागहार क्या है ?

समाधान—उसका भागहार उत्कृष्ट स्थिति ही है, क्योंकि उत्कृष्ट स्थिति का विरलन करके उसी को समखण्ड करके देने पर प्रत्येक अंक के प्रति एक-एक अंक पाया जाता है।

प्रति एकैकरूपोपलंभात्। पुनः उत्कृष्टक्षेत्रं कृत्वा स्थितमहामत्स्येन द्विसमयोन-उत्कृष्टायां स्थितौ प्रबद्धायां असंख्यातभागहानिर्भवति। पुनः तेनैव त्रिसमयोन-उत्कृष्टस्थितौ प्रबद्धायां असंख्यातभागहानिश्चैव भवति। एवमसंख्यातभागहानिर्भूत्वा तावद्गच्छति यावदुत्कृष्टक्षेत्रं कृत्वा स्थितमहामत्स्येन त्रिंशत्सागरोपमकोटिकोटीः जघन्यपरीतासंख्यातेन खण्डयित्वा तत्र एकखण्डेन ऊनोत्कृष्टस्थितिप्रबद्धायामपि असंख्यातभागहानिश्चैव भवति। ततः प्रभृति एकैकसमयपरिहानियुक्तस्थितौ बध्यमानायामपि असंख्यातभागहानिरेव भवति।

पुनः एवं गत्वा उत्कृष्टसंख्यातेन खण्डयित्वा तत्र एकखण्डेन परिहीनोत्कृष्टस्थितौ प्रबद्धायां संख्यातभागहानिर्भवति। एतस्मात् प्रभृति संख्यातभागपरिहानिश्चैव भूत्वा गच्छति यावत् एकसमयाधिकमर्द्धं च स्थितं भवति। पुनः ततः एकसमयपरिहीनस्थितौ प्रबद्धायां द्विगुणहानिर्भवति। एतस्मात् प्रभृति संख्यातगुणहानिरेव भूत्वा गच्छति यावत् सप्तमपृथ्वीप्रायोग्य-अंतः कोटिकोटिरिति। विशेषेण तु क्षेत्रं तु उत्कृष्टमेवेति सर्वत्र वक्तव्यम्।

अधुना भावापेक्षया किं उत्कृष्टेत्यादि प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा॥२१॥

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा॥२२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — तदुत्कृष्टक्षेत्रमहामत्स्येन उत्कृष्टसंक्लेशेन उत्कृष्टविशेषप्रत्ययेन यदि उत्कृष्टानुभागो बद्धः तर्हि क्षेत्रेण सह भावोऽपि उत्कृष्टो भवेत्। एतस्मात् अन्यस्य उत्कृष्टक्षेत्रस्वामिजीवस्य भावोऽनुत्कृष्टश्चैव,

पुनः उत्कृष्ट क्षेत्र के स्थित हुए महामत्स्य के द्वारा दो समय कम उत्कृष्ट स्थिति के बांधे जाने पर असंख्यातभागहानि होती है। फिर उसी महामत्स्य के द्वारा तीन समय कम उत्कृष्ट स्थिति के बांधे जाने पर असंख्यात भागहानि ही होती है। इस प्रकार असंख्यातभागहानि होकर तब तक जाती है जब तक कि उत्कृष्ट क्षेत्र को करके स्थित हुए महामत्स्य के द्वारा तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों का जघन्य परीतासंख्यात से खण्डित करने पर उनमें एक खण्ड से हीन उत्कृष्ट स्थिति बांधी जाती है, तब तक संख्यातभागहानि ही होती है। वहाँ से लेकर एक-एक समय की हानियुक्त स्थिति के बांधने पर असंख्यातभागहानि ही होती है।

पश्चात् इसी प्रकार से जाकर (उत्कृष्ट स्थिति को) उत्कृष्ट संख्यात से खण्डित करके उसमें एक खण्ड से हीन उत्कृष्ट स्थिति को बांधने पर संख्यात भागहानि होती है। यहाँ से लेकर संख्यातभागहानि ही होकर जाती है तब तक उसका एक समय अधिक अर्धभाग स्थित रहता है। तत्पश्चात् उसमें से एक समय हीन स्थिति के बांधे जाने पर दुगुणी हानि होती है। यहाँ से लेकर सातवीं पृथिवी के योग्य अंतः-कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण स्थिति बंध के प्राप्त होने तक संख्यातगुणहानि ही होकर जाती है। विशेष इतना है कि क्षेत्र उत्कृष्ट ही रहता है, ऐसा सर्वत्र कहना चाहिए।

अब भाव की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके उक्त वेदना भाव की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?॥२१॥

वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है॥२२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस उत्कृष्ट क्षेत्र के स्वामी महामत्स्य के द्वारा उत्कृष्ट विशेष प्रत्ययरूप उत्कृष्ट संक्लेश से यदि उत्कृष्ट अनुभाग बांधा गया है तो क्षेत्र के साथ भाव भी उत्कृष्ट हो सकता है। इससे

उत्कृष्टविशेषप्रत्ययाभावात्।

उक्कस्सादो अणुक्कस्सा छट्ठाणपदिदा।।२३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अत्र उत्कृष्टद्रव्ये निरुद्धे यथा भावस्य षट्स्थानपतितत्वं प्ररूपितं तथात्रापि निःशेषं प्ररूपयितव्यं, विशेषाभावात्।

संप्रति ज्ञानावरणीयवेदना कालापेक्षया यदि उत्कृष्टा भवेत्तर्हि तस्य द्रव्यापेक्षया किमित्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

जस्स णाणावरणीयस्स कालदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।।२४।।

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा।।२५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अत्र प्रश्नसूत्रे उत्कृष्टपदस्यादौ स्थितकिंशब्दः अनुत्कृष्टपदेऽपि योजयितव्यः। शेषं सुगमम्।

गुणितकर्मांशिकलक्षणेन आगतचरमसमयवर्तिनारकजीवेन कृतोत्कृष्टद्रव्येण उत्कृष्टस्थितौ प्रबद्धायां उत्कृष्टकालवेदनया सह द्रव्यं अपि उत्कृष्टं भवति। उत्कृष्टकालेन सह एकादिपरमाणु परिहीनोत्कृष्टद्रव्ये कृते द्रव्यवेदना-अनुत्कृष्टा भवति।

भिन्न उत्कृष्ट क्षेत्र के स्वामी जीव का भाव अनुत्कृष्ट ही होता है, क्योंकि उसके उत्कृष्ट विशेष प्रत्यय का अभाव पाया जाता है।

सूत्रार्थ —

वह उत्कृष्ट की अपेक्षा अनुत्कृष्ट छह स्थानों में पतित है।।२३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ उत्कृष्ट द्रव्य की विवक्षा होने पर जिस प्रकार भाव के छह स्थानों में पतित होने की प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार यहाँ पर भी उसकी पूर्णरूप से प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

अब ज्ञानावरणीयवेदना काल की अपेक्षा यदि उत्कृष्ट होवे तो उसके द्रव्य की अपेक्षा क्या है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के ज्ञानावरणीय की वेदना काल की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है, उसके वह द्रव्य की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?।।२४।।

वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट होती है।।२५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ पृच्छा सूत्र में उत्कृष्ट पद के आदि में स्थित 'किं' शब्द को अनुत्कृष्ट पद में भी जोड़ना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

जो गुणितकर्मांशिक स्वरूप से आया है और जिसने द्रव्य को उत्कृष्ट किया है उस अंतिमसमयवर्ती नारक जीव के द्वारा उत्कृष्ट स्थिति के बांधे जाने पर उत्कृष्ट काल वेदना के साथ द्रव्य भी उत्कृष्ट होता है तथा उत्कृष्ट काल के साथ एक आदिक परमाणु से हीन उत्कृष्ट द्रव्य के करने पर द्रव्य वेदना अनुत्कृष्ट होती है।

उक्कस्सादो अणुक्कस्सा पञ्चट्ठाणपदिदा।।२६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — एषोऽर्थो विस्तीर्यते — उत्कृष्टकालस्वामिना एकदेशोनोत्कृष्टद्रव्ये कृते द्रव्यमनन्तभागहीनं भवति। तेनैव द्विप्रदेशोनोत्कृष्टद्रव्यसंचये कृते द्रव्यमनन्तभागहीनं चैव भवति। त्रिप्रदेशोनोत्कृष्टद्रव्यसंचये कृतेऽपि अनन्तभागहीनं चैव भवति। एवं तावत् उत्कृष्टकालस्वामिद्रव्यमनन्तभागहान्या गच्छति यावत् जघन्यपरीतानन्तेन उत्कृष्टद्रव्यं खण्डयित्वा तत्र एकखण्डेन परिहीनमिति।

पुनः अधोऽपि अनन्तभागहानिश्चैव भूत्वा गच्छति यावत् उत्कृष्टासंख्यातेन उत्कृष्टद्रव्यं खण्डयित्वा अत्र एकखण्डेन परिहीनमुत्कृष्टद्रव्यमिति। ततः प्रभृति असंख्यातभागहानिश्चैव भूत्वा गच्छति यावत् उत्कृष्टद्रव्यं उत्कृष्टसंख्यातेन खण्डयित्वा तत्रैकखण्डेन परिहीनमुत्कृष्टद्रव्यमिति। ततः प्रभृति संख्यातभागहानिर्भूत्वा गच्छति यावत् उत्कृष्टद्रव्यस्य अर्द्धं च स्थितं इति। ततः प्रभृति संख्यातगुणहान्या नेतव्यं यावत् उत्कृष्टद्रव्यं जघन्यपरीतासंख्यातेन खण्डयित्वा 'एकखण्डं' च स्थितमिति। ततः प्रभृति असंख्यातगुणहानिर्भूत्वा गच्छति तावत् उत्कृष्टद्रव्यस्य तत्प्रायोग्यः पल्योपमस्य असंख्यातभागो भागहारो जात इति। विशेषेण सर्वत्र काल-उत्कृष्टश्चैवेति वक्तव्यम्।

संप्रति सर्वजघन्यद्रव्यप्ररूपणां करिष्यन्त्याचार्यदेवाः —

क्षपितकर्मांशिकलक्षणेन आगत्य पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्राणि सम्यक्त्वकाण्डकानि, संयमासंयमकाण्डकानि, अष्टसंयमकाण्डकानि, अनन्तानुबंधि-विसंयोजनकाण्डकानि च कृत्वा पूर्वकोट्यायुष्क-

सूत्रार्थ —

वह उत्कृष्ट की अपेक्षा अनुत्कृष्ट वेदना पाँच स्थानों में पतित है।।२६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका विस्तृत अर्थ कहते हैं —

उत्कृष्ट कालवेदना के स्वामी द्वारा एक प्रदेश कम उत्कृष्ट द्रव्य के करने पर यह द्रव्य अनन्तवें भाग से हीन होता है। उक्त जीव के द्वारा ही दो प्रदेश कम उत्कृष्ट द्रव्य का संचय करने पर द्रव्य अनन्तभागहीन ही होता है। तीन प्रदेश कम उत्कृष्ट द्रव्य का संचय करने पर भी द्रव्य अनन्तभागहीन ही होता है। इस प्रकार उत्कृष्ट काल वेदना के स्वामी का द्रव्य तब तक अनन्तभागहानिरूप होकर जाता है, जब तक कि वह उत्कृष्ट द्रव्य को जघन्यपरीतासंख्यात से खण्डित करके उसमें से एक खण्ड से हीन नहीं हो जाता है।

फिर नीचे भी अनन्तभागहानि ही होकर उत्कृष्ट द्रव्य को उत्कृष्ट असंख्यात से खण्डित करके उसमें से एक खण्ड से हीन उत्कृष्ट द्रव्य के होने तक जाती है। वहाँ से लेकर उत्कृष्ट द्रव्य को उत्कृष्ट संख्यात से खण्डित करके उसमें से एक खण्ड से हीन उत्कृष्ट द्रव्य के होने तक असंख्यात भागहानि ही होकर जाती है। यहाँ से लेकर उत्कृष्ट द्रव्य का अर्धभाग स्थित होने तक संख्यात भागहानि होकर जाती है। पश्चात् वहाँ से लेकर उत्कृष्ट द्रव्य को जघन्यपरीतासंख्यात से खण्डित करके उनमें से एक खण्ड के स्थित होने तक संख्यातगुणहानि से ले जाना चाहिए। यहाँ से लेकर उत्कृष्ट द्रव्य का तत्प्रायोग्य पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग भागहार होने तक असंख्यातगुणहानि ही होकर जाती है। विशेषता यह है कि सर्वत्र काल उत्कृष्ट ही रहता है, ऐसा कहना चाहिए।

अब आचार्यदेव सर्वजघन्य द्रव्य की प्ररूपणा करते हैं —

क्षपित कर्मांशिकस्वरूप से आकर के पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण सम्यक्त्वकांडकों व संयमासंयमकांडकों को आठ संयमकाण्डों व अंतानुबंधिविसंयोजन कांडकों को करके पूर्वकोटि प्रमाण आयु

मनुष्येषु उपपन्नः। गर्भाद्यष्टवार्षिकः संयमं प्रतिपन्नः। ततः देशोनपूर्वकोटिं संयमगुणश्रेणिनिर्जरां क्रियमाणोऽन्त-
र्मुहूर्तावशेषे संसारे मिथ्यात्वं गत्वा ज्ञानावरणीयस्य उत्कृष्टकः स्थितिबंधको जातः। तस्य कालवेदना-
उत्कृष्टा। द्रव्यवेदना-पुनः निर्विकल्पासंख्यातगुणहीना। विशेषेण तु सम्यक्त्व-संयमासंयमकाण्डकानि कियतापि
ऊनानि इति वक्तव्यं, अन्यथा मिथ्यात्वगमनानुपपत्तेः।

अत्र कश्चिदाशंकते —

द्रव्यवेदना अनन्तगुणहीना किन्न जायते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

न जायते, अनंतगुणहीनयोगाभावात् इति ज्ञातव्यं।

संप्रति क्षेत्रापेक्षया तस्य वेदना-किमुत्कृष्टेत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा॥२७॥

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा॥२८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उत्कृष्टक्षेत्रस्वामिना महामत्स्येन उत्कृष्टस्थितौ प्रबद्धायां कालेन सह क्षेत्रमपि
उत्कृष्टं भवति। उत्कृष्टक्षेत्रमकृत्वा उत्कृष्टस्थितौ प्रबद्धायां क्षेत्रवेदना-अनुत्कृष्टा भवति।

उक्कस्सादो अणुक्कस्सा चउट्टाणपदिदा॥२९॥

वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। वहाँ गर्भ से लेकर आठ वर्ष का होकर संयम को प्राप्त हुआ पश्चात् कुछ कम
पूर्वकोटि काल तक संयमगुणश्रेणि निर्जरा को करते हुए उसके संसार के अंतर्मुहूर्त शेष रहने पर मिथ्यात्व को
प्राप्त होकर ज्ञानावरणीय का उत्कृष्ट स्थिति बंध हुआ। उसके कालवेदना उत्कृष्ट होती है परन्तु द्रव्यवेदना
विकल्परहित असंख्यातगुणी ही होती है। विशेष इतना है कि सम्यक्त्वकाण्डक और संयमासंयमकाण्डक
कुछ कम होते हैं, ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि इसके बिना मिथ्यात्व को प्राप्त होना संभव नहीं है।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

द्रव्यवेदना अनन्तगुणी हीन क्यों नहीं होती है ?

आचार्यदेव समाधान देते हैं कि —

नहीं होती है, क्योंकि अनन्तगुणे हीन योग का अभाव पाया जाता है, ऐसा जानना चाहिए।

अब क्षेत्र की अपेक्षा उसकी वेदना क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तर रूप से तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके क्षेत्र की अपेक्षा उक्त वेदना क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?॥२७॥

वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है॥२८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उत्कृष्ट क्षेत्र के स्वामी महामत्स्य के द्वारा उत्कृष्ट स्थिति के बांधे जाने
पर काल के साथ क्षेत्र भी उत्कृष्ट है। उत्कृष्ट क्षेत्र को न करके उत्कृष्ट स्थिति के बांधे जाने पर क्षेत्र वेदना
अनुत्कृष्ट होती है।

सूत्रार्थ —

वह उत्कृष्ट की अपेक्षा अनुत्कृष्ट वेदना चार स्थानों में पतित है॥२९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार करते हैं —

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — तद्यथा — महामत्स्येन एकप्रदेशेन-उत्कृष्टावगाहनायाः सप्तमपृथ्वीं प्रति मारणान्तिकसमुद्घातकेन उत्कृष्टस्थितौ प्रबद्धायां असंख्यातभागहीनं क्षेत्रं भवति। एवं मुखप्रदेशे द्वि-त्रिप्रदेशप्रभृति-यावदुत्कृष्टेन संख्यातप्रतरांगुलमात्रप्रदेशा क्षीणा इति। ततः एकाकाशप्रदेशेन-अर्द्धाष्ट्रज्जूनां मारणान्तिकं समुद्घातं कारयित्वा उत्कृष्टस्थितिं बंधापयित्वा नेतव्यं यावत् उत्कृष्टक्षेत्रमुत्कृष्टसंख्यातेन खण्डयित्वा तत्र एकखण्डेन परिहीणमुत्कृष्टक्षेत्रं स्थितमिति। ततः प्रभृति अधः संख्यातभागहान्या गच्छति यावदुत्कृष्टक्षेत्रस्य द्विरूपभागहारो जात इति। ततः प्रभृति अधः संख्यातगुणहानिर्भूत्वा गच्छति यावदुत्कृष्टक्षेत्रं जघन्यपरीतासंख्यातेन खण्डयित्वा एकखण्डं स्थितमिति।

ततः प्रभृति असंख्यातगुणहीनं भूत्वा गच्छति यावत् स्वस्थानमहामत्स्य-उत्कृष्टावगाहना इति। पुनरपि महामत्स्यावगाहनामेकैकप्रदेशैः ऊनं कृत्वा असंख्यातगुणहान्या नेतव्यं यावत् सिक्थमत्स्यस्य सर्वजघन्य-स्वस्थानावगाहना इति। पुनः सर्वपश्चिमविकल्प उच्यते। तद्यथा —

सिक्थमत्स्येन सर्वजघन्यावगाहनाया वर्तमानेन ज्ञानावरणोत्कृष्टस्थितौ प्रबद्धायां कालवेदना उत्कृष्टा जाता। क्षेत्रवेदना पुनः निर्विकल्पासंख्यातगुणहीनत्वमुपगता।

अधुना भावापेक्षया किमुत्कृष्टेत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा॥३०॥

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा॥३१॥

एक प्रदेश से हीन उत्कृष्ट अवगाहना के साथ सातवीं पृथिवी के प्रति मारणान्तिक समुद्घात करने वाले महामत्स्य के द्वारा उत्कृष्ट स्थिति के बांधे जाने पर उसका क्षेत्र असंख्यातवें भाग से हीन होता है। इस प्रकार मुखस्थान में दो-तीन प्रदेशों से लेकर उत्कृष्टरूप से संख्यात प्रतरांगुल प्रदेशों के हीन होने तक उसका क्षेत्र असंख्यातवें भाग से हीन रहता है, तत्पश्चात् एक आकाशप्रदेश से हीन साढ़े सात राजु मात्र मारणान्तिक समुद्घात को कराकर व उत्कृष्ट स्थिति को बांधकर उत्कृष्ट क्षेत्र को उत्कृष्ट संख्यात से खण्डित करके उसमें एक खण्ड से हीन उत्कृष्ट क्षेत्र के स्थित होने तक ले जाना चाहिए। वहाँ से लेकर नीचे उत्कृष्ट क्षेत्र को दो अंक भागहार होने तक संख्यात भागहानि तक जाता है। फिर वहाँ से लेकर नीचे उत्कृष्ट क्षेत्र को जघन्य परीतासंख्यात से खण्डित कर उसमें एक खंड के स्थित होने तक संख्यातगुणहानि होकर जाती है।

फिर वहाँ से लेकर महामत्स्य की उत्कृष्ट स्वस्थान अवगाहना तक असंख्यातगुणा हीन होकर जाता है। फिर भी महामत्स्य की उत्कृष्ट अवगाहना को एक-एक प्रदेशों से हीन करके सिक्थ मत्स्य की सर्वजघन्य स्वस्थान अवगाहना तक असंख्यातगुणा गुणहानि से ले जाना चाहिए।

पुनः सर्वपश्चिम विकल्प को कहते हैं, वह इस प्रकार है —

सर्वजघन्य अवगाहना में विद्यमान सिक्थ मत्स्य के द्वारा ज्ञानावरणीय की उत्कृष्ट स्थिति के बांधे जाने पर कालवेदना उत्कृष्ट हो जाती है परन्तु क्षेत्रवेदना विकल्परहित असंख्यातगुणी हीनता को प्राप्त है।

अब भाव की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतरित किये जा रहे हैं —

सूत्रार्थ —

उसके उक्त वेदना भाव की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?॥३०॥

वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है॥३१॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि उत्कृष्ट स्थिति के साथ उत्कृष्ट विशेष प्रत्ययरूप उत्कृष्ट संक्लेश

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—यदि उत्कृष्टस्थित्या सह उत्कृष्टसंक्लेशेन उत्कृष्टविशेषप्रत्ययेन उत्कृष्टानुभागः प्रबद्धः तर्हि कालवेदनाया सह भावोऽपि उत्कृष्टो भवति। उत्कृष्टविशेषप्रत्ययाभावे अनुत्कृष्टश्चैव।।

उक्कस्सादो अणुक्कस्सा छट्ठाणपदिदा।।३२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—अत्र यथा उत्कृष्टद्रव्ये भावस्य षट्स्थानपतितत्वं प्ररूपितं तथात्रापि प्ररूपयितव्यं, विशेषाभावात्।

संप्रति भावतः उत्कृष्टा तर्हि द्रव्यतो किमुत्कृष्टेत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

जस्स णाणावरणीयवेयणा भावदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।।३३।।

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा।।३४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका—द्विचरम-त्रिचरमसमयप्रभृति अधः यावत् अन्तर्मुहूर्तं तावत् पूर्वमेव यदि उत्कृष्टानुभागं बंधयित्वा नारकचरमसमये द्रव्यमुत्कृष्टं कृतं तर्हि भावेन सह द्रव्यमपि उत्कृष्टं भवति। अथ भावे उत्कृष्टे जाते यदि द्रव्यमुत्कृष्टभावं न प्राप्नोति तर्हि द्रव्यवेदना अनुत्कृष्टा भवतीति गृहीतव्यम्।

उक्कस्सादो अणुक्कस्सा पञ्चट्ठाणपदिदा।।३५।।

के द्वारा उत्कृष्ट अनुभाग बांधा गया है तो काल वेदना के साथ भाव भी उत्कृष्ट होता है और उत्कृष्ट विशेष प्रत्यय के अभाव में भाव अनुत्कृष्ट ही होता है।

सूत्रार्थ—

वह उत्कृष्ट की अपेक्षा अनुत्कृष्ट स्थानों में पतित है।।३२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—यहाँ जिस प्रकार से उत्कृष्ट द्रव्य की विवक्षा में भाव के छह स्थानों में पतित होने की प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार से यहाँ भी उसकी प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

अब भाव से उत्कृष्ट है, तो द्रव्य से क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

जिस जीव के ज्ञानावरणीय की वेदना भाव की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके द्रव्य की अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?।।३३।।

वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है।।३४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—द्विचरम और त्रिचरम समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक यदि पूर्व में ही उत्कृष्ट अनुभाग को बांधकर नारक भव के अंतिम समय में द्रव्य को उत्कृष्ट कर चुका है तो भाव के साथ द्रव्य भी उत्कृष्ट होता है और यदि भाव के उत्कृष्ट होने पर द्रव्य उत्कृष्टता को प्राप्त नहीं होता है, तो द्रव्यवेदना अनुत्कृष्ट ही होती है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

सूत्रार्थ—

वह उत्कृष्ट की अपेक्षा अनुत्कृष्ट पाँच स्थानों में पतित है।।३५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—अनंतभागहीन, असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन, संख्यातगुणहीन और

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — अनंतभागहीन-असंख्यातभागहीन-संख्यातभागहीन-संख्यातगुणहीन-असंख्यातगुणहीनानीति पंचस्थानानि ज्ञातव्यानि भवन्ति। एतेषां पंचस्थानानां यथा उत्कृष्टकाले निरुद्धे द्रव्यस्य पंचविधा स्थानप्ररूपणा कृता तथात्रापि कर्तव्या, अविशेषात्।

अधुना क्षेत्रापेक्षया किं उत्कृष्टेत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।।३६।।

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा।।३७।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — यदि उत्कृष्टानुभागं बंधयित्वा महामत्स्येन उत्कृष्टक्षेत्रं कृतं तर्हि भावेन सह क्षेत्रं अपि उत्कृष्टं भवति। अथवा, उत्कृष्टमनुभागं बंधयित्वा यदि क्षेत्रमुत्कृष्टं न करोति तर्हि उत्कृष्टभावे निरुद्धे क्षेत्रमुत्कृष्टं भवतीति गृहीतव्यं।

उक्कस्सादो अणुक्कस्सा चउट्ठाणपदिदा।।३८।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — असंख्यातभागहानि-संख्यातभागहानि-संख्यातगुणहानि-असंख्यातगुणहानीति चत्वारि स्थानानि। एतेषां चतुर्णां स्थानानां यथा उत्कृष्टकाले निरुद्धे प्ररूपणा कृता तथा प्ररूपणा कर्तव्या। विशेषेण-चरमविकल्पे भण्यमाने सर्वजघन्यावगाहनैकेन्द्रियेषु उत्कृष्टानुभागसत्त्वकर्मिकेषु चरमा असंख्यात-गुणहानिर्गृहीतव्या।

असंख्यातगुणहीन ये पाँच स्थान ज्ञातव्य हैं। उत्कृष्ट काल की विवक्षा में जिस प्रकार इन पाँच स्थानों से संबंधित द्रव्य की पाँच प्रकार स्थानप्ररूपणा की गई है उसी प्रकार यहाँ भी करनी चाहिए, क्योंकि उसमें अन्य कोई विशेषता नहीं है।

अब क्षेत्र की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके क्षेत्र की अपेक्षा उक्त वेदना क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?।।३६।।

वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है।।३७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि उत्कृष्ट अनुभाग को बांधकर महामत्स्य के द्वारा उत्कृष्ट क्षेत्र किया गया है तो भाव के साथ क्षेत्र भी उत्कृष्ट होता है अथवा यदि उत्कृष्ट अनुभाग को बांधकर क्षेत्र को उत्कृष्ट भाव के विवक्षित होने पर क्षेत्र अनुत्कृष्ट नहीं करता है तो उत्कृष्ट भाव से विवक्षित होने पर क्षेत्र अनुत्कृष्ट होता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

सूत्रार्थ —

वह उत्कृष्ट की अपेक्षा अनुत्कृष्ट चार स्थानों में पतित है।।३८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि ये चार स्थान हैं। उत्कृष्ट काल की विवक्षा में जिस प्रकार इन चार स्थानों की प्ररूपणा की जा चुकी है, उसी प्रकार यहाँ भी प्ररूपणा करनी चाहिए। विशेष इतना है कि अंतिम विकल्प का कथन करते समय उत्कृष्ट अनुभाग के सत्त्व से संयुक्त सर्वजघन्य अवगाहना वाले एकेन्द्रिय जीवों में अंतिम असंख्यातगुणहानि को ग्रहण करना चाहिए।

शंका — एकेन्द्रियों में उत्कृष्ट भाव का पाया जाना कैसे संभव है ?

एकेन्द्रियेषु कथमुत्कृष्टभावोलब्धिर्भवतीति चेत् ?

नैष दोषः, संज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तकेषु उत्कृष्टानुभागं बंधयित्वा तद्घातेन विना एकेन्द्रियभावमुपगतेषु जघन्यक्षेत्रेण सह उत्कृष्टभावोपलंभात्।

अधुना कालापेक्षया किमुत्कृष्टेत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।।३९।।

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा।।४०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि उत्कृष्टानुभागसत्त्वेन सह उत्कृष्टा स्थितिः प्रबद्धा तर्हि भावेन सह कालोऽपि उत्कृष्टो भवति। अथ उत्कृष्टानुभागे सत्त्वेऽपि उत्कृष्टां स्थितिं बध्नाति तर्हि उत्कृष्टभावे निरुद्धे कालोऽनुत्कृष्टो भवति।

अत्र कश्चिदाह — उत्कृष्टानुभागं बध्नन् निश्चयेन उत्कृष्टां चैव स्थितिं बध्नाति, उत्कृष्टसंक्लेशेन विना उत्कृष्टानुभागबंधाभावात्। एवं सति कथमुत्कृष्टानुभागे निरुद्धे अनुत्कृष्टस्थितेः संभवोऽस्ति ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नैष दोषः, उत्कृष्टानुभागेन सह उत्कृष्टस्थितिं बंधयित्वा प्रतिभग्नस्य जीवस्य अधःस्थितिगलनायाः उत्कृष्टस्थितेः समयोनादि-विकल्पोपलंभात्। न चानुभागस्य अधःस्थितिगलनायाः घातोऽस्ति, सदृशघनवतां परमाणूनां तत्रोपलंभात्। न चोत्कृष्टानुभागबंधस्य बद्धद्वितीयसमये चैव घातोऽस्ति, प्रतिभग्नप्रथमसमयप्रभृति

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जो संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक उत्कृष्ट अनुभाग को बांधकर उसके घात के बिना एकेन्द्रिय पर्याय को प्राप्त होते हैं, उनके जघन्य क्षेत्र के साथ उत्कृष्ट भाव पाया जाता है।

अब काल की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके काल की अपेक्षा उक्त वेदना क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?।।३९।।

वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है।।४०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि उत्कृष्ट अनुभागसत्त्व के साथ उत्कृष्ट स्थिति बांधी गई है तो भाव के साथ काल भी उत्कृष्ट होता है परन्तु यदि उत्कृष्ट अनुभाग के होने पर भी उत्कृष्ट स्थिति को ही बांधता है तो उत्कृष्ट भाव के विवक्षित होने पर काल अनुत्कृष्ट होता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

चूँकि उत्कृष्ट अनुभाग को बांधने वाला जीव निश्चय से उत्कृष्ट स्थिति को ही बांधता है, क्योंकि उत्कृष्ट संक्लेश के बिना उत्कृष्ट अनुभाग का बंध नहीं होता, अतएव ऐसी स्थिति में उत्कृष्ट अनुभाग की विवक्षा में अनुत्कृष्ट स्थिति की संभावना कैसे हो सकती है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि —

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभाग के साथ उत्कृष्ट स्थिति को बांधकर प्रतिभग्न हुए जीव के अधःस्थिति के गलने से उत्कृष्ट स्थिति की अपेक्षा एक समय हीन आदि स्थिति विकल्प पाये जाते हैं और अधःस्थिति के गलने से अनुभाग का घात कुछ होता नहीं है, क्योंकि समान घन वाले परमाणु वहाँ पाये जाते हैं। यदि कहा जाये कि उत्कृष्ट अनुभागबंध का बंध होने के द्वितीय समय में ही घात हो जाता है, तो यह भी

यावत् अन्तर्मुहूर्तकालो न गतस्तावदनुभागकाण्डकघाताभावात्।

**उक्कस्सादो अणुक्कस्सा तिट्ठाणपदिदा असंखेज्जभागहीणा वा संखेज्ज-
भागहीणा वा संखेज्जगुणहीणा वा॥४१॥**

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उत्कृष्टानुभागेन सह उत्कृष्टस्थितिं बंधयित्वा प्रतिभग्नप्रथमसमये वर्तमानस्य भावे उत्कृष्टे सति कालोऽसंख्यातभागहीनो भवति, अधःस्थितेः गलितैकसमयत्वात्। प्रतिभग्नद्वितीयसमये अपि असंख्यातभागहीनश्चैव भवति, अधःस्थितेः गलितद्विसमयत्वात्। एवं तावत् स्थितेः असंख्यातभागहानिर्भवति यावत् स्थितिकाण्डकप्रथमसमय इति। पुनः स्थितिकाण्डक-उत्कीरणकाले प्रथमसमये गलितेऽपि असंख्यात-भागहानिश्चैव। उत्कीरणकाले द्वितीयसमये गलितेऽपि असंख्यातभागहानिश्चैव। एवं तावदसंख्यातभागहानिर्भवति यावत् स्थितिकाण्डकोत्कीरणकाले द्विचरमसमयो गलित इति। अनुभागः पुनः उत्कृष्टश्चैव, तस्य घाताभावात्। अत्र उपयोगिन्यो गाथाः सन्ति —

ट्टिदिघादे हंमंते, अणुभागा आउआण सव्वेसिं।

अणुभागेण विना वि हु, आउववज्जाण ट्टिदिघादो॥१॥

अणुभागे हंमंते, ट्टिदिघादो आउआण सव्वेसिं।

ट्टिदिघादेण विणा वि हु, आउववज्जाणअणुभागो॥२॥

कहना ठीक नहीं है, क्योंकि प्रतिभग्न होने के प्रथम समय से लेकर जब तक अन्तर्मुहूर्त काल नहीं बीत जाता है, तब तक अनुभागकाण्डक घात संभव नहीं है।

सूत्रार्थ —

वह उत्कृष्ट की अपेक्षा अनुत्कृष्ट असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन और संख्यातगुणहीन इन तीन स्थानों में पतित है॥४१॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उत्कृष्ट अनुभाग के साथ उत्कृष्ट स्थिति को बांधकर प्रतिभग्न होने के प्रथम समय में वर्तमान जीव के भाव के उत्कृष्ट होने पर काल असंख्यातवें भाग से हीन होता है, क्योंकि अधःस्थिति के द्वारा एक समय गल चुका है। प्रतिभग्न होने के द्वितीय समय में असंख्यातभागहानि ही होती है, क्योंकि अधःस्थिति में दो समय गल चुके हैं। इस प्रकार से स्थितिकाण्डक के प्रथम समय के प्राप्त होने तक स्थिति में असंख्यातभागहानि होती है तत्पश्चात् स्थितिकाण्डक उत्कीरणकाल के प्रथम समय के गलने पर भी असंख्यातभागहानि ही होती है। उत्कीरण काल के द्वितीय समय के गलने पर भी असंख्यातभागहानि होती है। इस प्रकार से तब तक असंख्यातभागहानि होती है, जब तक स्थितिकाण्डक-उत्कीरणकाल का द्विचरम समय लगता है परन्तु अनुभाग उत्कृष्ट ही रहता है, क्योंकि उससे घात की संभावना नहीं है। यहाँ उपयोगी गाथाएँ प्रस्तुत हैं—

गाथार्थ —स्थितिघात के होने पर सब आयुओं के अनुभागों का नाश होता है। आयु को छोड़कर शेष कर्मों का अनुभाग के बिना भी स्थितिघात होता है॥१॥

अनुभाग का घात होने पर सब आयुओं का स्थितिघात होता है। स्थितिघात के बिना भी आयु को छोड़कर शेष कर्मों के अनुभाग का घात होता है॥२॥

इस प्रकार जाकर प्रथम स्थितिकाण्डक संबंधी अंतिम फाली के उत्कीरणकाल संबंधी अंतिम

एवं गत्वा प्रथमस्थितिकाण्डकचरमफाल्याः उत्कीरणकाले चरमसमयेन सह पतितायामपि असंख्यात-
भागहानिश्रैव भवति, पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रसर्वजघन्यस्थितिकाण्डकप्रमाणेन घातितत्वात्।

संप्रति एतेनैव उत्कीरणकालेन पूर्वोक्तस्थितिकाण्डकात् समयोत्तरस्थितिकाण्डके घातिते अन्योऽसंख्यात-
भागहानिविकल्पो भवति। द्विसमयोत्तरस्थितिकाण्डके घातितेऽन्यः असंख्यातभागहानिविकल्पो भवति।
एवं नेतव्यं यावत् जघन्यपरीतासंख्यातेन उत्कृष्टस्थितिं खण्डयित्वा तत्र एकखण्डमात्रः स्थितिकाण्डकः
पतितः इति। तर्ह्यपि असंख्यातभागहानिश्रैवास्ति।

एवं गत्वा उत्कृष्टसंख्यातेन उत्कृष्टस्थितिं खण्डयित्वा तत्र एकखण्डमात्रे स्थितिकाण्डकस्य तस्य
चैव उत्कीरणकाले घातिते संख्यातभागहानिर्भवति। अनुभागः पुनः उत्कृष्टश्चैव, तस्य घाताभावात्।

एतस्मात् प्रभृति समयोत्तरक्रमेण स्थितिकाण्डकं वर्धापयित्वा घातयितव्यः यावत् संख्यातभागहानेः
चरमविकल्पः इति। पुनः तेनैव उत्कीरणकालेन उत्कृष्टस्थितेः अर्द्धे घातिते संख्यातगुणहानेरादिर्भवति,
द्विगुण-हीनत्वात्। ततः प्रभृति समयोत्तरादिक्रमेण स्थितिखण्डे घात्यमाने संख्यातगुणहानिश्रैव भवति।
एवं नेतव्यं यावत् उत्कृष्टानुभागविरोधि-अंतःकोटाकोटिरिति।

एवं द्वितीयस्थले ज्ञानावरणीयस्य उत्कृष्टानुत्कृष्टवेदनाविकल्पप्रतिपादनपराणि षट्त्रिंशत्सूत्राणि गतानि।

अधुना दर्शनावरणादित्रिकर्मणां द्रव्याद्यपेक्षया वेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

समय के साथ पतित होने पर भी असंख्यातभागहानि ही होती है, क्योंकि सबसे जघन्य पल्योपम
असंख्यातवे भगमात्र स्थितिकांडक प्रमाण स्थितियों का घात हुआ है। अब इसी उत्कीरणकाल से
पहले स्थितिकांडक की अपेक्षा एक समय अधिक स्थितिकांडक का घात होने पर असंख्यातभागहानि
का अन्य विकल्प होता है। दो समय अधिक स्थितिकांडक का घात होने पर असंख्यातभागहानि
का अन्य विकल्प होता है। इस प्रकार जघन्य परीतासंख्यात से उत्कृष्ट स्थिति को खण्डित कर
उसमें एकखण्डमात्र स्थितिकांडक के पतित होने तक ले जाना चाहिए तो भी असंख्यातभागहानि
ही रहती है।

इस प्रकार जाकर उत्कृष्ट संख्यात से उत्कृष्ट स्थिति को खण्डित कर उसमें एकखण्डमात्र स्थितिकाण्डक
का उसी उत्कीरण काल के द्वारा घात होने पर संख्यातभागहानि होती है परन्तु अनुभाग उत्कृष्ट ही रहता है,
क्योंकि उसका घात नहीं हुआ है।

यहाँ से लेकर एक समय अधिक के क्रम से स्थितिकाण्डक को बढ़ाकर संख्यातभागहानि के अंतिम
विकल्प के प्राप्त होने तक उसका घात करना चाहिए, फिर उसी उत्कीरणकाल से उत्कृष्ट स्थिति के अर्धभाग
का घात होने पर संख्यातगुणहानि प्रारंभ होती है, क्योंकि उक्त स्थिति में दुगुणी हानि हो चुकती है। उससे
लेकर एक समय अधिक आदि के क्रम से स्थितिकाण्डक का घात होने पर संख्यात-गुणहानि ही होती है। इस
प्रकार से उत्कृष्ट अनुभाग के विरोधी अन्तःकोड़ाकोड़ी तक जाना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में ज्ञानावरणीय कर्म की उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट वेदना के भेदों का प्रतिपादन
करने वाले छत्तीस सूत्र पूर्ण हुए।

अब दर्शनावरणीय आदि तीन कर्मों की द्रव्य की अपेक्षा वेदना के निरूपण हेतु सूत्र अवतीर्ण
होता है —

एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराडयाणं॥४२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यथा ज्ञानावरणीयस्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावेषु एकैकविवक्षितं कृत्वा शेषप्ररूपणा तथा एतेषामपि त्रयाणां घातिकर्मणां प्ररूपणा कर्तव्या, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावस्वामित्वेन, विशेषाभावात्।
एवं तृतीयस्थले त्रिकर्मणां वेदनानिरूपणपरं एकं सूत्रं गतम्।

अधुना द्रव्यापेक्षया वेदनीयवेदना निरूपणार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

जस्स वेयणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सा तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा

अणुक्कस्सा॥४३॥

णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा॥४४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सप्तमपृथिवीनारकस्य पंचशतधनुस्तप्तेधस्य उत्कृष्टद्रव्यस्य विनाशो मा भवेदिति उत्कृष्टयोगविरोधमारणान्तिकसमुद्घातमुपगतस्य उत्कृष्टावगाहनायाः संख्यातघनांगुलप्रमाणायाः लोकपूरणोत्कृष्टक्षेत्रादसंख्यातगुणहीनत्वोपलंभात्।

संप्रति अस्यैव कालापेक्षया प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्मों के विषय में प्ररूपणा करनी चाहिए॥४२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में से किसी एक को विवक्षित करके शेषों की प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार इन तीन घातिया कर्मों की भी प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव के स्वामित्व से उसमें कोई विशेषता नहीं है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में तीन कर्मों की वेदना का निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब द्रव्य की अपेक्षा वेदनीय कर्म की वेदना का निरूपण करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के वेदनीय कर्म की वेदना द्रव्य की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है, उसके क्षेत्र की अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है, या अनुत्कृष्ट होती है ?॥४३॥

वह नियम से अनुत्कृष्ट असंख्यातगुणी हीन होती है॥४४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सातवें नरक का नारकी जो पाँच सौ धनुष ऊँचे शरीर वाला हो, उसके उत्कृष्ट द्रव्य का विनाश न होवे इसलिए उत्कृष्ट योग के विरोधी मारणान्तिक समुद्घात को जो नहीं प्राप्त हुआ है, उसकी संख्यात घनांगुलप्रमाण उत्कृष्ट अवगाहना लोकपूरण उत्कृष्ट क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यातगुणी हीन पाई जाती है।

अब उसी का काल की अपेक्षा कथन करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा॥४५॥

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा॥४६॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — नारकचरमसमये वर्तमानेन गुणितकर्माशिकेन कृतोत्कृष्टद्रव्यसंचयेन यदि उत्कृष्टस्थितिः प्रबद्धा तर्हि द्रव्येण सह कालोऽपि उत्कृष्टो भवति। अथ तत्र यदि उत्कृष्टस्थितिं न बध्नाति तर्हि अनुत्कृष्टा इति गृहीतव्यम्।

उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणा॥४७॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — नारकभवस्य द्विचरमसमये उत्कृष्टसंक्लेशाविनाभाविनि बद्धोत्कृष्टस्थितेः चरमसमये अधःस्थितिगलनेन एकसमयपरिहाणिदर्शनात्।

संप्रति भावापेक्षया किमुत्कृष्टेत्यादि-प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा॥४८॥

णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा॥४९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सूक्ष्मसांपरायिकमहामुनेः क्षपकस्य चरमानुभागबंधमपेक्ष्य नारकस्य जीवस्य चरमसमयानुभागस्य अनंतगुणहीनत्वोपलंभात्।

सूत्रार्थ —

उसके काल की अपेक्षा उक्त वेदना क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?॥४५॥

वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है॥४६॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उत्कृष्ट द्रव्य का संचय कर लेने वाले नारक भव के चरम समय में वर्तमान गुणित-कर्माशिक के द्वारा यदि उत्कृष्ट स्थिति बांधी गई है तो द्रव्य के साथ काल भी उत्कृष्ट होता है। परन्तु यदि वह उक्त अवस्था में उत्कृष्ट स्थिति को नहीं बांधता है तो उसके काल वेदना अनुत्कृष्ट होती है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

सूत्रार्थ —

वह उत्कृष्ट की अपेक्षा अनुत्कृष्ट एक समय कम है॥४७॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि उत्कृष्ट संक्लेश के अविनाभावी नारक भव के द्विचरम समय में बांधी गई उत्कृष्ट स्थिति में से चरम समय में अधःस्थिति के गलने से एक समय की हानि देखी जाती है।

अब भाव की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके भाव की अपेक्षा उक्त वेदना क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट भी होती है ?॥४८॥

वह नियमपूर्वक अनुत्कृष्ट चार स्थानों में अनन्तगुणहीन होती है॥४९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक महामुनि के अंतिम समय

कुतः ?

सातावेदनीयस्य शुभप्रकृतेः संक्लेशेन अनुभागहानिदर्शनात्।

अधुना वेदनीयवेदना यदि क्षेत्रतः उत्कृष्टा तर्हि द्रव्यतः किं इत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

जस्म वेयणीयवेयणा खेत्तदो उक्कस्सा तस्म दव्वदो किमुक्कस्सा

अणुक्कस्सा।।५०।।

णियमा अणुक्कस्सा चउट्ठाणपदिदा।।५१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका —

कश्चिदाह —

उत्कृष्टा किं जायते ?

आचार्यः प्राह —

न जायते, नारकचरमसमयगुणितकर्माशिके उत्कृष्टभावेन अवस्थितवेदनीयद्रव्यवेदनायां लोकपूरणावस्थायां वर्तमानसयोगिकेवलिनि संभवविरोधात्।

संप्रति द्रव्यस्य चतुःस्थानपतितत्वं कथं ज्ञायते ?

सूत्रानुसारिव्याख्यानादेव ज्ञायते। तद्यथा —

गुणितकर्माशिकः सप्तमपृथिवीतः आगत्य पंचेन्द्रियतिर्यक्षु अन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा पुनः बादरपृथिवीकायिकेषु अन्तर्मुहूर्तायुः बंधयित्वा तत्रोत्पद्य पश्चात् मनुष्येषु वर्षपृथक्त्वमायुर्बन्धयित्वा कालं कृत्वोत्पद्य संयमं गृहीत्वा

संबन्धी अनुभाग की अपेक्षा नारक जीव का अंतिम समय संबन्धी अनुभाग अनन्तगुणा हीन पाया जाता है।

क्यों ?

क्योंकि साता वेदनीय शुभ प्रकृति के होने से संक्लेश के द्वारा उसके अनुभाग में हानि देखी जाती है।

अब वेदनीय कर्म की वेदना यदि क्षेत्र से उत्कृष्ट है तो द्रव्य की अपेक्षा क्या है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के वेदनीय कर्म की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके द्रव्य की अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?।।५०।।

वह नियम से अनुत्कृष्ट चार स्थानों में पतित होती है।।५१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ कोई शिष्य शंका करता है कि वह उत्कृष्ट क्यों नहीं होती है ?

आचार्यदेव ने इसका समाधान दिया है कि —

नहीं होती है, क्योंकि नारक भव के अंतिम समय में वर्तमान गुणितकर्माशिक जीव में उत्कृष्ट स्वरूप से अवस्थित वेदनीय कर्म की द्रव्य वेदना के लोकपूरण अवस्था में रहने वाले सयोगकेवली भगवान में होने का विरोध है।

शंका — यह अनुत्कृष्ट द्रव्य वेदना चार स्थानों में पतित है, यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान — वह सूत्र का अनुसरण करने वाले व्याख्यान से जाना जाता है।

जो इस प्रकार है — एक गुणित कर्माशिक जीव सातवीं पृथिवी से आकर के पंचेन्द्रिय तिर्यचों में अन्तर्मुहूर्त रहकर फिर पृथिवीकायिक जीवों में अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु को बांधकर उनमें उत्पन्न हुआ। पश्चात्

क्षपकश्रेणिमारुह्य केवलज्ञानमुत्पाद्य लोकपूरणं गतस्य क्षेत्रमुत्कृष्टं जातम्। तत्समये द्रव्यमसंख्यातभागहीनं भवति, उत्कृष्टद्रव्यं पल्योपमस्य असंख्यातभागेन खण्डयित्वा तत्र एकखण्डेन परिहीनोत्कृष्टद्रव्यधारणात्। एवं संख्यातभागहीन-संख्यातगुणहीन-असंख्यातगुणहीनद्रव्याणां अपि ज्ञात्वा प्ररूपणा कर्तव्या।

संप्रति अस्यैव कालापेक्षया निरूपणार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।।५२।।

णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा।।५३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — लोकपूरणावस्थायां वर्तमानान्तर्मुहूर्तमात्रस्थितेः त्रिंशत्कोटिकोटिसागरोपमेभ्यः असंख्यातगुणहीनत्वोपलंभात्।

तस्यैव भावापेक्षया किमुत्कृष्टेत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।।५४।।

उक्कस्सा भाववेयणा।।५५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — भावापेक्षया किमुत्कृष्टा अनुत्कृष्टा इति प्रश्ने सति भाववेदना-उत्कृष्टा भवति इति ज्ञातव्या।

जब वह मनुष्यों में वर्षपृथक्त्व आयु को बांधकर मरण को प्राप्त हो उनमें उत्पन्न होकर संयम को ग्रहण करके क्षपक श्रेणि पर चढ़कर केवलज्ञान को उत्पन्न करके लोकपूरण अवस्था को प्राप्त होता है, तब उसका क्षेत्र उत्कृष्ट होता है। उस समय में द्रव्य असंख्यातवें भाग से हीन होता है, क्योंकि उत्कृष्ट द्रव्य को पल्योपम के असंख्यातवें भाग से खण्डित कर उसमें से वह एक खण्ड से हीन उत्कृष्ट द्रव्य को धारण करता है। इसी प्रकार से संख्यातभागहीन, संख्यातगुणहीन और असंख्यातगुणहीन द्रव्यों को भी जान करके प्ररूपणा करनी चाहिए।

अब इसी कर्म का काल की अपेक्षा निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित किये जा रहे हैं —

सूत्रार्थ —

उसके काल की अपेक्षा उक्त वेदना क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?।।५२।।

उसके नियम से वह वेदना अनुत्कृष्ट असंख्यातगुणी हीन होती है।।५३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि लोकपूरण अवस्था में रहने वाली अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों की अपेक्षा असंख्यातगुणी हीन पाई जाती है।

उसी के भाव की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके भाव की अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?।।५४।।

उसके भाववेदना उत्कृष्ट होती है।।५५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उपर्युक्त सूत्र में प्रश्न हुआ है कि उसके भाव वेदना उत्कृष्ट है या अनुत्कृष्ट, तब दूसरे सूत्र में उत्तर दिया है कि उसके भाववेदना उत्कृष्ट होती है, ऐसा समझना।

कश्चिदाह—

लोकपूरणसमुद्घातगतकेवलानि भगवति सा भाववेदना-अनुत्कृष्टा किन्न जायते ?

आचार्यदेवः प्राह—

न जायते, चरमसमयवर्ति-सूक्ष्मसांपरायिकमहामुनीनां विसदृशपरिणामाभावात्। न च विशेषप्रत्ययभेदोऽपि अस्ति, सर्वेषु एकोत्कृष्टप्रत्ययस्यैव संभवोपलंभात्। न च योगभेदेन अनुभागस्य नानात्वं युज्यते, योगवृद्धि-हानिभ्यां अनुभागवृद्धि-हान्योरभावात्।

अत्र कश्चिदाशङ्कते—

सूक्ष्मसांपरायिकमुनिचरमसमये प्रबद्धोत्कृष्टानुभागस्थितिः येन द्वादशमुहूर्तमात्रास्तेन द्वादशानां मुहूर्तानाम-भ्यन्तरे केवलज्ञानमुत्पाद्य सर्वलोकमापूर्य स्थितानां भावः उत्कृष्टो भवति। बहुकेन कालेन कृतलोकपूरण-समुद्घातानां उत्कृष्टो न भवति, द्वादशमुहूर्तैः उत्कृष्टानुभागपरमाणूनां निःशेषक्षयदर्शनात्। तस्मात् लोकपूरणे भाववेदना-उत्कृष्टा अनुत्कृष्टा वा भवतीति वक्तव्यमिति ?

अत्र आचार्यदेवः परिहरति—

तद्यथा—लोकपूरणे समुद्घाते भाववेदना उत्कृष्टा चैव भवति, अन्यथा सूत्रस्य अप्रमाणत्वप्रसंगात्। न च सूत्रमप्रमाणं भवति, तद्भावे तस्य सूत्रत्वविरोधात्।

उक्तं च— अर्थस्य सूचनात् सम्यक्, सूतेर्वार्थस्य सूरिणा।

सूत्रमुक्तमनल्पार्थं, सूत्रकारणतत्त्वतः^१।।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

लोकपूरण समुद्घात अवस्था को प्राप्त हुए केवली भगवान में वह अनुत्कृष्ट क्यों नहीं होती है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं कि—

नहीं होती है, क्योंकि अंतिम समयवर्ती सूक्ष्मसांपरायिक महामुनियों के विसदृश परिणामों का अभाव है। इसके अतिरिक्त विशेष प्रत्यय भेद भी यहाँ नहीं हैं, क्योंकि उक्त सभी जीवों में एक उत्कृष्ट प्रत्यय की ही संभावना पायी जाती है। यदि कहा जाये कि योग के भेद से अनुभाग का भी भेद होना चाहिए, तो यह भी उचित नहीं है, क्योंकि योग की वृद्धि व हानि से अनुभाग की वृद्धि व हानि संभव नहीं है।

यहाँ कोई शंका करता है—

चूँकि सूक्ष्मसाम्परायिक मुनि के अंतिम समय में बांधी गई उत्कृष्ट-अनुभागस्थिति बारह मुहूर्त प्रमाण होती है अतएव बारह मुहूर्तों के भीतर केवलज्ञान को उत्पन्न कर सब लोक को पूर्ण करके स्थित जीवों का भाव उत्कृष्ट होता है परन्तु बहुत काल में लोकपूरण समुद्घात को करने वाले जीवों का भाव उत्कृष्ट नहीं होता है, क्योंकि बारह मुहूर्तों में उत्कृष्ट अनुभाग के परमाणुओं का निःशेष क्षय देखा जाता है इसीलिए लोकपूरण अवस्था में भाववेदना उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है, ऐसा कहना चाहिए।

आचार्यदेव यहाँ उक्त शंका का परिहार करते हैं।

वह इस प्रकार है—लोकपूरण समुद्घात की अवस्था में भाववेदना उत्कृष्ट ही होती है, क्योंकि ऐसा माने बिना सूत्र के अप्रमाण ठहरने का प्रसंग आता है परन्तु सूत्र अप्रमाण होता नहीं है, क्योंकि अप्रमाण होने पर उसके सूत्र होने का विरोध है। कहा भी है—

गाथार्थ—भलीभाँति अर्थ का सूचक होने से अथवा अर्थ का जनक होने से बहुत अर्थ का बोधक

न च युक्तिविरुद्धत्वात् न सूत्रमेतदिति वक्तुं शक्यते, सूत्रविरुद्धाया युक्तित्वाभावात्। न च अप्रमाणेन प्रमाणं बाधियते, विरोधात्।

पुनः कश्चिदाशङ्कते —

का सा पुनः अत्र 'निरवद्या सूत्रानुकूला तंत्रयुक्तिः' ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

उच्यते, वेदनीयोत्कृष्टानुभागबंधस्य स्थितिः द्वादशमुहूर्तमात्रा। तत्र सातावेदनीयचिरकालीनस्थितौ पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रायां स्थितकर्मपुद्गलाः अनुभागस्वरूपेण उत्कर्षं प्राप्यन्ते।

कुतः ?

“बंधे उक्कडुदि” इति आगमवचनात्।

कश्चित् पुनः पृच्छति —

भवतु नाम अनुभागस्य 'उत्कर्षणा, न स्थितेः, पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रस्थितिदीर्घत्वं नष्ट्वा द्वादशमुहूर्तस्थितिस्वरूपेण परिणतत्वादिति ?

आचार्यदेवः उत्तरयति —

भवतु नाम केषामपि परमाणूनां स्थितेः अपकर्षणा, अन्यथा तत्र गुणश्रेणिनिर्जराया अनुपपत्तेः। किन्तु न सर्वेषां कर्मपरमाणूनां स्थितीनां अपकर्षणा, केषामपि पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रस्थितेः अधः स्थितिगलित-शेषिकायाः अवस्थानोपलंभात्। न चानुभागस्य उत्कर्षणापि सर्वेषां कर्मपरमाणूनां भवति, स्तोकानां चैव बध्यमानानुभागस्वरूपेण परिणामदर्शनात्। तस्मात् पल्योपमस्य असंख्यात-

वाक्य सूत्रकार आचार्य के द्वारा यथार्थ में सूत्र कहा गया है।।

यदि कहा जाये कि युक्तिविरुद्ध होने से यह सूत्र ही नहीं है, तो ऐसा कहना शक्य नहीं है, क्योंकि जो युक्ति सूत्र के विरुद्ध हो वह वास्तव में युक्ति ही संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त अप्रमाण के द्वारा प्रमाण को बाधा भी नहीं पहुँचायी जा सकती है, क्योंकि वैसा होने में विरोध है।

पुनः कोई शंका करता है —

तो फिर यहाँ सूत्र के अनुकूल वह निर्दोष तंत्रयुक्ति कौन सी है ?

आचार्यदेव इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि —

वेदनीय के उत्कृष्ट अनुभागबंध की स्थिति बारह मुहूर्तमात्र है। उसमें पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण सातावेदनीय की चिरकालीन स्थिति में स्थित कर्मपुद्गल अनुभाग स्वरूप से उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं।

क्यों ?

क्योंकि 'बंध में उत्कर्षण होता है' ऐसा सूत्रवचन है।

पुनः कोई पूछता है —

अनुभाग का उत्कर्षण भले ही हो किन्तु स्थिति का उत्कर्षण संभव नहीं है, क्योंकि पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र स्थिति की दीर्घता नष्ट हो करके बारह मुहूर्त प्रमाण स्थिति के स्वरूप से परिणत हो जाती है ?

आचार्यदेव इसका उत्तर देते हैं —

किन्हीं परमाणुओं की स्थिति का अपकर्षण भले ही हो, क्योंकि इसके बिना उसमें गुणश्रेणि निर्जरा नहीं बन सकती किन्तु सभी कर्मपरमाणुओं की स्थितियों का अपकर्षण संभव नहीं है, क्योंकि किन्हीं कर्मपरमाणुओं की अधःस्थिति के गलने से शेष रही पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र स्थिति का अवस्थान पाया जाता है। इसके अतिरिक्त अनुभाग का उत्कर्षण भी सभी परमाणुओं का नहीं होता, क्योंकि थोड़े ही कर्मपरमाणुओं का

भागमात्रस्थितौ स्थितकर्मस्कंधाः उत्कृष्टानुभागस्वरूपेण उत्कर्षणं प्राप्ता द्वादशमुहूर्तान् मुक्त्वा पूर्वकोटिकालेनापि न गलन्ति इति सिद्धम्। तेन कारणेन लोकपूरणावस्थाप्राप्ते केवलानि भगवति वेदनीयभावः उत्कृष्टश्चैव, नानुत्कृष्टः इति ज्ञातव्यः।

अधुना यस्य कालापेक्षयोत्कृष्टा तस्य द्रव्यापेक्षया किमिति प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

**जस्स वेयणीयवेयणा कालदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणु-
क्कस्सा॥५६॥**

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा॥५७॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि नारकस्य जीवस्य चरमसमये गुणितकर्माशिके कृतोत्कृष्टद्रव्ये वेदनीयस्य उत्कृष्टको बंधो दृश्यते तर्हि कालेन सह द्रव्यमपि उत्कृष्टं भवति। अथ तस्मादधः उपरि वा यदि उत्कृष्टस्थितिर्बध्यते तर्हि उत्कृष्टा कालवेदना उत्कृष्टा द्रव्यवेदना न लभ्यते इति अनुत्कृष्टा इति भणितं भवति।

उक्कस्सादो अणुक्कस्सा पञ्चट्टाणपदिदा॥५८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अनन्तभागहानि-असंख्यातभागहानि-संख्यातभागहानि-संख्यातगुणहानि-असंख्यातगुणहानिस्वरूपेण पंचस्थानानि। एतेषां स्थानानां प्ररूपणा यथा ज्ञानावरणीयस्य प्ररूपिता तथा प्ररूपयितव्या।

बांधे जाने वाले अनुभाग के स्वरूप से परिणमन देखा जाता है। इस कारण पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र स्थिति में स्थित कर्मस्कंध उत्कृष्ट अनुभाग स्वरूप ले उत्कर्षण को प्राप्त होकर बारह मुहूर्तों को छोड़कर पूर्वकोटि प्रमाण काल में भी नहीं गलते हैं, यह सिद्ध है, इसीलिए लोकपूरण अवस्था को प्राप्त केवली भगवान में वेदनीय का भाव उत्कृष्ट ही होता है, अनुत्कृष्ट नहीं होता है, ऐसा जानना चाहिए।

अब जिस कर्म की वेदना काल की अपेक्षा उत्कृष्ट है, उसके द्रव्य की अपेक्षा क्या है ? इस प्रकार के प्रश्न और पुनः उसके उत्तर को प्रदर्शित करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिसके वेदनीयकर्म की वेदना काल की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके द्रव्य की अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?॥५६॥

वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है॥५७॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि नारक जीव के अंतिम समय में उत्कृष्ट द्रव्य का संचय करने वाले गुणितकर्माशिक के वेदनीय का उत्कृष्ट स्थितिबंध दिखता है, तो काल के साथ द्रव्य भी उत्कृष्ट होता है परन्तु यदि उत्कृष्ट स्थिति उससे नीचे या ऊपर बंधती है तो उत्कृष्ट कालवेदना के साथ उत्कृष्ट द्रव्यवेदना नहीं पायी जाती है, अतएव सूत्र में 'अनुत्कृष्ट' ऐसा कहा है।

सूत्रार्थ —

उत्कृष्ट की अपेक्षा अनुत्कृष्ट पाँच स्थानों में पतित है॥५८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अनन्तभागहानि, असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि रूप पाँच स्थान हैं। इन स्थानों की प्ररूपणा जैसे ज्ञानावरणीय के विषय में की गई है, वैसे ही यहाँ भी प्ररूपणा करनी चाहिए।

अधुना क्षेत्रापेक्षया किमुत्कृष्टेत्यादिरूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा॥५९॥

णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा॥६०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अर्द्धाष्ट्रज्जुप्रमाणं मारणान्तिकसमुद्घातं कुर्वता महामत्स्येन उत्कृष्टस्थितौ प्रबद्धायां सत्यां तत् क्षेत्रस्यापि लोकपूरणसमुद्घातगतकेवलिक्षेत्रात् असंख्यातगुणहीनत्वोपलंभात्।

संप्रति भावापेक्षया किमुत्कृष्टेत्यादि प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा॥६१॥

णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा॥६२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उत्कृष्टस्थित्या सह असातावेदनीयोत्कृष्टानुभागे बद्धेऽपि तस्यानुभागस्य सूक्ष्मसांपरायिकस्य महामुनेः चरमसमये प्रबद्धानुभागादनन्तगुणहीनोपलंभात्।

एतत्कुत उपलभ्यते ?

चतुःषष्टिपदिकाल्पबहुत्वादेव ज्ञायते।

संप्रति यस्य वेदनीयवेदना भावापेक्षया उत्कृष्टा तस्य द्रव्यापेक्षया किमिति प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

अब क्षेत्र की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि रूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके क्षेत्र की अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?॥५९॥

वह नियम से अनुत्कृष्ट असंख्यातगुणी हीन होती है॥६०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि साढ़े सात राजु प्रमाण मारणान्तिक समुद्घात को करने वाले महामत्स्य के द्वारा उत्कृष्ट स्थिति के बांधने पर उसका क्षेत्र भी लोकपूरण समुद्घात को प्राप्त केवली भगवान के क्षेत्र से असंख्यातगुणा हीन पाया जाता है।

अब भाव की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तर रूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके भाव की अपेक्षा उक्त वेदना क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?॥६१॥

वह नियम से अनुत्कृष्ट अनन्तगुणी हीन होती है॥६२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि उत्कृष्ट स्थिति के साथ असातावेदनीय के उत्कृष्ट अनुभाग को बांधने पर भी उसका अनुभाग सूक्ष्मसाम्परायिक महामुनि के अंतिम समय में बांधे गये अनुभाग की अपेक्षा अनन्तगुणा हीन पाया जाता है।

शंका — यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान — वह चौंसठ पद वाले अल्पबहुत्व से जाना जाता है।

अब जिसके भाव की अपेक्षा वेदनीयकर्म की वेदना उत्कृष्ट है उसके द्रव्य की अपेक्षा क्या है ? ऐसा प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

जस्स वेयणीयवेयणा भावदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा
अणुक्कस्सा॥६३॥

णियमा अणुक्कस्सा चउट्ठाणपदिदा॥६४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — नारकभवस्य चरमसमये जातवेदनीयोत्कृष्टद्रव्यस्य सूक्ष्मसांपरायिक-महामुनेः चरमसमये उत्कृष्टभावेन सह वृत्तिविरोधात्। तस्मात् नियमात् अनुत्कृष्टत्वं सिद्धम्। नियमात् अनुत्कृष्टाणि भूत्वा चतुःस्थानपतिता। तद्यथा — एको गुणितकर्माशिकः जीवः नारकचरमसमये उत्कृष्टं द्रव्यं कृत्वा निर्गत्य पंचेन्द्रियतिर्यक्षु उत्पद्य एकेन्द्रियेषु द्वित्रिभवाग्रहणानि गमयित्वा पुनः पश्चात् मनुष्येषूत्पद्य गर्भाद्यष्टवार्षिकः संयमं प्रतिपन्नः। पुनः सर्वलघुकेन कालेन क्षपकश्रेणिमारुह्य चरमसमयसूक्ष्मसांपरायिको भूत्वा उत्कृष्टानुभागः प्रबद्धः, तस्य द्रव्यवेदना असंख्यातभागहीना, गुणश्रेणिनिर्जरायाः गलितासंख्यात-समयप्रबद्धत्वात्। एतस्मात् प्रभृति एकैकपरमाणुहानिक्रमेण असंख्यातभागहानि-संख्यातभागहानि-संख्यातगुणहानि-असंख्यातगुणहानीः ज्ञात्वा द्रव्यस्य प्ररूपयितव्या यावत् क्षपित कर्माशिकसर्वजघन्यद्रव्यं स्थितमिति ज्ञातव्यम्।

संप्रति क्षेत्रापेक्षया किमुत्कृष्टेत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा॥६५॥

सूत्रार्थ —

जिसके वेदनीय की वेदना की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके द्रव्य की अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?॥६३॥

वह नियम से उत्कृष्ट चार स्थानों में पतित होती है॥६४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि नारक भव के अंतिम समय में उत्पन्न वेदनीय के उत्कृष्ट द्रव्य का सूक्ष्मसाम्परायिक महामुनि के अंतिम समय में उत्कृष्ट भाव के साथ रहना वृत्ति के विरुद्ध है। इस कारण वह नियम से अनुत्कृष्ट होती है, यह सिद्ध है। नियम से अनुत्कृष्ट भी होकर वह चार स्थानों में पतित है। वह इस प्रकार है — एक गुणितकर्माशिक जीव नारक भव के अंतिम समय में उत्कृष्ट द्रव्य को करके वहाँ से निकलकर पंचेन्द्रिय तिर्यचों में उत्पन्न हो एकेन्द्रिय जीवों में दो-तीन भव ग्रहणकर समय को बिताकर फिर पीछे मनुष्यों में उत्पन्न होकर गर्भ से लेकर आठ वर्ष का हो संयम को प्राप्त हुआ। पश्चात् सर्वलघुकाल में क्षपक श्रेणि पर चढ़कर अंतिम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक महामुनि होकर उत्कृष्ट अनुभागबंध को प्राप्त हुआ। उसके द्रव्यवेदना असंख्यातभागहीन होती है, क्योंकि उसके गुणश्रेणिनिर्जरा द्वारा असंख्यात समयप्रबद्ध गल चुके हैं। यहाँ से लेकर एक-एक परमाणु की हानि के क्रम से असंख्यातभागहानि, संख्यात-भागहानि, संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि को जानकर द्रव्य प्ररूपणा तब तक करनी चाहिए, जब तक क्षपितकर्माशिक सर्वजघन्य द्रव्य स्थित रहे, ऐसा जानना चाहिए।

अब क्षेत्र की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके क्षेत्र की अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?॥६५॥

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा॥६६॥

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — यदि लोकपूरणसमुद्घाते सयोगी केवली भगवान् वर्तते तर्हि भावेन सह क्षेत्रमपि उत्कृष्टं भवति। अथ न वर्तते भावश्चैवोत्कृष्टः, न क्षेत्रं, लोकपूरणसमुद्घातं मुक्त्वा तस्य अन्यत्र उत्कृष्टत्वाभावात्।

उक्कस्सादो अणुक्कस्सा विट्ठाणपदिदा असंखेज्जभागहीणा वा असंखेज्जगुणहीणा वा॥६७॥

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — उत्कृष्टभावेन सह मंथसमुद्घाते वर्तमानस्य क्षेत्रं लोकपूरणक्षेत्रात् असंख्यातभागहीनं, वातवलयावरुद्धक्षेत्रमात्रेण परिहीणत्वात्। स्वस्थान-दण्ड-कपाटगतकेवलिक्षेत्राणि उत्कृष्टानुभागसहचटितानि पुनः असंख्यातगुणहीनानि, एतैः त्रिभिरपि क्षेत्रैः पृथक्-पृथक् घनलोके भागे हते असंख्यातरूपोपलंभात्। तेन द्विस्थानपतिता चैवानुत्कृष्टक्षेत्रवेदना इति सिद्धम्।

अधुना कालापेक्षया किमुत्कृष्टेत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा॥६८॥**णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा॥६९॥**

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — यत्र वेदनीयभाववेदना उत्कृष्टा तत्र तस्य कालवेदना अनुत्कृष्टा चैव,

वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है॥६६॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि सयोगकेवली भगवान् लोकपूरण समुद्घात में प्रवर्तमान हैं, तो भाव के साथ क्षेत्र भी उत्कृष्ट होता है और यदि उसमें प्रवर्तमान नहीं हैं तो भाव ही उत्कृष्ट होता है, क्षेत्र उत्कृष्ट नहीं होता, क्योंकि लोकपूरण समुद्घात को छोड़कर अन्यत्र उसकी उत्कृष्टता का अभाव है।

सूत्रार्थ —

उत्कृष्ट की अपेक्षा अनुत्कृष्ट असंख्यातभागहीन और असंख्यातगुणहीन इन दो स्थानों में पतित है॥६७॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उत्कृष्ट भाव के साथ मंथ समुद्घात (प्रतर समुद्घात) में वर्तमान केवली का क्षेत्र लोकपूरण समुद्घात में वर्तमान केवली के क्षेत्र से असंख्यात भागहीन होता है, क्योंकि वह वातवलय से रोके गये क्षेत्र के प्रमाण से हीन है। उत्कृष्ट अनुभाग के साथ आये हुए स्वस्थान, दण्डसमुद्घात और कपाटसमुद्घात को प्राप्त केवली के क्षेत्र उससे असंख्यातगुणे हीन होते हैं, क्योंकि इन तीनों ही क्षेत्रों का पृथक्-पृथक् घनलोक में भाग देने पर असंख्यात रूप पाये जाते हैं। इस कारण अनुत्कृष्ट क्षेत्र वेदना दो स्थानों में पतित है, यह सिद्ध हुआ है।

अब काल की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके काल की अपेक्षा उक्त वेदना क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?॥६८॥

वह नियम से अनुत्कृष्ट असंख्यातगुणी हीन होती है॥६९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जहाँ वेदनीय कर्म की भाववेदना उत्कृष्ट होती है, वहाँ उसकी कालवेदना

सूक्ष्मसांपरायिकप्रभृति उपरि सर्वत्र पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रस्थितेः अन्तर्मुहूर्तमात्राया वा उपलंभात्। तावन्मात्रा भवन्त्यपि असंख्यातगुणहीना एव, पल्योपमस्य असंख्यातभागेन त्रिंशत्कोटाकोटिसागरोपमेषु अपवर्तितेषु असंख्यातरूपोपलंभात्।

एवं चतुर्थस्थले वेदनीयवेदनाया विविधप्रकारनिरूपणत्वेन सप्तविंशतिसूत्राणि गतानि।

संप्रति नामगोत्र वेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं णामा-गोदाणं।।७०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—यथा वेदनीयस्य उत्कृष्टसन्निकर्षः कृतस्तथा नामगोत्रयोरपि कर्तव्यः, द्रव्यक्षेत्रकालभावोत्कृष्टस्वामित्वैर्विशेषाभावात्।

एवं पञ्चमस्थले नामगोत्रवेदनानिरूपणसूचकत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

अधुना आयुर्वेदना द्रव्यापेक्षया उत्कृष्टा तर्हि क्षेत्रापेक्षया किमिति प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

जस्स आउअवेयणा दव्वदो उक्कस्सा तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणु-क्कस्सा।।७१।।

णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा।।७२।।

अनुत्कृष्ट ही होती है, क्योंकि सूक्ष्मसांपरायिक गुणस्थान से लेकर आगे सब जगह पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र स्थिति अथवा अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थिति पाई जाती है। उतनी मात्र होकर भी वह असंख्यातगुणी हीन ही होती है, क्योंकि पल्योपम के असंख्यातवें भाग का तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों में भाग देने पर असंख्यात रूप पाये जाते हैं।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में वेदनीय कर्म की वेदना के विविध प्रकारों का निरूपण करने वाले सत्ताईस सूत्र पूर्ण हुए।

अब नाम और गोत्र कर्म की वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

इसी प्रकार नाम और गोत्र कर्मों के विषय में भी उक्त प्ररूपणा करनी चाहिए।।७०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—जिस प्रकार वेदनीय कर्म के विषय में उत्कृष्ट सन्निकर्ष किया गया है, उसी प्रकार नाम और गोत्र कर्मों के विषय में भी करना चाहिए, क्योंकि द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव संबंधी उत्कृष्ट स्वामित्व से उसमें कोई विशेषता नहीं है।

इस प्रकार पंचम स्थल में नाम और गोत्र कर्म की वेदना के निरूपण को सूचित करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब आयु कर्म की वेदना द्रव्य की अपेक्षा उत्कृष्ट है तो क्षेत्र की अपेक्षा क्या है ? इस प्रकार के प्रश्नोत्तर रूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

जिस जीव के आयु कर्म की वेदना द्रव्य से उत्कृष्ट होती है, उसके वह क्या क्षेत्र से उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?।।७१।।

वह नियम से अनुत्कृष्ट असंख्यातगुणी हीन होती है।।७२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — नियमेन क्षेत्रस्यानुत्कृष्टत्वं कुत? इति प्रश्ने सति लोकपूरणगतसयोगिकेवल्लिनि जातोत्कृष्टक्षेत्रस्य उत्कृष्टद्रव्यस्वामिजलचरे जीवे अनुपलंभात्।

असंख्यातगुणहीनत्वं केन प्रमाणेन ज्ञायते?

उत्कृष्टद्रव्यस्वामिजलचरक्षेत्रेण संख्यातघनांगुलमात्रेण घनांगुलस्य संख्यातभागमात्रेण वा घनलोके भागे हृते असंख्यातरूपोपलंभात्।

संप्रति कालापेक्षया किमिति प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।।७३।।

णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जभागहीणा।।७४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका —

अत्र कश्चिदाह —

जलचरेषु उत्कृष्टद्रव्यस्वामिकेषु उत्कृष्टस्थितिबंधः किन्न जायते ?

आचार्यदेवः प्राह —

न जायते, आयुषः पूर्वकोटिर्त्रिभागप्रमाणामाबाधां कृत्वा त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमेषु बध्यमानेषु चैव उत्कृष्टस्थितित्वोपलंभात्। परन्तु त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणामत्र बंधो न संभवति, अतिसंक्लेशेण भुज्यमानायुः-कर्मस्कंधानां बहूनां गलनप्रसंगात्। तस्मात् जलचरेषु उत्कृष्टद्रव्यस्वामिकेषु आयुर्बधोऽनुत्कृष्टश्चैव। भवन्नपि

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ कहा है कि क्षेत्र की नियमित अनुत्कृष्टता कैसे संभव है ? ऐसा प्रश्न होने पर लोकपूरण समुद्घात को प्राप्त सयोगिकेवली भगवान में उत्पन्न जो उत्कृष्ट क्षेत्र होता है, वह उत्कृष्ट द्रव्य के स्वामी जलचर जीवों में नहीं पाया जाता है।

शंका — उसकी असंख्यातगुणहीनता किस प्रमाण से जानी जाती है ?

समाधान — उत्कृष्ट द्रव्य के स्वामी जलचर जीव का जो संख्यात घनांगुल प्रमाण अपना घनांगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र होता है उसका घनलोक में भाग देने पर चूँकि असंख्यात रूप पाये जाते हैं अतः इससे उसकी असंख्यातगुणी हीनता सिद्ध हो जाती है।

अब काल की अपेक्षा क्या है ? इस प्रकार के प्रश्नोत्तर रूप से दो सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके उक्त वेदना काल की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?।।७३।।

वह नियम से अनुत्कृष्ट असंख्यातभाग हीन होती है।।७४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ कोई शंका करता है कि —

उत्कृष्ट द्रव्य के स्वामी जलचर जीवों में उत्कृष्ट स्थिति का बंध क्यों नहीं होता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि —

नहीं होता है, क्योंकि आयुर्कर्म की पूर्वकोटि के त्रिभागमात्र आबाधा को करके तेतीस सागरोपम प्रमाण आयु को बांधने वाले जीवों में ही उत्कृष्ट स्थितिबंध पाया जाता है परन्तु यहाँ तेतीस सागरोपमों का बंध संभव नहीं है, क्योंकि ऐसा होने पर अत्यंत संक्लेश से भुज्यमान आयु कर्म के बहुत से स्कंधों के गलने का प्रसंग

पूर्वकोटिमात्रश्चैव, अधस्तनायुर्विकल्पेषु बध्यमानेषु आयुर्बन्धककाले स्तोक्तत्वप्रसंगात्।

तस्य असंख्यातगुणहीनत्वं कस्मात् ज्ञायते ?

सातिरेकपूर्वकोट्याः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमेषु पूर्वकोटिभिर्भागाधिकेषु अपवर्तितेषु असंख्यातरूपोपलंभात्।
संप्रति भावापेक्षया किमितिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।।७५।।

णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा।।७६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — किमर्थमुत्कृष्टा भाववेदना अत्र न भवति ?

न भवति, अप्रमत्तसंयतेन बद्धदेवायुषि जातोत्कृष्टानुभागस्य तिर्यगायुषि वृत्तिविरोधात्।

जलचरायुर्भावस्य उत्कृष्टभावापेक्षया अनंतगुणहीनत्वं कस्मात् प्रमाणात् ज्ञायते?

तिर्यगायुरनुभागात् देवायुरनुभागोऽनन्तगुण इति भणित चतुष्पष्टिपदिकाल्पबहुत्वात् ज्ञायते।

संप्रति आयुर्वेदना क्षेत्रापेक्षया उत्कृष्टा तर्हि द्रव्यापेक्षया किमिति प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

आता है। इस कारण उत्कृष्ट द्रव्य के स्वामी जलचर जीवों में आयु का बंध अनुत्कृष्ट ही होता है। अनुत्कृष्ट होकर भी वह पूर्वकोटि मात्र ही होता है, क्योंकि नीचे के आयु विकल्पों के बांधने पर आयुबंधक काल के स्तोक होने का प्रसंग आता है।

शंका — उसकी असंख्यातगुणी हीनता किस प्रमाण से जानी जाती है ?

समाधान — साधिक पूर्वकोटि का पूर्वकोटि त्रिभाग से अधिक तेतीस सागरोपमों में भाग देने पर चौँकि असंख्यातरूप पाये जाते हैं, अतः इसी से उसकी असंख्यातगुणहीनता सिद्ध है।

अब भाव की अपेक्षा क्या है ? इस प्रकार प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके उक्त वेदना भाव की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?।।७५।।

वह नियम से अनुत्कृष्ट असंख्यातगुणी हीन होती है।।७६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका —

शंका — यहाँ उत्कृष्ट भाववेदना क्यों नहीं होती है ?

समाधान — नहीं होती है, क्योंकि अप्रमत्तसंयत के द्वारा बांधी गई देवायु में उत्पन्न उत्कृष्ट अनुभाग के तिर्यच आयु में रहने का विरोध है।

शंका — उत्कृष्ट भाव की अपेक्षा जलचर संबंधी आयु का भाव अनन्तगुणहीन है, यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान — यह “तिर्यच के अनुभाग से देवायु का अनुभाग अनन्तगुणा है” इस चौँसठ पद वाले अल्पबहुत्व से जाना जाता है।

अब आयु की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट है तो द्रव्य की अपेक्षा क्या है ? इस प्रकार के प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

जस्स आउअवेयणा खेत्तदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणु-
क्कस्सा।।७७।।

णियमा अणुक्कस्सा विट्ठाणपदिदा संखेज्जगुणहीणा वा असंखेज्जगुण-
हीणा वा।।७८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — द्रव्यवेदना उत्कृष्टा किन्न जायते ?

न जायते, द्वाभ्यां आयुर्बंधककालाभ्यां उत्कृष्टयोगविशिष्टाभ्यां जलचरेषु संचितोत्कृष्टद्रव्यस्य केवलानि
भगवति त्रिभुवनं परिसर्य्य स्थिते संभवविरोधात्।

कथं संख्यातगुणहीनत्वं ?

नैतद् वक्तव्यं, उत्कृष्टयोगेन उत्कृष्टबंधककाले मनुष्यायुर्बंधयित्वा मनुष्येषु उत्पद्य गर्भाद्यष्टवर्षैः संयमं
गृहीत्वा सर्वलघुमन्तर्मुहूर्तेण कालेन केवलज्ञानमुत्पाद्य लोकमापूर्य्यस्थिते यद् द्रव्यं तस्य संख्यातगुणहीन-
त्वोपलंभात्। द्वाभ्यां बंधककालाभ्यां संचितोत्कृष्टद्रव्यात् एतत् एकबंधककालसंचितद्रव्यं किंचिन्न्यूनार्धमात्रं
भूत्वा मनुष्येषु गलितबहुसंख्यातभागत्वात् संख्यातगुणहीनं भवतीति भणितं भवति।

कश्चिदाह —

जघन्यबंधककालेन बद्धेऽपि उत्कृष्टात् द्रव्यात् त्रिभुवनगतजिनायुर्द्रव्यं संख्यातगुणहीनं चैव भवतीति

सूत्रार्थ —

जिस जीव के आयुर्कर्म की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके द्रव्य की
अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?।।७७।।

वह नियम से अनुत्कृष्ट संख्यातगुणहीन व असंख्यातगुणहीन इन दो स्थानों में
पतित होती है।।७८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ यह प्रश्न होता है कि द्रव्यवेदना उत्कृष्ट क्यों नहीं होती है ? इसका
समाधान करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि —

ऐसा नहीं कहना, क्योंकि उत्कृष्ट योग से विशेषता को प्राप्त हुए दो आयुर्बंधक कालों के द्वारा जो उत्कृष्ट द्रव्य
जलचर जीवों में संचय को प्राप्त है उसकी तीन लोकों में फैलकर स्थित हुए केवली में संभावना नहीं पाई जाती है।

शंका — वह संख्यातगुणा हीन कैसे है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि उत्कृष्ट योग के द्वारा उत्कृष्ट बंधककाल में मनुष्यायु को
बांधकर मनुष्यों में उत्पन्न हो गर्भ से लेकर आठ वर्षों में संयम को ग्रहणकर सर्व लघु अन्तर्मुहूर्त काल में
केवलज्ञान को उत्पन्न कर लोक को पूर्ण करके स्थित हुए केवली में जो द्रव्य होता है वह संख्यातगुणा हीन
पाया जाता है। दो बंधक कालों के द्वारा संचय को प्राप्त हुए उत्कृष्ट द्रव्य की अपेक्षा यह एक बंधककाल द्वारा
संचित द्रव्य कुछ कम अर्धभाग प्रमाण होकर मनुष्यों में संख्यात बहुभाग के गल जाने से संख्यातगुणा हीन
होता है, यह उसका अभिप्राय है।

यहाँ कोई शंका करता है —

जघन्य बंधककाल के द्वारा बांधने पर भी उत्कृष्ट द्रव्य की अपेक्षा लोकपूरण समुद्घात में वर्तमान

कथमसंख्यातगुणहीनत्वं ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नैतद्, असंख्यातगुणहीनयोगेन मनुष्यायुर्बोधयित्वा मनुष्येषु उत्पद्य केवलज्ञानमुत्पाद्य सर्वलोकं गतकेवलिनः भगवतः असंख्यातगुणहीनत्वोपलंभात्।

कालापेक्षया किमुत्कृष्टेत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा॥७९॥

णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा॥८०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — लोकपूरणसमुद्घातेन लोके आपूर्णे येन आयुःस्थितिरन्तर्मुहूर्तमात्रा चैव, तेन कालवेदना उत्कृष्टस्थितेः असंख्यातगुणहीना इति सिद्धम्।

भावापेक्षया किमुत्कृष्टेत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा॥८१॥

णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा॥८२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — मनुष्यायुरुत्कृष्टानुभागात् अप्रमत्तसंयतेन बद्धदेवायुरुत्कृष्टानुभागस्य अनंतगुणत्वोपलंभात्।

केवली का आयु द्रव्य चूँकि संख्यातगुणा हीन होता है अतः उसकी असंख्यातगुणहीनता कैसे संभव है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं —

ऐसा नहीं है, क्योंकि असंख्यातगुणहीन योग के द्वारा मनुष्यायु को बांधकर मनुष्यों में उत्पन्न हो केवलज्ञान को उत्पन्न करके सर्वलोक को प्राप्त केवली भगवान का द्रव्य असंख्यातगुणा हीन पाया जाता है।

अब काल की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके काल की अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?॥७९॥

वह नियम से अनुत्कृष्ट असंख्यातगुणी हीन होती है॥८०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — लोकपूरण समुद्घात के द्वारा सम्पूर्ण लोक को आपूर्ण कर लेने पर जिस हेतु से उनकी आयु की स्थिति अन्तर्मुहूर्त मात्र ही होती है, उसी हेतु से उनकी काल वेदना उत्कृष्ट स्थिति की अपेक्षा असंख्यातगुणहीन है, यह सिद्ध होता है।

अब भाव की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके भाव की अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?॥८१॥

वह नियम से अनुत्कृष्ट अनन्तगुणी हीन होती है॥८२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि मनुष्यायु के उत्कृष्ट अनुभाग की अपेक्षा अप्रमत्तसंयत के द्वारा बांधी गई देवायु का उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा पाया जाता है।

संप्रति आयुर्वेदना कालापेक्षया उत्कृष्टा तस्य द्रव्यापेक्षया किमितिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

**जस्स आउअवेयणा कालदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणु-
क्कस्सा॥८३॥**

**णियमा अणुक्कस्सा विट्ठाणपदिदा संखेज्जगुणहीणा वा असंखेज्जगुण-
हीणा वा॥८४॥**

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उत्कृष्टयोगेन उत्कृष्टबंधककाले मनुष्यायुर्बध्धयित्वा मनुष्येषु उत्पद्य संयमं गृहीत्वा पूर्वकोटिर्त्रिभागप्रथमसमये देवायुषि प्रबद्धे आयुषः उत्कृष्टस्थितिर्भवति, पूर्वकोटिर्त्रिभागाधिकत्रय-स्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणत्वात्। विस्तरेण धवलाटीकायां द्रष्टव्यम्।

संप्रति क्षेत्रापेक्षया किमुत्कृष्टेतिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा॥८५॥

णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा॥८६॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अर्द्धाष्टरत्निमादिं (सार्धत्रयरत्निमादिं) कृत्वा यावत् पंचविंशत्युत्तरपंचशत-धनुर्दीर्घत्वोपलक्षितानां उत्कृष्टकालस्वामित्वे संभवत् क्षेत्राणां घनलोकस्य असंख्यातभागत्वोपलंभात्। अत्र

अब आयुर्कर्म की वेदना काल की अपेक्षा उत्कृष्ट है उसके द्रव्य की अपेक्षा क्या है ? इस प्रकार के प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिसके आयुर्कर्म की वेदना काल की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके द्रव्य की अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?॥८३॥

वह नियम से अनुत्कृष्ट संख्यातगुणहीन व असंख्यातगुणहीन इन दो स्थानों में पतित होती है॥८४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उत्कृष्ट योग के द्वारा उत्कृष्ट बंधककाल में मनुष्यायु को बांधकर मनुष्यों में उत्पन्न हो संयम को ग्रहणकर पूर्वकोटि त्रिभाग के प्रथम समय में देवायु के बांधने पर आयु की उत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि वह पूर्वकोटिर्त्रिभाग से अधिक तेतीस सागरोपम प्रमाण होती है।

विस्तार से इसे धवला टीका में देखना चाहिए।

अब क्षेत्र की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है ? इस प्रकार प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके क्षेत्र की अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?॥८५॥

वह नियम से अनुत्कृष्ट असंख्यातगुणी हीन होती है॥८६॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि साढ़े तीन अरत्नि से लेकर पाँच सौ पच्चीस धनुष प्रमाण दीर्घता से उपलक्षित जिन क्षेत्रों की उत्कृष्ट काल स्वामित्व में संभावना है वे घनलोक के असंख्यातवें भाग प्रमाण पाये जाते हैं।

कश्चिदाह — अर्द्धाष्ट्रज्जूनां कृत मारणान्तिकसमुद्घातमहामत्स्यक्षेत्रं कालस्वामिनः उत्कृष्टमिति किन्न गृह्यते?

आचार्यः प्राह —

नैष दोषः, अबद्धायुष्कानां बध्यमानायुष्कानां च जीवानां मारणान्तिकसमुद्घाताभावात्।

अधुना भावापेक्षया किमित्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा॥८७॥

णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा॥८८॥

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — आयुषः उत्कृष्टकालवेदना आयुर्बन्धप्रथमसमये वर्तमानप्रमत्तसंयते भवति। उत्कृष्टभाववेदना पुनः आयुर्बन्धकाले चरमसमये वर्तमानस्य अप्रमत्तसंयते प्रमत्तविशुद्धितोऽनन्तगुणविशुद्धि-परिणामस्य भवति। तेन कारणेन अनंतगुणविशुद्धिपरिणामेन बद्धायुरुत्कृष्टानुभागात् अनंतगुणहीनविशुद्धिपरिणामेन बद्धानुभागः उत्कृष्टकालाविनाभावी अनंतगुणहीन इति।

संप्रति आयुर्वेदना भावापेक्षया उत्कृष्टा तर्हि तस्य द्रव्यतः किमित्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

**जस्स आउअवेयणा भावदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणु-
क्कस्सा॥८९॥**

यहाँ कोई शंका करता है —

साढ़े सात राजु मारणान्तिक समुद्घात को करने वाले महामत्स्य का क्षेत्र कालस्वामी का उत्कृष्ट क्षेत्र है, ऐसा ग्रहण क्यों नहीं करते ?

आचार्य इसका समाधान करते हैं —

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अबद्धायुष्क और वर्तमान में आयु को बांधने वाले जीवों के मारणान्तिक समुद्घात नहीं होता है।

अब भाव की अपेक्षा क्या है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके भाव की अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?॥८७॥

वह नियम से अनुत्कृष्ट अनन्तगुणी हीन होती है॥८८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — आयुर्कर्म की उत्कृष्ट कालवेदना आयुर्बन्ध के प्रथम समय में वर्तमान प्रमत्तसंयत मुनिराज के होती है परन्तु उसकी उत्कृष्ट भाववेदना आयुर्बन्धक काल के अंतिम समय में वर्तमान व प्रमत्तसंयत मुनि की विशुद्धि से अनन्तगुणे विशुद्धि परिणाम वाले अप्रमत्तसंयत मुनि के होती है। इसी कारण से अनन्तगुणे विशुद्ध परिणाम के द्वारा बांधी गई आयु के उत्कृष्ट अनुभाग की अपेक्षा अनन्तगुणे हीन विशुद्ध परिणाम के द्वारा बांधा गया अनुभाग उत्कृष्ट काल का अविनाभावी व अनन्तगुणा हीन होता है।

अब आयुर्कर्म की वेदना भाव की अपेक्षा उत्कृष्ट है तो उसके द्रव्य से क्या है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

**जिस जीव के आयुर्कर्म की वेदना भाव की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके द्रव्य की
अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?॥८९॥**

णियमा अणुक्कस्सा तिट्ठाणपदिदा संखेज्जभागहीणा वा संखेज्जगुण- हीणा वा असंखेज्जगुणहीणा वा॥९०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उत्कृष्टबंधकाले उत्कृष्टयोगेन च यदि मनुष्यायुर्बन्धयित्वा मनुष्येषु उत्पद्य संयमं गृहीत्वा उत्कृष्टानुभागं बध्नाति तर्हि भावोत्कृष्टे द्रव्यवेदना स्वकोत्कृष्टद्रव्यमपेक्ष्य संख्यातभागहीना भवति।

कुतः?

भुज्यमानायुषः सातिरेकद्वित्रिभागमात्रद्रव्ये गलिते सति भावस्य उत्कृष्टत्वोपपत्तेः। उत्कृष्टबंधकाले द्विभागेन मनुष्यायुषि बंधापिते षट्भागाभिः चतुर्भागमात्रा भवति।

एवं गत्वा भावस्वामिनो द्वे अपि आयुषी उत्कृष्टबंधकाले द्विभागेन बंधापयित्वा भावे उत्कृष्टे कृते संख्यात-गुणहानिर्भवति, ओघोत्कृष्टद्रव्यमपेक्ष्य भावस्वामिद्रव्यस्य त्रिभागत्वोपलंभात्। एवं बंधककालपरिहानेः संख्यातगुणहानिः प्ररूपयितव्या। द्वौ अपि बंधककालौ उत्कृष्टौ कृत्वा असंख्यातगुणहीनयोगेन बंधापयित्वा भावे उत्कृष्टे कृते असंख्यातगुणहानिर्भवति। तस्मात् उत्कृष्टद्रव्यं अपेक्ष्य भावस्वामिद्रव्यं त्रिस्थानपतितं इति गृहीतव्यम्।

संप्रति क्षेत्रापेक्षया किमित्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा॥९१॥

णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा॥९२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — भावस्वामि-उत्कृष्टक्षेत्रस्यापि घनलोकस्य असंख्यातभागत्वोपलंभात्। न च

वह नियम से अनुत्कृष्ट संख्यातभागहीन, संख्यातगुणहीन व असंख्यातगुणहीन इन तीन स्थानों में पतित होती है॥९०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उत्कृष्ट बंधककाल एवं उत्कृष्ट योग के द्वारा यदि मनुष्यायु को बांधकर मनुष्यों में उत्पन्न हो संयम को ग्रहण करके उत्कृष्ट अनुभाग को बांधता है तो भाव की उत्कृष्टता में द्रव्यवेदना अपने उत्कृष्ट द्रव्य की अपेक्षा संख्यातभाग हीन होती है। क्यों? क्योंकि भुज्यमान आयु संबंधी कुछ अधिक दो त्रिभाग प्रमाण द्रव्य के गल जाने पर भाव की उत्कृष्टता उत्पन्न होती है। उत्कृष्ट बंधककाल के द्वितीय भाग से मनुष्यायु को बांधने पर उक्त वेदना छह भागों में चार भाग प्रमाण होती है। इस प्रकार जाकर भावस्वामी के दोनों ही आयुओं को उत्कृष्ट बंधक काल के द्वितीय भाग से बांधकर भाव के उत्कृष्ट करने पर संख्यातगुणहीन होती है, क्योंकि ओघ उत्कृष्ट द्रव्य की अपेक्षा भाव स्वामी का द्रव्य तृतीय भाग प्रमाण पाया जाता है। इस प्रकार बंधककाल की हानि से संख्यात गुणहानि की प्ररूपणा करनी चाहिए। दोनों बंधककालों को उत्कृष्ट करके असंख्यातगुणहीन योग से बांधकर भाव के उत्कृष्ट करने पर असंख्यातगुणहानि होती है। इस कारण उत्कृष्ट द्रव्य की अपेक्षा करके भावस्वामी का द्रव्य तीन स्थानों में पतित है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

अब क्षेत्र की अपेक्षा क्या है? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके क्षेत्र की अपेक्षा उक्त वेदना उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है?॥९१॥

वह नियम से अनुत्कृष्ट असंख्यातगुणी हीन होती है॥९२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि भावस्वामी का उत्कृष्ट क्षेत्र भी घनलोक के असंख्यातवें

उत्कृष्टभावः आयुषः लोकपूरणसमुद्घाते संभवति, बद्धायुष्कानां क्षपकश्रेण्यारोहणाभावात्।

तस्य कालापेक्षया किमुत्कृष्टेत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।।९३।।

**णियमा अणुक्कस्सा चउट्टाणपदिदा असंखेज्जभागहीणा वा संखेज्ज-
भागहीणा वा संखेज्जगुणहीणा वा असंखेज्जगुणहीणा वा।।९४।।**

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — स्थितिबंधे उत्कृष्टे जाते पुनः — पश्चात् अंतर्मुहूर्तस्थितौ गलितायां चैव उत्कृष्टो भावबंधो भवति इति भावस्वामिकालवेदना असंख्यातभागहीना। एवमसंख्यातभागहीना भूत्वा तावद् गच्छति यावत् उत्कृष्टायुत्कृष्टसंख्यातेन खण्डयित्वा तत्रैकखण्डमात्रं मनुष्येषु देवेषु च न गलितमिति। तस्मिन् संपूर्णे गलिते संख्यातभागहानिर्भवति।

ततः प्रभृति उपरि संख्यातभागहानिर्भूत्वा गच्छति यावदुत्कृष्टस्थितेः अर्द्धं गलितमिति। ततः प्रभृति उपरि संख्यातगुणहानिर्भूत्वा गच्छति यावदुत्कृष्टस्थितिं जघन्यपरीतासंख्यातेन खण्डयित्वा तत्रैकखंडमात्रं स्थितमिति। ततः प्रभृति असंख्यातगुणहानिर्भूत्वा गच्छति यावद् बद्धायुर्देवचरमसमय इति। सर्वत्र भाव उत्कृष्टश्चैव, सद्दृशधनवत्परमाणुहानेः भावहानेरभावात्।

अत्र कश्चिदाह —

अन्तर्मुहूर्तचरमसमयस्य कथमुत्कृष्टानुभागसंभवः ?

भाग प्रमाण पाया जाता है। यदि कहा जाये कि आयु का उत्कृष्ट भाव लोकपूरण समुद्घात में संभव है, तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि बद्धायुष्क जीवों के क्षपक श्रेणी पर आरोहण करना संभव नहीं है।

उसके काल की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके काल की अपेक्षा वह क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?।।९३।।

**वह नियम से अनुत्कृष्ट असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन, संख्यातगुणहीन
तथा असंख्यातगुणहीन इन चार स्थानों में पतित होती है।।९४।।**

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — स्थितिबंध के उत्कृष्ट होने पर फिर — पश्चात् अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थिति के गल जाने पर ही चूँकि उत्कृष्ट भावबंध होता है अतएव भावस्वामी की कालवेदना असंख्यातभागहीन होती है। इस प्रकार असंख्यातभागहीन होकर तब तक जाती है जब तक कि उत्कृष्ट आयु को उत्कृष्ट संख्यात से खण्डित कर उसमें एक खण्ड प्रमाण मनुष्यों और देवों में नहीं गलित हो जाता है। उसके सम्पूर्ण गल जाने पर संख्यातभागहानि होती है।

वहाँ से लेकर आगे उत्कृष्ट स्थिति का अर्ध भाग गलित होने तक संख्यात भागहानि होकर जाती है। उससे लेकर आगे उत्कृष्ट स्थिति को जघन्यपरीतासंख्यात से खण्डित कर उनमें एक खण्डमात्र के स्थित होने तक संख्यातगुणहानि होकर पायी जाती है। उससे आगे बद्धायुष्क देव के अंतिम समय तक असंख्यातगुणहानि होकर जाती है। भाव सर्वत्र उत्कृष्ट ही रहता है, क्योंकि समान धन वाले परमाणुओं की हानि से भावहानि का अभाव है।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

अन्तर्मुहूर्त के अन्तिम समय में उत्कृष्ट अनुभाग की संभावना कैसे है ?

आचार्यदेवः प्राह —

नैतत्, तस्य अनुभाग काण्डकघाताभावात्। तस्मात् चतुःस्थानपतिता कालवेदना-इति श्रद्धातव्यम्।

पुनः कश्चिदाह —

चतुःस्थानपतिता इति न वक्तव्यं “असंख्यातभागहीना वा संख्यातभागहीना वा संख्यातगुणहीना वा असंख्यातगुणहीना वा” इत्येतेनैव सिद्धत्वात् ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नैष दोषः, द्रव्यार्थिकनयानुग्रहार्थं तदुक्तेः।

उक्तं च श्रीवीरसेनाचार्येण —

“ण च एकस्सेव वयणस्स जिणा अणुगहं कुणंति, समाणत्ताभावेण जिणत्तस्सेव अभावप्पसंगात्।”

एवं षष्ठस्थले आयुर्वेदना उत्कृष्टानुत्कृष्टभेदेन द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावापेक्षया निरूपणपरत्वेन चतुर्विंशतिसूत्राणि गतानि।

एवं उत्कृष्टः स्वस्थानवेदनासन्निकर्षः समाप्तः।

अथाधुना जघन्य स्वस्थानवेदनासन्निकर्षभेदप्रतिपादनप्रतिज्ञारूपेण सूत्रमवतार्यते —

जो सो थप्पो जहण्णओ सत्थाणवेयणासण्णियासो सो चउव्विहो —

दव्वदो खेत्तदो कालदो भावदो चेदि।।९५।।

आचार्य समाधान करते हैं कि —

ऐसा नहीं है, क्योंकि उसके अनुभागकाण्डकघात का अभाव है इसलिए कालवेदना उक्त चार स्थानों में पतित है, ऐसा श्रद्धान करना चाहिए।

पुनः कोई शंका करता है —

वह ‘चार स्थानों में पतित है’ यह नहीं कहना चाहिए, क्योंकि ‘असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन, संख्यातगुणहीन और असंख्यातगुणहीन’ इस सूत्रांश से ही वह सिद्ध है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं —

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि द्रव्यार्थिक नय के अनुग्रहार्थ यह कहा गया है।

जैसा कि श्री वीरसेनाचार्य ने कहा है —

जिन भगवान् किसी एक ही वचन का अनुग्रह नहीं करते हैं, क्योंकि ऐसा मानने पर दोनों वचनों में समानता का अभाव होने से जिनत्व के ही अभाव का प्रसंग आता है।

इस प्रकार छठे स्थल में आयु की वेदना का उत्कृष्ट एवं अनुत्कृष्ट के भेद से द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा निरूपण करने वाले चौबीस सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वस्थानवेदनासन्निकर्ष समाप्त हुआ।

अब जघन्य स्वस्थानवेदनासन्निकर्ष के भेद प्रतिपादन की प्रतिज्ञारूप से सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

जिस जघन्य स्वस्थानवेदनासन्निकर्ष को स्थगित किया था, वह द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव के भेद से चार प्रकार का है।।९५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सन्निकर्षश्चतुर्विधश्चैव भवति, द्रव्यक्षेत्रकालभावेभ्यो व्यतिरिक्तस्य अन्यस्य पञ्चमस्य अभावात्।

एवं सप्तमस्थले जघन्यस्वस्थानवेदनाप्रतिज्ञाप्रतिपादनत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

अधुना ज्ञानावरणीयवेदना यदि द्रव्यापेक्षया जघन्या तर्हि क्षेत्रापेक्षया किमित्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

जस्स णाणावरणीयवेयणा दब्बदो जहण्णा तस्स खेत्तदो किं जहण्णा

अजहण्णा।।९६।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।९७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — किमर्थं प्रश्नपुरःसरा चैवार्थप्ररूपणा क्रियते, इति प्रश्ने सति श्रोतुमिच्छतां चैवार्थप्ररूपणा क्रियते, नान्येषामिति ज्ञापनार्थं, अन्यथा प्ररूपणायाः विफलत्वप्रसंगात्।

उक्तं च — बुद्धिविहीने श्रोतरि, वक्तृत्वमनर्थकं भवति पुंसाम्।

नेत्रविहीने भर्तरि, विलासलावण्यवत्स्त्रीणाम्।।

धारण-ग्रहणसमर्थानां चैव संयतानां विनयालंकाराणां व्याख्यानं कर्तव्यमिति भणितं भवति।

प्रश्नसूत्रानन्तरं उत्तरसूत्रस्यार्थः कथ्यते —

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सन्निकर्ष चार प्रकार का ही है, क्योंकि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से भिन्न अन्य पाँचवें सन्निकर्ष का अभाव है।

इस प्रकार सातवें स्थल में जघन्य स्वस्थानवेदना की प्रतिज्ञा का प्रतिपादन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब ज्ञानावरणीय वेदना द्रव्य की अपेक्षा जघन्य है तो क्षेत्र की अपेक्षा क्या है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना द्रव्य की अपेक्षा जघन्य होती है, उसके क्षेत्र की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?।।९६।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।९७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — प्रश्नपूर्वक ही अर्थ की प्ररूपणा क्यों की जाती है, ऐसा प्रश्न होने पर सुनने की इच्छा करने वाले जीवों के लिए ही अर्थ की प्ररूपणा की जाती है, अन्यो के लिए नहीं, ऐसा बतलाने के लिए कहा है कि इसीलिए प्रश्नपूर्वक अर्थप्ररूपणा की गई है क्योंकि इसके बिना प्ररूपणा के निष्फल होने का प्रसंग आता है। कहा भी है —

श्लोकार्थ — जिस प्रकार पति के अंधे होने पर स्त्रियों का रूप, लावण्य और शृंगार-अलंकार धारण करना व्यर्थ (निष्फल) है, इसी प्रकार श्रोता के बुद्धिविहीन होने पर पुरुषों का वक्तापन भी व्यर्थ है।

अर्थात् धारणा व अर्थग्रहण में समर्थ तथा विनय से अलंकृत ही संयमीजनों के लिए व्याख्यान करना चाहिए, यह उसका अभिप्राय है।

इस प्रश्न के अनन्तर उत्तर सूत्र का अर्थ करते हैं —

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य त्रिसमयवर्त्याहारक-त्रिसमयतद्भवस्थस्य जघन्ययोगधारिणः जघन्या-
वगाहनापेक्षया घनांगुलस्य असंख्यभागप्रमाणात् ज्ञानावरणजघन्यद्रव्यस्वामिचरमसमयक्षीणकषायस्य
सार्धत्रयरत्नि-उत्सेधस्य जघन्यावगाहनाया अपि घनांगुलस्य संख्यातभागमात्राया असंख्यातगुणत्वोपलंभात्।

संप्रति कालापेक्षया किं जघन्येति प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा॥९८॥

जहण्णा॥९९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — क्षीणकषायचरमसमये वर्तमानज्ञानावरणीयजघन्यद्रव्यस्य एकसमय-
स्थितिदर्शनात्, अन्यथा द्रव्यस्य जघन्यत्वानुपपत्तेः।

भावापेक्षया किं जघन्येत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा॥१००॥

जहण्णा॥१०१॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपरायिक-क्षीणकषायैः अनुभाग-
काण्डकघातेन अनुसमयापवर्तनायाश्च छित्वा जघन्यद्रव्ये स्थितानुभागस्य जघन्यभावोपलंभात्।

त्रिसमयवर्ती आहारक व तद्भवस्थ होने के तृतीय समय में वर्तमान जघन्य योग वाले सूक्ष्म निगोद
लब्ध्यपर्याप्तक की घनांगुल के असंख्यातवें भाग मात्र जघन्य अवगाहना की अपेक्षा ज्ञानावरणीय कर्म के
जघन्य द्रव्य के स्वामी व साढ़े तीन रत्नि प्रमाण शरीरोत्सेधसंयुक्त अन्तिमसमयवर्ती क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती
महामुनि की घनांगुल के संख्यातवें भाग मात्र जघन्य अवगाहना भी असंख्यातगुणी पायी जाती है।

अब काल की अपेक्षा क्या जघन्य है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके काल की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?॥९८॥

वह जघन्य होती है॥९९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि क्षीणकषाय गुणस्थान के अंतिम समय में
वर्तमान जीव के ज्ञानावरणीय संबंधी जघन्य द्रव्य की एक समय स्थिति देखी जाती है, क्योंकि इसके बिना
द्रव्य की जघन्यता बन नहीं सकती है।

भाव की अपेक्षा क्या जघन्य है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके भाव की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?॥१००॥

वह जघन्य होती है॥१०१॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्परायिक
और क्षीणकषाय जीवों के द्वारा किये गये अनुभागकाण्डक घात और अनुसमयापवर्तना से छिदकर जघन्य
द्रव्य में स्थित अनुभाग के जघन्यपना पाया जाता है।

अब ज्ञानावरण की वेदना यदि क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य है तो द्रव्य की अपेक्षा क्या जघन्य है ?

अधुना ज्ञानावरणवेदना यदि क्षेत्रापेक्षया जघन्या तर्हि द्रव्यापेक्षया किं जघन्येतिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

जस्स णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१०२।।

**णियमा अजहण्णा चउट्ठाणपदिदा असंखेज्जभागब्भहिया वा संखेज्जभाग-
ब्भहिया वा, संखेज्जगुणब्भहिया वा असंखेज्जगुणब्भहिया वा।।१०३।।**

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — क्षपितकर्मांशिकलक्षणेन आगत्य विपरीतं गत्वा सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकेषु जघन्ययोगेषु उत्पद्य त्रिसमयतद्भवस्थस्य जघन्या क्षेत्रवेदना जाता। तत्र यद् द्रव्यं तत्पुनः क्षीणकषायचरमसमय-ओघजघन्यद्रव्यमपेक्ष्य असंख्यातभागाभ्यधिकं भवति।

अत्र कः प्रतिभागः ?

पल्योपमस्य असंख्यातभागो ज्ञातव्यः। विस्तरस्तु धवलाटीकायां द्रष्टव्यम्।

कालापेक्षया किं जघन्येत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा वा।।१०४।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।१०५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — क्षीणकषायचरमसमयजघन्यद्रव्यकालेन एकसमयप्रमाणेन जघन्यक्षेत्रसहचारि-

इस प्रकार के प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिसके ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य होती है, उसके द्रव्य की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?।।१०२।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातभाग अधिक, संख्यातभागअधिक, संख्यात-
गुणअधिक और असंख्यातगुणअधिक इन चार स्थानों में पतित होती है।।१०३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — क्षपितकर्मांशिक स्वरूप से आकर के विपरीत स्वरूप को प्राप्त हो जघन्य योग वाले सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्तक जीवों में उत्पन्न होकर तद्भवस्थ होने के तृतीय समय में वर्तमान जीव के क्षेत्रवेदना जघन्य होती है परन्तु उसके जो द्रव्य होता है वह क्षीणकषाय के अंतिम समय संबंधी ओघ जघन्य द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातवें भाग से अधिक होता है।

प्रश्न — यहाँ प्रतिभाग क्या है ?

उत्तर — पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग प्रतिभाग जानना चाहिए।

इसका विस्तृत वर्णन धवला टीका में देखना चाहिए।

काल की अपेक्षा क्या जघन्य है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके काल की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?।।१०४।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।१०५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसमें कारण यह है कि क्षीणकषाय के अंतिम समय संबंधी जघन्य

ज्ञानावरणीयकाले सागरोपमस्य सप्तभागेषु त्रयभागमात्रे पत्योपमस्य असंख्यातभागेन परिहीने भागे हृते असंख्यातरूपोपलंभात्।

भावापेक्षया किं जघन्येत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा वा।।१०६।।

णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।।१०७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जघन्यक्षेत्रसहचारिज्ञानावरणीयानुभागस्य अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसांपरायिक-क्षीणकषायपरिणामैः काण्डकस्वरूपेण अनुसमयापवर्तनायाश्च जघन्यानुभागस्य इव घाताभावात्। सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य अनुभागोऽपि घातं प्राप्तः, तर्ह्यपि जघन्यानुभागादनन्तगुणत्वं मुक्त्वा न शेषपंचा-वस्थाविशेषे प्रतिपद्यते, अक्षपकविशुद्धिभिः घातिष्यमानानुभागस्य क्षपकैः घातिष्यमान-अनुभागं अपेक्ष्य अनंतगुणत्वोपलंभात्।

अधुना यस्य ज्ञानावरणीयवेदना कालापेक्षया जघन्या तस्य द्रव्यापेक्षया किमिति प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

जस्स णाणावरणीयवेयणा कालदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा

अजहण्णा।।१०८।।

द्रव्य के एक समय प्रमाण काल का जघन्य क्षेत्र के साथ रहने वाले पत्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन एक सागरोपम के सात भागों में से तीन प्रमाण ज्ञानावरणीय काल में भाग देने पर असंख्यातरूप पाये जाते हैं।

भाव की अपेक्षा क्या जघन्य है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके भाव की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?।।१०६।।

वह नियम से अजघन्य अनन्तगुणी अधिक होती है।।१०७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि जघन्य क्षेत्र के साथ रहने वाले ज्ञानावरणीय के अनुभाग का अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्परायिक और क्षीणकषाय परिणामों द्वारा काण्डक स्वरूप से और अनुसमयापवर्तना से जघन्य अनुभाग के समान घात नहीं होता है। यद्यपि सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक का अनुभाग भी घात को प्राप्त हो चुका है तो भी वह जघन्य अनुभाग की अपेक्षा अनन्तगुणत्व को छोड़कर शेष पाँच अवस्था विशेषों में प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि अक्षपक के विशुद्ध परिणामों द्वारा घाता जाने वाला अनुभाग क्षपकों द्वारा घाते जाने वाले अनुभाग की अपेक्षा अनन्तगुणा पाया जाता है।

अब जिसके ज्ञानावरणीय की वेदना काल की अपेक्षा जघन्य है उसके द्रव्य की अपेक्षा क्या है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ —

जिस जीव के ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना काल की अपेक्षा जघन्य होती है उसके वह द्रव्य की अपेक्षा जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?।।१०८।।

**जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा पञ्चट्ठाणपदिदा
अणंतभागब्भहिया वा असंखेज्जभागब्भहिया वा संखेज्जभागब्भहिया
वा संखेज्जगुणब्भहिया वा असंखेज्जगुणब्भहिया वा॥१०९॥**

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — क्षपितकर्मांशिकलक्षणानां आगत्य क्षीणकषायचरमसमये स्थितस्य कालेन सह द्रव्यमपि जघन्यं, क्षपयिष्यमाणकर्मप्रदेशानां सर्वेषामपि क्षपितत्वात्। एतस्य जघन्यद्रव्योपरि एकद्वि-आदिकर्मपुद्गलेषु वर्द्धितेषु द्रव्यवेदना अजघन्यत्वं प्रतिपद्यते। सापि पंचस्थानपतिता भवति, न षट्स्थानपतिता भवति, अत्र षट्स्थानस्य संभवाभावात्। कानि तानि पंचस्थानानि इति तन्निर्णयार्थमुत्तरसूत्रावयवो भणितः। एतेषां पंचानामपि स्थानानां प्ररूपणा क्रियते। तद्यथा — जघन्यस्थानस्योपरि एकपरमाणौ वर्द्धिते अनन्तभागाभ्यधिकं स्थानं भवति। एवमादिं कृत्वा तावदनन्तभागवृद्धिर्भूत्वा गच्छति यावद् जघन्यद्रव्ये उत्कृष्टसंख्यातेन खण्डिते तत्र एकखंडेन जघन्यद्रव्यं वर्द्धितमिति। ततः प्रभृति परमाणूत्तरादिक्रमेण असंख्यातभागवृद्धिर्भूत्वा तावद् गच्छति यावद् जघन्यद्रव्यं उत्कृष्टसंख्यातेन खण्डयित्वा तत्र एकखंडमात्रं प्रविष्टमिति। एतस्मात् प्रभृति उपरि संख्यातभागवृद्धिः। एवं ज्ञात्वा नेतव्यं यावत् असंख्यातगुणवृद्धिरिति। अत्र चरमविकल्पो गुणितकर्मांशिकमाश्रित्य वक्तव्यः। शेषं सुगमम्।

अधुना क्षेत्रापेक्षा किं जघन्येत्यादि प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा॥११०॥

वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी होती है। जघन्य की अपेक्षा अजघन्य अनन्तभागअधिक, असंख्यातभागअधिक, संख्यातभागअधिक, संख्यातगुणअधिक और असंख्यातगुणअधिक इन पाँच स्थानों में पतित है॥१०९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — क्षपितकर्मांशिक लक्षणरूप से आकर के क्षीणकषाय गुणस्थान के अंतिम समय में स्थित हुए जीव के काल के साथ द्रव्य भी जघन्य होता है, क्योंकि यहाँ क्षय को प्राप्त कराये जाने वाले सभी कर्मप्रदेशों का क्षय हो चुकता है। इस जघन्य द्रव्य के ऊपर एक-दो आदि कर्मपुद्गलों की वृद्धि के होने पर द्रव्यवेदना अजघन्य अवस्था को प्राप्त होती है। वह भी पाँच स्थानों में पतित होती है, छह स्थानों में पतित नहीं होती, क्योंकि यहाँ छठे स्थान की संभावना नहीं है। वे पाँच स्थान कौन से हैं, इसका निर्णय करने के लिए आगे का सूत्रांश कहा गया है। इन पाँचों स्थानों की प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है — जघन्य स्थान के ऊपर एक परमाणु की वृद्धि होने पर अनन्तभाग अधिक स्थान होता है। इससे लेकर तब तक अनन्तभागवृद्धि होकर जाती है जब तक जघन्य द्रव्य की उत्कृष्ट असंख्यात से खण्डित करने पर उसमें एक खण्ड से जघन्य द्रव्य वृद्धि को प्राप्त होता है। उससे लेकर एक परमाणु अधिक इत्यादि क्रम से असंख्यातभागवृद्धि होकर तब तक जाती है जब तक कि जघन्य द्रव्य को उत्कृष्ट संख्यात से खण्डित करके उसमें से एक खण्ड मात्र द्रव्य प्रविष्ट होता है। यहाँ से लेकर आगे संख्यातभागवृद्धि होती है। इस प्रकार जान करके असंख्यातगुणवृद्धि तक ले जाना चाहिए। यहाँ अंतिम विकल्प गुणितकर्मांशिक को आश्रित कर कथन करना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

अब क्षेत्र की अपेक्षा क्या जघन्य है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके क्षेत्र की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?॥११०॥

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।१११।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जघन्यकालसहचारिसार्धत्रयारत्निप्रमाणोत्सेध क्षीणकषायजघन्यक्षेत्रस्य अपि अंगुलस्य संख्यातभागस्य अंगुलस्य असंख्यातभागमात्रसूक्ष्मनिगोदजघन्यक्षेत्रं अपेक्ष्य असंख्यातगुणत्वोपलंभात्।

भावापेक्षया किं जघन्येत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।।११२।।

जहण्णा।।११३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — क्षीणकषायचरमसमये जघन्यकालोपलक्षितकर्मस्कंधस्य जघन्यानुभागं मुक्त्वा अन्यानुभागविकल्पाभावात्।

ज्ञानावरणीयवेदना भावापेक्षया जघन्या यदि तस्य द्रव्यापेक्षया किं जघन्येत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

जस्स णाणावरणीयवेयणा भावदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा
अजहण्णा।।११४।।

जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो, अजहण्णा पञ्चट्ठाणपदिदा।।११५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतस्य सूत्रस्यार्थे भण्यमाने यथा जघन्यकाले निरुद्धे द्रव्यस्य पंचस्थान-

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।१११।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि जघन्य काल के साथ रहने वाला अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र क्षीणकषाय का साढ़े तीन रत्नि प्रमाण ऊँचा जघन्य क्षेत्र भी अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र सूक्ष्म निगोद जीव के जघन्य क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यातगुणा पाया जाता है।

भाव की अपेक्षा क्या जघन्य होती है ? इत्यादि प्रश्नोत्तर रूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके भाव की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?।।११२।।

उसके उक्त वेदना जघन्य होती है।।११३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि क्षीणकषाय के अंतिम समय में जघन्य काल से उपलक्षित कर्मस्कंध के जघन्य अनुभाग को छोड़कर अन्य अनुभाग विकल्पों का अभाव है।

ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना भाव की अपेक्षा यदि जघन्य है तो उसके द्रव्य की अपेक्षा क्या जघन्य है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिसके ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य होती है उसके द्रव्य की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?।।११४।।

वह उसके जघन्य भी होती है और अजघन्य भी होती है। जघन्य की अपेक्षा अजघन्य पाँच स्थानों में पतित है।।११५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस सूत्र के अर्थ का कथन करते समय जिस प्रकार से जघन्य काल को

पतितत्वं प्ररूपितं तथात्रापि प्ररूपयितव्यम्, विशेषभावात्।

क्षेत्रापेक्षया किं जघन्येत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।।११६।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणल्लभहिया।।११७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — क्षीणकषायचरमसमय जघन्यानुभागसहचारिजघन्यक्षेत्रस्यापि सूक्ष्मनिगोदा-पर्याप्तजघन्यक्षेत्रमंगुलस्य असंख्यातभागमपेक्ष्य असंख्यातगुणत्वोपलंभात्।

कालापेक्षया किं जघन्येत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।।११८।।

जहण्णा।।११९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — क्षीणकषायचरमसमये जघन्याभावेन (जघन्यभावेन) विशिष्टकर्मपरमाणूनां जघन्यकालं मुक्त्वा कालान्तराभावात्।

एवं अष्टमस्थले जघन्याजघन्यद्रव्यक्षेत्रकालभावरूपेण चतुर्विंशतिसूत्राणि गतानि।

संप्रति दर्शनावरणादित्रिकर्मणां वेदनासन्निकर्षनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

विवक्षित करके द्रव्य के पाँच स्थानों में पतित होने की प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार यहाँ भी उसकी प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

क्षेत्र की अपेक्षा क्या जघन्य है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके क्षेत्र की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?।।११६।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।११७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि क्षीणकषाय गुणस्थान के अंतिम समय संबंधी जघन्य अनुभाग के साथ रहने वाला जघन्य क्षेत्र भी सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक के अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यातगुणा पाया जाता है।

काल की अपेक्षा क्या जघन्य है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके काल की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?।।११८।।

वह उसके जघन्य होती है।।११९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि क्षीणकषाय के अंतिम समय में जघन्य भाव के साथ विशिष्ट कर्मपरमाणुओं के जघन्य काल को छोड़कर अन्य काल का अभाव पाया जाता है।

इस प्रकार आठवें स्थल में जघन्य-अजघन्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप से चौबीस सूत्र पूर्ण हुए।

अब दर्शनावरण आदि तीन कर्मों की वेदना का सन्निकर्ष निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं॥१२०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यथा ज्ञानावरणीयस्य द्रव्यादीनां सन्निकर्षः कृतः तथा एतेषां अपि त्रयाणां घातिकर्मणां कर्तव्यः।

एवं नवमस्थले दर्शनावरणादित्रिकर्मणां ज्ञानावरणवदितिनिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

संप्रति वेदनीयवेदना द्रव्यापेक्षया यदि जघन्या तर्हि क्षेत्रापेक्षया किमित्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

जस्स वेयणीयवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स खेत्तदो किं जहण्णा

अजहण्णा॥१२१॥

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया॥१२२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अयोगिचरमसमये सार्धत्रयरत्नि-उत्सेधयुक्तमनुष्येभ्योऽधस्तनोत्सेधयुक्त-मनुष्याणां अवस्थानाभावात्। न च सार्धत्रयरत्नि-उत्सेधावगाहनाया घनांगुलस्य संख्यातभागं मुक्त्वा तदसंख्यात-भागत्वं, अनुपलंभात्। न च जघन्यक्षेत्रमंगुलस्य संख्यातभागः, तदसंख्यातभागत्वेन साधितत्वात्। तस्मात् तत एतस्य सिद्धमसंख्यातगुणत्वमिति।

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन तीन कर्मों के जघन्यसन्निकर्ष की प्ररूपणा करनी चाहिए॥१२०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जिस प्रकार ज्ञानावरणीय के द्रव्यादिकों का सन्निकर्ष किया गया है उसी प्रकार इन तीनों घातिया कर्मों के सन्निकर्ष को भी करना चाहिए।

इस प्रकार नवमें स्थल में दर्शनावरण आदि तीन कर्मों की वेदना ज्ञानावरण के समान है, ऐसा निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब वेदनीय कर्म की वेदना द्रव्य की अपेक्षा यदि जघन्य है तो क्षेत्र की अपेक्षा क्या है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिसके वेदनीय कर्म की वेदना द्रव्य की अपेक्षा जघन्य होती है उसके वह क्या क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?॥१२१॥

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है॥१२२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि अयोगकेवली गुणस्थान के अन्त समय में सादे तीन रत्नि उत्सेध वाले मनुष्यों की अपेक्षा नीचे के उत्सेधयुक्त मनुष्यों का रहना संभव नहीं है और सादे तीन अरत्नि उत्सेधरूप अवगाहना घनांगुल के संख्यातवें भाग को छोड़कर उसके असंख्यातवें भाग हो नहीं सकती, क्योंकि वह पायी नहीं जाती है। इसके अतिरिक्त जघन्य क्षेत्र घनांगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण हो, ऐसा भी नहीं है, क्योंकि वह उसके असंख्यातवें भाग स्वरूप से सिद्ध किया जा चुका है। इस कारण उसकी अपेक्षा इसका असंख्यातगुणत्व सिद्ध ही है।

अधुना कालभावापेक्षया किं जघन्येत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१२३।।

जहण्णा।।१२४।।

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा वा।।१२५।।

जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा अनंतगुणब्भहिया।।१२६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अयोगिचरमसमयजघन्यद्रव्ये जघन्यकालं मुक्त्वा कालान्तराभावात्।

भावापेक्षया कथ्यते — यदि असातोदयेन निर्वृतो भवति तर्हि द्रव्येण सह भावोऽपि जघन्यो भवति, अयोगिद्विचरमसमये गलितसातावेदनीयत्वात्, क्षपकपरिणामैः घातयित्वा अनन्तिमभागे स्थापितासातानुभागत्वाच्च। अथ सातोदयेन यदि सिध्यति तर्हि अनंतगुणाभ्यधिका, अयोगिद्विचरमसमये उदयाभावेन विनष्टासातावेदनीयत्वात् सूक्ष्मसांपरायिकचरमसमये बद्धसातावेदनीयोत्कृष्टानुभागस्य घाताभावात् असातावेदनीयोत्कृष्टानुभागादपि सातावेदनीयोत्कृष्टानुभागस्य अनंतगुणत्वोपलंभात्।

यस्य वेदनीयवेदना क्षेत्रापेक्षया जघन्या तस्य द्रव्यकालभावापेक्षया किंजघन्येत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रषट्कमवतार्यते —

अब काल और भाव की अपेक्षा क्या जघन्य है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके काल की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?।।१२३।।

उसके वह जघन्य होती है।।१२४।।

उसके भाव की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?।।१२५।।

वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी होती है। जघन्य की अपेक्षा अजघन्य अनन्तगुणी अधिक होती है।।१२६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अयोगकेवली के अंतिम समय संबंधी जघन्य द्रव्य में जघन्यकाल को छोड़कर अन्य काल का अभाव पाया जाता है।

भाव की अपेक्षा कथन करते हैं — यदि जीव असाता कर्म के उदय के साथ युक्त होता है तो द्रव्य के साथ भाव भी जघन्य होता है, क्योंकि अयोगकेवली के द्विचरम समय में सातावेदनीय गल चुका है तथा असाता के अनुभाग को क्षपक परिणामों से घात करके अनन्तर्वे भाग में स्थापित किया जा चुका है परन्तु यदि सातावेदनीय के उदय के साथ सिद्ध होता है तो वह अनन्तगुणी अधिक होती है, क्योंकि अयोगकेवली के द्विचरम के समय में उदय न रहने के कारण असातावेदनीय के नष्ट हो जाने से तथा सूक्ष्मसाम्पराय के अन्तिम समय में बांधे गये साता वेदनीय के उत्कृष्ट अनुभाग का घात न हो सकने से असातावेदनीय के उत्कृष्ट अनुभाग का भी साता का उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा पाया जाता है।

जिसके वेदनीय कर्म की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य है उसके द्रव्य-काल और भाव की अपेक्षा क्या जघन्य है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से छह सूत्र अवतरित होते हैं —

जस्स वेयणीयवेयणा खेत्तदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१२७।।

णियमा अजहण्णा चउट्ठाणपदिदा।।१२८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — चतुःस्थानपतिता इत्युक्ते असंख्यभागाभ्यधिक-संख्याताभागाभ्यधिक-संख्यातगुणाभ्यधिक-असंख्यातगुणाभ्यधिका इति गृहीतव्यं। एतेषां चतुःस्थानानां प्ररूपणा यथा ज्ञानावरणीय-जघन्यक्षेत्रे निरुद्धे तद्द्रव्यस्य कृता तथा कर्तव्या।

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१२९।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।१३०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अयोगिकेवलचरमसमयकर्मणां जघन्यकालमेकसमयमपेक्ष्य पल्योपमस्य असंख्यातभागो न सागरोपमसप्तभागेषु त्रिभागमात्रस्थितेः जघन्यक्षेत्रसहचारिण्याः असंख्यातगुणत्वोपलंभात्।

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१३१।।

णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।।१३२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — क्षपकपरिणामैः प्राप्तघातासातावेदनीय भावस्य अयोगिचरमसमये

सूत्रार्थ —

जिसके वेदनीय की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य होती है उसके द्रव्य की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१२७।।

वह नियम से अजघन्य चार स्थानों में पतित होती है।।१२८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — 'चार स्थानों में पतित होती है' ऐसा कहने पर असंख्यातभागअधिक, संख्यातभागअधिक, संख्यातगुणअधिक और असंख्यातगुणअधिक, ऐसा ग्रहण करना चाहिए। ज्ञानावरणीय के जघन्य क्षेत्र को विवक्षित कर जैसे उसके द्रव्य संबंधी इन चार स्थानों की प्ररूपणा की गई है, वैसा ही यहाँ उनकी प्ररूपणा करना चाहिए।

सूत्रार्थ —

उसके काल की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१२९।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।१३०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि अयोगकेवली के अंतिम समय संबंधी कर्मों के एक समय रूप जघन्यकाल की अपेक्षा पल्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन एक सागरोपम के सात भागों में से तीन भाग मात्र जघन्य क्षेत्र के साथ रहने वाली स्थिति असंख्यातगुणी पायी जाती है।

सूत्रार्थ —

उसके भाव की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१३१।।

वह नियम से अजघन्य अनन्तगुणी अधिक होती है।।१३२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि क्षपक परिणामों के द्वारा घात को प्राप्त हुआ असातावेदनीय

जघन्यत्वाभ्युपगमात्। जघन्यक्षेत्रवेदनीयभावस्य क्षपकपरिणामैः घाताभावात् अयं भावस्तस्मादनन्तगुणः
इति द्रष्टव्यः।

अधुना वेदनीयवेदना कालापेक्षया जघन्या तस्य द्रव्य-क्षेत्र-भावापेक्षया किं जघन्येत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण
सूत्रषट्कमवतार्यते —

**जस्म वेयणीयवेयणा कालदो जहण्णा तस्म दव्वदो किं जहण्णा
अजहण्णा।।१३३।।**

जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा पञ्चट्ठाणपदिदा।।१३४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि क्षपितकर्मांशिकलक्षणेन आगत्य अयोगिचरमसमये जघन्यकालेन
परिणतो भवेत् तर्हि कालेन सह द्रव्यमपि जघन्यत्वमवाप्नोति। अथ क्षपित-गुणित-घोलमाना वा
गुणितकर्मांशिका वा अयोगिचरमसमये जघन्यकालेन यदि परिणमन्ति तर्हि पंचस्थानपतिता अजघन्या
द्रव्यवेदना भवेत्। यथा ज्ञानावरणीयजघन्यकाले विवक्षिते तद्द्रव्यस्य पंचस्थानप्ररूपणा कृता तथात्रापि
कर्तव्या, विशेषाभावात्।

तस्म खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१३५।।

का भाव अयोगकेवली के अंतिम समय में जघन्य स्वीकार किया गया है अतएव जघन्य क्षेत्र के साथ रहने
वाले वेदनीय के भाव का क्षपक परिणामों के द्वारा घात न होने से यह भाव उससे अनन्तगुणा है, ऐसा
समझना चाहिए।

अब वेदनीय कर्म की वेदना काल की अपेक्षा जघन्य है तो उसके द्रव्य-क्षेत्र और भाव की अपेक्षा क्या
जघन्य है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से छह सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

**जिस जीव के वेदनीय की वेदना काल की अपेक्षा जघन्य होती है उसके वह क्या
द्रव्य की अपेक्षा जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१३३।।**

**वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी, जघन्य की अपेक्षा अजघन्य पाँच
स्थानों से पतित है।।१३४।।**

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि क्षपित कर्मांशिक लक्षणरूप से आकर के जीव अयोगकेवली के
अंतिम समय में जघन्य काल से परिणत होता है तो काल के साथ द्रव्य भी जघन्यता को प्राप्त होता है परन्तु
यदि क्षपित घोलमान और गुणित-घोलमान अथवा गुणितकर्मांशिक जीव अयोगकेवली के अंतिम समय में
जघन्य काल से परिणत होते हैं तो वह द्रव्यवेदना पाँच स्थानों में पतित होकर अजघन्य होती है। जिस प्रकार
ज्ञानावरणीय के जघन्य काल की विवक्षा में उसके द्रव्य के संबंध में पाँच स्थानों की प्ररूपणा की गई है उसी
प्रकार से यहाँ भी करनी चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

सूत्रार्थ —

उसके क्षेत्र की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१३५।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।१३६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अंगुलस्य असंख्यातभागं सूक्ष्मनिगोदजघन्यावगाहनामपेक्ष्य अयोगिजघन्या-वगाहनाया अंगुलस्य संख्यातभागमात्राया असंख्यातगुणत्वोपलंभात्।

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१३७।।

जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।।१३८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — असातावेदनीयोदयेन क्षपकश्रेणिं चटित्वा अयोगिकेवलिचरमसमये वर्तमानस्य भाववेदना जघन्या भवति, तस्य द्विचरमसमये विनष्टसातावेदनीयत्वात्। अथ सातोदयेन यदि क्षपकश्रेणिमारुह्य अयोगिचरमसमये स्थितो भवति तर्हि भाववेदना अजघन्या भवति।

कुत एतत् ?

असातावेदनीयभावस्य इव सातावेदनीयभावस्य शुभत्वेन घाताभावात्। अजघन्या भवन्त्यपि जघन्या-या अनंतगुणा, संसारावस्थायां सातानुभागात् अनंतगुणहीनासातानुभागे क्षपकश्रेण्यां बहुभिः अनुभागकाण्डकघातैः अनन्तगुणहान्या घातिते सति अयोगिचरमसमये यः शेषो भावः सः जघन्यो जातः। तेन तस्मात् एषः सातानुभागः अनंतगुणो, घाताभावेन उत्कृष्टत्वात्।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।१३६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सूक्ष्म निगोदिया जीव की अंगुल के असंख्यातवें भागमात्र जघन्य अवगाहना की अपेक्षा अंगुल के संख्यातवें भागमात्र अयोगकेवली की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी पायी जाती है।

सूत्रार्थ —

उसके भाव की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१३६।।

वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी, जघन्य की अपेक्षा अजघन्य अनन्तगुणी अधिक होती है।।१३८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — असातावेदनीय कर्म के उदय के साथ क्षपक श्रेणि पर चढ़कर अयोगकेवली के अंतिम समय में वर्तमान जीव के भाववेदना जघन्य होती है, क्योंकि उसके द्विचरम समय में साता वेदनीय का उदय नष्ट हो चुका है परन्तु यदि साता वेदनीय के उदय के साथ क्षपक श्रेणि पर चढ़कर अयोगकेवली के अंतिम समय में स्थित होता है तो भाववेदना अजघन्य होती है।

प्रश्न — ऐसा क्यों है ?

उत्तर — क्योंकि असाता वेदनीय के भाव के समान शुभ होने से साता वेदनीय के भाव का घात संभव नहीं है। अजघन्य होकर भी वह जघन्य की अपेक्षा अनन्तगुणी होती है, क्योंकि संसारावस्था में साता वेदनीय के अनुभाग की अपेक्षा अनन्तगुणे हीन असातावेदनीय के अनुभाग का एक क्षपकश्रेणि में बहुत से अनुभाग काण्डकघातों से अनन्तगुणहानि द्वारा घात किये जाने पर अयोगकेवली के अंतिम समय में जो भाव शेष रहा है, वह जघन्य हो चुका है इसलिए उससे यह साता का अनुभाग अनन्तगुणा है, क्योंकि वह घातरहित होने से उत्कृष्ट है।

अधुना वेदनीयवेदना भावापेक्षया जघन्या तस्य द्रव्यक्षेत्रकालापेक्षया किं जघन्येत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रषट्कमवतार्यते —

**जस्स वेयणीयवेयणा भावदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अज-
हण्णा।।१३९।।**

जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा पंचट्ठाणपदिदा।।१४०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि शुद्धनयविषयभूत-क्षपितकर्मांशिकलक्षणेन आगत्य चरमसमयवर्ति-अयोगी भगवान् जातः तर्हि भावेन सह द्रव्यमपि जघन्यश्चैव, विसदृशत्वस्य कारणाभावात्। अथ अशुद्धनयविषयभूत-क्षपितकर्मांशिकः क्षपितघोलमानो गुणितघोलमानो गुणितकर्मांशिको वा क्षपकश्रेणिमारुह्य यदि चरमसमयवर्ति-अयोगी जातः, तर्हि भावो जघन्यश्चैव, द्रव्यं भवति पुनः अजघन्यं, जघन्यकारणाभावात्। भवदपि जघन्यद्रव्यमपेक्ष्य अनंतभागाभ्यधिकं असंख्यातभागाभ्यधिकं संख्यातभागाभ्यधिकं संख्यातगुणाभ्यधिकं असंख्यातगुणाभ्यधिकं च भवति।

कुतः ?

जघन्यद्रव्यस्योपरि परमाणूत्तरक्रमेण द्रव्यविधाने प्ररूपितपंचवृद्धित्वात्।

तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१४१।।

अब वेदनीय कर्म की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य है तो उसके द्रव्य-क्षेत्र-काल की अपेक्षा क्या जघन्य है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के वेदनीय की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य होती है उसके द्रव्य की अपेक्षा जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१३९।।

वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी, जघन्य की अपेक्षा अजघन्य चार स्थानों में पतित है।।१४०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि शुद्ध नय के विषयभूत क्षपितकर्मांशिक स्वरूप से आकर के अंतिमसमयवर्ती अयोग केवली भगवान् हुए हैं तो भाव के साथ द्रव्य भी जघन्य ही होता है, क्योंकि उसके विसदृश होने का कोई कारण नहीं है परन्तु अशुद्ध नय का विषयभूत क्षपितकर्मांशिक, क्षपितघोलमान, गुणित घोलमान अथवा गुणितकर्मांशिक जीव क्षपक श्रेणी पर चढ़कर यदि अंतिमसमयवर्ती अयोगी हुए हैं तो भाव जघन्य ही होता है परन्तु द्रव्य अजघन्य होता है, क्योंकि उसके जघन्य होने का कोई कारण नहीं है। अजघन्य हो करके भी वह जघन्य द्रव्य की अपेक्षा अनन्तवें भाग से अधिक, असंख्यातवें भाग से अधिक, संख्यातवें भाग से अधिक, संख्यातगुणा अधिक और असंख्यातगुणा अधिक होता है।

क्योंकि जघन्य द्रव्य के ऊपर परमाणु अधिक क्रम से द्रव्य विद्यमान में कही गई पाँच वृद्धियाँ होती हैं।

सूत्रार्थ —

उसके क्षेत्र की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१४१।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।१४२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तजघन्यावगाहनाया अयोगिकेवलि-जघन्यावगाहनाया अपवर्तितायां पल्योपमस्य असंख्यातभागोपलंभात्।

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१४३।।

जहण्णा।।१४४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जघन्यभावे स्थितद्रव्यस्य एकसमयस्थितिदर्शनात्।

एवं दशमस्थले वेदनीयवेदना द्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षया निरूपणत्वेन षट्त्रिंशत्सूत्राणि गतानि।

संप्रति आयुर्वेदना यदि द्रव्यापेक्षया जघन्या तर्हि क्षेत्र-काल-भावापेक्षया किं जघन्येत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रषट्कमवतार्यते —

जस्स आउअवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स खेत्तदो किं जहण्णा

अजहण्णा।।१४५।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।१४६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — आयुर्जघन्यक्षेत्रेण सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकेषु लब्धेन अंगुलस्य असंख्यातभागमात्रेण जघन्यद्रव्यस्वामि-अवगाहनायाः पञ्चशतधनुस्तसेधात् निष्पन्नायाः अपवर्तितायां पल्योपमस्य असंख्यात-भागमात्ररूपोपलंभात्।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।१४२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना से अयोगकेवली की जघन्य अवगाहना को अपवर्तित करने पर पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग पाया जाता है।

सूत्रार्थ —

उसके काल की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?।।१४३।।

वह जघन्य होती है।।१४४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जघन्य भाव में स्थित द्रव्य की एक समय स्थिति देखी जाती है।

इस प्रकार दशवें स्थल में वेदनीय कर्म की वेदना द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा निरूपण करने वाले छत्तीस सूत्र पूर्ण हुए।

अब आयुर्कर्म की वेदना यदि द्रव्य की अपेक्षा जघन्य है तो क्षेत्र-काल और भाव की अपेक्षा से क्या जघन्य है या अजघन्य ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के आयु की वेदना द्रव्य की अपेक्षा जघन्य होती है उसके द्रव्य की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१४५।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।१४६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकों में प्राप्त अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण आयु कर्म के जघन्य क्षेत्र से पाँच सौ धनुष उत्सेध से उत्पन्न जघन्य द्रव्य के

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१४७।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।१४८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एकसमयप्रमाणेन जघन्यकालेन अंतर्मुहूर्तमात्रदीपशिखायां अपवर्तितायां अंतर्मुहूर्तमात्रगुणकारोपलंभात्।

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१४९।।

णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।।१५०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — आयुषो जघन्यभावः अपर्याप्तसंयुक्ततिर्यगायुर्जघन्यबंधे जातः, जघन्यद्रव्यस्वामिभावः पुनः संज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तसंयुक्तबद्धायुर्जघन्यद्रव्यसंबन्धी भवति। तेनायुर्जघन्यभावात् दीपशिखाजघन्यद्रव्यभावोऽन्तगुण इति सिद्धं।

अधुना आयुर्वेदना क्षेत्रापेक्षया जघन्या तस्य द्रव्यकालभावापेक्षया किं जघन्येत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रषट्कमवतार्यते —

जस्स आउअवेयणा खेत्तदो जहण्णा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१५१।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।१५२।।

स्वामी की अवगाहना को अपवर्तित करने पर पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र रूप पाये जाते हैं।

सूत्रार्थ —

उसके काल की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१४७।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।१४८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एक समय प्रमाण जघन्य काल से अन्तर्मुहूर्त प्रमाण दीपशिखा को अपवर्तित करने पर अन्तर्मुहूर्त मात्र गुणकार पाया जाता है।

सूत्रार्थ —

उसके भाव की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१४९।।

वह नियम से अजघन्य अनन्तगुणी अधिक होती है।।१५०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — आयुर्कर्म का जघन्य भाव अपर्याप्त के साथ तिर्यच आयु के जघन्य बंध में होता है परन्तु जघन्य द्रव्य के स्वामी का भाव संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक के साथ बांधी गई आयु के जघन्य द्रव्य से संबंध रखने वाला है। इस कारण आयु के जघन्य भाव की अपेक्षा दीपशिखारूप जघन्य द्रव्य का भाव अनन्तगुणा है, यह सिद्ध है।

अब आयु की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा जिसके जघन्य है, उसके द्रव्य-काल और भाव की अपेक्षा क्या जघन्य है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से छह सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के आयु की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य होती है उसके द्रव्य की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१५१।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।१५२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — तद्यथा — जघन्यक्षेत्रस्थितायुर्द्रव्यं यद्यपि जघन्ययोगेन जघन्यबंधकाले च बद्धं भवति तर्ह्यपि दीपशिखाद्रव्यात् पंचेन्द्रियजघन्ययोगेन एकेन्द्रियोत्कृष्टयोगात् असंख्यातगुणेन बद्धात् असंख्यातगुणं भवति।

कुतः ?

दीपशिखाद्रव्ये इव भवस्य तृतीयभवस्थितसूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तके असंख्यातगुणहानिमात्रनिषेकानां गलनाभावात् दीपशिखाद्रव्येण जघन्यक्षेत्रस्थितद्रव्ये भागे हृते अंगुलस्य असंख्यातभागोपलंभात् वा।

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१५३।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।१५४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जघन्यकालमेकसमयमात्रमपेक्ष्य जघन्यक्षेत्रस्थितायुःकर्मस्थितेः अंतर्मुहूर्त-मात्राया असंख्यातगुणत्वोपलंभात्।

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ?।।१५५।।

जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा छट्ठाणपदिदा।।१५६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — विभाषा क्रियते — यदि आयुः मध्यमपरिणामेन बंधयित्वा जघन्यक्षेत्रं करोति तर्हि क्षेत्रेण सह भावोऽपि जघन्यो भवति। अन्यथा पुनः अजघन्या, भवन्त्योऽपि षट्स्थानपतिता, भावे

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — वह इस प्रकार से है — यद्यपि जघन्य क्षेत्र में स्थित आयु कर्म का द्रव्य जघन्य योग और जघन्य बंध काल के द्वारा बांधा गया है तो भी वह एकेन्द्रिय जीव के उत्कृष्ट योग से असंख्यातगुणे ऐसे पंचेन्द्रिय जीव के जघन्य योग के द्वारा बांधे गये दीपशिखा द्रव्य के असंख्यातगुणा होता है।

क्यों ?

क्योंकि दीपशिखा द्रव्य के समान भव के तृतीय समय में स्थित सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त के (द्रव्य में से) असंख्यात गुणहानि प्रमाण निषेकों के गलने का अभाव है अथवा दीपशिखा द्रव्य का जघन्य क्षेत्रस्थित द्रव्य में भाग देने पर अंगुल का असंख्यातवाँ भाग पाया जाता है।

सूत्रार्थ —

उसके काल की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१५३।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।१५४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि एक समय प्रमाण जघन्य काल की अपेक्षा जघन्य क्षेत्रस्थित आयु कर्म की अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थिति असंख्यातगुणी पायी जाती है।

सूत्रार्थ —

उसके भाव की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१५५।।

वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। जघन्य की अपेक्षा अजघन्य छह स्थानों में पतित है।।१५६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस कथन का स्पष्टीकरण करते हैं —

यदि आयु को मध्यम परिणाम से बांधकर जघन्य क्षेत्र करता है तो क्षेत्र के साथ भाव भी जघन्य होता है परन्तु इससे विपरीत अवस्था में भाव वेदना अजघन्य होती है। अजघन्य होकर भी वह छह स्थानों में

षड्भिः प्रकारैर्वृद्धिदर्शनात्।

अधुना आयुर्वेदना यदि कालापेक्षया जघन्या तर्हि द्रव्य-क्षेत्र-भावापेक्षया किं जघन्येत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रषट्कमवतार्यते —

जस्स आउअवेयणा कालदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१५७।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।१५८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जघन्यद्रव्येण एकसमयप्रबद्धं अंगुलस्य असंख्यातभागेन खण्डिते तत्र एकखण्डमात्रेण जघन्यकालद्रव्येण एकसमयप्रबद्धस्य संख्यातभागमात्रे भागे हते असंख्यातरूपोपलंभात्।

तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१५९।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।१६०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — आयुर्जघन्यक्षेत्रेण अंगुलस्य संख्यातभागमात्र जघन्यकालजघन्यक्षेत्रे भागे हते पल्योपमस्य असंख्यातभागोपलंभात्।

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१६१।।

पतित होती है, क्योंकि भाव में छह प्रकारों से वृद्धि देखी जाती है।

अब आयु की वेदना यदि काल की अपेक्षा जघन्य है तो द्रव्य-क्षेत्र और भाव की अपेक्षा क्या जघन्य है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के आयु की वेदना काल की अपेक्षा जघन्य होती है उसके द्रव्य की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१५७।।

वह उसके नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।१५८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि एक समयप्रबद्ध को अंगुल के असंख्यातवें भाग से खण्डित करने पर उसमें से एक खण्डमात्र जघन्य द्रव्य का एकसमयप्रबद्ध के संख्यातवें भागमात्र जघन्यकाल के साथ रहने वाले द्रव्य में भाग देने पर असंख्यातरूप पाये जाते हैं।

सूत्रार्थ —

उसके क्षेत्र की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१५९।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।१६०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि आयु के जघन्य क्षेत्र का अंगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण जघन्यकालसंबन्धी जघन्य क्षेत्र में भाग देने पर पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग पाया जाता है।

सूत्रार्थ —

उसके भाव की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१६१।।

णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।।१६२।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — आयुर्वेदना भावापेक्षया अजघन्या अनंतगुणाधिका भवति।

कथमयोगिचरमसमयजघन्यद्रव्यभावो जघन्यभावात् अनंतगुणो भवतीति चेत् ?

नैष दोषः, स्वभावात् चैव तिर्यगायुरनुभागात् मनुष्यायुर्भावस्य अनंतगुणत्वम्।

क्षपकश्रेण्यां प्राप्तघातस्य भावस्य कथमनन्तगुणत्वं ?

नैष दोषः, आयुषः क्षपकश्रेण्यां प्रदेशस्य गुणश्रेणीनिर्जरा अभाव इव स्थिति-अनुभागयोर्घाताभावात्।

अधुना आयुर्वेदना यदि भावतो जघन्या तर्हि द्रव्य-क्षेत्र-कालापेक्षया किं जघन्येत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रषट्कमवतार्यते —

जस्स आउअवेयणा भावदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अज-
हण्णा।।१६३।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।१६४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — जघन्यद्रव्येण एकसमयप्रबद्धस्य असंख्यातभागेन जघन्यभावायुर्द्रव्ये भागे हते असंख्यातरूपोपलंभात्।

कुतः असंख्यातरूपोपलब्धिः ?

वह नियम से अजघन्य अनन्तगुणी अधिक होती है।।१६२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — आयुर्कर्म की वेदना भाव की अपेक्षा अजघन्य अनन्तगुणी अधिक होती है।

शंका — अयोगकेवली के अंतिम समय संबंधी जघन्य द्रव्य का भाव जघन्य भाव की अपेक्षा अनंतगुणा कैसे है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि स्वभाव से ही तिर्यच आयु के अनुभाग से मनुष्यायु का भाव अनन्तगुणा है।

शंका — क्षपकश्रेणी में घात को प्राप्त हुआ अनुभाग अनन्तगुणा कैसे हो सकता है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि क्षपकश्रेणी में आयुर्कर्म के प्रदेश की गुणश्रेणीनिर्जरा के अभाव के समान स्थिति और अनुभाग के घात का अभाव है।

अब आयु की वेदना यदि भाव से जघन्य है तो द्रव्य, क्षेत्र, काल की अपेक्षा क्या जघन्य है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से छह सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के आयु की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य होती है उसके द्रव्य की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१६३।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।१६४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि एक समयप्रबद्ध के असंख्यातवें भागमात्र जघन्य द्रव्य का जघन्यभावयुक्त आयु के द्रव्य में भाग देने पर असंख्यातरूप पाये जाते हैं।

शंका — असंख्यात रूप कैसे प्राप्त होते हैं ?

जघन्यभावायुर्द्रव्ये बंधककालासंख्यातभागमात्रसमयप्रबद्धानामुपलंभात्।

तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१६५।।

जहण्णा वा अजहण्णा वा। जहण्णादो अजहण्णा चउट्ठाणपदिदा।।१६६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि मध्यमपरिणामैः तिर्यगायुर्बन्धयित्वा जघन्यक्षेत्रं करोति तर्हि भावेन सह क्षेत्रमपि जघन्यमेव। अथ मध्यमपरिणामैः आयुर्बन्धयित्वा जघन्यक्षेत्रं न करोति तर्हि भावो जघन्यो भूत्वा क्षेत्रवेदना अजघन्या भवति। भवन्त्योऽपि चतुःस्थानपतिता, क्षेत्रे असंख्यातभागवृद्धि-संख्यातभागवृद्धि-संख्यातगुणवृद्धि-असंख्यातगुणवृद्धीः मुक्त्वा अन्यवृद्धीनामभावात्।

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१६७।।

णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।।१६८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जघन्यकालेन जघन्यभावकाले भागे हृते अन्तर्मुहूर्तमात्रगुणकारोपलंभात्।

एवं एकादशस्थले आयुर्वेदनाजघन्याजघन्यकथनत्वेन अष्टादशसूत्राणि गतानि।

अधुना नामवेदना यदि द्रव्यापेक्षया जघन्या तर्हि क्षेत्र-काल-भावापेक्षया किं जघन्येत्यादि प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रषट्कमवतार्यते —

समाधान — क्योंकि जघन्यभावयुक्त आयु के द्रव्य में बंधककाल के असंख्यातवें भागमात्र समयप्रबद्ध पाये जाते हैं, अतएव असंख्यातरूप पाये जाते हैं।

सूत्रार्थ —

उसके क्षेत्र की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१६५।।

वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। जघन्य की अपेक्षा अजघन्य चार स्थानों में पतित है।।१६६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि मध्यम परिणामों के द्वारा तिर्यच आयु को बांधकर जघन्य क्षेत्र को करता है तो भाव के साथ क्षेत्र भी जघन्य ही होता है परन्तु यदि मध्यम परिणामों के द्वारा आयु को बांधकर जघन्य क्षेत्र को नहीं करता है तो उसके भाव के जघन्य होते हुए भी क्षेत्र वेदना अजघन्य होती है। अजघन्य होकर भी वह चार स्थानों में पतित है, क्योंकि क्षेत्र में असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणवृद्धि को छोड़कर अन्य वृद्धियों का अभाव पाया जाता है।

सूत्रार्थ —

उसके काल की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१६७।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।१६८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जघन्यकाल का जघन्यभाव संबंधी काल में भाग देने पर अन्तर्मुहूर्त मात्र गुणकार पाया जाता है।

इस प्रकार ग्यारहवें स्थल में आयु कर्म की वेदना के जघन्य-अजघन्य कथनरूप से अठारह सूत्र पूर्ण हुए।

अब नामकर्म की वेदना यदि द्रव्य की अपेक्षा से जघन्य है तो क्षेत्र-काल और भाव की अपेक्षा क्या जघन्य है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से छह सूत्र अवतरित होते हैं—

**जस्स णामवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स खेत्तदो किं जहण्णा
अजहण्णा॥१६९॥**

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया॥१७०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — नामकर्मजघन्यक्षेत्रेण अंगुलस्य असंख्यातभागमात्रेण अयोगिकेवलचरमसम-
यजघन्यद्रव्यजघन्यक्षेत्रे संख्यातांगुलमात्रे भागे हते पल्योपमस्य असंख्यातभागोपलंभात्।

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा॥१७१॥

जहण्णा॥१७२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — तत्र जघन्यद्रव्ये एकसमयस्थितिं मुक्त्वा अन्यस्थितीनामभावात्।

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा॥१७३॥

णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया॥१७४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सर्वविशुद्धेन सूक्ष्मनिगोदेन हतसमुत्पत्तिं उत्पादित नामकर्मजघन्यानुभागं अपेक्ष्य
सूक्ष्मसांपराधिकेन सर्वविशुद्धेन बद्धयशःकीर्तिनामकर्मोत्कृष्टानुभागस्य शुभत्वात् घातवर्जितस्य अनंतगुणत्वोपलंभात्।

सूत्रार्थ—

जिस जीव के नामकर्म की वेदना द्रव्य की अपेक्षा जघन्य होती है उसके क्षेत्र की
अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?॥१६९॥

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है॥१७०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि नामकर्म संबंधी अंगुल के असंख्यातवें भागमात्र
जघन्य क्षेत्र का अयोगिकेवली के अंतिम समयसंबंधी जघन्य द्रव्य के संख्यात अंगुल प्रमाण जघन्य क्षेत्र में
भाग देने पर पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग पाया जाता है।

सूत्रार्थ—

उसके काल की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?॥१७१॥

वह जघन्य होती है॥१७२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — वहाँ जघन्य द्रव्य में एकसमयमात्र स्थिति को छोड़कर अन्य स्थितियों
का अभाव पाया जाता है।

सूत्रार्थ—

उसके भाव की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?॥१७३॥

वह नियम से अजघन्य अनन्तगुणी अधिक होती है॥१७४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि सर्वविशुद्ध सूक्ष्म निगोद जीव के द्वारा हत समुत्पत्ति
करके उत्पन्न कराये गये नाम कर्म के जघन्य अनुभाग की अपेक्षा सर्वविशुद्ध सूक्ष्मसाम्परायिक जीव के द्वारा
बांधे गये यशःकीर्ति के उत्कृष्ट अनुभाग के शुभ होने से चूँकि उसका घात होता नहीं है अतएव वह उससे

संप्रति नामकर्मवेदना यस्य क्षेत्रापेक्षया जघन्या तस्य द्रव्य-काल-भावापेक्षया किं जघन्येत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रषट्कमवतार्यते —

जस्स णामवेयणा खेत्तदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१७५।।

णियमा अजहण्णा चउट्ठाणपदिदा।।१७६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — तद्यथा — क्षपितकर्मांशिकलक्षणेन आगत्य यदि त्रिचरमभवे सूक्ष्मैकेन्द्रियेषु उपपद्य जघन्यक्षेत्रं कृतं भवति तर्हि द्रव्यमसंख्यातभागाभ्यधिकं, एकस्मिन् मनुष्यभवे संयमगुणश्रेण्या विनाशयिष्य-मानासंख्यातसमयप्रबद्धानामत्रोपलंभात्। पुनः एतस्य द्रव्यस्योपरि परमाणूत्तरक्रमेण वर्धापयितव्यं यावत् जघन्यद्रव्यमुत्कृष्टसंख्यातेन खण्डयित्वा तत्र एकखण्डमात्रं वर्द्धिता इति। तदानीं द्रव्यं संख्यातभागाभ्यधिकं भवति। एवं संख्यातगुणाभ्यधिक-असंख्यातगुणाभ्यधिकत्वं ज्ञात्वा प्ररूपयितव्यम्।

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१७७।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।१७८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ओघजघन्यकालमेकसमयं अपेक्ष्य क्षेत्र-द्रव्य-कालस्य पल्योपमस्य

अनन्तगुणा पाया जाता है।

अब नामकर्म की वेदना जिसके क्षेत्र की अपेक्षा से जघन्य है उसके द्रव्य-काल-भाव की अपेक्षा से क्या जघन्य है ? इत्यादिरूप से छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिसके नाम कर्म की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य होती है उसके द्रव्य की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य?।।१७५।।

वह नियम से अजघन्य चार स्थानों में पतित होती है।।१७६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यह कथन इस प्रकार है — क्षपितकर्मांशिकस्वरूप से आकर के यदि त्रिचरम भव में सूक्ष्म एकेन्द्रियों में उत्पन्न होकर जघन्य क्षेत्र किया गया है तो द्रव्य असंख्यातवें भाग से अधिक होता है, क्योंकि यहाँ एक मनुष्य भव में संयम गुणश्रेणी द्वारा नष्ट किये जाने वाले असंख्यात समयप्रबद्ध पाये जाते हैं, फिर इस द्रव्य के ऊपर परमाणु अधिक के क्रम से जघन्य द्रव्य को उत्कृष्ट संख्यात से खण्डित करके उसमें एकखण्डमात्र की वृद्धि हो जाने तक बढ़ाना चाहिए। उस समय द्रव्य संख्यातवें भाग से अधिक होता है। इसी प्रकार से संख्यातगुणी अधिकता और असंख्यातगुणी अधिकता को भी जानकर प्ररूपणा करनी चाहिए।

सूत्रार्थ —

उसके काल की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१७७।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।१७८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि एक समय प्रमाण ओघ जघन्यकाल की अपेक्षा क्षेत्र व

असंख्यातभागोनोपसागरोपमसप्तभागेषु द्विभागप्रमाणं, असंख्यातगुणत्वोपलंभात्।

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१७९।।

जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा छट्ठाणपदिदा।।१८०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि जघन्यावगाहनायां स्थितजीवेन मध्यमपरिणामैः नामभावो बद्धः तर्हि क्षेत्रेण सह भावोऽपि जघन्यो भवति। अथ अजघन्यो बद्धस्तर्हि भाववेदना अजघन्या सा च अनन्तभागाभ्यधिक-असंख्यातभागाभ्यधिक-संख्यातभागाभ्यधिक-संख्यातगुणाभ्यधिक-असंख्यातगुणाभ्यधिक-अनन्तगुणाभ्यधिकत्वेन षट्स्थानपतिता भवति इति ज्ञातव्यम्।

अधुना नामवेदना यस्य जघन्या कालापेक्षया, तस्य द्रव्य-क्षेत्र-भावापेक्षया किं जघन्येत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रषट्कमवतार्यते —

जस्स णामवेयणा कालदो जहण्णा तस्स दब्बदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१८१।।

जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा पञ्चट्ठाणपदिदा।।१८२।।

द्रव्य संबंधी जो काल पल्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन एक सागरोपम के सात भागों में से दो भाग प्रमाण है वह असंख्यातगुणा पाया जाता है।

सूत्रार्थ —

उसके भाव की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१७९।।

वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। जघन्य की अपेक्षा अजघन्य छह स्थानों में पतित है।।१८०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि जघन्य अवगाहना में स्थित जीव के द्वारा मध्यम परिणामों से नामकर्म का अनुभाग बांधा गया है तो क्षेत्र के साथ भाव भी जघन्य होता है परन्तु यदि उक्त जीव के द्वारा नामकर्म का अनुभाग (अजघन्य बांधा गया है, तो भाववेदना अजघन्य होती है। उक्त अजघन्य भाव वेदना, अनन्तभागअधिक, असंख्यातभागअधिक, संख्यातभागअधिक, संख्यातगुणअधिक, असंख्यातगुणअधिक और अनन्तगुणअधिक स्वरूप से छह स्थानों में पतित होती है, ऐसा जानना चाहिए।

अब नामकर्म की वेदना जिसके काल की अपेक्षा जघन्य है, उसके द्रव्य-क्षेत्र और भाव की अपेक्षा क्या जघन्य है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के नामकर्म की वेदना काल की अपेक्षा जघन्य होती है उसके द्रव्य की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१८१।।

वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी, जघन्य की अपेक्षा अजघन्य पाँच स्थानों में पतित है।।१८२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — क्षपितकर्मांशिकलक्षणेन शुद्धनयविषयेन परिणतेन जीवेन अयोगिकेवलि-चरमसमये यदि प्रदेशो जघन्यः कृतः तर्हि कालेन सह द्रव्यमपि जघन्यं भवति। अथ अन्यथा तर्हि द्रव्यमजघन्यं, जघन्यकारणाभावात्। भवदपि पंचस्थानपतितं, परमाणूत्तरादिक्रमेण निरंतरं गत्वा असंख्यातगुणवृद्धौ द्रव्यस्य पर्यवसानोपलंभात्।

तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१८३।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।१८४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जघन्यक्षेत्रेण अंगुलस्य असंख्यातभागप्रमाणेन अयोगिजघन्यक्षेत्रे संख्यातघनांगुलमात्रे भागे हूते असंख्यातरूपोपलंभात्।

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१८५।।

णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।।१८६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — मध्यमपरिणामैः कृतनामकर्मजघन्यभावमपेक्ष्य सूक्ष्मसांपरायिकेन सर्वविशुद्धेन बद्ध यशःकीर्त्युत्कृष्टानुभागस्य शुभभावेन घातवर्जितस्य अयोगिचरमसमये अवस्थितस्य अनंतगुणत्वोपलंभात्।

संप्रति यस्य नामवेदना भावापेक्षया जघन्या तस्य द्रव्य-क्षेत्र-कालापेक्षया किं जघन्येत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रषट्कमवतार्यते —

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — शुद्धनय के विषयभूत क्षपितकर्मांशिक स्वरूप से परिणत जीव के द्वारा यदि अयोगिकेवली के अंतिम समय में प्रदेश जघन्य कर दिया गया है तो काल के साथ द्रव्य भी जघन्य होता है परन्तु यदि ऐसा नहीं किया गया है तो द्रव्य अजघन्य होता है, क्योंकि उक्त अवस्था में उसके जघन्य होने का कोई कारण नहीं है। अजघन्य होकर भी वह पाँच स्थानों में पतित होता है, क्योंकि उत्तरोत्तर परमाणु अधिक आदि के क्रम से निरन्तर जाकर असंख्यातगुणवृद्धि में द्रव्य का अन्त पाया जाता है।

सूत्रार्थ —

उसके क्षेत्र की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१८३।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी होती है।।१८४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि जघन्य क्षेत्र के द्वारा अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण अयोगिकेवली के जघन्य क्षेत्र में संख्यातघनांगुल प्रमाण भाग देने पर असंख्यात रूप पाये जाते हैं।

सूत्रार्थ —

उसके भाव की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१८५।।

वह नियम से अजघन्य अनन्तगुणी अधिक होती है।।१८६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — मध्यम परिणामों के द्वारा किये गये नामकर्म के जघन्य भाव की अपेक्षा सर्वविशुद्ध सूक्ष्मसाम्परायिक संयत के द्वारा बांधा गया यशःकीर्ति का उत्कृष्ट अनुभाग शुभ होने के कारण घात से रहित होकर अयोगिकेवली के अन्तिम समय में स्थित अनन्तगुणा पाया जाता है।

अब जिस नामकर्म की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य है, उसकी द्रव्य-क्षेत्र और काल की अपेक्षा क्या जघन्य है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से छह सूत्र अवतरित होते हैं —

**जस्स णामवेयणा भावदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा
अजहण्णा।।१८७।।**

णियमा अजहण्णा चउट्टाणपदिदा।।१८८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — क्षपितकर्मांशिकलक्षणेनागतेन त्रिचरमभवे यदि भावो मध्यमपरिणामेन बंधयित्वा हतसमुत्पत्तिकं कृत्वा जघन्यः कृतः तर्हि तत्र द्रव्यमसंख्यातभागाभ्यधिकं भवति, अगलितासंख्यात-समयप्रबद्धत्वात्। उपरि परमाणूत्तरादिक्रमेण चतस्रोऽपि वृद्धयः प्ररूपयितव्याः।

तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१८९।।

जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा चउट्टाणपदिदा।।१९०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि जघन्यभावसहितजीवेन जघन्यभावबद्धायां चैव स्थित्वा क्षेत्रमपि जघन्यं कृतं भवति तर्हि भावेन सह क्षेत्रवेदना अपि जघन्या भवति। अथ न जघन्यं कृतं तर्हि अजघन्या च चतुःस्थानपतिता, तत्र प्रदेशोत्तरादिक्रमेण क्षेत्रस्य चतुर्वृद्धि संभवात्। उत्पन्नतृतीयसमयक्षेत्रं प्रदेशोत्तरादिक्रमेण तत्प्रायोग्यासंख्यातगुणवृद्धिमुपगतचतुर्थसमयजघन्यक्षेत्रेण सदृशं भवति।

कुतः ?

सूत्रार्थ—

जिस जीव के नामकर्म की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य होती है उसके द्रव्य की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१८७।।

वह नियम से अजघन्य चार स्थानों में पतित होती है।।१८८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — क्षपितकर्मांशिक स्वरूप से आये हुए जीव के द्वारा त्रिचरम भव में मध्यम परिणाम में बांधकर हतसमुत्पत्ति करके यदि भाव जघन्य किया गया है, तो वहाँ पर द्रव्य असंख्यातवें भाग से अधिक होता है क्योंकि वहाँ असंख्यात समयप्रबद्ध अगलित हैं। आगे परमाणु अधिक आदि के क्रम से चारों ही वृद्धियों की प्ररूपणा करनी चाहिए।

सूत्रार्थ—

उसके क्षेत्र की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१८९।।

वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी, जघन्य की अपेक्षा अजघन्य चार स्थानों में पतित है।।१९०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि जघन्यभाव सहित जीव के द्वारा जघन्य भाव के काल में ही रह करके क्षेत्र को भी जघन्य कर लिया गया है तो भाव के साथ क्षेत्र वेदना भी जघन्य होती है परन्तु यदि क्षेत्र को जघन्य नहीं किया गया है तो वह अजघन्य चार स्थानों में पतित होती है, क्योंकि वहाँ उत्तरोत्तर प्रदेश अधिक आदि के क्रम से क्षेत्र के चार वृद्धियाँ संभव हैं।

उत्पन्न होने के तृतीय समय क्षेत्र प्रदेश अधिक आदि के क्रम से उसके योग्य असंख्यातगुणवृद्धि को प्राप्त हुए चतुर्थ समयसंबंधी जघन्य क्षेत्र के सदृश होता है।

चतुर्थादिषु समयेषु अवगाहनायां एकान्तानुवृद्धियोगवशेन असंख्यातगुणवृद्धिदर्शनात्। एवं क्षेत्रवृद्धिः कर्तव्या यावद् जघन्यभावेन अविरोद्धोत्कृष्टक्षेत्रं जातमिति।

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा॥१९१॥

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया॥१९२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—ओघजघन्यकालेन एकसमयेन जघन्यभावकाले भागे हते पल्योपमस्य असंख्यातभागानेन सागरोपम सप्तभागेषु द्विभागोपलंभात्।

एवं द्वादशमस्थले अष्टादश सूत्राणि नामवेदनानिरूपणपरत्वेन गतानि।

संप्रति यस्य गोत्रवेदना द्रव्यापेक्षया जघन्या तस्य क्षेत्र-काल-भावापेक्षया किं जघन्येत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रषट्कमवतार्यते—

जस्स गोदवेयणा दब्बदो जहण्णा तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा॥१९३॥

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया॥१९४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—ओघजघन्यक्षेत्रेण अंगुलस्य असंख्यातभागमात्रेण संख्यातांगुलमात्रायोगि-केवलिजघन्यावगाहनायां अपवर्तितायां असंख्यातरूपोपलंभात्।

क्यों ?

क्योंकि चतुर्थादिक समयों में एकान्तानुवृद्धियोग के वश से अवगाहना में असंख्यातगुणवृद्धि देखी जाती है। इस प्रकार जघन्य भाव से अविरोद्ध उत्कृष्ट क्षेत्र के होने तक क्षेत्र की वृद्धि करनी चाहिए।

सूत्रार्थ—

उसके काल की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?॥१९१॥

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है॥१९२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—कारण यह है कि एकसमयरूप ओघ जघन्य काल का जघन्य भाव काल में भाग देने पर पल्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन एक सागरोपम के सात भागों में से दो भाग पाये जाते हैं।

इस प्रकार बारहवें स्थल में नामकर्म की वेदना का निरूपण करने वाले अठारह सूत्र पूर्ण हुए।

अब जिनके गोत्रकर्म की वेदना द्रव्य की अपेक्षा जघन्य है उसके क्षेत्र-काल और भाव की अपेक्षा क्या जघन्य है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से छह सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

जिस जीव के गोत्र की वेदना द्रव्य की अपेक्षा जघन्य होती है उसके क्षेत्र की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?॥१९३॥

नियम से वह अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है॥१९४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण ओघ जघन्य क्षेत्र का संख्यात घनांगुल प्रमाण अयोगकेवली की जघन्य अवगाहना में भाग देने पर असंख्यात रूप पाये जाते हैं।

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१९५।।

जहण्णा।।१९६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जघन्यद्रव्यस्य एकसमयावस्थानदर्शनात् जघन्या गोत्रवेदना ज्ञातव्यास्ति।

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।।१९७।।

णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।।१९८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सर्वोत्कृष्टविशुद्ध्या हतसमुत्पत्तिकं कृत्वा उत्पादितजघन्यानुभागमपेक्ष्य सूक्ष्मसांपरायिकेन मुनिना सर्वविशुद्धेन बद्धोच्चैर्गोत्रस्योत्कृष्टानुभागस्य अनंतगुणत्वोपलंभात्।

अत्र कश्चिदाशंकते —

गोत्रजघन्यानुभागेऽपि उच्चगोत्रजघन्यानुभागोऽस्ति इति चेत् ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नैतदाशंकनीयं, बादरतेजस्कायिकेषु पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रकालेन उद्वेलितोच्चैर्गोत्रेषु अतिविशुद्ध्या घातितनीचगोत्रेषु गोत्रस्य जघन्यानुभागाभ्युपगमात्।

यस्य गोत्रवेदना क्षेत्रापेक्षया जघन्या तस्य द्रव्य-काल-भावापेक्षया किं जघन्येत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रषट्कमवतार्यते —

सूत्रार्थ —

उसके काल की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?।।१९५।।

वह जघन्य होती है।।१९६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जघन्य द्रव्य का एक समय अवस्थान पाया जाता है इसलिए गोत्रकर्म की जघन्य वेदना जानना चाहिए।

सूत्रार्थ —

उसके भाव की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।१९७।।

वह नियम से अजघन्य अनन्तगुणी अधिक होती है।।१९८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि सर्वोत्कृष्ट विशुद्धि के द्वारा हतसमुत्पत्ति को करके उत्पन्न कराये गये जघन्य अनुभाग की अपेक्षा सर्वविशुद्ध सूक्ष्मसाम्परायिक संयत के द्वारा बांधा गया उच्च गोत्र का उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा पाया जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है —

गोत्र के जघन्य अनुभाग में भी क्या उच्चगोत्र का जघन्य अनुभाग होता है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं —

ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि जिन्होंने पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र काल के द्वारा उच्चगोत्र का उद्वेलन किया है व जिन्होंने अतिशय विशुद्धि के द्वारा नीचगोत्र का घात कर लिया है उन बादर तेजस्कायिक जीवों में गोत्र का जघन्य अनुभाग स्वीकार किया गया है अतएव गोत्र के जघन्य अनुभाग में उच्चगोत्र का अनुभाग संभव नहीं है।

जिसके गोत्र कर्म की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य है उसके द्रव्य-काल और भाव की अपेक्षा क्या जघन्य है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से छह सूत्र अवतरित होते हैं —

जस्स गोदवेयणा खेत्तदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा
अजहण्णा॥१९९॥

णियमा अजहण्णा चउट्ठाणपदिदा॥२००॥

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — अत्र यथा नामकर्मसंबंधिद्रव्यस्य चतुःस्थानपतितत्वं प्ररूपितं तथा प्ररूपयितव्यं, विशेषाभावात्।

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा॥२०१॥

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया॥२०२॥

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — ओघजघन्यकालेन एकसमयेन जघन्यक्षेत्रकाले भागे हते पल्योपमस्य असंख्यातभागोनोन्सागरोपमसप्तभागेषु द्विभागोपलंभात्।

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा॥२०३॥

णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया॥२०४॥

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — नियमेन अजघन्या अनंतगुणाभ्यधिका भवति।

अत्र कश्चिदाह —

बादरतेजोवायुकायिकेषु उत्कृष्टविशुद्ध्या घातितनीचैर्गोत्रानुभागेषु गोत्रानुभागं जघन्यं कृत्वा तेन

सूत्रार्थ —

जिस जीव के क्षेत्र की अपेक्षा गोत्र की वेदना जघन्य होती है उसके द्रव्य की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?॥१९९॥

वह नियम से अजघन्य चार स्थानों में पतित होती है॥२००॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ जिस प्रकार से नामकर्म संबंधी द्रव्य के चार स्थानों में पतित होने की प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार से गोत्र के विषय में भी उक्त प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

सूत्रार्थ —

उसके काल की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?॥२०१॥

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है॥२०२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — क्योंकि एक समयरूप ओघ जघन्य काल का जघन्य क्षेत्र के काल में भाग देने पर पल्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन एक सागरोपम के सात भागों में से दो भाग पाये जाते हैं।

सूत्रार्थ —

उसके भाव की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?॥२०३॥

वह नियम से अजघन्य अनन्तगुणी अधिक होती है॥२०४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — नियम से अजघन्य अनन्तगुणी अधिक होती है।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

जघन्यानुभागेन सह ऋजुगत्या सूक्ष्मनिगोदेषु उत्पद्य त्रिसमयवर्ति-आहारक-त्रिसमयतद्भवस्थस्य क्षेत्रेण सह भावो जघन्यः किं न जायते ?

आचार्यदेवः प्राह —

न जायते, बादरतेजोवायुकायिकपर्याप्तकेषु जातजघन्यानुभागेन सह अन्यत्र उत्पत्तेः अभावात्। यदि अन्यत्र उत्पद्यते तर्हि नियमात् अनन्तगुणवृद्ध्या वर्धयित्वा चैवोत्पद्यते नान्यथा।

कथमेतद् ज्ञायते ?

जघन्यक्षेत्रवेदनाया भाववेदना नियमादनन्तगुणा इति सूत्रवचनात् एव ज्ञायते।

अधुना गोत्रवेदना कालापेक्षया यदि जघन्या तर्हि द्रव्य-क्षेत्र-भावापेक्षया किं जघन्येत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रषट्कमवतार्यते —

जस्स गोदवेयणा कालदो जहण्णा तस्स दब्बदो विं जहण्णा अजहण्णा।।२०५।।

जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा पञ्चट्ठाण-पदिदा।।२०६।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — यदि क्षपितकर्मांशिकलक्षणेनागतेन अयोगिचरमसमये कालो जघन्यः कृतः

जिन्होंने उत्कृष्ट विशुद्धि के द्वारा नीचगोत्र के अनुभाग का घात कर लिया है उन बादर तेजस्कायिक व वायुकायिक जीवों में गोत्र के अनुभाग को जघन्य करके उस जघन्य अनुभाग के साथ ऋजुगति के द्वारा सूक्ष्म निगोद जीवों में उत्पन्न होकर त्रिसमयवर्ती आहारक और तद्भवस्थ होने के तृतीय समय में वर्तमान उसके क्षेत्र के साथ भाव जघन्य क्यों नहीं होता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं —

नहीं होता है, क्योंकि बादर तेजस्कायिक व वायुकायिक पर्याप्तक जीवों में उत्पन्न जघन्य अनुभाग के साथ अन्य जीवों में उत्पन्न होना संभव नहीं है। यदि वह अन्य जीवों में उत्पन्न होता है तो नियम से वह अनन्तगुणवृद्धि से वृद्धि को प्राप्त होकर ही उत्पन्न होता है, अन्य प्रकार से नहीं।

शंका — यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान — वह 'जघन्य क्षेत्र वेदना के साथ भाव वेदना नियम से अनन्तगुणी होती है' ऐसे सूत्रवचन से ही जाना जाता है।

अब गोत्रकर्म की वेदना काल की अपेक्षा यदि जघन्य है तो द्रव्य-क्षेत्र और भाव की अपेक्षा क्या जघन्य है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के गोत्र की वेदना काल की अपेक्षा जघन्य होती है उसके वह क्या द्रव्य की अपेक्षा जघन्य होती है या अजघन्य ?।।२०५।।

वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। जघन्य की अपेक्षा अजघन्य पाँच स्थानों में पतित है।।२०६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि क्षपितकर्मांशिक स्वरूप से आये हुए जीव के द्वारा अयोगकेवली के अंतिम समय में काल जघन्य किया गया है तो काल के साथ द्रव्य भी जघन्य होता है परन्तु यदि वह अन्य

तर्हि कालेन सह द्रव्यमपि जघन्यं भवति। अथ यदि अन्यथा आगतस्तर्हि पंचस्थानपतिता, परमाणूत्तरक्रमेण चतुःपुरुषानाश्रित्य तत्र पंचवृद्धिदर्शनात्। तासां वृद्धानां प्ररूपणां ज्ञात्वा कर्तव्या।

तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।।२०७।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।२०८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अंगुलस्य असंख्यातभागमात्र-जघन्यावगाहनायाः संख्यातांगुलमात्रा-योगिजघन्यक्षेत्रे भागे हृतेऽपि असंख्यातरूपोपलंभात्।

तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।।२०९।।

णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।।२१०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — बादरतेजोवायुकायिकपर्याप्तजघन्यानुभागमपेक्ष्य सर्वविशुद्धेन सूक्ष्मसांपरायिकमहामुनिना बद्धोच्चैर्गोत्रोत्कृष्टानुभागस्य अनंतगुणत्वोपलंभात्।

अधुना गोत्रवेदना यस्य भावापेक्षया जघन्या तस्य द्रव्य-क्षेत्र-कालापेक्षया किं जघन्येत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रषट्कमवतार्यते —

जस्स गोदवेयणा भावदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।।२११।।

स्वरूप से आया है तो उक्त वेदना पाँच स्थानों में पतित होती है, क्योंकि चार पुरुषों का आश्रय करके वहाँ परमाणु अधिकता के क्रम से पाँच वृद्धियाँ देखी जाती हैं। उन वृद्धियों की प्ररूपणा जानकर करनी चाहिए।

सूत्रार्थ —

उसके क्षेत्र की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।२०७।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।२०८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र जघन्य अवगाहना का संख्यात घनांगुल प्रमाण अयोगकेवली के जघन्य क्षेत्र में भाग देने पर भी असंख्यातरूप पाये जाते हैं।

सूत्रार्थ —

उसके भाव की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।२०९।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।२१०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि बादर तेजस्कायिक व बादर वायुकायिक पर्याप्तकों में हुए जघन्य अनुभाग की अपेक्षा सर्वविशुद्ध सूक्ष्मसाम्परायिक महासंयत के द्वारा बांधा गया उच्च गोत्र का उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा पाया जाता है।

अब गोत्रकर्म की वेदना जिसके भाव की अपेक्षा जघन्य है उसके द्रव्य-क्षेत्र और काल की अपेक्षा क्या जघन्य है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से छह सूत्रों का अवतार किया जा रहा है —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के गोत्र की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य होती है उसके द्रव्य की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।२११।।

णियमा अजहण्णा चउट्ठाणपदिदा।।२१२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — तत्प्रायोग्यक्षपितकर्मांशिकजघन्यद्रव्यमादिं कृत्वा चतुःपुरुषानाश्रित्य द्रव्यस्य चतुःस्थानपतितत्वं प्ररूपयितव्यम्।

तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।।२१३।।**णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।२१४।।**

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — त्रिसमयाहारक-त्रिसमयतद्भवस्थ-सूक्ष्मनिगोदजघन्यावगाहनां अपेक्ष्य जघन्यभावस्वामि-बादरतेजोवायुकायिकपर्याप्तावगाहनायाः असंख्यातगुणत्वदर्शनात्। न च सूक्ष्मावगाहनाया बादरावगाहना सदृशा ऊना वा भवति किं तु असंख्यातगुणा चैव भवति।

कुत एतद् ज्ञायते ?

अवगाहनादण्डकसूत्रादेव ज्ञायते।

तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।।२१५।।**णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।२१६।।**

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतदपि सुगमं। एवं जघन्यवेदनासन्निकर्षः अष्टकर्मणां प्ररूपितो भवति।

वह नियम से अजघन्य चार स्थानों में पतित होती है।।२१२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — तत्प्रायोग्य क्षपितकर्मांशिक जीव के जघन्य द्रव्य से लेकर चार पुरुषों का आश्रय करके द्रव्य के चार स्थानों में पतित होने की प्ररूपणा करनी चाहिए।

सूत्रार्थ—

उसके क्षेत्र की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।२१३।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।२१४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — तीन समयवर्ती आहारक और तद्भवस्थ होने के तृतीय समय में वर्तमान सूक्ष्म निगोद जीव की जघन्य अवगाहना की अपेक्षा जघन्य भाव के स्वामिभूत बादर तेजस्कायिक, वायुकायिक पर्याप्त की अवगाहना असंख्यातगुणी देखी जाती है। बादर जीव की अवगाहना सूक्ष्म जीव की अवगाहना के बराबर या उससे हीन नहीं होती है, किन्तु वह उससे असंख्यातगुणी ही होती है।

शंका — यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान — यह अवगाहनादण्डक सूत्र अर्थात् अल्पबहुत्वदण्डक सूत्र से जाना जाता है।

सूत्रार्थ—

उसके काल की अपेक्षा वह क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।२१५।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।२१६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यह सूत्र भी सुगम है। इस प्रकार आठों कर्मों की जघन्य सन्निकर्षवेदना प्ररूपित की गई।

एवं त्रयोदशमस्थले गोत्रवेदनानिरूपणत्वेन चतुर्विंशतिसूत्राणि गतानि।

एवं स्वस्थानवेदनासन्निकर्षः परिसमाप्तः।

अथ परस्थानवेदनासन्निकर्षः कथ्यते —

अधुना परस्थानवेदनासन्निकर्ष भेदप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

**जो सो परत्थाणवेयणासणियासो सो दुविहो — जहण्णओ परत्थाण-
वेयणा-सणियासो चेव उक्कस्सओ परत्थाणवेयणासणियासो
चेव।।२१७।।**

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एवं परस्थानवेदनासन्निकर्षो द्विविधश्चैव भवति, अन्यस्यासंभवात्।

जघन्योत्कृष्टसंयोगेन त्रिविधः किन्न जायते ?

न जायते, द्वाभ्यां व्यतिरिक्तसंयोगाभावात्। नानुभयपक्षोऽपि, तस्य शशशृंगसमानत्वात्।

संप्रति जघन्यपरस्थानवेदनासन्निकर्षं त्यक्त्वा उत्कृष्टपरस्थानवेदनासन्निकर्षभेदप्रतिपादनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

जो सो जहण्णओ परत्थाणवेयणासणियासो सो थप्पो।।२१८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अत्रानुपूर्वी-अधिकारो नास्तीति ज्ञातव्यं।

सा किमर्थं अत्र विवक्षितास्ति ?

इस प्रकार तेरहवें स्थल में गोत्रकर्म की वेदना का निरूपण करने वाले चौबीस सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार स्वस्थानवेदनासन्निकर्ष समाप्त हुआ।

अब परस्थानवेदनासन्निकर्ष कहा जाता है —

अब परस्थानवेदनासन्निकर्ष के भेद प्रतिपादित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

**जो वह परस्थानवेदनासन्निकर्ष है वह दो प्रकार का है — जघन्य परस्थानवेदना
सन्निकर्ष और उत्कृष्ट परस्थानवेदनासन्निकर्ष।।२१७।।**

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस प्रकार से परस्थानवेदनासन्निकर्ष दो प्रकार का ही है, क्योंकि और अन्य की संभावना नहीं है।

शंका — जघन्य और उत्कृष्ट के संयोग से वह तीन प्रकार का क्यों नहीं होता है ?

समाधान — नहीं होता है, क्योंकि दोनों से भिन्न संयोग का अभाव है। अनुभय पक्ष भी संभव नहीं है, क्योंकि वह खरगोश के सींगों के समान असंभव है।

अब जघन्य परस्थानवेदनासन्निकर्ष को छोड़कर उत्कृष्ट परस्थानवेदनासन्निकर्ष के भेद बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जो वह जघन्य परस्थानवेदनासन्निकर्ष है वह अभी स्थगित रखा जाता है।।२१८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि यहाँ आनुपूर्वी का अधिकार नहीं है।

शंका — उसकी वहाँ विवक्षा किसलिए की जा रही है ?

तस्मिन्नुत्कृष्टपरस्थानवेदनासन्निकर्षे अवगते सति जघन्यः परस्थानवेदनासन्निकर्षः अवगम्यते सुखेनेति।

जो सो उक्कस्सओ परत्थाणवेयणासणियासो सो चउव्विहो — दव्वदो खेत्तदो कालदो भावदो चेदि।।२१९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एवं चतुर्विधश्चैव, अन्यस्यानुपलंभात्।

अत्र कश्चिदाशंकते —

एकसंयोग-द्विसंयोग-त्रिसंयोग-चतुःसंयोगैः पंचदशविधः किन्न जायते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

न जायते, संयोगस्य जात्यन्तरीभूतस्य अनुपलंभात्। न सर्वात्मना संयोगो, द्वयोरेकतरस्याभावेन संयोगाभावप्रसंगात्। नैकदेशेन संयोगः, संयुक्तभावस्य अभावप्रसंगात् इतरत्रापि संयोगाभावप्रसंगात्। तत एतेनाभिप्रायेण चतुर्विधश्चैव उत्कृष्टवेदनासन्निकर्षः इति सिद्धं जातम्।

एवं चतुर्दशमस्थले परस्थानसन्निकर्षवेदनाभेदादिप्रतिपादनपराणि त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अधुना यस्य ज्ञानावरणवेदना द्रव्यतः उत्कृष्टा तस्य षट्कर्मणां द्रव्यापेक्षया किं उत्कृष्टेत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

समाधान — उत्कृष्ट परस्थानवेदनासन्निकर्ष का ज्ञान हो जाने पर चूँकि जघन्य परस्थान वेदनासन्निकर्ष-सुखपूर्वक जाना जा सकता है, अतएव यहाँ उसकी विवक्षा की गई है।

सूत्रार्थ —

जो वह उत्कृष्ट परस्थानवेदनासन्निकर्ष है वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा चार प्रकार का है।।२१९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस प्रकार से वह चार प्रकार का ही है, क्योंकि उनसे भिन्न और कोई भेद नहीं पाया जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है —

एक संयोग, द्विसंयोग, त्रिसंयोग और चतुःसंयोग से वह पन्द्रह प्रकार का क्यों नहीं होता है ?

आचार्य इसका समाधान करते हैं —

नहीं होता है, क्योंकि उससे भिन्न जात्यन्तरीभूत संयोग पाया नहीं जाता। यदि वह पाया जाता है तो क्या सर्वात्मक स्वरूप से अथवा एकदेश स्वरूप से ? वह संयोग सर्वात्मक स्वरूप से तो संभव है नहीं, क्योंकि इस प्रकार से दोनों में से एक का अभाव हो जाने के कारण संयोग से ही अभाव का प्रसंग आता है। एकदेश रूप से भी वह संभव नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर संयुक्तता के अभाव का प्रसंग आता है अथवा अन्यत्र भी संयोग के अभाव का प्रसंग होना चाहिए अतएव इस अभिप्राय से चार प्रकार का ही उत्कृष्ट वेदनासन्निकर्ष है यह सिद्ध होता है।

इस प्रकार चौदहवें स्थल में परस्थानवेदनासन्निकर्ष के भेद आदि का प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब जिसके ज्ञानावरण कर्म की वेदना द्रव्य से उत्कृष्ट है उसके छह कर्मों के द्रव्य की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

जस्स णाणावरणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सा तस्स छण्णं कम्माणमाउव-
वज्जाणं दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।।२२०।।

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा, उक्कस्सादो अणुक्कस्सा विट्ठाण-
पदिदा।।२२१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — शुद्धनयविषयभूतगुणितकर्मांशिकलक्षणेन आगत्य नारकचरमसमये स्थितस्य द्रव्यं ज्ञानावरणीयद्रव्येण सह षण्णां कर्मणां द्रव्यं उत्कृष्टं भवति। अथ ज्ञानावरणीयद्रव्यस्य शुद्धनयविषयभूत-
गुणितकर्मांशिको भूत्वा यदि शेषकर्मणामशुद्धनयविषयभूतगुणितकर्मांशिको भवति तर्हि तेषां द्रव्यवेदना अनुत्कृष्टा। सापि द्विःस्थानपतिता, अन्यस्यासंभवात्। एतद् द्रव्यार्थिकनयसूत्रं।

संप्रति पर्यायार्थिकनयशिष्यानुग्रहार्थमुत्तरसूत्रमवतार्यते —

अणंतभागहीणा वा असंखेज्जभागहीणा।।२२२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ज्ञानावरणीयद्रव्यस्य उत्कृष्टसंचयं कृत्वा यदि अपि शेषषट्कर्मणामेक-
प्रदेशोऽनुत्कृष्टसंचयं करोति तर्हि तेषां द्रव्यवेदना अनुत्कृष्टा भूत्वा अनंतभागहीना।

कः प्रतिभागः ?

उत्कृष्टद्रव्यं प्रतिभागः। द्विप्रदेशोनस्य उत्कृष्टद्रव्यस्य संचये कृतेऽपि अनंतभागहीना भवति।

सूत्रार्थ —

जिस जीव के ज्ञानावरणीय की वेदना द्रव्य की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके आयु को छोड़कर शेष छह कर्मों की वेदना द्रव्य की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?।।२२०।।

वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी, उत्कृष्ट की अपेक्षा अनुत्कृष्ट दो स्थानों में पतित है।।२२१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — शुद्धनय के विषयभूत गुणितकर्मांशिक स्वरूप से आकर नारक भव के अंतिम समय में स्थित जीव के ज्ञानावरणीय के द्रव्य के साथ छह कर्मों का द्रव्य उत्कृष्ट होता है परन्तु ज्ञानावरणीय द्रव्य का शुद्धनय का विषयभूत गुणितकर्मांशिक होकर यदि शेष कर्मों का अशुद्धनय का विषयभूत गुणितकर्मांशिक होता है तो उनकी द्रव्यवेदना अनुत्कृष्ट होती है। वह भी द्विस्थान पतित है, क्योंकि यहाँ अन्य स्थान की संभावना नहीं है। यह द्रव्यार्थिकनय का आश्रय करने वाला सूत्र है।

अब पर्यायार्थिक नय वाले शिष्यों के अनुग्रह हेतु उत्तर सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

अनन्तभागहीन अथवा असंख्यातभागहीन होती है।।२२२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ज्ञानावरणीय द्रव्य का उत्कृष्ट संचय करके यदि शेष छह कर्मों का एक प्रदेश हीन उत्कृष्ट संचय करता है तो उनकी वेदना द्रव्य की अपेक्षा अनुत्कृष्ट होकर अनन्तभाग हीन होती है।

प्रश्न — प्रतिभाग क्या है ?

उत्तर — उत्कृष्ट द्रव्य प्रतिभाग है। दो प्रदेशों से हीन उत्कृष्ट द्रव्य का संचय करने पर भी अनन्तभाग

अत्र कः प्रतिभागः ?

उत्कृष्टद्रव्यस्य द्विभागः प्रतिभागः। एवमेतेन क्रमेण अनन्तभागहानिर्भूत्वा तावद् गच्छति यावदुत्कृष्टद्रव्य-
मुत्कृष्टसंख्यातेन खण्डयित्वा तत्रैकखण्डमुत्कृष्टद्रव्यात् परिहीनं इति। ततः प्रभृति असंख्यातभागहानिर्भूत्वा
गच्छति यावदुत्कृष्टद्रव्यं तत्प्रायोग्येन पल्योपमस्य असंख्यातभागेन खण्डिते तत्र एकखण्डेन परिहीनमिति।

अधिकं किन्न हीयते ?

न, गुणितकर्मांशिके उत्कृष्टेन यदि क्षयो भवति तर्हि एकसमयप्रबद्धश्चैव क्षीयते इति गुरुपदेशात्।
तस्मात् द्वे चैव हान्यौ गुणितकर्मांशिके भवतीति सिद्धम्।

अधुना आयुर्वेदना द्रव्यतः किमुत्कृष्टेत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स आउअवेयणा दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।।२२३।।

णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा।।२२४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — गुणितकर्मांशिकचरमसमयनारकायुर्द्रव्यमेकसमयप्रबद्धस्य असंख्यातभागः,
द्वयर्धगुणहानिगुणितान्योन्याभ्यस्तराशिना बन्धककालमात्रसमयप्रबद्धेषु अपवर्तितेषु एकसमयप्रबद्धस्य
असंख्यात-भागोपलंभात्। आयुषः उत्कृष्टद्रव्यं पुनः द्वि-उत्कृष्टबन्धककालमात्रसमयप्रबद्धसमानं। तेन
स्वकोत्कृष्टद्रव्यमपेक्ष्य गुणितकर्मांशिक-आयुर्द्रव्यवेदना असंख्यातगुणहीना। यद्यपि आयुर्द्रव्ये परभवे असंख्याता

हीन होती है।

प्रश्न — यहाँ प्रतिभाग गया है ?

उत्तर — उत्कृष्ट द्रव्य का द्वितीय भाग प्रतिभाग है। इस प्रकार इस क्रम से अनन्तभागहानि होकर तब
तक जाती है जब तक कि उत्कृष्ट द्रव्य को उत्कृष्ट संख्यात से खण्डित कर उसमें से एक खण्ड उत्कृष्ट द्रव्य
में से हीन होता है। वहाँ से लेकर उत्कृष्ट द्रव्य को तत्प्रायोग्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग से खण्डित करने
पर उसमें एक खण्ड से हीन होने तक असंख्यात भागहानि होकर जाती है।

शंका — अधिक हीन क्यों नहीं होता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि गुणितकर्मांशिक जीव में उत्कृष्टरूप से यदि क्षय होता है तो एक समयप्रबद्ध
का ही क्षय होता है, ऐसा गुरु का उपदेश है। इस कारण गुणितकर्मांशिक जीव में दो ही हानियाँ होती हैं, यह
सिद्ध होता है।

अब आयु कर्म की वेदना द्रव्य से क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

**उसके आयुकर्म की वेदना द्रव्य की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या
अनुत्कृष्ट ?।।२२३।।**

वह नियम से अनुत्कृष्ट असंख्यातगुणी हीन होती है।।२२४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि गुणितकर्मांशिक चरमसमयवर्ती नारकी का
आयुर्द्रव्य एक समयप्रबद्ध के असंख्यातवें भाग प्रमाण होता है, क्योंकि डेढ़ गुणहानियों से गुणित अन्योन्याभ्यस्त
राशि द्वारा, बन्धक काल प्रमाण समयप्रबद्धों के अपवर्तित करने पर एक समयप्रबद्ध का असंख्यातवाँ भाग
पाया जाता है परन्तु आयु कर्म का उत्कृष्ट द्रव्य दो उत्कृष्ट बन्धक काल प्रमाण समयप्रबद्धों के बराबर है

गुणहानयो न गलन्ति तर्हीपि ज्ञानावरणीयादिसप्तकर्मयुक्ते गुणितकर्माशिके आयुर्द्रव्यस्य असंख्यातगुणहीनमेव,
यदा यदा आयुर्बध्नाति तदा तदा तत्प्रायोग्येण जघन्येन योगेन बध्नाति इति सूत्रवचनात्।

संप्रति षट्कर्मणां वेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं छण्णं कम्माणमाउववज्जाणं।।२२५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यथा ज्ञानावरणीयस्य प्ररूपणा कृता तथा षण्णां कर्मणां कर्तव्या, विशेषाभावात्।

यस्यायुर्वेदना द्रव्यापेक्षया उत्कृष्टा तस्य शेषकर्मणां वेदना द्रव्यापेक्षया किमितिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

जस्स आउअवेयणा दव्वदो उक्कस्सा तस्स सत्तण्णं कम्माणं वेयणा

दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।।२२६।।

णियमा अणुक्कस्सा चउट्ठाणपदिदा।।२२७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — गुणितकर्माशिको जीवः सप्तमपृथ्वीतः आगत्य एकद्वित्रिभवग्रहणप्रमाणायुः-
सहित-पंचेन्द्रियतिर्यक्षु भ्रमित्वा पश्चात् एकेन्द्रियेषु उत्पन्नः।

‘एग-दो-तिण्ण भवग्गहणाणि त्ति।’ अत्र किमर्थं त्रयाणां अपि निर्देशः क्रियते ?

आचार्योपदेशबहुत्वज्ञापनार्थं अयं निर्देशः कृतः। पुनः पूर्वकोट्यायुष्क तिर्त्यक्षु मनुष्येषु वा आयुर्बध्नाति

इसलिए अपने उत्कृष्ट द्रव्य की अपेक्षा गुणितकर्माशिक जीव के आयु द्रव्य की वेदना असंख्यातगुणी हीन होती है। यद्यपि परभव संबंधी आयुर्कर्म के द्रव्य में से असंख्यात गुणहानियाँ नहीं गलती हैं तो भी ज्ञानावरणादिक सात कर्मयुक्त गुणितकर्माशिक जीव में आयु का द्रव्य असंख्यातगुण हीन ही होता है, क्योंकि जब तक आयु कर्म को बांधता है, तब तक तत्प्रायोग्य जघन्य योग से बांधता है, ऐसा सूत्र वचन है।

अब छह कर्मों की वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार से आयु को छोड़कर शेष छह कर्मों की प्ररूपणा है।।२२५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जिस प्रकार ज्ञानावरणीय की प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार छह कर्मों की प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

जिसके आयु की वेदना द्रव्य की अपेक्षा उत्कृष्ट है उसके शेष कर्मों की वेदना द्रव्य की अपेक्षा क्या है ? इस प्रकार प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के आयुर्कर्म की वेदना द्रव्य की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके सात कर्मों की वेदना द्रव्य की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?।।२२६।।

वह नियम से अनुत्कृष्ट चार स्थानों में पतित होती है।।२२७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — गुणितकर्माशिक जीव सातवीं पृथिवी से आकर एक दो तीन भवग्रहण प्रमाण पंचेन्द्रिय जीवों में परिभ्रमण करके पीछे एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न हुआ।

शंका — ‘एक दो तीन भवग्रहण प्रमाण’ इस प्रकार तीन का भी निर्देश किसलिए किया जा रहा है ?

समाधान — उक्त निर्देश आचार्योपदेश के बहुत्व का ज्ञापन कराने के लिए किया गया है। पश्चात्

पूर्वकोटि त्रिभागे स्थित्वा पुनरपि जलचरेषु पूर्वकोट्यायुर्बध्धयित्वा तत्रोत्पद्य कदलीघातेन भुज्यमानायुर्घातयित्वा उत्कृष्टबन्धककाले उत्कृष्टयोगेन च पूर्वकोट्यायुषि प्रबद्धे आयुर्द्रव्यमुत्कृष्टं भवति। शेष सप्तकर्मद्रव्यं पुनः उत्कृष्टद्रव्यं पल्योपमस्य असंख्यातभागेन खण्डयित्वा तत्र एकखण्डं हीनं भवति।

ततः प्रभृति असंख्यातभागहानिर्भूत्वा गच्छति यावद् उत्कृष्टसंख्यातमुत्कृष्टद्रव्यस्य हानि-आगमनार्थं भागहारो जात इति। ततः प्रभृति उपरि संख्यातभागहानिर्भवति यावद् उत्कृष्टद्रव्यस्य हानि-आगमनार्थं द्विरूपभागहारजात इति। ततः प्रभृति संख्यातगुणहानिर्भवति यावत् जघन्यपरीतासंख्यातेन उत्कृष्टद्रव्ये खण्डिते तत्र एकखण्डमवशेषमिति। एतस्मात् प्रभृति असंख्यातगुणहानिर्भूत्वा गच्छति यावत् आयुरुत्कृष्ट-द्रव्याविरोधिक्षपितकर्मांशिकजघन्यद्रव्यमिति। एवमायुषि उत्कृष्टे जाते शेषकर्मणां चतुःस्थानपतितत्वं सिद्धम्।

संप्रति पर्यायार्थिकनयशिष्यानुग्रहार्थं उत्तरसूत्रं भण्यते —

**असंखेज्जभागहीणा वा संखेज्जभागहीणा वा संखेज्जगुणहीणा वा
असंखेज्ज-गुणहीणा वा॥२२८॥**

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—असंख्यातभागहीणा वा संख्यातभागहीणा वा संख्यातगुणहीणा वा असंख्यातगुणहीणा वा चतुःस्थानपतिता कथिता ज्ञातव्या।

एवं पंचदशमस्थले ज्ञानावरणादि-अष्टकर्मणां द्रव्यापेक्षया सन्निकर्षकथनपरत्वेन नवसूत्राणि गतानि।

पूर्वकोटि प्रमाण आयु वाले तिर्यचों या मनुष्यों में आयु को बांधकर पूर्वकोटि के त्रिभाग में स्थित होकर फिर से भी जलचर जीवों में पूर्वकोटि प्रमाण आयु को बांधकर उनमें उत्पन्न हो कदलीघात से भुज्यमान आयु को घातकर उत्कृष्ट बन्धककाल में उत्कृष्ट योग के द्वारा पूर्वकोटि मात्र आयु के बांधने पर आयु का द्रव्य उत्कृष्ट होता है परन्तु शेष सात कर्मों का द्रव्य उत्कृष्ट द्रव्य को पल्योपम के असंख्यातवें भाग से खण्डित कर उसमें एक खण्ड से हीन होता है। उससे लेकर उत्कृष्ट द्रव्य की हानि को लाने के लिए उत्कृष्ट संख्यात के भागहार होने तक असंख्यात भागहानि होकर जाती है। वहाँ से लेकर आगे उत्कृष्ट द्रव्य की हानि को लाने के लिए दो अंक भागहार होने तक संख्यातभागहानि होती है। यहाँ से लेकर जघन्यपरीतासंख्यात से उत्कृष्ट द्रव्य को खण्डित करने पर उसमें एक खण्ड के शेष रहने तक संख्यातगुणहानि होती है। यहाँ से लेकर आयु कर्म के उत्कृष्ट द्रव्य के अविरोधी क्षपितकर्मांशिक के जघन्य द्रव्य तक असंख्यातगुणहानि होकर जाती है। इस प्रकार आयु के उत्कृष्ट होने पर शेष कर्मद्रव्य चार स्थानों में पतित है, यह सिद्ध होता है।

अब पर्यायार्थिक नय वाले शिष्यों के अनुग्रह हेतु उत्तर सूत्र कहते हैं —

सूत्रार्थ —

वह असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन, संख्यातगुणहीन अथवा असंख्यातगुणहीन होती है॥२२८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—शेष कर्मों की वेदना के संबंध में यही कथन जानना चाहिए कि असंख्यातभागहीन अथवा संख्यातभागहीन या संख्यातगुणहीन अथवा असंख्यातगुणहीन इन चार स्थानों में पतित होती है।

इस प्रकार पन्द्रहवें स्थल में ज्ञानावरणादि आठों कर्मों का द्रव्य की अपेक्षा सन्निकर्ष कथन करने वाले

अधुना ज्ञानावरणवेदना यस्य क्षेत्रापेक्षया उत्कृष्टा तस्य दर्शनावरणादिकर्मणां क्षेत्रापेक्षया किं इति प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रपंचकमवतार्यते —

**जस्स णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो उक्कस्सा तस्स दंसणावरणीय-
मोहणीयअंतराइयवेयणा खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा॥२२९॥**

उक्कस्सा॥२३०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ज्ञानावरणेन इव शेषघातिकर्मभिरपि सार्धसप्तरज्जु आयतं संख्यात-सूच्यंगुलविस्तार-बाहल्यं सर्वमपि क्षेत्रं स्पर्शितं, सर्वकर्मणामपि जीवद्वारेण भेदाभावात्। तेन एकैकस्य घातिकर्मणः उत्कृष्टक्षेत्रे जाते शेषघातिकर्मणामपि क्षेत्रमुत्कृष्टमेवेति सिद्धम्।

**तस्स वेयणीय-आउअ-णामा-गोदवेयणा खेत्तदो किमुक्कस्सा अणु-
क्कस्सा॥२३१॥**

णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा॥२३२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — महामत्स्यस्य उत्कृष्टक्षेत्रेण घनलोके भागे हते प्रतरस्य असंख्यात-भागमात्रगुणकारोपलंभात्।

नौ सूत्र पूर्ण हुए।

अब ज्ञानावरण की वेदना जिसके क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट है उसके दर्शनावरण आदि कर्मों की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा क्या है ? इस प्रकार के प्रश्नोत्तररूप से पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?॥२२९॥

वह वेदना उत्कृष्ट होती है॥२३०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ज्ञानावरण के समान ही शेष घातिया कर्मों के द्वारा साढ़े सात राजु आयत व संख्यात सूच्यंगुल विस्तार एवं बाहल्य वाला सभी क्षेत्र स्पर्श किया गया है, क्योंकि सभी कर्मों में भी जीव के द्वारा कोई भेद नहीं है इसीलिए एक-एक घाति कर्म का उत्कृष्ट क्षेत्र होने पर शेष घाति कर्मों का भी क्षेत्र उत्कृष्ट ही होता है, यह सिद्ध है।

सूत्रार्थ —

उसके वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?॥२३१॥

वह नियम से अनुत्कृष्ट असंख्यातगुणहीन होती है॥२३२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि महामत्स्य के उत्कृष्ट क्षेत्र का घनलोक में भाग देने पर प्रतर का असंख्यातवाँ भागमात्र गुणकार पाया जाता है।

एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराड्याणं ।। २३३ ।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यथा ज्ञानावरणीयस्य प्ररूपणा कृता तथा शेषत्रयाणां घातिकर्मणां प्ररूपणा कर्तव्या, अविशेषत्वात्।

अधुना वेदनीयवेदना यस्य क्षेत्रापेक्षयोत्कृष्टा तस्य शेषकर्मणां किमिति प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

**जस्स वेयणीयवेयणा खेत्तदो उक्कस्सा तस्स णाणावरणीय-दंसणा-
वरणीय-मोहणीय-अंतराड्यवेयणा खेत्तदो उक्कस्सिया णत्थि ।। २३४ ।।**

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — घातिचतुष्कस्य लोकपूरणसमुद्घातकाले अभावात्।

किमर्थं पूर्वमेव तदभावः ?

नैतद् वक्तव्यं, स्वाभाविकत्वात्। न च स्वभावः परपर्यनुयोगार्हः, विरोधात्।

तस्स आउअ-णामा-गोदवेयणा खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ।। २३५ ।।

उक्कस्सा ।। २३६ ।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — लोके आपूरिते जीवादिभिन्नानामेतेषां कर्मणां वेदनीयस्य इव सर्वलोकाव-

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय की प्ररूपणा करनी चाहिए ।। २३३ ।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जिस प्रकार से ज्ञानावरणीय की प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार से शेष तीन घाति कर्मों की प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

अब वेदनीय कर्म की वेदना जिसके क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट है उसके शेष कर्मों की क्या है ? इस प्रकार प्रश्नोत्तररूप से चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के वेदनीय की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट नहीं होती है ।। २३४ ।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि लोकपूरण समुद्घात के काल में चारों घातिया कर्मों का अभाव पाया जाता है।

शंका — उनका अभाव पहले ही किसलिए हो जाता है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि ऐसा स्वभाव से होता है और स्वभाव दूसरों के प्रश्न के योग्य नहीं होता है, क्योंकि उसमें विरोध आता है।

सूत्रार्थ —

उसके आयु, नाम और गोत्रकर्म की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ? ।। २३५ ।।

उत्कृष्ट होती है ।। २३६ ।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि लोक के पूर्ण होने पर अर्थात् लोकपूरण समुद्घात

स्थानानुपलंभात्।

एवमाउअ-णामा-गोदाणं।।२३७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यथा वेदनीयकर्मविवक्षायां शेषकर्मणां प्ररूपणा कृता, तथा एतेष्वपि त्रिषु कर्मसु विवक्षितेषु प्ररूपणा कर्तव्या।

एवं षोडशस्थले ज्ञानावरणादिकर्मणां क्षेत्रापेक्षया वेदनाप्रतिपादनपराणि नव सूत्राणि गतानि।

अधुना यस्य ज्ञानावरणवेदना कालापेक्षया उत्कृष्टा तस्य शेषकर्मणां किमितिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्राष्टकमवतार्यते —

जस्स णाणावरणीयवेयणा कालदो उक्कस्सा तस्स छण्णं कम्माणं
आउअ-वज्जाणं वेयणा कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।।२३८।।

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा, उक्कस्सादो अणुक्कस्सा असंखेज्ज-
भागहीणा।।२३९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ज्ञानावरणीयेन सह यदि शेषषट्कर्मभिः उत्कृष्टस्थितिः प्रबद्धा तर्हि ज्ञानावरणीयेन सह शेषषट्कर्मण्यपि स्थितिं प्रतीत्य उत्कृष्टानि चैव भवन्ति। यदि पुनः विशेषप्रत्ययैः शेषकर्माणि विकलानि भवन्ति तर्हि ज्ञानावरणीयस्थितौ उत्कृष्टायां सत्यां शेषकर्मस्थितिरनुत्कृष्टा भवति, विशेषप्रत्ययविकलत्वेन

में जीव से अभिन्न इन कर्मों का वेदनीय कर्म के समान सम्पूर्ण लोक में अवस्थान नहीं पाया जाता है।

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार आयु, नाम और गोत्र की विवक्षा में भी प्ररूपणा करनी चाहिए।।२३७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जिस प्रकार से वेदनीय कर्म की विवक्षा में शेष कर्मों की प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार से इन तीन कर्मों की विवक्षा में प्ररूपणा करनी चाहिए।

इस प्रकार सोलहवें स्थल में ज्ञानावरण आदि कर्मों की क्षेत्र की अपेक्षा वेदना का प्रतिपादन करने वाले नौ सूत्र पूर्ण हुए।

अब जिसके ज्ञानावरण की वेदना काल की अपेक्षा उत्कृष्ट है उसके शेष कर्मों की क्या है ?

इस प्रकार के प्रश्नोत्तररूप से आठ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिसके ज्ञानावरणीय की वेदना काल की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके आयु को छोड़कर शेष छह कर्मों की वेदना काल की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती या अनुत्कृष्ट ?।।२३८।।

वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी। उत्कृष्ट की अपेक्षा अनुत्कृष्ट असंख्यातभाग हीन होती है।।२३९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ज्ञानावरणीय कर्म के साथ यदि शेष छह कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति बांधी गई है तो ज्ञानावरणीय के साथ शेष छह कर्म भी स्थिति की अपेक्षा उत्कृष्ट ही होते हैं परन्तु यदि विशेष प्रत्ययों से शेष कर्म विकल होते हैं तो ज्ञानावरणीय की स्थिति के उत्कृष्ट होने पर शेष कर्मों की स्थिति अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि विशेष प्रत्ययों से विकल होने के कारण एक समय से लेकर उत्कृष्ट रूप से

एकसमयमादिं कृत्वा यावदुत्कृष्टेन पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रस्थितीनां परिहानिदर्शनात्।

परिहीनास्थितीनां कः प्रतिभागः ?

सातिरेकोत्कृष्टाबाधा प्रतिभागो भवति।

कुतः ?

उत्कृष्टाबाधायाः उत्कृष्टस्थितौ खण्डितायां तत्र एकखण्डस्य रूपोनमात्रस्य परिहानिदर्शनात्।

उत्कृष्टेन एतावती एव हानिर्भवति, अन्यथा आबाधाहानौ ज्ञानावरणीयस्यापि उत्कृष्टस्थितेरभावप्रसंगात्।

अधुना आयुर्वेदना कालापेक्षया किमुत्कृष्टेत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स आउअवेयणा कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।।२४०।।

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा, उक्कस्सादो अणुक्कस्सा चउट्ठाण-

पदिदा।।२४१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ज्ञानावरणीयस्थितौ उत्कृष्टायां बध्यमानायां यदि आयुषोऽपि पूर्वकोटित्रिभाग-प्रथमसमये उत्कृष्टबंधो भवति तर्हि ज्ञानावरणीयस्थित्या सह आयुःस्थितिरपि उत्कृष्टा भवति। अन्यथा अनुत्कृष्टा भूत्वा चतुःस्थानपतिता भवति। तद्यथा — ज्ञानावरणीयस्य उत्कृष्टस्थितिं बध्यमानेन समयोन-द्विसमयानादिक्रमेण पूर्वकोटित्रिभागाधिक-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि उत्कृष्टसंख्यातेन खण्डयित्वा तत्र

पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र स्थितियों की हानि देखी जाती है।

शंका — हीन स्थितियों का प्रतिभाग क्या है ?

समाधान — उनका प्रतिभाग साधिक उत्कृष्ट आबाधा है।

क्यों ?

क्योंकि उत्कृष्ट आबाधा से उत्कृष्ट स्थिति को खण्डित करने पर उसमें एक कम एक खण्ड मात्र की हानि देखी जाती है।

उत्कृष्ट से इतनी मात्र ही हानि होती है, अन्यथा आबाधा की हानि होने पर ज्ञानावरणीय कर्म की भी उत्कृष्ट स्थिति के अभाव का प्रसंग आता है।

अब आयु कर्म की वेदना काल की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके आयु की वेदना काल की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?।।२४०।।

वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी, उत्कृष्ट की अपेक्षा अनुत्कृष्ट चार स्थानों में पतित है।।२४१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ज्ञानावरणीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति के बांधते समय यदि आयुर्कर्म का भी पूर्वकोटि के त्रिभाग के प्रथम समय में उत्कृष्ट बंध होता है तो ज्ञानावरणीय की स्थिति के साथ आयु की स्थिति भी उत्कृष्ट होती है। इसके विपरीत वह अनुत्कृष्ट होकर चार स्थानों में पतित होती है। वह इस प्रकार है — ज्ञानावरणीय की उत्कृष्ट स्थिति को बांधने वाले जीव के द्वारा एक समय कम, दो समय कम इत्यादि

एकखण्डमात्रं यावत् परिहाप्य आयुषि प्रबद्धे असंख्यातभागहानिर्भवति। ततः प्रभृति आयुषः संख्यातभागहानिर्भूत्वा गच्छति यावत् उत्कृष्टस्थितेः द्विभागबंध इति। ततः प्रभृति संख्यातगुणहानिर्भवति यावद् ज्ञानावरणीय-उत्कृष्टस्थित्या सह आयुषः उत्कृष्टस्थितिं जघन्यपरीतासंख्यातेन खण्डयित्वा तत्र एकखंडमात्रायुःस्थितिः प्रबद्धा इति। ततः प्रभृति असंख्यातगुणहानिर्भूत्वा गच्छति यावत् तत्प्रायोग्यान्तर्मुहूर्त-मात्रस्थितिरिति।

अत्र कश्चिदाह —

ज्ञानावरणीयोत्कृष्टस्थितिप्रायोग्यपरिणामैः आयुषः चतुःस्थानपतितो बंधः कथं जायते ?

आचार्यदेवः प्राह —

नैष दोषः, ज्ञानावरणीयोत्कृष्टस्थितिबंधप्रायोग्यपरिणामेष्वपि अंतर्मुहूर्तमात्रायुष्कस्थितिबंधप्रायोग्य-परिणामानां संभवात्।

कथमेकः परिणामः भिन्नकार्यकारकः ?

न, सहकारिकारणसंबंधभेदेन तस्य तदविरोधात्।

अधुना षट्कर्म सन्निकर्षनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं छण्णं कम्माणं आउववज्जाणं।।२४२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यथा ज्ञानावरणीये निरुद्धे शेषकर्मणां सन्निकर्षः कृतः तथा शेषकर्मणामा-युर्वर्जितानां कर्तव्यं, विशेषाभावात्।

क्रम से पूर्वकोटि के त्रिभाग से अधिक तेतीस सागरोपमों को उत्कृष्ट संख्यात से खण्डित कर उनमें एक खण्ड मात्र तक हीन होकर आयु के बांधने पर असंख्यातभागहानि होती है। वहाँ से लेकर आयु की संख्यातभाग हानि होकर उत्कृष्ट स्थिति के द्वितीय भाग का बंध होने तक जाती है। वहाँ से लेकर ज्ञानावरणीय की उत्कृष्ट स्थिति के साथ आयु की उत्कृष्ट स्थिति को जघन्यपरीतासंख्यात से खण्डित कर उसमें एक खण्ड प्रमाण आयु की स्थिति के बांधने तक संख्यातगुणहानि होती है। वहाँ से लेकर तत्प्रायोग्य अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थिति तक असंख्यातगुणहानि होकर जाती है।

यहाँ कोई शंका करता है —

ज्ञानावरणीय की उत्कृष्ट स्थिति योग्य परिणामों के द्वारा आयु कर्म का चतुःस्थान पतित बंध कैसे होता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं —

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि ज्ञानावरणीय की उत्कृष्ट स्थिति के बंध योग्य परिणामों में भी अन्तर्मुहूर्त मात्र आयुः स्थिति के बंध योग्य परिणाम संभव हैं।

शंका — एक परिणाम भिन्न कार्यों का करने वाला कैसे होता है ?

समाधान — नहीं कहना, क्योंकि सहकारी कारणों के संबंध भेद से उसके भिन्न कार्यों के करने में कोई विरोध नहीं आता है।

अब षट्कर्मों के सन्निकर्ष का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार शेष छह कर्मों की प्ररूपणा करनी चाहिए।।२४२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जिस प्रकार ज्ञानावरणीय की विवक्षा में शेष कर्मों के सन्निकर्ष की

अधुना यस्य आयुर्वेदना कालापेक्षया उत्कृष्टा तस्य सप्तकर्मणां किमिति प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

जस्स आउअवेयणा कालदो उक्कस्सा तस्स सत्तण्णं कम्माणं वेयणा कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।।२४३।।

उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा, उक्कस्सादो अणुक्कस्सा तिट्ठाण-पदिदा।।२४४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — पूर्वकोटि त्रिभागे उत्कृष्टायुःस्थितिं बध्यमानेन यदि ज्ञानावरणीयादिसप्तकर्मणां उत्कृष्टस्थितिः प्रबद्धा तर्हि आयुषा सह शेषसप्तानां कर्मणां अपि उत्कृष्टस्थितिर्भवति। अन्यथा अनुत्कृष्टा भूत्वा त्रिस्थानपतिता भवति।

पर्यायार्थिकनयशिष्यानुग्रहार्थं उत्तरसूत्रं भण्यते —

असंखेज्जभागहीणा वा संखेज्जभागहीणा वा संखेज्जगुणहीणा वा।।२४५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — पूर्वकोटि त्रिभागे उत्कृष्टायुःस्थितिं बध्यमानेन सप्तानां कर्मणां समयोक्तकृष्ट-स्थितौ बध्यमानायां असंख्यातभागहानिर्भवति। द्विसमयोनायां प्रबद्धायामपि असंख्यात-भागहानिश्चैव भवति। एवमसंख्यातभागहानिर्भूत्वा तावद् गच्छति यावत् सप्तानां कर्मणां स्वक-स्वकोत्कृष्टस्थितीः

प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार आयु को छोड़कर शेष छह कर्मों के सन्निकर्ष की प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं पाई जाती है।

अब जिसके आयुर्कर्म की वेदना काल की अपेक्षा उत्कृष्ट है उसके सात कर्मों की क्या है ? इस प्रकार प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के आयु की वेदना काल की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके सात कर्मों की वेदना काल की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?।।२४३।।

वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी। उत्कृष्ट की अपेक्षा अनुत्कृष्ट तीन स्थानों में पतित है।।२४४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — पूर्वकोटि के त्रिभाग में आयु की उत्कृष्ट स्थिति को बांधने वाले जीव के द्वारा यदि ज्ञानावरणीयादिक सात कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति बांधी गई तो आयु के साथ शेष सात कर्मों की भी उत्कृष्ट स्थिति होती है। इसके विपरीत वह अनुत्कृष्ट होकर तीन स्थानों में पतित होती है।

अब पर्यायार्थिक नय के अनुसार शिष्यों के अनुग्रहार्थ आगे का सूत्र कहते हैं —

सूत्रार्थ —

उक्त वेदना असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन अथवा संख्यातगुणहीन होती है।।२४५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — पूर्वकोटि के त्रिभाग में आयु की उत्कृष्ट स्थिति को बांधने वाले जीव के द्वारा सात कर्मों की एक समय कम उत्कृष्ट स्थिति के बांधे जाने पर असंख्यातभाग हानि होती है। दो समय कम उत्कृष्ट स्थिति के बांधे जाने पर भी असंख्यातभागहानि ही होती है। इस प्रकार असंख्यातभागहानि होकर तब तक जाती है

उत्कृष्टसंख्यातेन खण्डयित्वा तत्र एकखंडेन परिहाप्य बध्नन्ति। ततः प्रभृति अधस्तन-स्थितिषु आयुषः उत्कृष्टस्थित्या सह बध्यमानासु संख्यातभागहानिर्भवति यावत् उत्कृष्टस्थितेः अर्द्धमात्रं बद्धमिति। ततः प्रभृति अधस्तनस्थितीः आयुषः उत्कृष्टस्थित्या सह बध्यमानस्य संख्यातगुणहानिर्भवति यावत् तत्प्रायोग्यान्तःकोटाकोटिस्थितिरिति।

एवं सप्तदशमस्थले ज्ञानावरणीयादिकर्मणां कालापेक्षया वेदनाकथनमुख्यत्वेन अष्टौ सूत्राणि गतानि।

यस्य ज्ञानावरणीयवेदना भावापेक्षया उत्कृष्टा तस्य दर्शनावरणीयादित्रिकर्मणां वेदना किमिति प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रमवतार्यते —

**जस्स णाणावरणीयवेयणा भावदो उक्कस्सा तस्स दंसणावरणीय-
मोहणीय-अंतराइयवेयणा भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।।२४६।।**

**उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा, उक्कस्सादो अणुक्कस्सा छट्ठाण-
पदिदा।।२४७।।**

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ज्ञानावरणीयभावमुत्कृष्टं बध्यमानेन यदि शेषघातिकर्मणामुत्कृष्टभावः प्रबद्धस्तिर्हि उत्कृष्टा भाववेदना भवति। अथ न बद्धः अनुत्कृष्टा भूत्वा अनंतभागहीन-असंख्यातभागहीन-संख्यातभागहीन-संख्यातगुणहीन-असंख्यातगुणहीन-अनंतगुणहीनस्वरूपेण षट्स्थानपतिता भवति।

जब तक सात कर्मों की अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितियों का उत्कृष्ट संख्या से खण्डित कर उसमें से एक खण्ड से हीन होकर बांधी जाती हैं। यहाँ से लेकर आयु की उत्कृष्ट स्थिति के साथ अधस्तन स्थितियों को बांधने पर उत्कृष्ट स्थिति के अर्ध भाग को बांधने तक संख्यातभागहानि होती है। यहाँ से लेकर अधस्तन स्थितियों को आयु की उत्कृष्ट स्थिति के साथ बांधने वाले जीव के तत्प्रायोग्य अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थिति तक संख्यातगुणहानि होती है।

इस प्रकार सत्रहवें स्थल में ज्ञानावरणीय आदि कर्मों की काल की अपेक्षा वेदना के कथन की मुख्यता वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

जिसके ज्ञानावरणीय कर्म की वेदना भाव की अपेक्षा उत्कृष्ट है उसके दर्शनावरणीय आदि तीन कर्मों की वेदना क्या है ? इस प्रकार के प्रश्नोत्तर से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के ज्ञानावरणीय की वेदना भाव की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तरायकर्म की वेदना भाव की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है अथवा अनुत्कृष्ट ?।।२४६।।

वह उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी, उत्कृष्ट से अनुत्कृष्ट छह स्थानों में पतित है।।२४७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ज्ञानावरणीय कर्म के उत्कृष्ट भाव को बांधने वाले जीव के द्वारा यदि शेष घाति कर्मों का उत्कृष्ट भाव बांधा गया है तो उनकी उत्कृष्ट भाववेदना होती है परन्तु यदि उनका उत्कृष्ट भाव नहीं बांधा गया है तो वह अनुत्कृष्ट होकर अनन्तभागहीन, असंख्यातभागहीन, संख्यातभागहीन, संख्यातगुणहीन, असंख्यातगुणहीन और अनन्तगुणहीन स्वरूप से छह स्थानों में पतित होती है।

कथमेकेन परिणामेन बध्यमानानां भेदः ?

न, विशेषप्रत्ययभेदेन तेषामपि भेदोत्पत्तेः।

संप्रति वेदनीयादिचतुःकर्मणां भावापेक्षया उत्कृष्टेत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

**तस्स वेयणीय-आउअ-णामा-गोदवेयणा भावदो किमुक्कस्सा अणुक्क-
स्सा॥२४८॥**

णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा॥२४९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — संज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तसर्वसंक्लिष्ट मिथ्यादृष्टिषु ज्ञानावरणीयभावः उत्कृष्टो भवति। आयुर्भावः पुनः प्रमत्ताप्रमत्तसंयतप्रभृति यावत् उपशान्तकषाय इति तावदुत्कृष्टो भवति वैमानिकदेवेषु च। शेषाघातिकर्मणां सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयतप्रभृति उपरि उत्कृष्टभावो भवति। न च मिथ्यादृष्टिषु अघातिकर्मणामुत्कृष्टभावोऽस्ति, सम्यग्दृष्टिषु नियमितोत्कृष्टानुभागस्य मिथ्यादृष्टिषु संभवविरोधात्। तेन अघातिकर्मणामनुभागोऽनन्तगुणहीनो ज्ञातव्यः।

संप्रति दर्शनावरणीयादित्रिकर्मणां सन्निकर्षकथनार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं॥२५०॥

शंका — एक परिणाम से बांधे जाने वाले भावों के भेद की संभावना कैसे हो सकती है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि विशेष प्रत्ययों के भेद से उनके भी भेद की उत्पत्ति संभव है।

अब वेदनीय आदि चार कर्मों की वेदना भाव की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र की वेदना भाव की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?॥२४८॥

वह नियम से अनुत्कृष्ट अनन्तगुणी हीन होती है॥२४९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — संज्ञीपञ्चेन्द्रिय पर्याप्त व सर्वसंक्लिष्ट मिथ्यादृष्टि जीवों में ज्ञानावरणीय का भाव उत्कृष्ट होता है परन्तु आयुर्कर्म का भाव प्रमत्त व अप्रमत्तसंयत से लेकर उपशान्तकषाय तक उत्कृष्ट होता है तथा वैमानिक देवों में भी वह उत्कृष्ट होता है। शेष तीन अघाति कर्मों का उत्कृष्ट भाव सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसंयत से लेकर आगे होता है। मिथ्यादृष्टि जीवों में अघाति कर्मों का उत्कृष्ट भाव संभव नहीं है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीवों में नियम से पाये जाने वाले अघाति कर्मों के उत्कृष्ट अनुभाग के मिथ्यादृष्टि जीवों में होने का विरोध है। इस कारण अघाति कर्मों का अनुभाग अनन्तगुणा हीन जानना चाहिए।

अब दर्शनावरणीय आदि तीन कर्मों का सन्निकर्ष बतलाने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय के सन्निकर्ष की प्ररूपणा करनी चाहिए॥२५०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यथा ज्ञानावरणीयस्य सन्निकर्षः कृतस्तथा शेषत्रयाणां घातिकर्मणां कर्तव्यः, अविशेषात्।

अधुना वेदनीयवेदना भावापेक्षया उत्कृष्टा तस्य ज्ञानावरणीयादिकर्मणां किमिति प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

**जस्स वेयणीयवेयणा भावदो उक्कस्सा तस्स णाणावरणीय-
दंसणावरणीय-अंतराइयवेयणा भावदो सिया अत्थि सिया णत्थि।।२५१।।**

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सूक्ष्मसांपरायिक-क्षीणकषायेषु अस्ति, तत्र तदाधारभूतपुद्गलोपलंभात्। उपरि नास्ति तेषु सत्सु केवलित्वविरोधात्।

जदि अत्थि भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।।२५२।।

णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा।।२५३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अनुत्कृष्टत्वमनेकविधमिति अनर्पितानुत्कृष्टप्रतिषेधार्थमनन्तगुणहीनमिति भणितं। किमर्थमनन्तगुणहीनत्वम् ?

क्षपकपरिणामैः प्राप्तघातत्वात् अनंतगुणहीनत्वं जायते।

संप्रति मोहनीयवेदनानिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जिस प्रकार ज्ञानावरणीय का सन्निकर्ष किया गया है, उसी प्रकार शेष तीन घाति कर्मों का सन्निकर्ष करना चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

अब जिसके वेदनीय कर्म की वेदना भाव की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके ज्ञानावरणीय आदि कर्मों की क्या है ? इस प्रकार के प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के वेदनीय की वेदना भाव की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय की वेदना भाव की अपेक्षा कथंचित् होती है व कथंचित् नहीं होती है।।२५१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उपर्युक्त तीन घातिया कर्मों की वेदना सूक्ष्मसाम्परायिक और क्षीणकषाय गुणस्थानों में है, क्योंकि वहाँ उनके आधारभूत पुद्गल पाये जाते हैं। आगे उनकी वेदना नहीं पाई जाती है, क्योंकि उक्त तीन कर्मों के होने पर केवली होने का विरोध है।

सूत्रार्थ —

यदि है तो वह भाव की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है या अनुत्कृष्ट है ?।।२५२।।

वह नियम से अनुत्कृष्ट अनन्तगुणी हीन होती है।।२५३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अनुत्कृष्टता चूँकि अनेक प्रकार की है अतएव अविवक्षित अनुत्कृष्टता का प्रतिषेध करने के लिए 'अनन्तगुणी हीन' ऐसा कहा है।

शंका — अनन्तगुणहीनता किसलिए है ?

समाधान — क्षपक परिणामों द्वारा घात को प्राप्त होने के कारण वह अनन्तगुणी हीन होती है।

अब मोहनीय कर्म की वेदना का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

तस्स मोहणीयवेयणा भावदो णत्थि।।२५४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — सूक्ष्मसांपरायिकचरमसमये वेदनीयस्य उत्कृष्टानुभागबंधो जातः। न च सूक्ष्मसांपरायिकगुणस्थाने मोहनीयभावो नास्ति, भावेन विना द्रव्यकर्मणः अस्तित्वविरोधात् सूक्ष्मसांपरायिक-संज्ञानुपपत्तेर्वा। तस्मात् मोहनीयवेदना भावविषया नास्तीति न युज्यते ?

अत्र परिहारः उच्यते —

विनाशविषये द्वौ नयौ भवतः — उत्पादानुच्छेदोऽनुत्पादानुच्छेदश्चेति। तत्र उत्पादानुच्छेदो नाम द्रव्यार्थिकः। तेन सद्भाववस्थायां चैव विनाशमिच्छति, असत्यां बुद्धिविषयं चातिक्रान्तभावेन वचनगोचरातिक्रान्ते अभावव्यवहारानुपपत्तेः।

न चाभावो नाम अस्ति, तद्ग्राहकप्रमाणाभावात्। सद्विषयाणां प्रमाणानामसद्विषये व्यापारविरोधात्। अविरोधे वा गर्दभशृंगमपि प्रमाणविषयं भवेत्। न चैवं, अनुपलंभात्। तस्माद् भावश्चैवाभाव इति सिद्धम्।

अनुत्पादानुच्छेदो नाम पर्यायार्थिको न योऽस्ति। तेन असौ नयः असदवस्थायां अभावव्यपदेशमिच्छति, भावे उपलभ्यमाने अभावत्वविरोधात्। न च प्रतिषेधविषयो भावो भावत्वं प्राप्नोति, प्रतिषेधस्य

सूत्रार्थ —

उक्त जीव के मोहनीय कर्म की वेदना भाव की अपेक्षा नहीं होती है।।२५४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ सूत्र के अभिप्राय को शंका-समाधान के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं।

शंका — सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थान के अंतिम समय में वेदनीय का अनुभागबंध उत्कृष्ट हो जाता है परन्तु उस सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थान में मोहनीय का भाव नहीं हो, ऐसा संभव नहीं है, क्योंकि भाव के बिना द्रव्य कर्म के रहने का विरोध है अथवा वहाँ भाव के न मानने पर 'सूक्ष्मसाम्परायिक' यह संज्ञा ही नहीं बनती है। इस कारण मोहनीय की भावविषयक वेदना नहीं है, यह कहना उचित नहीं है ?

यहाँ इस शंका का परिहार करते हैं —

विनाश के विषय में दो नय हैं — उत्पादानुच्छेद और अनुत्पादानुच्छेद। उत्पादानुच्छेद का अर्थ द्रव्यार्थिकनय है इसलिए वह सद्भाव की अवस्था में ही विनाश को स्वीकार करता है, क्योंकि असत् और बुद्धिविषयता से अतिक्रान्त होने के कारण वचन के अविषयभूत पदार्थ में अभाव का व्यवहार नहीं बन सकता।

दूसरी बात यह है कि अभाव नाम का कोई स्वतंत्र पदार्थ नहीं है, क्योंकि उसके ग्राहक प्रमाण का अभाव है। कारण कि सत् को विषय करने वाले प्रमाणों के असत् में प्रवृत्त होने का विरोध है अथवा असत् के विषय में उनकी प्रवृत्ति का विरोध न मानने पर गधे का सींग भी प्रमाण का विषय होना चाहिए, परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि वह पाया नहीं जाता। इस कारण भाव स्वरूप ही अभाव है, यह सिद्ध होता है।

अनुत्पादानुच्छेद का अर्थ पर्यायार्थिक नय है। इसी कारण वह असत् अवस्था में अभाव संज्ञा को स्वीकार करता है, क्योंकि इस नय की दृष्टि में भाव की उपलब्धि होने पर अभावरूपता का विरोध है और प्रतिषेध का विषयभूत भाव भावस्वरूपता को प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसा होने पर प्रतिषेध के निष्फल होने का प्रसंग आता है। विनाश नहीं है, यह भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि घटिका (छोटा घड़ा) आदि का सर्वकाल अवस्थान नहीं पाया जाता। यदि कहा जाये कि भाव ही अभाव है (भाव को छोड़कर तुच्छ अभाव

फलाभावप्रसंगात्। न च विनाशो नास्ति, घटिकादीनां सर्वकालमवस्थानानुपलंभात्। न च भावोऽभावो भवति, भावाभावयोः परस्परविरुद्धयोरेकत्वविरोधात्।

अत्र येन द्रव्यार्थिकनयः उत्पादानुच्छेदः अवलंबितः तेन मोहनीयभाववेदना नास्तीति भणितं। पर्यायार्थिकनये पुनः अवलम्ब्यमाने मोहनीयभाववेदना अनंतगुणहीना भूत्वा अस्तीति वक्तव्यम्।

संप्रति आयुर्वेदना भावापेक्षया किमुत्कृष्टेत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स आउअवेयणा भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा॥२५५॥

णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा॥२५६॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — येन आयुषः उत्कृष्टभाववेदना अप्रमत्तसंयतेन बद्धदेवायुष्के भवति। न च क्षपकश्रेण्यां देवायुरस्ति, बद्धायुष्काणां क्षपकश्रेणिसमारोहाभावात्। अस्ति च मनुष्यायुः, न तस्यानुभागः उत्कृष्टो भवति, असंयतसम्यग्दृष्टिजीवेन मिथ्यादृष्टिजीवेन वा बद्धस्य देवायुरपेक्ष्य अप्रशस्तस्य उत्कृष्टत्वविरोधात्। तेन कारणेन अनंतगुणहीना वेदना ज्ञातव्या।

संप्रति नामगोत्रवेदना भावापेक्षया किमुत्कृष्टेत्यादिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स णामा-गोदवेयणा भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा॥२५७॥

नहीं है) तो यह भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि भाव और अभाव ये दोनों परस्पर विरुद्ध हैं अतएव उनके एक होने का विरोध है। यहाँ चूँकि द्रव्यार्थिकनय स्वरूप उत्पादानुच्छेद का अवलम्बन किया गया है अतएव 'मोहनीय कर्म की भाववेदना यहाँ नहीं है' ऐसा कहा गया है परन्तु यदि पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन किया जाये तो मोहनीय की भाववेदना अनन्तगुणी हीन होकर यहाँ विद्यमान है, ऐसा कहना चाहिए।

अब आयुर्कर्म की वेदना भाव की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके आयु कर्म की वेदनाभाव की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?॥२५५॥

वह नियम से अनुत्कृष्ट होकर अनन्तगुणी हीन होती है॥२५६॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि आयु की उत्कृष्ट भाववेदना अप्रमत्तसंयत के द्वारा बांधी गई देवायु में होती है परन्तु क्षपकश्रेणी में देवायु है नहीं, क्योंकि बद्धायुष्क जीवों का क्षपक श्रेणी पर चढ़ना संभव नहीं है। क्षपकश्रेणी में मनुष्यायु अवश्य है परन्तु उसका अनुभाग उत्कृष्ट नहीं होता, क्योंकि असंयत सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि के द्वारा बांधी गई मनुष्यायु चूँकि देवायु की अपेक्षा अप्रशस्त है अतएव उसके उत्कृष्ट होने का विरोध है। इसी कारण वह वेदना अनन्तगुणीहीन है, ऐसा जानना चाहिए।

अब नाम और गोत्रकर्म की वेदना भाव की अपेक्षा से क्या उत्कृष्ट है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके नाम एवं गोत्रकर्म की वेदना भाव की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट होती है ?॥२५७॥

उक्कस्सा॥२५८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सूक्ष्मसांपरायिकगुणस्थाने सर्वोत्कृष्टविशुद्धिभिः त्रयाणामपि कर्मणां उत्कृष्टबंधोपलंभात्।

अधुना नामगोत्रयोः सन्निकर्षनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं णामा-गोदाणं॥२५९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यथा वेदनीयस्य सन्निकर्षः कृतः तथा नामगोत्रयोरपि कर्तव्यः, विशेषाभावात्। यस्य आयुर्वेदना भावापेक्षया उत्कृष्टा तस्य सप्तकर्मणां किमितिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

जस्स आउअवेयणा भावदो उक्कस्सा तस्स सत्तणं कम्माणवेयणा भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा॥२६०॥

णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा॥२६१॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अप्रमत्तसंयतप्रभृति उपरिमसंयतेषु वैमानिकदेवेषु चायुषः उत्कृष्टभावोपलंभात्। न च एतेषु घातिकर्मणामुत्कृष्टानुभागोऽस्ति, विशुद्धया घातं प्राप्य अनंतगुणहीनत्वमुपगतानामुत्कृष्टत्वविरोधात्। न च त्रयाणामघातिकर्मणामुत्कृष्टोऽनुभागोऽस्ति, तस्य क्षीणकषायादिषु चैव संभवात्। न च क्षीणकषायादिषु

उत्कृष्ट होती है॥२५८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थान में सर्वोत्कृष्ट विशुद्धि के द्वारा तीनों ही कर्मों का उत्कृष्ट बंध पाया जाता है।

अब नाम और गोत्रकर्म का सन्निकर्ष निरूपण करने हेतु सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार नाम और गोत्रकर्म की प्ररूपणा करनी चाहिए॥२५९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जिस प्रकार से वेदनीय का सन्निकर्ष किया गया है उसी प्रकार से नाम व गोत्र कर्म के भी सन्निकर्ष की प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

जिसके आयु की वेदना भाव की अपेक्षा उत्कृष्ट है उसके शेष सात कर्मों की क्या है ? इत्यादि प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के आयु की वेदना भाव की अपेक्षा उत्कृष्ट होती है उसके साथ कर्मों की वेदना भाव की अपेक्षा क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?॥२६०॥

वह नियम से अनुत्कृष्ट अनंतगुणहीन होती है॥२६१॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि अप्रमत्तसंयत से लेकर आगे के संयत जीवों में, प्रमत्तसंयतों में और वैमानिक देवों में आयु का उत्कृष्ट अनुभाग पाया जाता है परन्तु इन जीवों में घातिकर्मों का उत्कृष्ट अनुभाग नहीं है, क्योंकि विशुद्धि के द्वारा घात को प्राप्त होकर अनन्तगुणी हीनता को प्राप्त हुए उनके उत्कृष्ट होने का विरोध है। तीन अघाति कर्मों का भी उनमें उत्कृष्ट अनुभाग संभव नहीं है, क्योंकि वह क्षीणकषाय आदि जीवों में ही संभव है परन्तु क्षीणकषाय आदि जीवों में आयु का उत्कृष्ट भाव संभव नहीं है

आयुषः उत्कृष्टभावोऽस्ति, क्षपकश्रेण्यां देवायुषः सत्त्वाभावात्। तस्मात् अनन्तगुणहीनत्वं सिद्धम्।

एवं अष्टादशमस्थले ज्ञानावरणादि-अष्टकर्मणां भावाद्यपेक्षया वेदनानिरूपणपरत्वेन षोडशसूत्राणि गतानि।

एवं उत्कृष्टः परस्थानवेदनासन्निकर्षः समाप्तः।

संप्रति जघन्यपरस्थानवेदनासन्निकर्षभेदनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

जो सो थप्पो जहण्णओ परत्थाणवेयणासण्णियासो सो चउव्विहो —

दव्वदो खेत्तदो कालदो भावदो चेदि।।२६२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जघन्यवेदनासन्निकर्षः चतुर्विधश्चैव, द्रव्यार्थिकनयावलम्बनात्। पर्यायार्थिकनये पुनः अवलम्ब्यमाने पंचदशविधो भवति, असौ ज्ञात्वा वक्तव्यः।

तात्पर्यमेतत् — प्रत्येकभंगाश्चत्वारः, द्विसंयोगिभंगाः षट्, त्रिसंयोगिभंगाश्चत्वारः, चतुःसंयोगिभंगश्चैकः इति मेलयित्वा पंचदशभेदाः कथिताः सन्ति।

संप्रति ज्ञानावरणवेदना द्रव्यापेक्षया जघन्या यदि तस्य दर्शनावरण-अन्तरायवेदना किमितिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

जस्स णाणावरणीयवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स दंसणावरणीय-

अंतराइयवेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।।२६३।।

क्योंकि क्षपकश्रेणी में देवायु के सत्व का अभाव है। इस कारण उक्त सात कर्मों की भाववेदना की अनन्तगुणहीनता सिद्ध है।

इस प्रकार अट्टारहवें स्थल में ज्ञानावरण आदि आठों कर्मों की भाव आदि की अपेक्षा वेदना का निरूपण करने वाले सोलह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार उत्कृष्ट परस्थानवेदनासन्निकर्ष समाप्त हुआ।

अब जघन्य परस्थानवेदनासन्निकर्ष के भेद बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

जो जघन्य परस्थानवेदनासन्निकर्ष स्थगित किया गया था, वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से चार प्रकार है।।२६२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जघन्य वेदनासन्निकर्ष चार प्रकार का ही है, क्योंकि द्रव्यार्थिक नय का अवलम्बन है परन्तु पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन करने पर वह पन्द्रह प्रकार का है, उसको जानकर प्ररूपणा करनी चाहिए।

तात्पर्य यह है कि प्रत्येक भंग चार, द्विसंयोगीभंग छह, त्रिसंयोगीभंग चार एवं चतुःसंयोगी भंग एक है। इस प्रकार सब मिलाकर कुल पन्द्रह भंग कहे गये हैं। $४+६+४+१=१५$ ।

अब ज्ञानावरण कर्म की वेदना जिसके यदि द्रव्य की अपेक्षा जघन्य है उसके दर्शनावरण-अन्तराय की वेदना क्या है ? इस प्रकार प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के ज्ञानावरणीय की वेदना द्रव्य की अपेक्षा जघन्य होती है उसके दर्शनावरणीय और अन्तराय की वेदना द्रव्य की अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।२६३।।

जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णादो विट्ठाण- पदिदा॥२६४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — शुद्धनयविषयक्षपितकर्मांशिकलक्षणेन आगत्य क्षीणकषायचरमसमये स्थितस्य ज्ञानावरणीयद्रव्यवेदनया सह दर्शनावरणीय-अन्तराययोश्च द्रव्यवेदना जघन्या भवति। अथ अन्यथा यदि आगतो भवेत् तर्हि अजघन्या भूत्वा द्विस्थानपतिता।

संप्रति पर्यायार्थिकनयशिष्यानुग्रहार्थं उत्तरसूत्रं भण्यते —

अणंतभागव्भहिया वा असंखेज्जभागव्भहिया वा॥२६५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ज्ञानावरणीयस्य जघन्यद्रव्ये सति यदि एकः परमाणुः दर्शनावरणीय-अन्तराययोः द्रव्ययोः अधिको भवेत् तर्हि अनंतभागाभ्यधिकं द्रव्यं भवति। एवमादिं कृत्वा परमाणुत्तरादिक्रमेण तावत् अनंतभागवृद्धिर्गच्छति यावत् जघन्यद्रव्यमुत्कृष्टासंख्यातेन खण्डयित्वा तत्र एकखण्डमात्रं वर्द्धितं इति। ततः प्रभृति परमाणुत्तरादिक्रमेण असंख्यातभागवृद्धिर्भूत्वा गच्छति यावत् जघन्यद्रव्यं तत्प्रायोग्येन पल्योपमस्य असंख्यातभागेन खण्डयित्वा तत्र एकखण्डमात्रं वर्द्धितमिति।

उपरिमवृद्धयोऽत्र किन्न भण्यन्ते ?

न, क्षपितकर्मांशिके यदि सुष्ठु बह्वी द्रव्यवृद्धिर्भवति तर्हि एकसमयप्रबद्धमात्रा चैव भवतीति गुरुपदेशात्।
कश्चिदाह —

वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी, जघन्य से अजघन्य दो स्थानों में पतित होती है॥२६४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — शुद्धनय के विषयभूत क्षपितकर्मांशिक स्वरूप से आकर क्षीणकषाय के अंतिम समय में स्थित हुए जीव के ज्ञानावरणीय की वेदना के साथ दर्शनावरणीय और अन्तराय की द्रव्यवेदना जघन्य होती है। यदि अन्य स्वरूप से आया है तो उक्त दोनों कर्मों की द्रव्यवेदना अजघन्य होकर दो स्थानों में पतित होती है।

अब पर्यायार्थिक नय के अनुग्रहार्थ आगे का सूत्र कहते हैं —

सूत्रार्थ —

वह अजघन्य वेदना अनुभाग अधिक और असंख्यातभाग अधिक होती है॥२६५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ज्ञानावरणीय कर्म द्रव्य के जघन्य होने पर यदि एक परमाणु दर्शनावरणीय और अन्तराय के द्रव्यों में अधिक होता है तो अनन्तभाग अधिक द्रव्य होता है। इससे लेकर एक-एक परमाणु आदि के क्रम से तब तक अनन्तभागवृद्धि जाती है जब तक जघन्य द्रव्य को उत्कृष्ट असंख्यात से खण्डित कर उसमें से एक खण्ड मात्र वृद्धि को प्राप्त होता है। पश्चात् इससे लेकर एक-एक परमाणु आदि के क्रम से जघन्य द्रव्य को तत्प्रायोग्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग से खण्डित कर उसमें एकखण्डमात्र वृद्धि के होने तक असंख्यातभागवृद्धि होकर जाती है।

शंका — आगे की वृद्धियाँ यहाँ क्यों नहीं कही गई हैं ?

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि क्षपितकर्मांशिक के यदि बहुत अधिक द्रव्य की वृद्धि होती है तो वह एक समयप्रबद्ध प्रमाण ही होती है, ऐसा गुरु का उपदेश है।

क्षपितघोलमानमाश्रित्य किमिति न वर्धाप्यते ?

आचार्यः प्राह —

नैष दोषः, ज्ञानावरणीयस्य जघन्यद्रव्याभावेन प्रकृतप्ररूपणायाः विरोधप्रसंगात्।

अधुना वेदनीय-नाम-गोत्र-मोहनीयवेदना निरूपणार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

तस्स वेयणीय-णामा-गोदवेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ?।।२६६।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जभागब्भहिया।।२६७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सयोगिकेवलिना पूर्वकोटिकालेन असंख्यातगुणायाः श्रेण्याः निर्जीर्यमाणद्रव्यस्य अविनाशात्।

अत्र कश्चिदाह —

तस्य अधिकद्रव्यस्य क्षीणकषायचरमसमये वर्तमानस्य को भागहारः ?

आचार्यदेवः प्राह —

पल्योपमस्य असंख्यातभागो भागहारः कथ्यते।

तस्स मोहणीयवेयणा दव्वदो जहण्णिया णत्थि।।२६८।।

यहाँ कोई शंका करता है —

क्षपितघोलमाल जीव का आश्रय करके वृद्धि क्यों नहीं करायी जाती है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं —

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि उसके ज्ञानावरणीय के जघन्य द्रव्य का अभाव होने से प्रकृत प्ररूपणा के विरुद्ध होने का प्रसंग आता है।

अब वेदनीय-नाम-गोत्र और मोहनीय कर्म की वेदना करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके वेदनीय, नाम और गोत्रकर्म की वेदना द्रव्य की अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?।।२६६।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातवें भाग अधिक होती है।।२६७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि सयोगिकेवली भगवन्तों के द्वारा पूर्वकोटि काल के द्वारा असंख्यातगुणित श्रेणीरूप से निर्जीर्ण किये जाने वाले द्रव्य का पूर्णतया विनाश नहीं हुआ है।

यहाँ कोई शंका करता है —

क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती के अंतिम समय में वर्तमान उक्त अधिक द्रव्य का भागहार क्या है ?

आचार्यदेव इसका उत्तर देते हुए कहते हैं —

उसका भागहार पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।

सूत्रार्थ —

उसके मोहनीय कर्म की वेदना द्रव्य की अपेक्षा जघन्य नहीं होती है।।२६८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—सूक्ष्मसांपरायिकचरमसमये पूर्व चैव विनष्टत्वात्।

अधुना आयुर्वेदना द्रव्यापेक्षया कथनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

तस्स आउअवेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा?।।२६९।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।२७०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—नारकजीवे त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाभ्यन्तर-असंख्यातगुणहानीः गालयित्वा दीपशिखाकारेण स्थितद्रव्यमेकसमयप्रबद्धस्य असंख्यातभागो जघन्यद्रव्यवेदना अस्ति। अत्र पुनः पूर्वकोटिकालाभ्यन्तरे एकापि गुणहानिर्नास्ति, गुणहान्याः असंख्यातभागत्वात्। तेनायुर्जघन्यद्रव्यात् क्षीणकषायचरमसमयद्रव्यमसंख्यातगुणमिति सिद्धम्।

संप्रति दर्शनावरणान्तरायकर्मसन्निकर्षनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं दंसणावरणीय-अंतराइयाणं।।२७१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—यथा ज्ञानावरणीयस्य सन्निकर्षः कृतः तथा एतयोरपि द्वयोः प्रकृत्योः कर्तव्यः, विशेषाभावात्।

अधुना वेदनीयादिकर्मणां द्रव्यापेक्षया जघन्यावेदनानिरूपणार्थं सूत्रसप्तकमवतार्यते —

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—इसका कारण यह है कि वह पहले ही सूक्ष्मसाम्परायिक—दशवें गुणस्थान के अंतिम समय में नष्ट हो चुका है।

अब आयुर्कर्म की वेदना द्रव्य की अपेक्षा कहने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उसके आयुर्कर्म की वेदना द्रव्य की अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?।।२६९।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।२७०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—नारकी जीव के तेतीस सागरोपम काल के भीतर असंख्यातगुणहानियों को गलाकर दीपशिखा के आकार से जो द्रव्य स्थित है वह एक समयप्रबद्ध के असंख्यातवें भाग मात्र जघन्य वेदनास्वरूप है परन्तु यहाँ पूर्वकोटिकाल के भीतर एक भी गुणहानि नहीं है, क्योंकि वहाँ गुणहानि का असंख्यातवाँ भाग ही है इसलिए आयु के जघन्य द्रव्य से क्षीणकषाय का अंतिम समय संबंधी द्रव्य असंख्यात गुणा है, यह सिद्ध है।

अब दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का सन्निकर्ष निरूपित करने हेतु सूत्र अवतरित करते हैं —

सूत्रार्थ—

इसी प्रकार से दर्शनावरणाय और अन्तरायकर्म की प्ररूपणा करनी चाहिए।।२७१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—जिस प्रकार ज्ञानावरणीय का सन्निकर्ष किया गया है, उसी प्रकार इन दोनों कर्मों के सन्निकर्ष का कथन करना चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

अब वेदनीय आदि कर्मों की द्रव्य की अपेक्षा से जघन्यवेदना का निरूपण करने हेतु सात सूत्र अवतरित होते हैं —

जस्स वेयणीयवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स णाणावरणीय-दंसणा-
वरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं वेयणा दव्वदो जहण्णिया णत्थि।।२७२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका —

छद्मस्थावस्थायां चैव तस्याः विनष्टत्वात्।

तस्स आउअवेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ?।।२७३।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।२७४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतदयोगिचरमसमयद्रव्यं उत्कृष्टयोगेन बद्धैकसमयप्रबद्धस्य संख्यातभागमात्रम्।

कुतो ज्ञायते ?

यदा यदायुर्बध्नाति तदा तदा तत्प्रायोग्येन उत्कृष्टेन योगेन बध्नातीति वचनात् ज्ञायते।

दीपशिखाद्रव्यं पुनः जघन्ययोगेन बद्धैकसमयप्रबद्धस्य असंख्यातभागमात्रं भवति। तेन जघन्यायुर्वेदनायाः

इयमसंख्यातगुणा भवति।

तस्स णामा-गोदवेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ?।।२७५।।

सूत्रार्थ —

जिस जीव के वेदनीय की वेदना द्रव्य की अपेक्षा जघन्य होती है, उसके ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय की वेदना द्रव्य की अपेक्षा जघन्य नहीं होती है।।२७२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि उक्त कर्मों की वह वेदना छद्मस्थ अवस्था में ही नष्ट हो चुकी है।

सूत्रार्थ —

उसके आयु की वेदना द्रव्य की अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।२७३।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।२७४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यह अयोगकेवली का अंतिम समय संबंधी द्रव्य उत्कृष्ट योग से बांधे गये एकसमयप्रबद्ध संख्यातवें भाग मात्र है।

शंका — यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान — वह 'जब-जब आयु को बांधता है, तब-तब तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट योग से बांधता है' यह वचन से जाना जाता है परन्तु दीपशिखा द्रव्य जघन्य योग से बांधे गये एकसमयप्रबद्ध के असंख्यातवें भाग मात्र होता है, इस कारण आयु की जघन्य वेदना से यह वेदना असंख्यातगुणी होती है।

सूत्रार्थ —

उसके नाम और गोत्र की वेदना द्रव्य की अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।२७५।।

जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णादो विट्ठाण- पदिदा।।२७६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि शुद्धनयविषयक्षपितकर्मांशिकलक्षणोऽपि आगतस्तर्हि वेदनीयद्रव्यवेदनया सह नाम-गोत्रयोर्वेदनापि जघन्या भवति। अथ नागतस्तर्हि अजघन्या भूत्वा द्विस्थानपतिता भवति।

एतदेव पर्यायार्थिकनयशिष्यानुग्रहार्थमुत्तरसूत्रं भण्यते —

अणंतभागब्भहिया वा असंखेज्जभागब्भहिया वा।।२७७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जघन्यद्रव्यस्योपरि एकपरमाणौ वर्द्धिते अनंतभागवृद्धिर्भवति। एवं परमाणूत्तरादिक्रमेण तावदनन्तभागवृद्धिर्गच्छति यावत् जघन्यद्रव्यमुत्कृष्टासंख्यातेन खण्डयित्वा तत्रैकखण्डमात्रं वर्द्धितमिति। ततः प्रभृति परमाणूत्तरादिक्रमेण असंख्यातभागवृद्धिस्तावद् गच्छति यावद् जघन्यद्रव्यं तत्प्रायोग्येण पल्योपमस्य असंख्यातभागेन खण्डयित्वा तत्रैकखण्डमात्रं जघन्यद्रव्यस्योपरि वर्द्धितमिति।

एवं णामा-गोदाणं।।२७८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यथा वेदनीयस्य सन्निकर्षः कृतः तथा नामगोत्रयोरपि सन्निकर्षः कर्तव्यः, विशेषाभावात्।

अधुना मोहनीयवेदना यस्य जघन्या तस्य शेषकर्माणां किमितिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रषट्कमवतार्यते —

वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी, जघन्य से अजघन्य दो स्थानों में पतित होती है।।२७६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यदि शुद्धनय के विषयभूत क्षपितकर्मांशिक स्वरूप से आया है तो वेदनीय की वेदना के साथ नाम व गोत्र की द्रव्यवेदना भी जघन्य होती है परन्तु यदि उक्त स्वरूप से नहीं आया है, तो वह अजघन्य होकर दो स्थानों में होती है।

अब पर्यायार्थिक नय वाले शिष्य के अनुग्रहार्थ आगे का सूत्र कहते हैं —

सूत्रार्थ —

वह अनन्तभाग अधिक भी होती है और असंख्यात भाग अधिक भी होती है।।२७७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जघन्य द्रव्यवेदना के ऊपर एक परमाणु की वृद्धि होने पर अनन्तभागवृद्धि होती है। इस प्रकार एक-एक परमाणु आदि के क्रम से तब तक अनन्तभागवृद्धि जाती है जब तक जघन्य द्रव्य को उत्कृष्ट असंख्यात से खण्डित कर उसमें एक खण्ड मात्र वृद्धि होती है। तत्पश्चात् उससे लेकर एक-एक परमाणु आदि के क्रम से असंख्यातभागवृद्धि तब तक जाती है जब तक जघन्य द्रव्य को तत्प्रायोग्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग से खण्डित कर उसमें एक खण्ड मात्र वृद्धि जघन्य द्रव्य के ऊपर होती है।

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार नाम और गोत्र की प्ररूपणा करनी चाहिए।।२७८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जिस प्रकार वेदनीय का सन्निकर्ष किया गया है उसी प्रकार नाम और गोत्र के सन्निकर्ष की प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

अब मोहनीय कर्म की वेदना जिसके जघन्य है, उसके शेष कर्मों की क्या है? इस प्रकार प्रश्नोत्तररूप से छह सूत्र अवतरित होते हैं —

जस्स मोहणीयवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स छण्णं कम्माणमाउअवज्जाणं
वेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।।२७९।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जभागब्भहिया।।२८०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उपरि विनाशयिष्यमाणद्रव्येण अधिकत्वात्। तस्य अधिकद्रव्यस्य कः
प्रतिभाग ? इति प्रश्ने सति पल्योपमस्य असंख्यातभाग इति ज्ञातव्यो भवति।

तस्स आउअवेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा?।।२८१।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।२८२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतदपि सुगमं, बहुशः अवगमितार्थत्वात्।

जस्स आउअवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स सत्तण्णं कम्माणं वेयणा
दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।।२८३।।

णियमा अजहण्णा चउट्ठाणपदिदा।।२८४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — नारको येन पंचेन्द्रियः संज्ञिपर्याप्तः तेन एकेन्द्रिययोगात् एतस्य
योगोऽसंख्यातगुणः। तेनैव कारणेन एकेन्द्रिय-एकसमयप्रबद्धद्रव्यात् एतस्य एकसमयप्रबद्धद्रव्यमसंख्यातगुणं।

सूत्रार्थ —

जिसके मोहनीय की वेदना द्रव्य की अपेक्षा जघन्य होती है उसके आयु को छोड़
छह कर्मों की वेदना द्रव्य की अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है?।।२७९।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातवें भाग अधिक होती है।।२८०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि वह आगे नष्ट किये जाने वाले द्रव्य से अधिक है।
उस अधिक द्रव्य का प्रतिभाग क्या है ? उसका प्रतिभाग पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है, ऐसा जानना चाहिए।

सूत्रार्थ —

उसके आयु की वेदना द्रव्य की अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।२८१।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।२८२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि इसके अर्थ का परिज्ञान बहुत बार कराया
जा चुका है।

सूत्रार्थ —

जिस जीव के आयु की वेदना द्रव्य की अपेक्षा जघन्य होती है, उसके सात कर्मों
की वेदना द्रव्य की अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।२८३।।

वह नियम से अजघन्य चार स्थानों में पतित होती है।।२८४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ पर इस विषय को प्रश्नोत्तर के माध्यम से स्पष्ट किया जा रहा है।

प्रश्न — नारकी जीव चूँकि पंचेन्द्रिय, संज्ञी व पर्याप्त है अतएव एकेन्द्रिय जीव के योग की अपेक्षा इसका

तेन दीपशिखाप्रथमसमय-द्रव्येण सप्तानामपि कर्मणां द्व्यर्धगुणहानिप्रमाणपंचेन्द्रियसमयप्रबद्धमात्रेण भवितव्यम्। ततः स्वकस्वकजघन्यद्रव्यं अपेक्ष्य अत्रतनद्रव्येण असंख्यातगुणेनैव भवितव्यम्। तेन चतुःस्थानपतिता इति न घटते ?

आचार्यदेवः अत्र परिहरति —

क्षपितकर्मांशिकलक्षणेन आगत्य विपरीतं गत्वा जघन्ययोगेन जघन्यबंधककाले च नरकायुर्बध्यित्वा सप्तमपृथ्वीनारकेषु उपपद्य षट्भिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तको भूत्वा अन्तर्मुहूर्तेण सम्यक्त्वं गृहीत्वा द्व्यर्धमात्रैकेन्द्रिय-समयप्रबद्धान् अपकर्षणोत्कर्षणभागहारेण खण्डयित्वा तत्रैकखण्डमात्रद्रव्यमपकर्षति। एवमपकर्षणं कृत्वा उदयावलिबाह्यास्थितौ वर्तमानकाले बध्यमानैकसमयप्रबद्धस्य प्रथमनिषेकात् असंख्यगुणं ददाति। ततः प्रभृति उपरि विशेषहीनं ददाति यावत् अपकर्षितसमयप्रबद्धा निर्दिष्टा इति। विस्तरस्तु धवलाटीकायां द्रष्टव्यः।

अत्र कश्चिदाह —

अपकर्षणया एवंविधा निर्जरा भवतीति कथं ज्ञायते ?

आचार्यदेवः प्राह —

चतुःस्थानपतितसूत्रनिर्देशस्य अन्यथानुपपत्तेः।

भुजाकाराल्पतरकालयोः शुक्लपक्षकृष्णपक्षौ इव सर्वजीवेषु वर्तमानयोः येषां जीवानामल्पतरकालात् भुजाकारकालाः क्रमेण असंख्यातभागाभ्यधिकाः संख्यातभागाभ्यधिकाः संख्यातगुणाभ्यधिकाः

योग असंख्यातगुणा है और इसी कारण से एकेन्द्रिय जीव के एक समयप्रबद्ध के द्रव्य की अपेक्षा इसके एक समयप्रबद्ध का द्रव्य असंख्यातगुणा है इसलिए दीपशिखा का प्रथम समय का द्रव्य सातों ही कर्मों का द्रव्य डेढ़ गुणहानि मात्र पंचेन्द्रिय के समयप्रबद्ध प्रमाण होना चाहिए अतएव अपने-अपने जघन्य द्रव्य की अपेक्षा यहाँ का द्रव्य असंख्यातगुणा ही होगा। ऐसी अवस्था में सूत्र में चतुःस्थान पतित बतलाना घटित नहीं होता है ?

आचार्यदेव यहाँ इस शंका का परिहार कहते हैं —

क्षपितकर्मांशिक स्वरूप से आकर विपरीत स्वरूप को प्राप्त हो जघन्य योग से और जघन्य बंधककाल से नारकायु को बांधकर सातवीं पृथिवी के नारकियों में उत्पन्न हो छह पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर अन्तर्मुहूर्त में सम्यक्त्व को ग्रहण करके डेढ़ गुण हानि प्रमाण एकेन्द्रिय समयप्रबद्धों को अपकर्षण-उत्कर्षण भागहार से खण्डित कर उसमें से एक खण्डमात्र द्रव्य का अपकर्षण करता है। इस प्रकार अपकर्षित करके उदयावलि के बाहर स्थिति में वर्तमान काल में बांधे जाने वाले एक समय के प्रबद्ध के प्रथम निषेक से असंख्यातगुणा देता है। उससे लेकर आगे अपकर्षित समयप्रबद्धों के समाप्त होने तक विशेषहीन देता है।

इसका विस्तृत वर्णन धवला टीका में देखना चाहिए।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

अपकर्षणा के द्वारा इस प्रकार की निर्जरा होती है, यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं कि —

चूँकि इसके बिना चतुःस्थान पतित सूत्र का निर्देश घटित नहीं होता अतः इसी से उक्त निर्जरा परिज्ञान होती है।

सब जीवों में शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष के समान भुजाकार काल और अल्पतरकाल के रहने पर जिन जीव के अल्पतरकाल की अपेक्षा भुजाकारकाल क्रम से असंख्यातवें भाग से अधिक, संख्यातवें भाग से

असंख्यातगुणाभ्यधिका भवन्ति तेषां द्रव्यं असंख्यातभागाभ्यधिकं संख्यातभागाभ्यधिकं संख्यातगुणाभ्यधिकं असंख्यातगुणाभ्यधिकं च क्रमेण भवतीत्युक्तं भवति।

एवं एकोनविंशतितमे स्थले ज्ञानावरणादिकर्मसु द्रव्यापेक्षया जघन्यवेदनानिरूपणपरत्वेन त्रयोविंशति-सूत्राणि गतानि।

अधुना क्षेत्रापेक्षया ज्ञानावरणादिकर्मसु जघन्यवेदना निरूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

जस्स णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो जहण्णा तस्स सत्तण्णं कम्माणं वेयणा खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।।२८५।।

जहण्णा।।२८६।।

एवं सत्तण्णं कम्माणं।।२८७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जघन्यावगाहनायां स्थितज्ञानावरणीयस्कंधेभ्यः जीवद्वारेण सप्तानां कर्मस्कंधानां भेदाभावात्।

यथा ज्ञानावरणीयस्य सन्निकर्षः प्ररूपितः तथा शेषसप्तानां कर्मणां प्ररूपयितव्यः, अविशेषात्।

एवं विंशतितमे स्थले कर्मणां वेदनाक्षेत्रापेक्षया निरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

अधुना कालापेक्षया जघन्यवेदनानिरूपणार्थं द्वादशसूत्राण्यवतार्यन्ते —

अधिक, संख्यातगुणा अधिक और असंख्यातगुणा अधिक होता है, उनका द्रव्य क्रम से असंख्यातवें भाग से अधिक, संख्यातवें भाग से अधिक, संख्यातगुणा अधिक और असंख्यातगुणा अधिक होता है, यह उसका अभिप्राय है।

इस प्रकार उन्नीसवें स्थल में ज्ञानावरण आदि कर्मों में द्रव्य की अपेक्षा जघन्यवेदना निरूपण करने वाले तेईस सूत्र पूर्ण हुए।

अब क्षेत्र की अपेक्षा ज्ञानावरणादि कर्मों में जघन्य वेदना का निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के ज्ञानावरणीय की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य होती है उसके सात कर्मों की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?।।२८५।।

वह जघन्य होती है।।२८६।।

इसी प्रकार शेष सात कर्मों की प्ररूपणा जाननी चाहिए।।२८७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि जघन्य अवगाहना में स्थित ज्ञानावरणीय के स्कंधों से जीव द्वारा सात कर्मों के स्कंधों में कोई भेद नहीं पाया जाता है।

जिस प्रकार ज्ञानावरणीय के सन्निकर्ष की प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार शेष सात कर्मों के सन्निकर्ष की प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

इस प्रकार बीसवें स्थल में कर्मों की वेदना क्षेत्र की अपेक्षा से निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब काल की अपेक्षा जघन्यवेदना के निरूपण हेतु बारह सूत्र अवतरित करते हैं —

जस्स णाणावरणीयवेयणा कालदो जहण्णा तस्स दंसणावरणीय-
अंतराइयवेयणा कालदो किं जहण्णा अजहण्णा?।।२८८।।

जहण्णा।।२८९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ज्ञानावरणीयजघन्यद्रव्यस्कंधानां च एतयोः जघन्यद्रव्यस्कंधयोरपि
एकसमयस्थितिदर्शनात्।

तस्स वेयणीय-आउअ-णामा-गोदवेयणा कालदो किं जहण्णा अज-
हण्णा ?।।२९०।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।२९१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — त्रयाणामघातिकर्मणां पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रस्थितिसत्त्व-कर्मशेषत्वात्,
आयुषः अन्तर्मुहूर्तप्रभृति स्थितिसत्त्वकर्मशेषत्वात्।

तस्स मोहणीयवेयणा कालदो जहण्णया णत्थि।।२९२।।

एवं दंसणावरणीय-अंतराइयाणं।।२९३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सूक्ष्मसांपरायिकचरमसमये नष्टे सति क्षीणकषायचरमसमये सत्त्वाभावात्।

सूत्रार्थ —

जिस जीव के ज्ञानावरणीय की वेदना काल की अपेक्षा जघन्य होती है उसके
दर्शनावरणीय और अन्तराय की वेदना काल की अपेक्षा क्या जघन्य होती है या
अजघन्य होती है ?।।२८८।।

वह जघन्य होती है।।२८९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि ज्ञानावरणीय के जघन्य द्रव्य के स्कंधों की तथा इन
दो कर्मों के जघन्य द्रव्य के स्कंधों की भी एक समय स्थिति देखी जाती है।

सूत्रार्थ —

उसके वेदनीय, आयु, नाम और गोत्रकर्म की वेदना काल की अपेक्षा क्या
जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?।।२९०।।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।२९१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि उसके तीनों अघातिया कर्मों का पल्योपम के असंख्यातवें
भाग मात्र स्थितिसत्त्व कर्म शेष देखा जाता है।

सूत्रार्थ —

उसके मोहनीय की वेदना काल की अपेक्षा जघन्य नहीं होती है।।२९२।।

इसी प्रकार दर्शनावरण और अन्तराय की प्ररूपणा करनी चाहिए।।२९३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि सूक्ष्मसाम्परायिक के चरम समय में उसके नष्ट हो

यथा ज्ञानावरणीयस्य सन्निकर्षः कृतः तथा एतयोः द्वयोः कर्मणोः कर्तव्यः।

**जस्म वेयणीयवेयणा कालदो जहण्णा तस्स णाणावरणीय-दंसणा-
वरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं वेयणा कालदो जहण्णिंया णत्थि।।२९४।।**

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—छद्मस्थकाले विनष्टत्वात् इति ज्ञातव्यम्।

**तस्स आउअ-णामा-गोदवेयणा कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।।२९५।।
जहण्णा।।२९६।।**

एवं आउअ-णामा-गोदाणं।।२९७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—अयोगिचरमसमये तिसृणां वेदनानामेकस्थितिदर्शनात्। यथा वेदनीयस्य सन्निकर्षः कृतः तथा एतेषामपि त्रयाणां कर्मणां कर्तव्यः।

**जस्म मोहणीयवेयणा कालदो जहण्णा तस्स सत्तण्णं कम्माणं वेयणा
कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।।२९८।।**

जाने पर क्षीणकषाय के अंतिम समय में सत्त्व का अभाव हो जाता है।

जिस प्रकार से ज्ञानावरणीय कर्म का सन्निकर्ष किया गया है उसी प्रकार से इन दो कर्मों का सन्निकर्ष करना चाहिए।

सूत्रार्थ—

जिस जीव के ज्ञानावरणीय की वेदना काल की अपेक्षा जघन्य होती है उसके ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय की वेदना काल की अपेक्षा जघन्य नहीं होती है।।२९४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—उनकी वेदना चूँकि छद्मस्थ काल में नष्ट हो चुकी है इसीलिए ऐसा कथन किया है।

सूत्रार्थ—

उसके आयु, नाम और गोत्र की वेदना काल की अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।२९५।।

वह जघन्य होती है।।२९६।।

इसी प्रकार आयु, नाम और गोत्र कर्म की प्ररूपणा करनी चाहिए।।२९७।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—कारण यह है कि अयोगकेवली के अंतिम समय में उक्त तीन वेदनाओं की एक समय स्थिति देखी जाती है।

जिस प्रकार से वेदनीय का सन्निकर्ष किया गया है उसी प्रकार से इन तीनों भी कर्मों का करना चाहिए।

सूत्रार्थ—

जिस जीव के मोहनीय की वेदना काल की अपेक्षा जघन्य होती है उसके सात कर्मों की वेदना काल की अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।२९८।।

णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।।२९९।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — एकसमयमपेक्ष्य घातिकर्मणां अन्तर्मुहूर्तमात्रस्थितेः अघातीनां पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रस्थितेः च अन्तर्मुहूर्तप्रभृति स्थितिसत्त्वस्य च असंख्यातगुणत्वोपलंभात्।

एवं एकविंशतितमे स्थले कालापेक्षया वेदनानिरूपणत्वेन द्वादशसूत्राणि गतानि।

अधुना भावापेक्षया ज्ञानावरणादिवेदनानिरूपणार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

जस्स णाणावरणीयवेयणा भावदो जहण्णा तस्स दंसणावरणीय-
अंतराइय-वेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।।३००।।

जहण्णा।।३०१।।

तस्स वेयणीय-आउअ-णामा-गोदवेयणा भावदो किं जहण्णा अज-
हण्णा ?।।३०२।।

णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।।३०३।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — क्षपकपरिणामैः सर्वोत्कृष्टं घातं प्राप्य क्षीणकषायचरमसमये स्थितत्वात्।

वह नियम से अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है।।२९९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि एक समय की अपेक्षा घातिया कर्मों की अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थिति और अघातिया कर्मों की पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र स्थिति ये तीनों स्थितियों का तथा अन्तर्मुहूर्त आदि रूप स्थितिसत्त्व भी असंख्यातगुणा पाया जाता है।

इस प्रकार इक्कीसवें स्थल में काल की अपेक्षा वेदना का निरूपण करने वाले बारह सूत्र पूर्ण हुए।

अब भाव की अपेक्षा ज्ञानावरणीय आदि की वेदना का निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के ज्ञानावरणीय की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य होती है उसके दर्शनावरणीय और अन्तराय की वेदना भाव की अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?।।३००।।

वह जघन्य होती है।।३०१।।

उसके वेदनीय, नाम और गोत्र की वेदना भाव की अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?।।३०२।।

यह नियम से अजघन्य अनन्तगुणी अधिक होती है।।३०३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — कारण यह है कि वह क्षपक परिणामों के द्वारा सर्वोत्कृष्ट घात को प्राप्त होकर क्षीणकषाय गुणस्थान के अंतिम समय में स्थित है।

संप्रति वेदनीयायुर्नामगोत्राणां अजघन्या वेदना अनन्तगुणाभ्यधिका भवति। तस्य स्पष्टीकरणं क्रियते —
परिवर्तमानमध्यमपरिणामेन बद्धापर्याप्तसंयुक्ततिर्यगायुरनुभागं, भव्यसिद्धिक चरमसमयासाता-
वेदनीयजघन्यानुभागं, सूक्ष्मनिगोदजीवापर्याप्तकेन हतसमुत्पत्तिककर्मणा परिवर्तमानमध्यमपरिणामेन
बद्धनामजघन्यानुभागं, उच्चगोत्रमुद्वेल्य बादरतेजस्कायिकायिकायिकजीवेन सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तकेन
सर्वविशुद्धेन बद्धनीचगोत्रजघन्यानुभागं चापेक्ष्य एतस्य क्षीणकषायस्य चरमसमये वर्तमानस्य एतेषां
कर्मणां अनुभागस्य अनन्तगुणत्वं भवति, वेदनीयनामगोत्रानुभागानां प्रशस्तभावेन उत्कृष्टत्वोपलंभात्।
मनुष्यायुर्भावस्य घातवर्जितस्य तिर्यगायुषः प्रशस्तस्य जघन्यात् अनन्तगुणत्वं भवति।

एतत् कुतो ज्ञायते ?

चतुःषष्टिपदिकाल्पबहुत्ववचनात् एव ज्ञायते।

अधुना भावापेक्षया मोहनीयादिवेदनानिरूपणार्थं सूत्रपंचकमवतार्यते —

तस्स मोहणीयवेयणा भावदो जहणिया णत्थि।।३०४।।

एवं दंसणावरणीय-अंतराड्याणं।।३०५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — तस्यास्तत्र प्रदेशसत्त्वाभावात् भावापेक्षया जघन्या वेदना नास्तीति ज्ञातव्यं।
अत्र यथा ज्ञानावरणीयसन्निकर्षः कृतस्तथा एतयोरपि दर्शनावरण-अंतरायप्रकृत्योः कर्तव्यः।

अब वेदनीय-आयु-नाम और गोत्र इन कर्मों की जो अजघन्य वेदना अनन्तगुणित अधिक होती है उसका स्पष्टीकरण करते हैं —

परिवर्तमान परिणाम के द्वारा बांधे गये अपर्याप्त सहित तिर्यच आयु के अनुभाग की अपेक्षा भव्यसिद्धिक अवस्था के अंतिम समय में असाता वेदनीय के जघन्य अनुभाग की अपेक्षा, हतसमुत्पत्तिककर्मा सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक जीव के द्वारा परिवर्तमान मध्यम परिणाम के द्वारा बांधे गये नाम कर्म के जघन्य अनुभाग की अपेक्षा तथा उच्च गोत्र की उद्वेलना करके सब पर्याप्तियों से पर्याप्त हुए सर्वविशुद्ध बादर तेजकायिक व वायुकायिक जीव के द्वारा बांधे गये नीच गोत्र के जघन्य अनुभाग की अपेक्षा क्षीणकषाय के अंतिम समय में वर्तमान इस जीव के इन कर्मों का अनुभाग अनन्तगुणा होता है, क्योंकि प्रशस्त होने के कारण वेदनीय, नाम और गोत्र के अनुभाग में उत्कृष्टता पायी जाती है। तिर्यच आयु की अपेक्षा प्रशस्त व घात से रहित मनुष्यायु का अनुभाग जघन्य अनुभाग की अपेक्षा अनन्तगुणा होता है।

शंका — यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान — वह चौंसठपद रूप अल्पबहुत्व के वचन से जाना जाता है।

अब भाव की अपेक्षा मोहनीय आदि कर्मों की वेदना का निरूपण करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

उसके मोहनीय की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य नहीं होती।।३०४।।

इसी प्रकार से दर्शनावरणाय और अन्तराय की अपेक्षा प्ररूपणा करनी चाहिए।।३०५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि वहाँ उसके प्रदेशों के सत्त्व का अभाव पाया जाता है इसलिए भाव की अपेक्षा जघन्य वेदना नहीं है ऐसा जानना चाहिए। यहाँ जिस प्रकार ज्ञानावरणीय

**जस्स वेयणीयवेयणा भावदो जहण्णा तस्स णाणावरणीय-दंसणा-
वरणीय-मोहणीय-अंतराइयवेयणा भावदो जहण्णिणा पत्थि।।३०६।।**

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अयोगिकेवलिचरमसमये एतेषां कर्मणां प्रदेशसत्त्वाभावात्।

तस्स आउअ-णामा-गोदवेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ?।।३०७।।

णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।।३०८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यशःकीर्ति-उच्चगोत्रयोः चरमसमयवर्ति-सूक्ष्मसांपरायिकेण बद्धोत्कृष्टानु-
भागस्य स्वक-स्वकजघन्यानुभागात् अनंतगुणस्य अयोगिचरमसमये उपलंभात्, तिर्यगपर्याप्तसंयुक्तायुर्भावादपि
मनुष्यायुर्भावस्य प्रशस्तत्वेन घाताभावेन च अनंतगुणत्वोपलंभात्।

अधुना यस्य मोहनीयवेदना-भावापेक्षया जघन्या तस्य सप्तकर्मणां किमितिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

**जस्स मोहणीयवेयणा भावदो जहण्णा तस्स सत्तण्णं कम्माणं वेयणा
भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।।३०९।।**

कर्म का सन्निकर्ष किया गया है, उसी प्रकार से इन दो प्रकृतियों के — दर्शनावरण और अन्तराय प्रकृति के भी सन्निकर्ष की प्ररूपणा करनी चाहिए।

सूत्रार्थ —

जिस जीव के वेदनीय कर्म की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य होती है, उसके ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणणीय, मोहनीय और अन्तराय की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य नहीं होती है।।३०६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि अयोगकेवली भगवान के चरम समय में इन कर्मों के प्रदेशों के सत्त्व का अभाव पाया जाता है।

सूत्रार्थ —

उसके आयु, नाम और गोत्र की वेदना भाव की अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?।।३०७।।

वह नियम से अजघन्य अनन्तगुणी अधिक होती है।।३०८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि यशःकीर्ति और उच्चगोत्र का अन्तिमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक के द्वारा बांधा गया उत्कृष्ट अनुभाग अयोगकेवली के अंतिम समय में अपने-अपने जघन्य अनुभाग की अपेक्षा अनन्तगुणा पाया जाता है तथा अपर्याप्त सहित तिर्यच आयु के अनुभाग की अपेक्षा प्रशस्त व घात से रहित होने के कारण मनुष्यायु का भी अनुभाग अनन्तगुणा पाया जाता है।

अब जिसके मोहनीय कर्म की वेदना भाव की अपेक्षा से जघन्य है उसके सात कर्मों की वेदना क्या है ? इस प्रकार के प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के मोहनीय की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य होती है, उसके सात कर्मों की वेदना भाव की अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।३०९।।

णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।।३१०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — त्रयाणां घातिकर्मणां क्षीणकषायेन घातिष्यमाणानुभागस्य अत्र सत्त्वस्वरूपेण उपलंभात् वेदनीय-नाम-गोत्राणां सातावेदनीय-यशःकीर्ति-उच्चगोत्रानुभागस्य बंधेन उत्कृष्टभावोपलंभात्, मनुष्यायुर्भावस्यापि प्रशस्तत्वेन अनंतगुणत्वोपलंभात्।

यस्यायुर्वेदना भावापेक्षया जघन्या तस्य नामवर्जितषट्कर्मणां किमिति प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

जस्स आउअवेयणा भावदो जहण्णा तस्स छण्णं कम्माणं णामवज्जाणं वेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ?।।३११।।

णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।।३१२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — वेदनीय-घातिकर्मणां क्षपकपरिणामैरत्र घाताभावात् मनुष्येषु पंचेन्द्रियतिर्यक्षु च मध्यमपरिणामेन बद्धतिर्यगपर्याप्तसंयुक्तायुर्जघन्यभावेषु अनुद्वेलितोच्चगोत्रेषु सर्वविशुद्धबादरतेजो-वायुकायिकपर्याप्तकेषु च अघातितनीचगोत्रानुभागेषु स्वकजघन्यात् गोत्रानुभागस्य अनंतगुणत्वोपलंभात्।

अधुना नामवेदना भावापेक्षया जघन्याजघन्यप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

वह नियम से अजघन्य अनन्तगुणी अधिक होती है।।३१०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि तीन घातिया कर्मों का क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती जीव के द्वारा घाता जाने वाला अनुभाग यहाँ सत्त्वरूप से पाया जाता है तथा वेदनीय कर्म की साता वेदनीय प्रकृति के नाम की यशःकीर्ति प्रकृति के और गोत्र की उच्चगोत्र प्रकृति के अनुभाग में यहाँ बंध से उत्कृष्टता पायी जाती है तीसरे मनुष्यायु का अनुभाग भी प्रशस्त होने के कारण यहाँ अनन्तगुणा पाया जाता है।

जिसके आयु की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य होती है उसके नामकर्म वर्जित छह कर्मों की वेदना क्या है ?

इस प्रकार के प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के आयु कर्म की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य होती है उनके नामकर्म को छोड़कर शेष छह कर्मों की वेदना भाव की अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।३११।।

वह नियम से अजघन्य अनन्तगुणी अधिक होती है।।३१२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि क्षपक परिणामों के द्वारा घात संभव न होने से वेदनीय और घातिया कर्मों का अनुभाग अनन्तगुणा पाया जाता है तथा मध्यम परिणाम के द्वारा जिन्होंने तिर्यच अपर्याप्त संबंधी आयु के जघन्य अनुभाग को बांधा है, ऐसे मनुष्यों एवं पंचेन्द्रिय तिर्यचों में और उच्च गोत्र की उद्वेलना न करने वाले तथा नीच गोत्र के अनुभाग को न घातने वाले सर्वविशुद्ध बादर तेजस्कायिक एवं वायुकायिक पर्याप्त जीवों में गोत्र का अनुभाग अपने जघन्य की अपेक्षा अनन्तगुणा पाया जाता है।

अब नामकर्म की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य है या अजघन्य ? इस प्रकार प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र कहे जाते हैं —

तस्स णामवेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।।३१३।।

जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा छट्ठाणपदिदा।।३१४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जघन्यमायुर्भावं बंधयित्वा सूक्ष्मनिगोदजीवापर्याप्तकेषु उत्पद्य हतसमुत्पत्तिकं कृत्वा यदि नामकर्मणो जघन्यानुभागः कृतः तर्हि आयुर्भावेन सह नामभावो जघन्यो भवति। अन्यथा अजघन्यो भूत्वा षट्स्थानपतितो जायते।

यस्य आयुर्वेदना भावापेक्षया जघन्या तस्य सप्तकर्मणां वेदना किमितिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

जस्स णामवेयणा भावदो जहण्णा तस्स छण्णं कम्माणमाउअवज्जाणं वेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ?।।३१५।।

णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।।३१६।।

तस्स आउअवेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ?।।३१७।।

जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा छट्ठाणपदिदा।।३१८।।

सूत्रार्थ—

उसके नामकर्म की वेदना भाव की अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।३१३।।

वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी होती है, जघन्य की अपेक्षा अजघन्य छह स्थानों में पतित होती है।।३१४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — आयु के जघन्य अनुभाग को बांधकर सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवों में उत्पन्न होकर हतसमुत्पत्ति करके यदि नामकर्म का अनुभाग जघन्य कर लिया है तो आयु के अनुभाग के साथ नामकर्म का अनुभाग जघन्य होता है। इससे विपरीत अवस्था में वह अजघन्य होकर छह स्थान पतित होता है।

जिसके आयुर्कर्म की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य है, उसके सात कर्मों की वेदना क्या है ? इस प्रकार के प्रश्नोत्तररूप से चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

जिस जीव के नामकर्म की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य होती है उसके आयु को छोड़कर शेष छह कर्मों की वेदना भाव की अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य होती है ?।।३१५।।

वह नियम से अजघन्य अनन्तगुणी अधिक होती है।।३१६।।

उसके आयु की वेदना भाव से क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।३१७।।

वह जघन्य भी होती है और अजघन्य भी होती है। जघन्य की अपेक्षा अजघन्य छह स्थानों में पतित होती है।।३१८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यस्य नामवेदना भावापेक्षया जघन्या तस्य आयुर्वर्जितषट्कर्मणां वेदना भावतो नियमेन अजघन्या अनंतगुणाभ्यधिका ज्ञातव्या।

अस्यैव जीवस्य आयुर्वेदना जघन्या अपि अजघन्या अपि ज्ञातव्या। जघन्यापेक्षया अजघन्या षट्स्थानपतिता भवतीति ज्ञातव्यं।

यस्य गोत्रवेदना भावापेक्षया जघन्या तस्य सप्तकर्मणां किमितिप्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

जस्स गोदवेयणा भावदो जहण्णा तस्स सत्तण्णं कम्माणं वेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ?।।३१९।।

णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।।३२०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सर्वविशुद्ध बादरतेजस्कायिक-वायुकायिकपर्याप्तकेषु उद्वेलितोच्चगोत्रेषु नीचगोत्रस्य कृतजघन्यभावेषु शेषसर्वकर्मणामनुभागस्य अनंतगुणत्वोपलभात् गोत्रवेदना नियमेन अजघन्या अनंतगुणाभ्यधिका ज्ञातव्या।

तात्पर्यमत्र — कर्मणां वेदनासन्निकर्षविधानादिकं विज्ञाय तेभ्यो भिन्नशुद्धबुद्धचिच्चैतन्यचिन्तामणिस्वरूपं स्वशुद्धात्मतत्त्वमेवाभ्यसनीयमिति।

एवं द्वाविंशतितमे स्थले ज्ञानावरणादिकर्मणां जघन्यवेदनाकथनत्वेन एकविंशतिसूत्राणि गतानि।

इति जघन्यपरस्थानवेदनासन्निकर्षः समाप्तः।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जिसके नामकर्म की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य है उसके आयुर्कर्म को छोड़कर छह कर्मों की वेदना भाव से नियमपूर्वक अजघन्य अनन्तगुणी अधिक जानना चाहिए।

इसी जीव के आयु की वेदना जघन्य भी और अजघन्य भी जानना चाहिए। जघन्य की अपेक्षा से अजघन्य षट्स्थान पतित होती है, ऐसा जानें।

जिनके गोत्र की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य है उनके सात कर्मों की वेदना क्या है ? इस प्रकार के प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जिस जीव के गोत्र की वेदना भाव की अपेक्षा जघन्य होती है उसके सात कर्मों की वेदना भाव की अपेक्षा क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?।।३१९।।

वह नियम से अजघन्य अनन्तगुणी अधिक होती है।।३२०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि जिन्होंने उच्च गोत्र की उद्वेलना की है तथा नीचगोत्र के अनुभाग को जघन्य किया है, ऐसे सर्वविशुद्ध बादर तेजस्कायिक एवं वायुकायिक जीवों में शेष सब कर्मों का अनुभाग अनन्तगुणा पाया जाता है इसलिए गोत्र की वेदना नियम से अजघन्य अनन्तगुणा अधिक होती है, ऐसा जानना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि कर्मों के वेदनासन्निकर्षविधान आदि को जानकर उन कर्मों से भिन्न शुद्ध-बुद्ध-चिच्चैतन्य चिन्तामणिस्वरूप अपने शुद्धात्मतत्त्व का ही अभ्यास करना चाहिए।

इस प्रकार बाइसवें स्थल में ज्ञानावरणादि कर्मों की जघन्य वेदना का कथन करने वाले इक्कीस सूत्र पूर्ण हुए।

यह जघन्य परस्थानवेदनासन्निकर्ष समाप्त हुआ।

अत्र पर्यंतं द्वाविंशतिस्थलैः विंशत्यधिकत्रिंशतसूत्रैः वेदनासन्निकर्षविधाननामानुयोगद्वारं समाप्तम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य वेदनानाम्नि चतुर्थखण्डे द्वादशे ग्रन्थे गणिनीज्ञानमती-
कृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां द्वितीयमहाधिकारान्तर्गत-वेदनासन्निकर्ष-
विधानानुयोगद्वारनामायं प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

यहाँ तक बाईस स्थलों में तीन सौ बीस सूत्रों के द्वारा वेदनासन्निकर्षविधान नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के वेदना नामक चतुर्थ खण्ड में
बारहवें ग्रंथ में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्त-
चिंतामणि टीका में द्वितीय महाधिकार के अन्तर्गत
वेदनासन्निकर्षविधान अनुयोगद्वार नाम का
प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।



अथ वेदनापरिमाणविधानानुयोगद्वारम्

(वेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-चतुर्दशानुयोगद्वारम्)

द्वितीयोऽधिकारः

मंगलाचरणम्

अष्टाविंशतिमूलवृत्तसहिता, उत्तरगुणैर्मंडिताः।
पंचाचारपरायणाः प्रतिक्षणं, स्वाध्यायमातन्वते॥
आचार्यादि-मुनीश्वराः बहुविधा, ध्यानैकलीना मुदा।
ते सर्वेऽपि दिगम्बरा मुनिगणाः, कुर्वन्तु मे (नो) मंगलम्॥१॥

अथ द्वितीयवेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गतचतुर्दशमिदं वेदनापरिमाणविधानानुयोगद्वारमस्ति। तत्र तावत् द्वितीयमहाधिकारान्तर्गते त्रिभिःस्थलैः त्रिपंचाशत्सूत्रैः वेदनापरिमाणविधानानुयोगद्वारनाम द्वितीयोऽधिकारः प्ररूप्यते। तत्र तावत्प्रथमस्थले प्रतिज्ञासूचनपरत्वेन भेदसूचनत्वेन “वेयणापरिमाण” चेत्यादिना त्रयोविंशतिसूत्राणि। ततः परं द्वितीयस्थले “समय” इत्यादिना एकोनविंशतिसूत्राणि। तत्पश्चात् तृतीयस्थले ज्ञानावरणादिकर्मणां क्षेत्रप्रत्यासनिरूपणत्वेन “खेत्त-” इत्यादिना एकादशसूत्राणीति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अधुना एतदधिकारप्रतिज्ञाप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

अथ वेदनापरिमाणविधान अनुयोगद्वार

(वेदनानुयोगद्वार के अन्तर्गत-चौदहवाँ अनुयोगद्वार)

द्वितीय अधिकार

-मंगलाचरण-

श्लोकार्थ — जो अट्ठाईस मूलगुणों से समन्वित हैं, उत्तर गुणों से मण्डित — सुशोभित हैं, पंच आचारों (ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार) के पालन में परायण — कुशल हैं, प्रतिक्षण स्वाध्याय में तत्पर रहते हैं, ऐसे आचार्य आदि अनेक प्रकार के मुनीश्वर जो सदैव प्रसन्नतापूर्वक ध्यान में लीन रहते हैं, वे सभी दिगम्बर मुनिगण हम सभी का मंगल करें॥१॥

अब द्वितीय वेदनानुयोगद्वार के सोलह भेदों के अन्तर्गत यह वेदनापरिमाणविधान नाम का चौदहवाँ अनुयोगद्वार प्रस्तुत है। उनमें से द्वितीय महाधिकार के अन्तर्गत तीन स्थलों में त्रेपन सूत्रों के द्वारा वेदनापरिमाणविधान अनुयोगद्वार नाम का द्वितीय अधिकार प्ररूपित किया जा रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में प्रतिज्ञा की सूचना एवं भेद को सूचित करने वाले “वेयणापरिमाण” इत्यादि तेईस सूत्र हैं। आगे द्वितीय स्थल में “समय” इत्यादि उन्नीस सूत्र हैं। तत्पश्चात् तृतीय स्थल में ज्ञानावरण आदि कर्मों के क्षेत्रप्रत्यास को निरूपित करने वाले “खेत्त” इत्यादि ग्यारह सूत्र हैं। इस प्रकार सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब सर्वप्रथम इस अधिकार की प्रतिज्ञा का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

वेयणापरिमाणविहाणे त्ति।।१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतद् वेदनापरिमाणविधाननामाधिकारस्मरणकरणार्थं सूत्रं ज्ञातव्यम्।

किमर्थमेतदुच्यते ?

नैतद् वक्तव्यं, अन्यथा प्ररूपणाया निष्फलत्वप्रसंगात्।

पुनः कश्चिदाह —

न तावदेतेन प्रकृतिवेदनापरिमाणमुच्यते, ज्ञानावरणाद्यष्टौ चैव प्रकृतयो भवन्तीति पूर्वं प्ररूपितत्वात्। न स्थितिवेदनायाः प्ररूपणा एतेन क्रियते, कालविधाने सप्रपंचेन प्ररूपितस्थितिप्रमाणत्वात्। न भाववेदनायाः प्रमाणप्ररूपणा एतेन क्रियते, अनुत्कृष्टद्रव्यविधाने प्ररूपितस्य पुनः प्ररूपणायाः फलाभावात्। न च क्षेत्रवेदनायाः प्रमाणप्ररूपणा एतेन क्रियते, क्षेत्रविधाने प्ररूपितत्वात्। अनधिगतप्रमेयाधिगमः एतस्मात् नास्तीति न प्रारभयितव्यं एतदनुयोगद्वारम् ?

अत्र आचार्यदेवः परिहरति —

पूर्वं द्रव्यार्थिकनयमाश्रित्य अष्टौ चैव प्रकृतयो भवन्तीति उक्तं। तासामष्टानां चैव प्रकृतीनां द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावप्रमाणादिप्ररूपणा च कृता। संप्रति पर्यायार्थिकनयमाश्रित्य प्रकृतिप्रमाणप्ररूपणार्थ-मेतदनुयोगद्वारमागतम्।

सूत्रार्थ —

अब वेदनापरिमाणविधान अनुयोगद्वार का अधिकार है।।१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यह सूत्र वेदनापरिमाणविधान नाम के अधिकार का स्मरण कराने हेतु समझना चाहिए।

शंका — ऐसा किस कारण से कहा जा रहा है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि इसके बिना प्ररूपणा के निष्फल होने का प्रसंग प्राप्त होता है।

इस बात पर पुनः कोई प्रश्न करता है कि —

यह अधिकार प्रकृतिवेदना के प्रमाण को तो बतलाता नहीं है, क्योंकि ज्ञानावरण आदि आठ ही प्रकृतियाँ हैं, यह पहले ही प्ररूपणा की जा चुकी है। स्थितिवेदना के प्रमाण की प्ररूपणा भी नहीं करता है, क्योंकि कालविधान में विस्तारपूर्वक स्थिति का प्रमाण बतलाया जा चुका है। यह भाववेदना प्रमाण की भी प्ररूपणा नहीं करता, क्योंकि भावविधान में प्ररूपित उसकी फिर से प्ररूपणा करना निष्फल होगा।

प्रदेशप्रमाण की प्ररूपणा भी इसके द्वारा नहीं की जाती है, क्योंकि अनुत्कृष्ट द्रव्य विधान में उसकी प्ररूपणा की जा चुकी है, अतएव उसकी यहाँ फिर से प्ररूपणा करने का कोई प्रयोजन नहीं है। क्षेत्रवेदना के प्रमाण की प्ररूपणा भी इसके द्वारा नहीं की जाती है, क्योंकि उसकी प्ररूपणा क्षेत्र विधान में की जा चुकी है। इस प्रकार चूँकि प्रकृति अधिकार से अनधिगत पदार्थ का अधिगम होता नहीं है अतएव इस अनुयोगद्वार अधिकार को प्रारंभ नहीं करना चाहिए ?

इस शंका का आचार्यदेव परिहार करते हैं —

पहले द्रव्यार्थिक नय का आश्रय करके आठ ही प्रकृतियाँ होती हैं, ऐसा कहा गया है तथा उन आठों प्रकृतियों के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव आदि के प्रमाण की भी प्ररूपणा की गई है। अब यहाँ पर्यायार्थिकनय का आश्रय करके प्रकृतियों के प्रमाण की प्ररूपणा करने के लिए यह अनुयोगद्वार प्राप्त हुआ है।

पुनरपि कश्चित् पृच्छति —

पर्यायार्थिकनयमवलम्ब्य प्ररूप्यमाण प्रकृतीनां द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावादिप्ररूपणा किन्न क्रियते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

न क्रियते, तस्याः प्ररूप्यमाणायाः पूर्वोक्तप्ररूपणाया भेदाभावेन तदनुक्तेः।

अधुना अस्यानुयोगस्य त्रिभेदकथनार्थं सूत्रमवतार्यते —

तत्थ इमाणि तिणिण अणुयोगद्वाराणि-पगदिअट्ठदा समयपबद्धट्ठदा खेत्त-पच्चासए ति।।२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — प्रकृतिः शीलं स्वभावः इत्येकार्थः। अर्थः प्रयोजनं तस्य भावः अर्थता। प्रकृतेः अर्थता। सा एकोऽधिकारः। समये प्रबध्यते इति समयप्रबद्धः। अय्यंते परिच्छिद्यते इत्यर्थः। स चासावर्थश्च समयप्रबद्धार्थः। तस्य भावः समयप्रबद्धार्थता। एषः द्वितीयोऽधिकारः। क्षेत्रं प्रत्याश्रयो यस्याः सा क्षेत्रप्रत्याश्रया अधिकृतिः। एवं त्रिविधा वेदनापरिमाणप्ररूपणा भवति। प्रकृतिभेदेन कर्मभेदप्ररूपणा एकोऽधिकारः। समयप्रबद्धभेदेन प्रकृतिभेदप्ररूपको द्वितीयोऽधिकारः। क्षेत्रभेदेन प्रकृतिभेदप्ररूपकस्तृतीयोऽधिकारः इत्युक्तं भवति।

संप्रति प्रथमभेदस्य ज्ञानावरण-दर्शनावरणकर्मणोः संख्यानिर्धारणार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

यहाँ कोई पुनः पूछता है —

पर्यायार्थिक नय का आश्रय करके कही जाने वाली प्रकृतियों के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव आदि की प्ररूपणा क्यों नहीं की जा रही है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं —

नहीं की जा रही है, क्योंकि उक्त प्ररूपणा के करने में पूर्वोक्त प्ररूपणा से कोई विशेषता नहीं रहती है अतएव वह यहाँ नहीं की गई है।

अब इस अनुयोगद्वार के तीन भेदों का कथन करने हेतु सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

उसमें से ये तीन अनुयोगद्वार हैं — प्रकृत्यर्थता, समयप्रबद्धता और क्षेत्रप्रत्यास।।२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — प्रकृति, शील और स्वभाव ये समानार्थक पर्यायवाची शब्द हैं। अर्थ शब्द का वाच्यार्थ प्रयोजन है और उसका भाव अर्थता है। प्रकृति की अर्थता प्रकृत्यर्थता, यह षष्ठी तत्पुरुष समास है। वह प्रथम अधिकार है। जो कर्म एक समय में बांधा जाता है वह समयप्रबद्ध कहलाता है। जो अय्यंते अर्थात् जाना जाता है — निश्चय किया जाता है वह अर्थ है। समयप्रबद्धरूप अर्थ समयप्रबद्धार्थ है, इस प्रकार यहाँ कर्मधारय समास है, समयप्रबद्धार्थ के भाव को समयप्रबद्धार्थता कहा गया है। यह द्वितीय अधिकार है। क्षेत्र है प्रत्याश्रय जिसका वह क्षेत्रप्रत्याश्रय अधिकार है। इस प्रकार वेदनापरिमाण की प्ररूपणा तीन प्रकार की है। प्रकृति भेद से कर्मभेद की प्ररूपणा यह एक अधिकार, समयप्रबद्धों के भेद से प्रकृति भेद का प्ररूपक दूसरा अधिकार और क्षेत्र के भेद से प्रकृति भेद का प्ररूपक तीसरा अधिकार है, यह उसका अभिप्राय है।

अब प्रथम भेद के अन्तर्गत ज्ञानावरण-दर्शनावरण कर्मों की संख्या निर्धारण करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

पगादिअट्टदाए णाणावरणीय-दंसणावरणीयकम्मस्स केवडियाओ पयडीओ।।३।।

णाणावरणीय-दंसणावरणीयकम्मस्स असंखेज्जलोगपयडीओ।।४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—एतत्पृच्छासूत्रं त्रिविधं संख्यातं नवविधमसंख्यातं अनन्तं चाश्रित्य व्याख्यानं कर्तव्यम्।

ज्ञानावरणीयस्य दर्शनावरणीयस्य च कर्मणः प्रकृतयः स्वभावाः शक्तयः असंख्यातलोकमात्राः।

कुतः एतावन्त्यो भवन्तीति ज्ञायते ?

आवरणयोग्यदर्शन-ज्ञानं असंख्यातलोकमात्रभेदोपलंभात्। तद्यथा—सूक्ष्मनिगोदस्य यद् जघन्यलब्ध्यक्षरं तदेकं ज्ञानं। तन्निरावरणं। “अक्खरस्स अणंतभागो णिच्चुग्घादिओ।”^{१९} इति वचनात्। अस्य ज्ञानस्याभावे जीवाभावप्रसंगात् वा।

अत एव अक्षरस्यानन्तभागमात्रं ज्ञानं सदैव प्रकटितं अस्तीति कर्तव्यम्।

पुनः लब्ध्यक्षरे सर्वजीवैः खण्डिते लब्धे तत्रैव प्रक्षिप्ते द्वितीयं ज्ञानं भवति। पुनः द्वितीयज्ञाने सर्वजीवैः खण्डिते लब्धे तत्रैव प्रक्षिप्ते तृतीयं ज्ञानं भवति। एवं षड्वृद्धिक्रमेण नेतव्यं यावत् असंख्यातलोकमात्रषट्-स्थानानि गत्वा अक्षरज्ञानं समुत्पन्नमिति।

सूत्रार्थ—

प्रकृतिअर्थता अधिकार की अपेक्षा ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म की कितनी प्रकृतियाँ हैं ?।।३।।

ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म की असंख्यात लोकप्रमाण प्रकृतियाँ हैं।।४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—इस पृच्छासूत्र का व्याख्यान तीन प्रकार के संख्यात, नौ प्रकार के असंख्यात तथा नौ प्रकार के अनन्त का आश्रय लेकर करना चाहिए।

ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म की प्रकृतियाँ अर्थात् स्वभाव व शक्तियाँ असंख्यात लोकप्रमाण हैं।

शंका—उनकी प्रकृतियाँ इतनी हैं, यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—चूँकि आवरण के योग्य ज्ञान व दर्शन के असंख्यात लोक मात्र भेद पाये जाते हैं अतएव उनके आवारक उक्त कर्मों की प्रकृतियाँ भी उतनी ही होनी चाहिए। वह इस प्रकार है—सूक्ष्म निगोद जीव का जो जघन्य लब्ध्यक्षर रूप एक ज्ञान है वह निरावरण है, क्योंकि अक्षर के अनन्तवें भाग मात्र ज्ञान सदा प्रगट रहता है, ऐसा आगमवचन है अथवा ज्ञान के अभाव में चूँकि जीव के अभाव का भी प्रसंग आता है अतएव अक्षर के अनन्तवें भाग मात्र ज्ञान सदा प्रगट रहता है, यह स्वीकार करना चाहिए।

पुनः लब्ध्यक्षर को सब जीवों से खण्डित करने पर जो लब्ध हो, उसे उसी में मिलाने पर द्वितीय ज्ञान होता है। फिर द्वितीय ज्ञान को सब जीवों से खण्डित करने पर जो लब्ध हो, उसको उसी में मिलाने पर तीसरा ज्ञान होता है। इस प्रकार छह वृद्धियों के क्रम से असंख्यात लोक मात्र छह स्थान जाकर अक्षर ज्ञान के पूर्ण होने तक ले जाना चाहिए।

अक्षरज्ञानादुपरि एकैकाक्षरोत्तरवृद्धेः गम्यमानज्ञानानां 'अक्षरसमास' इति संज्ञा। अत्र अक्षरज्ञानादुपरि षड्विधा वृद्धिर्नास्ति, द्विगुण-त्रिगुणादिक्रमेण अक्षरवृद्धिर्भवति इति केऽपि आचार्या भणन्ति। केऽपि पुनः अक्षरज्ञानप्रभृति उपरि सर्वत्र क्षयोपशमस्य षड्विधा वृद्धिर्भवतीति भणन्ति।

एवं द्वाभ्यां उपदेशाभ्यां पद-पदसमास-संघात-संघातसमास-प्रतिपत्ति-प्रतिपत्तिसमास-अनुयोग-अनुयोगसमास-प्राभृतप्राभृत-प्राभृतप्राभृतसमास-प्राभृत-प्राभृतसमास-वस्तु-वस्तुसमास-पूर्व-पूर्वसमासज्ञानानां प्ररूपणा कर्तव्या। एवं असंख्यातलोकमात्राणि श्रुतज्ञानानि।

मतिज्ञानानि अपि इयन्ति चैव, श्रुतज्ञानस्य मतिज्ञानपुरंगमत्वात् कार्यभेदेन कारणभेदोपलंभात् वा। अवधि-मनःपर्ययज्ञानयोः यथा मंगलदण्डके भेदप्ररूपणा कृता तथा कर्तव्या। केवलज्ञानमेकविधं, कर्मक्षयेण उत्पद्यमानत्वात्। यावन्तो ज्ञानविकल्पास्तावन्त्यश्चैव कर्मणः आवरणशक्तयः।

एतत्कृतो ज्ञायते ?

अन्यथा असंख्यातलोकमात्रज्ञानानुपपत्तेः। एवं दर्शनस्यापि प्ररूपणा कर्तव्या, सर्वज्ञानानां दर्शनपुरंगमत्वात्। यावन्ति दर्शनानि तावन्त्यश्चैव दर्शनावरणीयस्य आवरणशक्तयः। एवं ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीययोरसंख्यात-लोकमात्रप्रकृतयः इति सिद्धं ज्ञातव्यम्।

एवडियाओ पयडीओ॥५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अत्र पंचमसूत्रे प्रकृतयः इत्युक्ते कर्मणां ग्रहणं, स्वभावभेदेन स्वभाविनामपि

अक्षर ज्ञान के आगे उत्तरोत्तर एक-एक अक्षर की वृद्धि से जाने वाले ज्ञानों की "अक्षर समास" संज्ञा है। यहाँ अक्षर ज्ञान से आगे छह वृद्धियाँ नहीं हैं किन्तु दुगुणे-तिगुणे इत्यादि क्रम से अक्षरवृद्धि होती है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं परन्तु कितने ही आचार्य अक्षरज्ञान से लेकर आगे सब जगह क्षयोपशम ज्ञान के छह प्रकार की वृद्धि होती है, ऐसा कहते हैं।

इस प्रकार दो उपदेशों से पद, पदसमास, संघात, संघातसमास, प्रतिपत्ति, प्रतिपत्तिसमास, अनुयोग, अनुयोगसमास, प्राभृतप्राभृत, प्राभृतप्राभृतसमास, प्राभृत, प्राभृतसमास, वस्तु, वस्तुसमास, पूर्व और पूर्वसमास ज्ञानों का प्ररूपण करना चाहिए। इस प्रकार श्रुतज्ञान असंख्यात लोक प्रमाण है।

मतिज्ञान भी इतने ही हैं, क्योंकि श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक ही होता है अथवा कारण के भेद से चूँकि कार्य का भेद पाया जाता है अतएव वे भी असंख्यात लोकप्रमाण ही हैं। अवधि और मनःपर्ययज्ञानों के भेदों की प्ररूपणा जैसे मंगलदण्डक में की गई है वैसे करनी चाहिए। केवलज्ञान एक प्रकार का है, क्योंकि वह कर्मक्षय से उत्पन्न होने वाला है। जितने ज्ञान के भेद हैं, उतनी ही कर्म की आवरण शक्तियाँ हैं।

शंका — यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान — इसका कारण यह है कि उसके बिना असंख्यात लोक प्रमाण ज्ञान बन नहीं सकते।

इसी प्रकार दर्शन की प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि सब ज्ञान दर्शनपूर्वक ही होते हैं। जितने दर्शन हैं, उतनी ही दर्शनावरण की आवरण शक्तियाँ हैं। इस प्रकार से ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय की प्रकृतियाँ असंख्यात लोक प्रमाण हैं, यह सिद्ध है ऐसा जानना चाहिए।

सूत्रार्थ —

इतनी मात्र प्रकृतियाँ हैं॥५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ इस पंचम सूत्र में "प्रकृतियाँ", ऐसा कहने पर कर्मों का ग्रहण

भेदोपलंभात्। यावन्तः कर्मणां स्वभावाः तावन्ति चैव कर्माणि इति भणितं भवति।

संप्रति वेदनीयकर्मप्रकृतिभेदनिरूपणार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

वेयणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ॥६॥

वेयणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ॥७॥

एवडियाओ पयडीओ॥८॥

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — सातावेदनीयमसातावेदनीयमिति द्वौ चैव स्वभावौ, सुखदुःखवेदनाभ्यां पृथग्भूताया अन्यस्या वेदनाया अनुपलंभात्।

सुखभेदेन दुःखभेदेन चानन्तविकल्पेन वेदनीयकर्मणोऽनन्ताः शक्तयः किन्न पठिताः ?

सत्यमेतत्, यदि पर्यायार्थिकनयोऽवलम्बितः। किन्तु अत्र द्रव्यार्थिकनयोऽवलम्बित इति न वेदनीयस्य तावन्मात्रशक्तयः, द्वे चैव।

पर्यायार्थिकनयोऽत्र किन्नावलम्बितः ?

न, तदवलम्बने प्रयोजनाभावात्।

ज्ञानदर्शनावरणप्ररूपणयोः किमर्थमवलम्बितः ?

जीवस्वभावावगमनार्थं! अत्र वेदनीयस्य द्वौ भेदौ कथितौ इति। पुनश्च यावन्तः स्वभावा वेदनीयस्य

होता है, क्योंकि स्वभाव के भेद से स्वभाव वालों का भी भेद पाया जाता है। अभिप्राय यह है कि जितने कर्मों के स्वभाव हैं, उतने ही कर्म हैं।

अब वेदनीयकर्म प्रकृतियों के भेदों का निरूपण करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

वेदनीय कर्म की कितनी प्रकृतियाँ हैं ?॥६॥

वेदनीय कर्म की दो प्रकृतियाँ हैं ॥७॥

उसकी इतनी ही प्रकृतियाँ हैं॥८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सातावेदनीय और असातावेदनीय इस प्रकार वेदनीय कर्म के दो ही स्वभाव हैं, क्योंकि सुख व दुःखरूप वेदनाओं से भिन्न अन्य कोई वेदना पाई नहीं जाती है।

शंका — अनन्त विकल्प रूप सुख के भेद से और दुःख के भेद से वेदनीय कर्म की अनन्त शक्तियाँ क्यों नहीं कही गई हैं ?

समाधान — यदि पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन किया गया होता तो यह कहना सत्य था, परन्तु चूँकि यहाँ द्रव्यार्थिक नय का अवलम्बन किया गया है अतएव वेदनीय की उतनी मात्र शक्तियाँ संभव नहीं हैं, किन्तु दो ही शक्तियाँ संभव हैं।

शंका — यहाँ पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन क्यों नहीं किया गया है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि उसके अवलम्बन का कोई प्रयोजन नहीं था।

शंका — पुनः ज्ञानावरण और दर्शनावरण की प्ररूपणा में उसका अवलम्बन किसलिए किया गया है ?

समाधान — जीव स्वभाव का ज्ञान कराने के लिए वहाँ उसका — पर्यायार्थिकनय का अवलम्बन

तावन्त्यश्चैव प्रकृतयो भवन्तीति ज्ञातव्यम्।

अधुना मोहनीयकर्मप्रकृतिभेदनिरूपणार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

मोहणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ॥१॥

मोहणीयस्स कम्मस्स अट्ठावीसं पयडीओ॥१०॥

एवडियाओ पयडीओ॥११॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — मिथ्यात्व-सम्यग्मिथ्यात्व-सम्यक्त्वप्रकृति-अनन्तानुबन्धिक्रोध-मान-माया-लोभ-अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध-मान-माया-लोभ-प्रत्याख्यानावरणीयक्रोध-मान-माया-लोभ-संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ-हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्रीवेद-पुरुषवेद-नपुंसकवेदभेदेन मोहनीयस्य कर्मणः अष्टाविंशतयः शक्तयः सन्ति। एषा अपि प्ररूपणा अशुद्धद्रव्यार्थिकनयमवलम्ब्य कृता। पर्यायार्थिकनये पुनः अवलम्ब्यमाने मोहनीयस्य असंख्यातलोकमात्राः शक्तयो भवन्ति, असंख्यातलोकमात्रोदय-स्थानस्यान्यथानुपपत्तेः।

अत्र कश्चित् पृच्छति —

अत्र पुनः पर्यायार्थिकनयः किन्नावलम्बितः ?

आचार्यदेवः उत्तरयति —

ग्रन्थबहुत्वभयेन अर्थापत्तेः तदवगमाद्वा नावलम्बितः।

किया गया है।

यहाँ वेदनीय कर्म के दो भेद कहे गये हैं।

कारण यह है कि जितने स्वभाव होते हैं, उतनी ही प्रकृतियाँ होती हैं ऐसा जानना चाहिए।

अब मोहनीय कर्म प्रकृति के भेदों का निरूपण करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्रों का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

मोहनीय कर्म की कितनी प्रकृतियाँ हैं ?॥१॥

मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियाँ हैं ॥१०॥

उसकी इतनी ही प्रकृतियाँ हैं॥११॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद के भेद से मोहनीय कर्म की अट्ठाईस शक्तियाँ हैं। यह भी प्ररूपणा अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का अवलम्बन करके की गई है। पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन करने पर तो मोहनीय कर्म की असंख्यात लोकमात्र शक्तियाँ हैं, अन्यथा उसके असंख्यात लोकमात्र उदयस्थान बन नहीं सकता।

यहाँ कोई पूछता है कि —

तो फिर यहाँ पर्यायार्थिकनय का अवलम्बन क्यों नहीं लिया गया है ?

आचार्य इसका समाधान करते हैं —

ग्रन्थबहुत्व के भय से अथवा अर्थापत्ति से उसका परिज्ञान हो जाने से उसका अवलम्बन नहीं लिया गया है।

पुनश्च येन मोहनीयस्य अष्टाविंशतिशक्तयः तेन प्रकृतयोऽपि अष्टाविंशतयश्चैव भवन्ति, एताभ्यः पृथग्भूतभिन्नजातिशक्तेः अनुपलंभात्।

कश्चिद् भव्यः पृच्छति —

मोहनीयकर्मभेदान् ज्ञात्वात्र किं कर्तव्यम् ?

आचार्यदेवस्याभिप्रायेण उत्तरं उच्यते —

अष्टकर्मणां मध्ये मोहनीयकर्म एव संसारस्य मूलकारणं ज्ञातव्यं, अतः मनुष्यपर्याये जिनधर्म संप्राप्य सर्वप्रयत्नेन मिथ्यात्वं त्यक्त्वा जिनवरवचनेषु दृढश्रद्धानीभूय सततं देशसंयमस्य पूर्णसंयमग्रहणस्य वा भावना विधातव्या। पुनश्च शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन ममात्मा भगवानात्मास्ति, सदाशिवस्य आत्मनः मिथ्यात्वनिमित्तेन परद्रव्येषु ममकारो नास्ति, या मोहनीयस्य भेदप्रभेदरूपाः प्रकृतयस्ता अपि ममशुद्धात्मनः सकाशात् भिन्ना एव। अशुद्धनयेन यद्यपि अहमशुद्धः संसारी तथापि शुद्धनिश्चयनयेन शुद्ध-बुद्ध-नित्य-निरंजन-निर्विकार-ज्ञान-दर्शनस्वभावोऽहं इति निश्चित्य प्रत्यहं निजशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धान-ज्ञानानुचरणरूपमभेदरत्नत्रयं कदाहं लप्स्ये इति भावना प्रार्थना च जिनेन्द्रदेवचरणकमलेषु निरंतरं कर्तव्यम्। किं च —

बध्यते मुच्यते जीवः, सममो निर्ममः क्रमात्।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन, निर्ममत्वं विचिन्तयेत्^१॥

इति श्रीमत्पूज्यपादस्वामिकथितवचनं स्मृत्वा सदैव निर्ममत्वं भावनीयम्।

चूँकि मोहनीय की शक्तियाँ अट्टाईस हैं अतः उसकी प्रकृतियाँ भी अट्टाईस ही हैं, क्योंकि इनसे पृथग्भूत भिन्नजातीय शक्ति नहीं पाई जाती है।

यहाँ कोई भव्य प्राणी प्रश्न पूछता है कि —

मोहनीय कर्म के भेदों को जानकर क्या करना चाहिए ?

आचार्यदेव के अभिप्रायानुसार उत्तर दिया जाता है —

आठों कर्मों के मध्य में मोहनीय कर्म को ही संसार का मूल कारण जानना चाहिए अतः मनुष्यपर्याय में जिनधर्म को प्राप्त करके सम्पूर्ण प्रयत्नपूर्वक मिथ्यात्व का त्याग करके जिनेन्द्रभगवान के वचनों में दृढ़ श्रद्धानी होकर सतत देशसंयम अथवा पूर्णसंयम को ग्रहण करने की भावना करनी चाहिए। पुनश्च शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से मेरी आत्मा भगवान आत्मा है, सदाशिवरूप आत्मा का मिथ्यात्व के निमित्त से परद्रव्यों में ममकार नहीं है। जो मोहनीय कर्म की भेद-प्रभेदरूप प्रकृतियाँ हैं, वे भी मेरी शुद्ध आत्मा से भिन्न ही हैं। अशुद्धनय से यद्यपि मैं अशुद्ध संसारी हूँ फिर भी शुद्धनिश्चयनय से शुद्ध-बुद्ध-नित्य-निरंजन-निर्विकार-ज्ञान-दर्शनस्वभाव वाला मैं हूँ, ऐसा निश्चय करके जिनेन्द्र भगवान् के चरण कमलों में निरन्तर यह भावना और प्रार्थना करना चाहिए कि मैं अपनी शुद्धात्मा का सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान एवं आचरणरूप अभेद रत्नत्रय को कब प्राप्त करूँगा। क्योंकि कहा भी है —

श्लोकार्थ — यह जीव संसार में ममत्व परिणामों के द्वारा कर्मों का बंध करता है और निर्ममत्व — वैराग्य के परिणामों से वह संसार से मुक्त होता है इसलिए सम्पूर्ण प्रयत्नों के द्वारा निर्ममता का ही चिन्तन करना चाहिए अर्थात् वीतरागभाव का आश्रय लेना चाहिए।

इस प्रकार से श्रीमान् आचार्य पूज्यपाद स्वामी द्वारा कथित (इष्टोपदेश में वर्णित) वचनों का स्मरण

संप्रति आयुःकर्मणो भेदनिरूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

आउअस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ॥१२॥

आउअस्स कम्मस्स चत्तारि पयडीओ॥१३॥

एवडियाओ पयडीओ॥१४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — देव-मनुष्य-तिर्यङ्-नारकभवधारणस्वरूपाणां शक्तीनां चतसृणामुपलंभात्। एषा अपि प्ररूपणा अशुद्धद्रव्यार्थिकनयविषया। पर्यायार्थिकनये पुनः अवलम्ब्यमाने आयुःप्रकृतिरपि असंख्यातलोकमात्रा भवति, कर्मोदय विकल्पानामसंख्यातलोकमात्राणामुपलंभात्। अत्रापि ग्रंथबहुत्वभयेन अर्थापत्तेस्तदवगमाद्वा पर्यायार्थिकनयो नावलम्बितः।

ततश्च येनायुषश्चत्वारश्चैव स्वभावास्तेन चतस्रश्चैव प्रकृतयो भवन्तीति ज्ञातव्यम्।

तात्पर्यार्थमेतत् — चतुर्गतीनां मध्ये कस्यांश्चिदपि गतौ अवरोधनार्थमायुःकर्म वर्तते। यद्यपि व्यवहारेण अहं संप्रति मनुष्यगतौ अस्मि तथापि शुद्धनिश्चयनयेन सिद्धशिलाया उपरि स्थिताः ये सिद्धा भगवन्तस्तेषां सदृशो ममात्मा सिद्धः एव। उक्तं च श्रीकुंदकुंददेवैः —

जारिसिया सिद्धप्पा, भवमल्लिय जीवा तारिसा होंति।

जरमरणजम्ममुक्का, अट्टगुणालंकिया जेण^१॥

करके सदैव निर्ममता की भावना भानी चाहिए।

अब आयुर्कर्म के भेदों का निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

आयुर्कर्म की कितनी प्रकृतियाँ हैं ?॥१२॥

आयुर्कर्म की चार प्रकृतियाँ हैं॥१३॥

उसकी इतनी प्रकृतियाँ हैं॥१४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — देव, मनुष्य, तिर्यच और नारक पर्याय को धारण करने रूप शक्तियाँ चार पाई जाती हैं। यह प्ररूपणा भी अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय को विषय करने वाली है। पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन करने पर तो आयु की प्रकृतियाँ भी असंख्यात लोकमात्र हैं, क्योंकि कर्म के उदयरूप विकल्प असंख्यात लोकमात्र पाये जाते हैं। यहाँ भी ग्रंथबहुत्व के भय से अर्थापत्ति से उनका परिज्ञान हो जाने के कारण पर्यायार्थिक का अवलम्बन नहीं लिया गया है।

चूँकि आयु के चार ही स्वभाव हैं अतएव उनकी चार ही प्रकृतियाँ होती हैं, ऐसा जानना चाहिए।

यहाँ तात्पर्य यह है कि चारों गतियों के मध्य किसी भी गति में रोकने में आयुर्कर्म ही वर्तन करता है। यद्यपि व्यवहारनय से मैं आज मनुष्यगति में हूँ फिर भी शुद्ध निश्चयनय से सिद्धशिला के ऊपर विराजमान जो सिद्ध भगवान हैं, उनके समान ही मेरी आत्मा भी सिद्ध है। जैसा कि श्री कुंदकुंददेव ने कहा भी है —

गाथार्थ — जैसे सिद्ध भगवान हैं संसारी जीव भी वैसे ही हैं। जिस कारण से या जिस नय से वे वैसे हैं, उसी कारण से या उसी नय से वे जरा-मरण और जन्म से रहित हैं तथा आठ गुणों से अलंकृत हैं॥

इति भावनया आयुःकर्मभिन्नं चिच्चैतन्यस्वरूपं निजशुद्धपरमात्मानमेव भावयेत्।

संप्रति नामकर्मभेदनिरूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

णामस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ॥१५॥

णामस्स कम्मस्स असंखेज्जलोगमेत्तपयडीओ॥१६॥

एवडियाओ पयडीओ॥१७॥

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — अत्रानुपूर्विविकल्पप्रतिपादनार्थं पर्यायार्थिकनयोऽवलम्बितोऽस्ति। तत्र नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्विनामकर्मणः शक्तयः अंगुलस्य असंख्यातभागमात्रबाहल्ये तिर्यक्प्रतरे श्रेण्याः असंख्यात-भागमात्रैः अवगाहनाविकल्पैः गुणिते यो राशिरुत्पद्यते तावन्मात्राः भवन्ति। तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्विनामकर्मणः लोके श्रेण्याः असंख्यातभागमात्रैः अवगाहनाविकल्पैः गुणिते या संख्या उत्पद्यते तावन्मात्राः शक्तयो भवन्ति। मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्विनामकर्मणः पंचचत्वारिंशत्शतसहस्रयोजनबाहल्यानि तिर्यक्प्रतराणि ऊर्ध्व कपाटार्धच्छेदननिष्पन्नानि श्रेण्यसंख्यातभागमात्रैः अवगाहनाविकल्पैः गुणिते या संख्या उत्पद्यते तावन्मात्राः प्रकृतयः सन्ति। देवगतिप्रायोग्यानुपूर्विनामकर्मणः नवशतयोजनबाहल्ये तिर्यक्प्रतरे श्रेण्याः असंख्यातभागमात्रैः अवगाहनाविकल्पैः गुणिते या संख्या उत्पद्यते तावन्मात्राः प्रकृतयः सन्ति। गति-जाति-शरीरादीनां प्रकृतीनां अपि ज्ञात्वा भेदप्ररूपणा कर्तव्या।

पुनश्च यावन्त्यो नामकर्मणः शक्तयः पूर्वं प्ररूपिताः तावन्मात्राश्चैव तस्य प्रकृतयो भवन्तीति गृहीतव्यम्।

इस भावना से आयु कर्म से भिन्न चिच्चैतन्यस्वरूप निज शुद्ध परमात्मा की भावना करनी चाहिए।

अब नामकर्म के भेदों का निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

नामकर्म की कितनी प्रकृतियाँ हैं ?॥१५॥

नामकर्म की असंख्यात लोकमात्र प्रकृतियाँ हैं॥१६॥

उसकी इतनी प्रकृतियाँ हैं॥१७॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — आनुपूर्वी के भेदों को बतलाने के लिए यहाँ पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन लिया गया है। उसमें से अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतर को श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र अवगाहना भेदों से गुणित करने पर जो राशि उत्पन्न होती है उतनी मात्र नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म की शक्तियाँ होती हैं। श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र अवगाहना भेदों से लोक को गुणित करने पर जो संख्या उत्पन्न होती है, उतनी मात्र तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म की शक्तियाँ होती हैं। ऊर्ध्वकपाट के अर्धच्छेदों से उत्पन्न पैतालीस लाख योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरों को श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र अवगाहना भेदों से गुणित करने पर जो संख्या उत्पन्न होती है, उतनी मात्र मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म की प्रकृतियाँ होती हैं। नौ सौ योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतर को श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र अवगाहना भेदों से गुणित करने पर जो संख्या उत्पन्न होती है उतनी मात्र देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म की प्रकृतियाँ होती हैं। गति, जाति व शरीर आदिक प्रकृतियों के भी भेदों की प्ररूपणा जानकर करनी चाहिए।

पुनश्च नामकर्म की जितनी शक्तियाँ पूर्व में ही कही जा चुकी हैं, उतनी ही उसकी प्रकृतियाँ हैं, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

इतो विस्तरः क्रियते —

श्रीनेमिचंद्रसिद्धान्तचक्रवर्ति-आचार्येण कथितम् —

कम्मत्तणेण एक्कं, दव्वं भावोत्ति होदि दुविहं तु।

पोगगलपिंडो दव्वं, तस्सत्ती भावकम्मं तु॥६॥

सामान्येन कर्म कर्मत्वेन एकं, पुनः द्रव्यभावभेदाद् द्विविधं। तत्र द्रव्यकर्म पुद्गलपिंडो भवति। पिंडगतशक्तिः कार्ये कारणोपचारात् शक्तिजनिताज्ञानादिर्वा भावकर्म भवति।

पुनश्च कर्मभेदान् प्रतिपादयति —

तं पुण अट्टविहं वा, अडदालसयं असंखलोगं वा।

तत्पुनः सामान्यं कर्म अष्टविधं वा अष्टचत्वारिंशच्छतविधं वा असंख्यातलोकविधं भवति।

ततश्च नामकर्मणो लक्षणं क्रियते —

गदियादिजीवभेदं, देहादी पोगगलाण भेदं च।

गदियंतरपरिणमणं, करेदि णामं अणेयविहं॥१२॥

गत्याद्यनेकविधं नामकर्म नारकादिजीवपर्यायभेदं औदारिकादिशरीरपुद्गलभेदं गत्यन्तरपरिणमनं च करोति तेन तत् जीवपुद्गलक्षेत्रविपाकि भवति। च शब्दाद्भवविपाकि च॥

पृथक्-पृथक् अष्टकर्मभेदाः कथ्यन्ते —

पंच णव दोष्णि अट्टा-वीसं चउरो कमेण तेणउदी।

तेउत्तरं सयं वा, दुगपणगं उत्तरा होंति॥२२॥

इसका विस्तृत वर्णन गोम्मटसार कर्मकाण्ड के आधार से करते हैं। जैसा कि श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य ने कहा है —

गाथार्थ — सामान्य से कर्म एक ही है उसमें भेद नहीं है। द्रव्य और भाव के भेद से उसके दो भेद हैं। ज्ञानावरणादि पुद्गलद्रव्य का पिण्ड द्रव्यकर्म है, उसमें फल देने की शक्ति का नाम भावकर्म है॥६॥

गाथा का अभिप्राय यह है कि सामान्यरूप से कर्म एक ही है, पुनः द्रव्य और भाव के भेद से उसके दो भेद हो जाते हैं। उनमें से द्रव्यकर्म पुद्गल पिण्ड होता है। उस द्रव्यपिण्ड में फल देने की शक्ति कार्य में कारण के उपचार से अथवा शक्तिजनि अज्ञानादि भावकर्म होता है। पुनश्च कर्म के भेदों का प्रतिपादन करते हैं —

“वह कर्म पुनः आठ प्रकार का है अथवा एक सौ अड़तालीस या असंख्यात लोकप्रमाण भी उसके भेद होते हैं। उन आठ कर्मों में भी घातिया तथा अघातिया ये दो भेद हैं।”

उनमें से नामकर्म का लक्षण बताते हैं —

गाथार्थ — गति आदि के भेद से नामकर्म अनेक प्रकार का है वह नारकी आदि जीव की पर्याय के भेदों को एवं औदारिक शरीरादि पुद्गल के भेदों को और एक गति से दूसरी गति में जाने रूप जीव के परिणमन को अनेक प्रकार करता है। इस प्रकार नामकर्म अनेक कार्यों को करता है॥१२॥

गति आदि अनेक भेदरूप नामकर्म हैं। वह नारकादि जीव की पर्यायरूप भेद को, औदारिक आदि शरीररूप पुद्गल भेद को तथा भिन्नगति में परिणमन करता है, इस कारण से वह कर्म जीवविपाकी, पुद्गलविपाकी और क्षेत्रविपाकी होता है। च शब्द से भवविपाकी भी होता है।

आठों कर्मों के पृथक्-पृथक् भेद कहते हैं —

गाथार्थ — ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के क्रम से पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, तिरानवे अथवा एक

अत्र नामकर्मणः त्रिनवतिभेदाः अथवा त्र्युत्तरशतभेदाः कथिताः सन्ति। एतासां प्रकृतीनां लक्षणं गोम्मटसार-कर्मकाण्डग्रंथात् ज्ञातव्यं।

अत्र अस्यां धवलाटीकायां यत् आनुपूर्वीणां शक्तयः प्रतिपादिताः ताः सर्वाः असंख्यातलोकप्रमाण भेदेषु अंतर्भवन्तीति ज्ञातव्यं भवति।

तात्पर्यमेतत् — यद्यपि इमानि कर्माणि अनादिबद्धजीवापेक्षया संसारिषु जीवेषु क्षीरनीरवत् एकीभूय तिष्ठन्ति तथापि शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धात्मा द्रव्यकर्मभावकर्मनोकर्मभ्यः पृथक् चिन्मयो वर्तते। सिद्धसदृशोऽयं ममात्मा इति चिन्तयता सम्यग्दृष्टिर्भव्यजीवेन निजशुद्धात्मा ध्यातव्यः सर्वप्रयत्नेनेति।

अधुना गोत्रकर्मभेदप्रतिपादनार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

गोदस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ॥१८॥

गोदस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ॥१९॥

एवडियाओ पयडीओ॥२०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उच्चगोत्रनिर्वर्तनात्मिका नीचगोत्रनिर्वर्तनात्मिका चेति गोत्रस्य द्वे प्रकृती स्तः। अवान्तरभेदेन यद्यपि बह्वयः सन्ति तर्हापि ता नोक्ता ग्रंथबहुत्वभयेन अर्थापत्तेस्तदवगमाद्वा।

पुनः येन द्वे चैव गोत्रकर्मणः शक्तयस्तेन तस्य द्वे चैव प्रकृती भवतः इति ज्ञातव्यं।

सौ तीन, दो और पाँच उत्तर भेद होते हैं॥२२॥

यहाँ नामकर्म के तिरानवे भेद अथवा एक सौ तीन भेद कहे गये हैं। इन प्रकृतियों के लक्षण गोम्मटसार कर्मकाण्ड ग्रंथ से जानना चाहिए।

यहाँ इस धवलाटीका में जो आनुपूर्वियों की शक्तियाँ बतलाई हैं, वे सभी असंख्यात लोक प्रमाण भेदों में अन्तर्भूत हो जाती हैं, ऐसा जानना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि यद्यपि ये कर्म अनादिबद्ध जीव की अपेक्षा से संसारी जीव में क्षीर-नीर के समान एकमेक होकर रहते हैं फिर भी शुद्ध निश्चयनय से शुद्धात्मा द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से पृथक् चिन्मयरूप यह मेरी आत्मा सिद्ध सदृश है, ऐसा चिन्तन करते हुए सम्यग्दृष्टि भव्य जीव को सर्वप्रयत्नपूर्वक निज शुद्धात्मा का ध्यान करना चाहिए।

अब गोत्रकर्म के भेदों को प्रतिपादित करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

गोत्र कर्म की कितनी प्रकृतियाँ हैं ?॥१८॥

गोत्रकर्म की दो प्रकृतियाँ हैं॥१९॥

उसकी इतनी प्रकृतियाँ हैं॥२०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — उच्चगोत्र को उत्पन्न करने वाली और नीचगोत्र को उत्पन्न करने वाली, इस प्रकार गोत्र की दो प्रकृतियाँ हैं। अवान्तर भेद से यद्यपि वे बहुत हैं तो भी ग्रंथ के बढ़ जाने से अथवा अर्थापत्ति से उनका ज्ञान हो जाने के कारण यहाँ नहीं कहा है।

पुनः गोत्रकर्म की दो ही शक्तियाँ हैं अतएव उसकी दो ही प्रकृतियाँ हैं, ऐसा जानना चाहिए।

तात्पर्यमेतत् — गोत्रकर्मनिमित्तेन वयं संसारे उच्चनीचयोनिषु परिभ्रमन्तो नानाविधसुखदुःखादिषु हर्षविषादपरिणामेन उद्विग्नमनसः आकुलतालक्षणं दुःखमेव अनुभवामः। तथापि शुद्धनिश्चयनयेन स्वशुद्धात्मानं भावयन्तः अध्यात्मजन्यसुखेन तृप्तीभूय सिद्धपदप्राप्त्यर्थं पुरुषार्थं विदध्महे।

संप्रति अन्तरायकर्मभेदनिरूपणार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रत्रयमवतार्यते —

अन्तराइयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ।।२१।।

अन्तराइयस्स कम्मस्स पञ्च पयडीओ।।२२।।

एवडियाओ पयडीओ।।२३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अत्र पञ्चानां विशेषणानां भेदेन तद् विशेषितकर्मस्कंधानामपि भेदः न्यायोपयोगो भवति। तदनभ्युपगमे प्रमाणस्याननुसारित्वप्रसंगात्।

तात्पर्यमत्र — विघ्नकारकमन्तरायकर्म यद्यपि संसारे प्रत्येकं प्राणिनां दानलाभभोगोपभोगवीर्येषु विघ्नं करोति तथापि अनन्तशक्तिमानात्मा शुद्धनिश्चयनयेन अव्याबाधसुखानुभवी चिच्चैतन्यपरमात्मा एवास्ति एतन्निश्चित्य सामायिककाले द्वित्रिकलापर्यन्तं वा निजशुद्धात्मा भावयितव्यः।

एवं प्रथमस्थले अष्टकर्मभेदप्रतिपादनपराणि त्रयोविंशतिसूत्राणि गतानि।

अत्र पर्यन्तं प्रकृत्यर्थता कथिता।

संप्रति समयप्रबद्धार्थताधिकार-ज्ञानावरणादित्रिकर्मसमयप्रतिपादनार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

तात्पर्य यह है कि गोत्रकर्म के निमित्त से हम लोग संसार में उच्च-नीच योनियों में परिभ्रमण करते हुए नाना प्रकार के सुख-दुःखादि में हर्ष-विषादरूप परिणाम से उद्विग्नमना होकर आकुलतालक्षण वाले दुःख का ही अनुभव कर रहे हैं। फिर भी शुद्ध निश्चयनय से अपनी शुद्धात्मा को भाते हुए अध्यात्मजन्य सुख से तृप्त होकर सिद्ध पद की प्राप्ति के लिए हम पुरुषार्थ करते हैं।

अब अन्तराय कर्म के भेद बतलाने हेतु प्रश्नोत्तररूप से तीन सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

अन्तराय कर्म की कितनी प्रकृतियाँ हैं ?।।२१।।

अन्तराय कर्म की पाँच प्रकृतियाँ हैं।।२२।।

उसकी इतनी प्रकृतियाँ हैं।।२३।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ पाँच विशेषणों के भेद से विशेषता को प्राप्त हुए उस कर्म के स्कंधों का भी भेद न्याय प्राप्त है। उसके न मानने पर प्रमाण की अननुसारिता (प्रमाण का अनुसरण नहीं करने का) प्रसंग आता है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि विघ्नकारक अन्तराय कर्म यद्यपि संसार में प्रत्येक प्राणी के दान-लाभ-भोग-उपभोग और वीर्य में विघ्न उपस्थित करता है फिर भी अनन्तशक्तिमान् आत्मा शुद्ध निश्चयनय से अव्याबाध सुख का अनुभव करने वाला चिच्चैतन्यस्वरूपी परमात्मा ही है, ऐसा निश्चय करके सामायिक के काल में अथवा दो-तीन कलापर्यन्त अपनी शुद्धात्मा की भावना भानी चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में आठों कर्मों के भेद प्रतिपादन करने वाले तेईस सूत्र पूर्ण हुए।

यहाँ तक प्रकृत्यर्थता कही गई है।

विशेषार्थ—कर्मप्रकृत्यर्थता के संबंध में आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने गोम्मटसार कर्मकाण्ड में कहा है—

पयडी सील सहावो जीवंगाणं अणाइसंबंधो।

कयणोवले मलं वा ताणत्थित्तं सयं सिद्धं।।

अर्थात् कारण के बिना वस्तु का जो सहज स्वभाव होता है, उसको प्रकृति, शील अथवा स्वभाव कहते हैं। जैसे कि आग का स्वभाव ऊपर को जाना, पवन का तिरछा बहना और जल का स्वभाव नीचे को गमन करना है, इत्यादि। प्रकृति में यह स्वभाव जीव तथा अंग (कर्म) का ही लेना चाहिए। इन दोनों में से जीव का स्वभाव रागादिरूप परिणमने (हो जाने) का है और कर्म का स्वभाव रागादिरूप परिणमावने का है तथा यह दोनों का संबंध, सुवर्ण पाषाण में मिले हुए मल (मैल) की तरह अनादिकाल से है और इसीलिए जीव तथा कर्म का अस्तित्व भी स्वयं—ईश्वरादि कर्ता के बिना ही अपने आप सिद्ध है।

इसका भावार्थ यह है कि जिस तरह भंग अथवा शराब का स्वभाव बावला कर देने का और इसके पीने वाले जीव का स्वभाव बावला हो जाने का है, उसी तरह जीव का स्वभाव रागद्वेषादि कषायरूप हो जाने का तथा कर्म का स्वभाव रागादि कषायस्वरूप परिणमा देने का है। सो जब तक दोनों का संबंध रहता है तभी तक विकाररूप परिणाम होता है। अन्तर इतना ही है कि जीव और कर्म का यह संबंध अभी का नहीं, अनादिकाल का है। जैसे कि खान से निकला हुआ सोना अनादिकाल से ही कीटकालिमा रूप मैल से मिला हुआ रहता है, वैसे ही जीव और कर्मों का अनादिकाल से स्वतः संबंध हो रहा है, किसी ने इनका संबंध किया नहीं है। जीव का अस्तित्व तो अहम् (मैं) ऐसी प्रतीति होने से सिद्ध होता है तथा कर्म का अस्तित्व जगत् में कोई दरिद्री (भिखारी) है तो कोई धनवान् इत्यादि विचित्रपना प्रत्यक्ष देखने से सिद्ध होता है। इस कारण जीव और कर्म दोनों ही पदार्थ अनुभवसिद्ध हैं।

संसारी जीव द्वारा कर्म और नोकर्म का ग्रहण कैसे होता है ?

इस संबंध में कहते हैं—

देहोदयेण सहिओ जीवो आहरदि कम्म णोकम्मं।

पडिसमयं सव्वंगं तत्तायसपिंडओव्व जलं।।

अर्थात् यह जीव औदारिक आदि शरीर नामकर्म के उदय से योग सहित होकर ज्ञानावरणादि आठ कर्म रूप होने वाली कर्मवर्गणाओं को तथा औदारिक आदि चार शरीर (१. औदारिक २. वैक्रियिक ३. आहारक ४. तैजस) रूप होने वाली नोकर्मवर्गणाओं को हर समय चारों तरफ से ग्रहण (अपने साथ संबद्ध) करता है। जैसे कि आग से तपा हुआ लोहे का गोला पानी को सब ओर से अपनी तरफ खींचता है।

इसका भावार्थ यह है कि जब यह शरीर सहित आत्मा मन-वचन-काय की प्रवृत्ति करता है तभी इसके कर्मों का बंध होता है किन्तु मन-वचन-काय की क्रिया रोकने से कर्मबंध नहीं होता।

प्रतिसमय आने वाले कर्मपरमाणुओं की संख्या के विषय में कहा है—

सिद्धाणंतिमभागं अभव्वसिद्धादणंतगुणमेव।

समयपबद्धं बंधदि जोगवसादो दु विसरित्थं।।

अर्थात् यह आत्मा, सिद्ध जीवराशि के जो कि अनन्तानन्त प्रमाण कही है अनन्तवें भाग और अभव्यजीवराशि जो जघन्ययुक्तानंत प्रमाण है, उससे अनन्तगुणे समयप्रबद्ध को अर्थात् एक समय में बंधने वाले परमाणु

समूह को बांधता है, अपने साथ संबद्ध करता है परन्तु मन, वचन, काय की प्रवृत्तिरूप योगों की विशेषता से (कमती-बढ़ती होने से) कभी थोड़े और कभी बहुत परमाणुओं का भी बंध करता है।

इसका सारांश यह है कि परिणामों में कषाय की अधिकता तथा मन्दता होने पर आत्मा के प्रदेश जब अधिक या कम सकंप (चलायमान) होते हैं तब कर्मपरमाणु भी ज्यादा अथवा कम बंधते हैं। जैसे — अधिक चिकनी दीवार पर धूल अधिक लगती है और कम चिकनी पर कम लगती है।

इसी प्रकार प्रतिसमय झड़ने वाले कर्मों की संख्या भी बताई है —

जीरदि समयपबद्धं पओगदो णेगसमयबद्धं वा।

गुणहाणीण दिवड्ढं समयपबद्धं हवे सत्तं।।

अर्थात् एक-एक समय में कर्मपरमाणुओं का एक-एक समयप्रबद्ध फल देकर खिर जाया करता है परन्तु कदाचित् तपश्चरणरूप विशिष्ट अतिशय वाली क्रिया के होने पर बंधे हुए अनेक समयप्रबद्ध भी झड़ जाया करते हैं, फिर भी कुछ कम डेढ़ गुणहानि आयाम से गुणित समयप्रमाण समयप्रबद्ध सत्ता (वर्तमान) अवस्था में रहा करते हैं।

प्रसंगोपात् यहाँ आठों कर्मों की १४८ प्रकृतियों के नाम एवं उनके संक्षिप्त लक्षण भी प्रस्तुत किये जाते हैं —

ज्ञानावरण के भेद —

ज्ञानावरण के ५ भेद हैं — (१) मतिज्ञानावरण (२) श्रुतज्ञानावरण (३) अवधिज्ञानावरण (४) मनःपर्ययज्ञानावरण (५) केवलज्ञानावरण।

१. **मतिज्ञानावरण** — जो मतिज्ञान को नहीं होने देता, उसे मतिज्ञानावरण कहते हैं।

२. **श्रुतज्ञानावरण** — जो शास्त्रज्ञान को नहीं होने देता, उसे श्रुतज्ञानावरण कहते हैं।

३. **अवधिज्ञानावरण** — जो अवधिज्ञान को नहीं होने देता, उसे अवधिज्ञानावरण कहते हैं।

४. **मनःपर्ययज्ञानावरण** — जो मनःपर्ययज्ञान को नहीं होने देता, उसे मनःपर्ययज्ञानावरण कहते हैं।

५. **केवलज्ञानावरण** — जो केवलज्ञान को नहीं होने देता, उसे केवलज्ञानावरण कहते हैं।

दर्शनावरण के भेद —

दर्शनावरण के ९ भेद हैं — (१) चक्षुदर्शनावरण (२) अचक्षुदर्शनावरण (३) अवधिदर्शनावरण (४) केवलदर्शनावरण (५) निद्रा (६) निद्रानिद्रा (७) प्रचला (८) प्रचला प्रचला (९) स्त्यानगृद्धि।

१. **चक्षुदर्शनावरण** — जो कर्म चक्षु इन्द्रिय से होने वाले सामान्य अवलोकन को नहीं होने देता, उसे चक्षुदर्शनावरण कहते हैं।

२. **अचक्षुदर्शनावरण** — जो चक्षु इन्द्रिय के बिना शेष चार इन्द्रिय और मन से होने वाले सामान्य अवलोकन को नहीं होने देता, उसे अचक्षुदर्शनावरण कहते हैं।

३. **अवधिदर्शनावरण** — जिसके उदय से अवधिदर्शन का घात होता है, उसे अवधिदर्शनावरण कहते हैं।

४. **केवलदर्शनावरण** — जिसके उदय से केवलदर्शन प्रगट नहीं होता, उसे केवलदर्शनावरण कहते हैं।

५. **निद्रा** — जिस कर्म के उदय से निद्रा आती है, उसे निद्रादर्शनावरण कहते हैं।

६. **निद्रानिद्रा** — जिसके उदय से नींद पर नींद आती है, उसे निद्रानिद्रा कहते हैं।

७. **प्रचला** — जिसके उदय से प्राणी कुछ जागता है, कुछ सोता है, उसे प्रचला कहते हैं।

८. **प्रचलाप्रचला** — जिसके उदय से सोते समय मुख से लार बहती है और कुछ आँगोपांग भी चलते हैं, उसे प्रचलाप्रचला कहते हैं।

९. **स्त्यानगृद्धि** — जिसके उदय से प्राणी सोते समय नाना प्रकार के भयंकर काम कर डालता है और जागने पर कुछ मालूम नहीं रहता कि मैंने क्या किया है, उसे स्त्यानगृद्धि कहते हैं।

वेदनीय के भेद —

वेदनीय के दो भेद हैं — सातावेदनीय और असातावेदनीय।

१. **सातावेदनीय** — जिस कर्म के उदय से शारीरिक और मानसिक अनेक प्रकार की सुख-सामग्री मिले या सुख मिले, उसे सातावेदनीय कहते हैं।

२. **असातावेदनीय** — जिसके उदय से दुःखदायक सामग्री या दुःख प्राप्त हो, वह असातावेदनीय है।

मोहनीय के भेद —

मोहनीय कर्म के दो भेद होते हैं — दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय।

इसमें दर्शनमोहनीय के ३ भेद हैं तथा चारित्रमोहनीय के पहले दो भेद हैं — कषायवेदनीय और अकषायवेदनीय। कषायवेदनीय के १६ भेद हैं और अकषायवेदनीय के ९ भेद हैं, ऐसे दर्शनमोहनीय के ३ और चारित्रमोहनीय के २५ मिलकर २८ भेद हुए।

दर्शनमोहनीय के भेद —

जो आत्मा के सम्यक्त्व गुण का घात करता है, उसे दर्शनमोहनीय कहते हैं। उसके तीन भेद हैं —

१. मिथ्यात्व, २. सम्यग्मिथ्यात्व और ३. सम्यक्त्व प्रकृति।

१. **मिथ्यात्व** — जिस कर्म के उदय से तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान नहीं होता, उसे मिथ्यात्व कहते हैं।

२. **सम्यग्मिथ्यात्व** — जिस कर्म के उदय से दही और गुड़ से मिश्रित स्वाद के समान तत्त्वों का श्रद्धान और अश्रद्धान दोनों रूप से मिश्रित भाव होता है, वह सम्यङ्मिथ्यात्व कहलाता है।

३. **सम्यक्त्व प्रकृति** — जिस कर्म के उदय से सम्यग्दर्शन में दोष उत्पन्न होता है, वह सम्यक्त्व प्रकृति है।

चारित्रमोहनीय के भेद —

जिस कर्म के उदय से आत्मा के चारित्रगुण का घात होता है, उसे चारित्र मोहनीय कहते हैं। इसके दो भेद हैं — कषायवेदनीय और अकषायवेदनीय। जो आत्मा के गुण — शुभ या शुद्ध भाव को कषता है, नष्ट करता है, उसे कषायवेदनीय कहते हैं। इसके सोलह भेद हैं — अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ और संज्वलन क्रोध, मान, माया लोभ।

अनंतानुबंधी — जो अनंत अर्थात् मिथ्यात्व के साथ-साथ बंधती है, उसे अनंतानुबंधी कहते हैं अथवा जिसके उदय से सम्यक्त्व का घात हो, वह अनंतानुबंधी है। उसके क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार भेद हैं।

अप्रत्याख्यानावरण — जिसके उदय से एकदेश व्रत को भी धारण नहीं कर सके, उसे अप्रत्याख्यानावरण कहते हैं।

प्रत्याख्यानावरण — जिसके उदय से जीव मुनियों के चारित्र को धारण नहीं कर सके, वह प्रत्याख्यानावरण है।

संज्वलन — जिसके उदय से यथाख्यात चारित्र न हो सके, उसे संज्वलन कहते हैं।

जो क्रोधादि की तरह आत्मा के गुणों का घात नहीं करे, किन्तु किञ्चित् घात करे अथवा कषाय के साथ-साथ अपना फल देवे, वह अकषायवेदनीय है। उसके ९ भेद हैं — हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसकवेद।

१. हास्य — जिसके उदय से हंसी आवे।

२. रति — जिसके उदय से इन्द्रिय के विषयों में राग हो।

३. अरति — जिसके उदय से इन्द्रिय के विषयों में द्वेष हो।

४. शोक — जिसके उदय से शोक या चिन्ता हो।

५. भय — जिसके उदय से डर या उद्वेग हो।

६. जुगुप्सा — जिसके उदय से दूसरे से ग्लानि हो।

७. स्त्रीवेद — जिसके उदय से पुरुष में रमने की इच्छा हो।

८. पुंवेद — जिसके उदय से स्त्री में रमने की इच्छा हो।

९. नपुंसकवेद — जिसके उदय से स्त्री-पुरुष दोनों में रमने की इच्छा हो।

आयु के भेद —

आयुर्कर्म के चार भेद हैं — नरकायु, तिर्यचायु, मनुष्यायु और देवायु।

नरकायु — जिस कर्म के उदय से प्राणी नारकी के शरीर में रुका रहता है, उसे नरकायु कहते हैं। इसी तरह शेष आयु के भी लक्षण समझना चाहिए।

नामकर्म के भेद —

नामकर्म के ९३ भेद हैं — गति ४, जाति ५, शरीर ५, अंगोपांग ३, निर्माण १, बंधन ५, संघात ५, संस्थान ६, संहनन ६, स्पर्श ८, रस ५, गंध २, वर्ण ५, आनुपूर्वी ४, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, प्रत्येक, साधारण, त्रस, स्थावर, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, शुभ, अशुभ, सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति और तीर्थकर ये ९३ प्रकृतियाँ हैं।

गति — जिस कर्म के उदय से प्राणी दूसरे भव या पर्याय में जाता है, वह गति है। उसके ४ भेद हैं — नरकगति, तिर्यगति, मनुष्यगति और देवगति।

जाति — जिस कर्म के उदय से अनेक प्राणियों में अविरोधी समान अवस्था प्राप्त होती है, उसे जाति कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं — एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति और पंचेन्द्रिय जाति। जिस कर्म के उदय से जीव एकेन्द्रिय जाति में पैदा हो वह एकेन्द्रिय जाति है, इत्यादि।

शरीर — जिस कर्म के उदय से प्राणी के शरीर की रचना होती है, वह शरीर है। इसके ५ भेद हैं — औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण।

१. **औदारिक** — जिस कर्म के उदय से औदारिक शरीर की रचना होती है, मनुष्य और तिर्यच के स्थूल शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं।

२. **वैक्रियिक शरीर** — जिसके उदय से शरीर में स्थूल, सूक्ष्म, हल्का, भारी आदि अनेक प्रकार से होने की योग्यता होती है।

३. **आहारक शरीर** — आहारक ऋद्धि वाले छठे गुणस्थानवर्ती मुनि के मस्तक से जो एक हाथ का

पुतला निकलता है, उसे आहारक शरीर कहते हैं।

४. तैजस शरीर — जिसके उदय से शरीर में तेज होता है।

५. कार्मण शरीर — ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के समूह को कार्मण शरीर कहते हैं।

बंधन — शरीर नामकर्म के उदय से ग्रहण किये गए पुद्गल स्कंधों का परस्पर मिलन जिस कर्म के उदय से होता है, उसे बंधन नामकर्म कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं — औदारिक बंधन, वैक्रियिक बंधन, आहारक बंधन, तैजस बंधन, कार्मण बंधन।

संघात — जिस कर्म के उदय से औदारिक आदि शरीर के प्रदेशों का परस्पर छिद्ररहित एकमेकपना होता है, वह संघात है। उसके पाँच भेद हैं — औदारिकसंघात, वैक्रियिकसंघात, आहारकसंघात, तैजससंघात और कार्मणसंघात।

संस्थान — जिस कर्म के उदय से शरीर का आकार बनता है, वह संस्थान है। इसके छह भेद हैं — समचतुरस्रसंस्थान, त्र्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जकसंस्थान, वामनसंस्थान और हुंडकसंस्थान।

१. **समचतुरस्र** — जिस कर्म के उदय से शरीर की लम्बाई, चौड़ाई सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार ठीक-ठीक बनी हो, उसे समचतुरस्रसंस्थान कहते हैं।

२. **त्र्यग्रोधपरिमंडल** — जिस कर्म के उदय से शरीर का आकार वटवृक्ष की तरह नाभि के नीचे पतला और ऊपर मोटा हो।

३. **स्वाति** — जिस कर्म के उदय से शरीर का आकार सर्प की बामी की तरह ऊपर पतला और नीचे मोटा हो।

४. **कुब्जक** — जिस कर्म के उदय से शरीर कुबड़ा हो।

५. **वामन** — जिस कर्म के उदय से शरीर बौना हो।

६. **हुंडकसंस्थान** — जिस कर्म के उदय से शरीर के आकार किसी विशेष रूप के न हों, प्रत्युत् बेडौल हों।

अंगोपांग — जिस कर्म के उदय से अंग और उपांगों की रचना होती है, उसे अंगोपांग कहते हैं। इसके तीन भेद हैं — औदारिक शरीर अंगोपांग, वैक्रियिक अंगोपांग और आहारक अंगोपांग। दो हाथ, दो पैर, नितंब, पीठ, वक्षस्थल और मस्तक, ये आठ अंग हैं तथा अंगुलि, आंख, कान आदि उपांग हैं।

संहनन — जिस कर्म के उदय से हड्डियों में विशेषता होती है, वह संहनन है। इसके छः भेद हैं — वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलित और असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन।

१. **वज्रवृषभनाराच** — जिस कर्म के उदय से वृषभ (नसों के साथ हड्डियों का बंधन) नाराच (कील), संहनन (हड्डियाँ) वज्र के समान अभेद्य हों।

२. **वज्रनाराच** — जिस कर्म के उदय से वज्र की हड्डियाँ और वज्र की कीली हों परन्तु नसों में जाल वज्र के समान नहीं हो।

३. **नाराच** — जिस कर्म के उदय से हड्डियों तथा संधियों में कीलें तो हों परन्तु वज्र के समान कठोर न हों और नसा जाल भी वज्रवत् कठोर न हो।

४. **अर्धनाराच** — जिस कर्म के उदय से हड्डियों की कीलियाँ अर्धकीलित हों। एक तरफ कीलें हों, दूसरी तरफ से न हों।

५. कीलित — जिस कर्म के उदय से हड्डियाँ परस्पर कीलित हों।

६. असंप्राप्तसृपाटिका — जिस कर्म के उदय से हड्डियों की संधियाँ नसों से बंधी होती हैं परन्तु परस्पर में कीलित नहीं होती हैं।

स्पर्श — जिस कर्म के उदय से शरीर में स्पर्श हो। इसके ८ भेद हैं — कोमल, कठोर, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष।

रस — जिस कर्म के उदय से शरीर में रस हो। इसके ५ भेद हैं — तिक्त (चरपरा), कटुक (कडुवा), कषाय (कषायला), आम्ल (खट्टा) और मधुर (मीठा)।

गंध — जिस कर्म के उदय से शरीर में गंध हो। उसके दो भेद हैं — सुगंध और दुर्गंध।

वर्ण — जिस कर्म के उदय से शरीर में रूप हो। उसके ५ भेद हैं — नील, शुक्ल, कृष्ण, रक्त और पीत।

आनुपूर्वी — जिस कर्म के उदय से अन्य गति को जाते हुए प्राणी का आकार विग्रहगति में पूर्व शरीर के आकार का रहता है। इसके ४ भेद हैं — नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और देवगत्यानुपूर्वी।

नरकगत्यानुपूर्वी — जिस समय कोई मनुष्य मरकर नरकगति की ओर जाता है, वहाँ पहुँचने तक बीच में (विग्रहगति से) उसके आत्मा के प्रदेशों का पूर्ण शरीर का आकार बना रहता है, उसे नरकगत्यानुपूर्वी कहते हैं। ऐसे ही शेष सभी में समझना।

अगुरुलघु — जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर लोहे के गोले की तरह भारी और आक की रुई की तरह हल्का नहीं होवे, वह अगुरुलघु है।

उपघात — जिस कर्म के उदय से अपने ही घातक अंगोपांग होते हैं।

परघात — जिस कर्म के उदय से पर के घातक अंगोपांग होते हैं।

उच्छ्वास — जिस कर्म के उदय से श्वासोच्छ्वास हो, उसे उच्छ्वास कर्म कहते हैं।

आतप — जिस कर्म के उदय से आतपकारी शरीर होता है। इसका उदय सूर्य के विमान में स्थिर बादर पृथ्वीकायिक जीवों के होता है।

उद्योत — जिस कर्म के उदय से उद्योतरूप शरीर हो। इसका उदय चन्द्रमा के विमान में स्थित पृथ्वीकायिक जीवों के तथा जुगनू आदि जीवों के होता है।

विहायोगति — जिस कर्म के उदय से आकाश में गमन होता है। इसके २ भेद हैं — प्रशस्तविहायोगति और अप्रशस्तविहायोगति।

त्रस — जिस कर्म के उदय से द्वीन्द्रिय आदि जीवों में जन्म होता है।

बादर — जिस कर्म के उदय से दूसरे को रोकने वाला और दूसरों से रुकने वाला शरीर प्राप्त हो।

पर्याप्ति — जिस कर्म के उदय से अपने योग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण हो जावे। ये पर्याप्तियाँ ६ हैं — आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन।

प्रत्येक शरीर — जिस कर्म के उदय से एक शरीर का स्वामी एक ही जीव हो।

स्थिर — जिस कर्म के उदय से शरीर के रस आदि धातु तथा वात, पित्तादि उपधातु अपने-अपने स्थान में स्थिर रहें। अनेक व्रत, उपवास आदि से भी शिथिलता न आवे।

शुभ—जिस कर्म के उदय से मस्तक आदि अवयव सुन्दर मालूम हों।

सुभग—जिस कर्म के उदय से दूसरों को अपने से प्रीति हो।

सुस्वर—जिस कर्म के उदय से अच्छा स्वर हो।

आदेय—जिस कर्म के उदय से शरीर में प्रभा हो।

यशस्कीर्ति—जिस कर्म के उदय से जीव का पुण्य गुण जगत् में प्रसिद्ध हो अथवा बिना गुण के भी प्रशंसा हो।

निर्माण—जिस कर्म के उदय से शरीर के अंगोपांगों की यथास्थान और यथाप्रमाण रचना हो।

तीर्थकर—जिस कर्म के उदय से तीर्थकर पद की प्राप्ति हो।

स्थावर—जिस कर्म के उदय से ऐकेंद्रियों में जन्म हो।

सूक्ष्म—जिस कर्म के उदय से दूसरों को नहीं रोकने वाला और दूसरों से नहीं रुकने वाला शरीर हो।

अपर्याप्ति—जिस कर्म के उदय से पर्याप्तियों की पूर्णता न हो, बीच में ही मरण हो जावे।

साधारण—जिस कर्म के उदय से एक शरीर के स्वामी अनेक जीव हों।

अस्थिर—जिस कर्म के उदय से शरीर में धातु-उपधातु अपने स्थान में स्थिर न रहें। किंचित् उपवास आदि से शरीर अस्वस्थ हो जावे।

अशुभ—जिस कर्म के उदय से शरीर के अवयव सुन्दर न हों।

दुर्भग—जिस कर्म के उदय से रूपादि गुणों से युक्त होने पर भी दूसरे जीवों को अप्रीति होती है।

दुःस्वर—जिस कर्म के उदय से खराब स्वर हो।

अनादेय—जिस कर्म के उदय से शरीर में कांति नहीं हो।

अयशस्कीर्ति—जिस कर्म के उदय से लोक में निंदा हो। कदाचित् गुणों में भी दोषों का आरोप हो जावे।

इन १३ प्रकृतियों में बंधन नामकर्म की निम्न १० प्रकृतियाँ मिलाने से नामकर्म की १०३ प्रकृतियाँ हो जाती हैं— १. औदारिक तैजस शरीर बंधन, २. औदारिक कार्माण शरीर बंधन, ३. औदारिक तैजस कार्माण शरीर बंधन, ४. वैक्रियिक तैजस शरीर बंधन, ५. वैक्रियिक कार्माण शरीर बंधन, ६. वैक्रियिक तैजस कार्माण शरीर बंधन, ७. आहारक तैजस शरीर बंधन, ८. आहारक कार्माण शरीर बंधन, ९. आहारक तैजस कार्माण शरीर बंधन, १०. तैजस कार्माण शरीर बंधन।

गोत्रकर्म के भेद—

गोत्रकर्म के २ भेद हैं—उच्चगोत्र और नीचगोत्र।

उच्चगोत्र—जिसके उदय से जीव लोकमान्य उच्च कुल में जन्म लेवे, वह उच्चगोत्र है।

नीचगोत्र—जिसके उदय से जीव लोकनिंद्य नीच कुल में जन्म लेवे, वह नीच गोत्र है।

अन्तरायकर्म के भेद—

अन्तराय के ५ भेद हैं—दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय और वीर्यान्तराय।

१. **दानांतराय**—जिस कर्म के उदय से दान की इच्छा करता हुआ भी दान नहीं दे सके।

२. **लाभांतराय**—जिस कर्म के उदय से लाभ की इच्छा होते हुए भी लाभ की प्राप्ति न हो सके।

३. **भोगांतराय**—जिस कर्म के उदय से अन्नादि भोगरूप वस्तु को भोगना चाहता हुआ भी भोग न सके।

४. **उपभोगांतराय**—जिसके उदय से वस्त्रादि उपभोग्य वस्तु को उपभोग करने का इच्छुक भी

समयप्रबद्धद्विदाए॥२४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतत्सूत्रमधिकारस्मारणार्थं आगतमस्ति।

णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयस्स केवडियाओ पयडीओ॥२५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतत्सूत्रं त्रिविधसंख्यातान् नवविधासंख्यातान् नवविधानन्तान् च गृहीत्वा एतस्य सूत्रस्यार्थो वक्तव्यः।

णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी तीसं तीसं सागरोवमकोडाकोडीयो समयप्रबद्धद्विदाए गुणिदाए॥२६॥

एवडियाओ पयडीओ॥२७॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-अन्तरायेषु एकैका या प्रकृतिः तस्याः कर्मस्थिति-

उपभोग न कर सके।

५. वीर्यतराय — जिस कर्म के उदय से अपनी शक्ति प्रगट करना चाहता हुआ भी प्रगट न कर सके, सामर्थ्यहीन, कायर, अनुत्साहित ही रहे।

इस प्रकार यह १४८ प्रकृतियों का वर्णन हुआ।

इसी प्रकार जीवों के परिणामों के आधार पर कर्मों के असंख्यात लोकप्रमाण भेद भी हो जाते हैं। कर्मों के इन भेदों से छूटकर निष्कर्म अवस्था प्राप्त करने का पुरुषार्थ करना ही इस कर्म प्रकृत्यर्थता को पढ़ने का सार है।

अब समयप्रबद्धार्थता अधिकार में ज्ञानावरण आदि तीन कर्मों का समय प्रतिपादन करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

अब समयप्रबद्धार्थता का अधिकार प्रारंभ होता है॥२४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यह सूत्र अधिकार का स्मरण कराने के लिए आया है।

सूत्रार्थ —

ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्म की कितनी प्रकृतियाँ हैं ?॥२५॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — तीन प्रकार के संख्यात, नौ प्रकार के असंख्यात (तीनों प्रकार के असंख्यात के उत्कृष्ट-मध्यम और जघन्य ये ३-३ भेद करने पर नौ प्रकार का असंख्यात हो जाता है) और नव प्रकार के अनन्त (परीतान्त, युक्तानन्त और अनन्तानन्त इन तीन प्रकार के अनन्त को उत्कृष्ट-मध्यम-जघन्य से गुणा करने पर अनंत के भी नौ भेद होते हैं) को लेकर इस सूत्र का अर्थ करना चाहिए।

सूत्रार्थ —

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्म की एक-एक प्रकृति तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों को समयप्रबद्धार्थता से गुणित करने पर जो प्राप्त हो उतनी संख्या है॥२६॥

उनमें से प्रत्येक की इतनी प्रकृतियाँ होती हैं॥२७॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय इनमें से जो एक-एक प्रकृति

समयभेदेन भेदः उच्यते। तद्यथा —

त्रिंशत्सागरोपम कोटीकोट्यः एतेषां कर्मणां कर्मस्थितिः ज्ञातव्या। तस्याः चरमसमये कर्मस्थितिमात्रा समयप्रबद्धास्ति।

कुतः ?

कर्मस्थिति प्रथमसमयप्रभृति यावत् चरमसमय इति अत्र बद्धसमयप्रबद्धानां एकपरमाणुमादिं कृत्वा यावत् अनन्तपरमाणूनां कर्मस्थितिचरमसमये “पाहुडणिल्लेवणट्टाणसुत्तबलेण”- कषायप्राभृतस्य निर्लेपनस्थान-सूत्रबलेन उपलंभात्।

कर्मस्थित्यादिसमये प्रबद्धपरमाणूनां कर्मस्थितिचरमसमये एका चैव स्थितिर्भवति। एषा एका प्रकृतिः। द्वितीयसमये प्रबद्धकर्मपरमाणूनां कर्मस्थितिचरमसमये वर्तमाना द्वितीया भवति, एतेषां द्विसमयस्थितिदर्शनात्। न चैकसमयात् द्वयोः समययोरेकत्वं, विरोधात्। ततः तद्भेदेन प्रकृतिभेदेनापि भवितव्यमन्यथा सर्वसंकरप्रसंगात्। एवं तृतीयसमयप्रबद्धाणामन्या प्रकृतिः, चतुर्थसमयप्रबद्धानामन्या प्रकृतिः इति नेतव्यं यावत् कर्मस्थितिचरमसमय- प्रबद्धः इति।

पुनः एतेषां समयप्रबद्धानां, कालभेदेन प्रकृतिभेदमुपगतानां संकलनं क्रियमाणे एकसमयप्रबद्धशलाकानां स्थापयित्वा त्रिंशत्कोटाकोटिसागरोपमैः गुणिते एतावन्मात्राः कालनिबन्धनप्रकृतयो ज्ञानदर्शनावरणान्तरायाणां एकैकस्याः प्रकृतयो भवन्ति।

है, उसके कर्मस्थिति समयों के भेद से भेद कहते हैं। जो इस प्रकार हैं —

इन कर्मों की कर्मस्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण है। उसके अन्तिम समय में कर्मस्थिति प्रमाण समयप्रबद्ध होते हैं।

प्रश्न — ऐसा क्यों है ?

उत्तर — क्योंकि कर्मस्थिति के प्रथम समय से लेकर उसके अंतिम समय तक यहाँ बांधे गये समयप्रबद्धों के एक परमाणु से लेकर अनन्तपरमाणु तक कर्मस्थिति के अन्तिम समय में कषायपाहुड़ के निर्लेपनस्थान सूत्र के बल से पाये जाते हैं।

कर्मस्थिति के प्रथम समय में तो बांधे हुए परमाणुओं की कर्मस्थिति के अंतिम समय में एक ही स्थिति होती है। यह एक प्रकृति है। द्वितीय समय में बांधे गये कर्मपरमाणुओं की कर्मस्थिति के अंतिम समय में वर्तमान द्वितीय प्रकृति है, क्योंकि इनकी दो समय स्थिति देखी जाती है। एक समय का दो समयों के साथ एकत्व नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें विरोध है। इस कारण समय भेद से प्रकृति भेद भी होना ही चाहिए अन्यथा सर्वशंकर दोष का प्रसंग आता है। इसी प्रकार तृतीय समय में बांधे गये परमाणुओं की अन्य प्रकृति, चतुर्थ समय में बांधे गये परमाणुओं की अन्य प्रकृति, इस प्रकार कर्मस्थिति के अंतिम समय तक ले जाना चाहिए।

पुनः काल के भेद से प्रकृति भेद को प्राप्त हुए इन समयप्रबद्धों का संकलन करने पर एक समयप्रबद्ध की शलाकाओं को स्थापित कर तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों से गुणित करने पर इतनी भागप्रमाण कालनिबन्धन प्रकृतियाँ हैं, जो कि ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय में से एक-एक कर्म की प्रकृतियाँ होती हैं।

उनमें से जितनी कालनिबन्धन प्रकृतियाँ हैं, ज्ञानावरणादिकों में से प्रत्येक की एक-एक प्रकृति उतनी मात्र होती है, यह उक्त सूत्र का अभिप्राय है। विशेष इतना है कि मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय और अवधिदर्शनावरणीय की तीस कोड़ाकोड़ी

ततश्च यावन्त्यः कालनिबन्धनप्रकृतयो ज्ञानावरणादीनामेकैका प्रकृतिस्तावन्मात्रा भवतीति भणितं भवति। विशेषेण तु मतिज्ञानावरणीय-श्रुतज्ञानावरणीय-अवधिज्ञानावरणीय-चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणीयानां च त्रिंशत्कोटाकोटिसागरोपमगुणितायां एकसमयप्रबद्धार्थतायां असंख्यातलोकैः गुणितायां एतासां सर्वप्रकृतिप्रमाणं भवति। अथवा कर्मस्थितिप्रथमसमये बद्धकर्मस्कंधः एकसमयप्रबद्धार्थता, द्वितीयसमयप्रबद्धो द्वितीयसमय-प्रबद्धार्थता। एवं नेतव्यं यावत् कर्मस्थिति चरमसमय इति। पुनः एकसमयप्रबद्धार्थतां स्थापयित्वा त्रिंशत्सागरोपम-कोटाकोटिभिः गुणिते एकैकस्य कर्मणः एतावन्त्यः प्रकृतयो भवन्ति। एषा प्ररूपणात्र प्रधाना, न पूर्वोक्ता एक- द्वि-आदि समयस्थितिद्रव्यमाश्रित्य प्ररूपिता।

अधुना वेदनीयकर्मप्रकृतिसंख्याप्रतिपादनार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

वेयणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ॥२८॥

वेयणीयस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी तीसं-पण्णारस सागरोवमकोडा-कोडीओ समयपबद्धट्टदाए गुणिदाए॥२९॥

एवडियाओ पयडीओ॥३०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — असातावेदनीयस्य कर्मस्थितिप्रथमसमये यो बद्धः कर्मस्कंधः सा एका-समयप्रबद्धार्थता, द्वितीयसमये प्रबद्धो द्वितीया समयप्रबद्धार्थता, तृतीयसमये प्रबद्धस्तृतीया समयप्रबद्धार्थता, एवं नेतव्यं यावत् कर्मस्थितिचरमसमय इति। अत्र एकसमयप्रबद्धार्थतां स्थापयित्वा त्रिंशत्सागरोपम-

सागरोपमों से गुणित एक समयप्रबद्धार्थता को असंख्यात लोकों से गुणित करने पर इनकी समस्त प्रकृतियों का प्रमाण होता है।

अथवा कर्मस्थिति के प्रथम समय में बांधे गये कर्मस्कंध का नाम एक समयप्रबद्धार्थता है, द्वितीय समय में बांधे गये कर्मस्कंध का नाम द्वितीय समयप्रबद्धार्थता है, इस प्रकार कर्मस्थिति के अंतिम समय तक ले जाना चाहिए। फिर एक समयप्रबद्धार्थता को स्थापित कर तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों से गुणित करने पर एक-एक कर्म की इतनी प्रकृतियाँ होती हैं। यह प्ररूपणा यहाँ प्रधान है, एक दो आदि समयमात्र स्थिति के द्रव्य का आश्रय करके की गई पूर्वोक्त प्ररूपणा यहाँ प्ररूपित नहीं की गई है।

अब वेदनीयकर्म प्रकृति की संख्या को प्रतिपादित करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

वेदनीय कर्म की कितनी प्रकृतियाँ हैं ?॥२८॥

तीस और पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरोपमों को समयप्रबद्धार्थता से गुणित करने पर जो प्राप्त हो उतनी मात्र वेदनीय कर्म की एक-एक प्रकृति है॥२९॥

उसकी इतनी प्रकृतियाँ हैं॥३०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — असातावेदनीय की कर्मस्थिति के प्रथम समय में जो कर्मस्कंध बांधा गया है, वह एक समयप्रबद्धार्थता कहलाती है। द्वितीय समय में बांधा गया कर्मस्कंध द्वितीय समय-प्रबद्धार्थता है, तृतीय समय में बांधा गया कर्मस्कंध तृतीय समयप्रबद्धार्थता है, इस प्रकार कर्मस्थिति के अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए। यहाँ एक समयप्रबद्धार्थता को स्थापित कर तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों

कोटाकोटिभिः गुणिते असातावेदनीयस्य एतावन्त्यः कालनिबन्धनप्रकृतयो भवन्ति।

अत्र कश्चिदाह —

असातावेदनीयः सान्तरबन्धिप्रकृतिरस्ति, अतः तस्याः समयप्रबद्धार्थतायाः त्रिंशत्कोटाकोटिसागरोपमं गुणकारो न भवति, सातावेदनीयबन्धकाले असातावेदनीयस्य बन्धाभावात् ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

स्वकर्मस्थित्यभ्यन्तरे एतस्मिन् उद्देशे असातावेदनीयस्य बन्धो नास्त्येवेति न नियमोऽस्ति, नानाजीवानाश्रित्य कर्मस्थितेः सर्वसमयेषु असातावेदनीयबन्धोपलंभात्।

अत्र कश्चिदाह —

एकजीवमाश्रित्य कर्मस्थित्यभ्यन्तरे असातावेदनीयस्य न निरन्तरबन्धो लभ्यत इति चेत् ?

आचार्यः प्राह —

नैतद् वक्तव्यं, तत्रापि नानाकर्मस्थितीः आश्रित्य निरन्तरबन्धोपलंभात्। न चैकजीवेनात्राधिकारः, कर्मस्थितिमाश्रित्य समयप्रबद्धार्थतायाः प्ररूपणा प्रारब्धास्ति। तस्मात् असातावेदनीयस्य अध्रुवबन्धिनोऽपि त्रिंशत्कोटाकोटिसागरोपमं गुणकारो भवतीति सिद्धम्।

पुनः कश्चित् पृच्छति —

असातावेदनीयबन्धव्युच्छिन्नकाले बद्धं सातावेदनीयमसातावेदनीयस्वरूपेण परिणतं गृहीत्वा त्रिंशत्कोटाकोटि-सागरोपममात्रा समयप्रबद्धार्थता किन्न भण्यते ?

से गुणित करने पर इतनी मात्र असातावेदनीय की कालनिबन्धन प्रकृतियाँ होती हैं।

यहाँ कोई शंका करता है —

असातावेदनीय चूँकि सान्तरबन्धी प्रकृति है अतएव उसकी समयप्रबद्धार्थता का गुणकार तीसकोड़ाकोड़ी सागरोपम नहीं हो सकता, क्योंकि सातावेदनीय के बन्धकाल में असाता वेदनीय का बन्ध संभव नहीं है ?

आचार्य इसका समाधान करते हैं —

अपनी कर्मस्थिति के भीतर इस उद्देश्य में असाता वेदनीय का बन्ध है ही नहीं। ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि नाना जीवों का आश्रय करके कर्मस्थिति के सब समयों में असाता का बन्ध पाया जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है —

एक जीव का आश्रय करके तो कर्मस्थिति के भीतर असाता वेदनीय का निरन्तर बन्ध नहीं पाया जाता है ?

ऐसा कहने पर आचार्य उत्तर में कहते हैं कि —

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि वहाँ पर भी नाना कर्मस्थितियों का आश्रय करके निरन्तर बन्ध पाया जाता है और यहाँ एक जीव का अधिकार भी नहीं है, क्योंकि कर्मस्थिति का आश्रय करके समयप्रबद्धार्थता की प्ररूपणा प्रारंभ की गई है। इस कारण अध्रुवबन्धी असाता वेदनीय का गुणकार तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है, यह सिद्ध है।

यहाँ कोई पूछता है —

असाता वेदनीय के बन्धव्युच्छिन्न काल में बाँधे गये व असाता वेदनीय स्वरूप से परिणत हुए साता वेदनीय को ग्रहण कर तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण समयप्रबद्धार्थता क्यों नहीं कहते हैं ?

आचार्यदेवः उत्तरं ददाति —

न भण्यते, सातावेदनीयस्वरूपेण बद्धानां कर्मस्कंधानां संक्रमेण असातावेदनीयरूपपरिणतानां असातावेदनीय-समयप्रबद्धत्वविरोधात्। अक्रमस्वरूपेण स्थिताः पुद्गलाः असाताकर्मस्वरूपेण परिणता यदि भवन्ति ते असाता-समयप्रबद्धाः कथ्यन्ते। तस्मात् संक्रमेणागतानां न समयप्रबद्धव्यपदेशः इति सिद्धम्।

एवं गृह्यमाणे सातावेदनीयस्यापि आवलिकान्यून त्रिंशत्कोटाकोटिसागरोपममात्रसमयप्रबद्धार्थताप्रसंगात्। किं च-बंधावलिकीति-असातावेदनीयस्थितेः सातास्वरूपेण परिणतायाः सातास्वरूपेण चैव बंधावलिन्यून-कर्मस्थितिमात्रकालमवस्थानदर्शनात्। न च सातावेदनीयस्य एतावन्मात्रा समयप्रबद्धार्थतास्ति, सूत्रे पंचदश-सागरोपमकोटाकोटिमात्रसमयप्रबद्धार्थतोपदेशात्। न चासातावेदनीयस्य सातास्वरूपेण परिणतस्य पंचदशसागरोपम-कोटाकोटिमात्रा चैव स्थितिर्भवति, काण्डकघातेन विना कर्मस्थितेः घाताभावात्। एवं सातावेदनीयस्यापि वक्तव्यं, विशेषाभावात्।

पुनश्च यावन्त्यः सातासातावेदनीयानां कालगतशक्त्यस्तावन्त्यश्चैव तासां प्रकृतय इति गृहीतव्यं।

इतो विस्तरः — संसारे संसरन्तः प्राणिनः असातावेदनीयोदयजनित दुःखसामग्रीं उपलभ्य दुःखशोकविषा-दादिपरिणामैः पुनरप्यसातावेदनीयमेव बध्न्ति पुनश्च ये केचित् सम्यग्दृष्टयः कर्मसिद्धान्तज्ञायकाः ते जिनभक्ति-पूजामंत्राद्यनुष्ठानेन असातां सातारूपेण परिणमयितुकामाः धर्मारधनासु प्रवर्तन्ते। केचिच्च तत्त्वविदः

आचार्यदेव इसका भी उत्तर देते हैं— नहीं कहते हैं, क्योंकि सातावेदनीय के स्वरूप से बांधे गये परन्तु असातावेदनीय के स्वरूप से परिणत हुए कर्मस्कंधों के असातावेदनीय के समयप्रबद्ध होने का विरोध है। कारण कि अक्रमस्वरूप से स्थित पुद्गल यदि असातावेदनीय कर्म के स्वरूप से परिणत होते हैं तो वे असातावेदनीय के समयप्रबद्ध कहे जाते हैं इसलिए संक्रमणवश आये हुए कर्मपुद्गल स्कंधों की समयप्रबद्ध संज्ञा नहीं हो सकती, यह सिद्ध है।

ऐसा ग्रहण करने पर सातावेदनीय के भी एक आवली से रहित तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण समयप्रबद्धार्थता का प्रसंग आता है, क्योंकि बंधावली से रहित असातावेदनीय की स्थिति का सातावेदनीय के स्वरूप से परिणत होकर सातावेदनीय के स्वरूप से ही बंधावली से हीन कर्मस्थिति मात्रकाल तक अवस्थान देखा जाता है परन्तु सातावेदनीय के इतने समयप्रबद्धार्थता नहीं है, क्योंकि सूत्र में उसके पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरोपम मात्र समयप्रबद्धों का उपदेश है। यदि कहा जाए कि असातावेदनीय कर्म वेदनीय के सातास्वरूप से संक्रमण को प्राप्त होता है अतः उस कर्म की पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण ही स्थिति हो सकती है, तो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि काण्डकघात के बिना कर्मस्थिति का घात संभव नहीं है।

इसी प्रकार सातावेदनीय के संबंध में भी प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विशेषता नहीं है।

पुनश्च साता व असातावेदनीय की जितनी कालगत शक्तियाँ हैं उतनी ही उनकी प्रकृतियाँ हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

इसको विस्तार से कहते हैं—

संसार में संसरण करते हुए प्राणी असातावेदनीय के उदय से उत्पन्न दुःख की सामग्री को प्राप्त करके दुःख-शोक-विषाद आदि परिणामों के द्वारा पुनः आगे के लिए भी असातावेदनीय कर्म का ही बंध करते हैं, उन्हीं में से जो कोई सम्यग्दृष्टि कर्मसिद्धान्त के जानकार होते हैं, वे जिनेन्द्र भगवान की भक्ति, पूजा, मंत्र

सदैव चिन्तयन्ति यत्—

दुःखं किञ्चित् सुखं किञ्चित्, एतद्भ्रान्तिर्जडात्मनः।

संसारे तु पुनर्नित्यं, सर्वं दुःखं विवेकिनः^१।

तात्पर्यमेतत्—संसारे तु आकुलतालक्षणं दुःखं सततमेव, किञ्च यदि इन्द्रियजन्यसुखं तदपि सुखाभासमेव विनश्वरत्वात्। अतः अविनश्वरमनन्तमतीन्द्रियसुखं सातावेदनीयातीतं यद् अव्याबाधं तत्सुखप्राप्त्यर्थमेव पुरुषार्थो विधातव्यः तत्त्वदृष्टिभिरहर्निशमिति।

अधुना मोहनीयकर्मसमयप्रबद्धार्थत्वप्रतिपादनार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते—

मोहणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ॥३१॥

**मोहणीयस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी सत्तरि-चत्तालीसं वीसं पण्णारस-
दस-सागरोवम-कोडाकोडीयो समयपबद्धदुदाए गुणिताए॥३२॥**

एवडियाओ पयडीओ॥३३॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—मिथ्यात्वस्य सप्ततिसागरोपमकोटाकोटिप्रमाणा स्थितिः, षोडशानां कषायाणां चत्वारिंशत्सागरोपमकोटाकोटिस्थितिः, अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-नपुंसकवेदानां विंशतिसागरोपम-कोटाकोटि-स्थितिः, स्त्रीवेदस्य पंचदशसागरोपमकोटाकोटिप्रमाणा, हास्य-रति-पुरुषवेदानां दशसागरोपम-

आदि के अनुष्ठानों के द्वारा असाताकर्म को सातारूप में परिणत करने की इच्छा से धर्मारोपना— धार्मिक क्रियाओं में प्रवृत्त रहते हैं और उनमें से भी कोई-कोई जो तत्त्वज्ञानी होते हैं, वे सदैव चिन्तन करते हैं कि—

श्लोकार्थ—संसार में कुछ दुःख है और कुछ सुख है ऐसी भ्रान्तिपूर्ण बुद्धि जडात्मा—बहिरात्मा की होती है किन्तु विवेकी—सम्यग्दृष्टि तत्त्वज्ञानी तो सदा संसार में दुःख ही दुःख मानता है॥

तात्पर्य यह है कि संसार में तो सदैव आकुलता लक्षण वाला दुःख ही है, क्योंकि यदि इन्द्रियजन्य सुख है भी तो वह सुखाभास ही है, क्योंकि वह विनश्वर—क्षणिक है अतः अविनश्वर-अनन्त-अतीन्द्रिय सुख तो सातावेदनीय से अतीत होता है जो कि अव्याबाध—बाधारहित होता है। उस सुख की प्राप्ति के लिए ही तत्त्वदृष्टियों को अहर्निश पुरुषार्थ करना चाहिए।

अब मोहनीय कर्म की समयप्रबद्धता प्रतिपादित करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

मोहनीय कर्म की कितनी प्रकृतियाँ हैं ?॥३१॥

सत्तर, चालिस, बीस, पन्द्रह और दस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों को समयप्रबद्धार्थता से गुणित करने पर जो प्राप्त हो उतनी मोहनीयकर्म की एक-एक प्रकृति है॥३२॥

उसकी इतनी प्रकृतियाँ हैं॥३३॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—मिथ्यात्व की स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम, कषायों की चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और नपुंसकवेद की बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम, स्त्रीवेद की पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरोपम तथा हास्य, रति और पुरुषवेद की दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण स्थिति

कोटाकोटिप्रमाण- स्थितिर्भवति। एताभिः कर्मस्थितिभिः समयप्रबद्धार्थताया गुणितायाः एकैका प्रकृतिरेतावन्मात्रा भवति, समयभेदेन बद्धस्कंधानामपि भेदात्। अत्रापि सान्तरबंधीनां प्रकृतीनामसाता-वेदनीयक्रमो वक्तव्यः।

अत्र कश्चिदाह —

सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वयोः समयप्रबद्धार्थता कथं सप्ततिसागरोपमकोटाकोटिमात्रा ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नैतद्, मिथ्यात्वकर्मस्थितिमात्रसमयप्रबद्धानां सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वयोः संक्रमणप्राप्तानां निषेकस्वरूपेण सर्वेषामुपलंभात्।

पुनःकश्चित् पृच्छति —

तासामबंधप्रकृतीनां कथं समयप्रबद्धार्थता ?

आचार्यदेवः उत्तरयति —

नैतद्, मिथ्यात्वस्वरूपेण बद्धानां कर्मस्कंधानां लब्धसमयप्रबद्धव्यपदेशानां सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्व-स्वरूपेण संक्रान्तानां अपि द्रव्यार्थिकनयेन तद्व्यपदेशं प्रति विरोधाभावात्।

एषः क्रमः अबंधप्रकृतीनां चैव, न बंधप्रकृतीनां, पुरुषवेदस्यापि चत्वारिंशत्सागरोपमकोटाकोटिमात्र-समयप्रबद्धार्थता प्रसंगात्। न चैवं, तथाविधसूत्रानुपलंभात्।

पुनश्च — यावन्तः समयप्रबद्धाः तावन्मात्राः प्रकृतयः एकैका प्रकृतिर्भवति, कालभेदेन भेदोपलंभात्।

है। इन कर्मस्थितियों के द्वारा समयप्रबद्धार्थता को गुणित करने पर जो प्राप्त हो, इतनी मात्र एक-एक प्रकृति है, क्योंकि काल के भेद से बांधे गये स्कंधों का भी भेद होता है। यहाँ पर भी सान्तर बंधी प्रकृतियों के क्रम को असातावेदनीय के समान कहना चाहिए।

यहाँ कोई शंका करता है —

सम्यक्त्व और सम्यङ्मिथ्यात्व की समयप्रबद्धार्थता सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण कैसे संभव है ?

आचार्य इसका समाधान करते हैं —

ऐसा नहीं है, क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यङ्मिथ्यात्व के रूप में संक्रमण को प्राप्त हुए मिथ्यात्व कर्म की स्थितिप्रमाण समयप्रबद्ध निषेक स्वरूप से वहाँ सभी पाये जाते हैं।

पुनः कोई पूछता है —

उन अबन्ध प्रकृतियों के समयप्रबद्धार्थता कैसे संभव है ?

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं —

ऐसा नहीं है, क्योंकि मिथ्यात्वस्वरूप से बांधे गये व समयप्रबद्ध संज्ञा को प्राप्त हुए कर्मस्कंधों के सम्यक्त्व एवं सम्यङ्मिथ्यात्व स्वरूप से संक्रान्त होने पर भी उनको द्रव्यार्थिक नय से समयप्रबद्ध कहने में कोई विरोध नहीं है।

यह क्रम अबंध प्रकृतियों के ही संभव है, बंध प्रकृतियों के नहीं, क्योंकि वैसा होने पर यह पुरुषवेद के भी चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण समयप्रबद्धार्थता का प्रसंग आता है परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि उस प्रकार का कोई दूसरा सूत्र नहीं है।

पुनश्च जितने समयप्रबद्ध हों, उतनी मात्र प्रकृतियों स्वरूप एक-एक प्रकृति होती है, क्योंकि काल के

इतो विशेषः — “तं पुण अट्टविहं वा अडदालसयं असंखलोगं वा।”

इति गाथाकथितानुसारेणापि प्रत्येककर्मणां असंख्यातलोकप्रमाणा भेदा भवन्तीति ज्ञात्वा कर्मबंधेभ्यः कर्मफलेभ्यश्च विरज्य संसारस्थितिच्छेदार्थं यः पुरुषार्थः कथितस्तमवलम्ब्य मनुष्यपर्यायः सार्थको विधातव्यः।

श्रीसमन्तभद्रस्वामिभिरपि प्रोक्तं —

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि, धर्म धर्मेश्वरा विदुः।

यदीयप्रत्यनीकानि, भवन्ति भवपद्धतिः^१।

ये महापुरुषाः भेदाभेदरत्नत्रयं गृहीत्वा शुद्धबुद्धचिच्चैतन्यस्वरूपमात्मानं ध्यायन्तो भावयन्तोऽनुस्मरन्तश्च परानपि प्रतिबोधयन्ति त एव गुरुवो भवसमुद्रं तरन्तोऽन्यान् तारयन्तश्च नियमेन त्रिलोकाग्रे गन्तुं सिद्धावस्थां प्राप्तुं सक्षमा भविष्यन्तीति निश्चित्य तेषां गुरुणामेव शरणं गृहीतव्यम्।

किंच — पञ्चआधारपञ्चगिंसंसाहया। वारसंगाई सुअजलहि-अवगाहया।।

मोक्खलच्छी महंती महंते सया। सूरिणो दिंतु मोक्खं गयासं गया^२।।

अधुना आयुःकर्मसमयप्रबद्धार्थताप्रतिपादनार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

भेद से प्रकृति भेद पाया जाता है।

यहाँ विशेष वर्णन करते हैं —

श्री नेमिचन्द्राचार्य ने गोम्मतसार कर्मकाण्ड में कहा है —

“वह कर्म आठ प्रकार का अथवा एक सौ अड़तालिस भेदरूप अथवा असंख्यातलोकप्रमाण भेद वाला होता है।” इस प्रकार गाथा में कहे अनुसार भी प्रत्येक कर्मों के असंख्यातलोकप्रमाण भेद होते हैं ऐसा जानकर कर्मबंध और कर्म के फल से विरक्त होकर संसार की स्थिति का छेद करने के लिए जो पुरुषार्थ कहा गया है, उसका अवलंबन लेकर अपनी मनुष्य पर्याय को सार्थक करना चाहिए।

श्री आचार्य समन्तभद्रस्वामी ने भी कहा है —

श्लोकार्थ — गणधर-मुनिगण ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रय को धर्म कहा है तथा इनके विपरीत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र भवपद्धति — संसार परम्परा को वृद्धिगत करते हैं।।

जो महापुरुष भेदाभेद रत्नत्रय को ग्रहण करके शुद्ध-बुद्ध-चिच्चैतन्यस्वरूप आत्मा को ध्याते हुए, उसकी भावना करते हुए और उसी का अनुसरण करते हुए दूसरों को प्रतिबोधित करते हैं वे गुरु ही भवसमुद्र से स्वयं तिरते हुए दूसरों को भी तारते हुए नियम से तीनलोक के अग्रभाग पर जाने हेतु सिद्ध अवस्था को प्राप्त करने में सक्षम होंगे, ऐसा निश्चय करके उन गुरुओं की ही शरण लेनी चाहिए।

कहा भी है —

श्लोकार्थ — जो पंच आचारमयी पंचाग्नि तप करते हैं, द्वादशांगरूप श्रुतसमुद्र में अवगाहन करते हैं। मुक्तिरूपी लक्ष्मी के जो महान् — उत्तम वर हैं, ऐसे महान् मोक्षपथ को प्राप्त करने वाले आचार्यप्रवर हमें सिद्धि प्रदान करें।।

अब आयुर्कर्म की समयप्रबद्धार्थता का प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

आउअस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ॥३४॥

आउअस्स कम्मस्स एककेक्का पयडी अंतोमुहुत्तमंतोमुहुत्तं समय-
पबद्धदाए गुणिदाए॥३५॥

एवडियाओ पयडीओ॥३६॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अन्तर्मुहूर्तमन्तर्मुहूर्तमिति वीप्सानिर्देशः। तेन चतुर्णामायुषां अन्तर्मुहूर्तमात्रश्चैव स्थितिबंधककालो भवतीति सिद्धं। एतस्य बंधककालस्य एकसमयप्रबद्धे गुणिते चतुर्णामायुषां पृथक्-पृथक् समयप्रबद्धार्थताप्रमाणं भवति।

अत्र कश्चिदाह —

आयुषः संक्षेपकालात् ऊनपूर्वकोटित्रिभागमात्रा समयप्रबद्धार्थता किन्न प्ररूपिता, कदलीघातमाश्रित्यान्त-
र्मुहूर्तोनपूर्वकोटिमात्रा वा ?

आचार्यदेवः प्राह —

नैष दोषः, यथा सातादीनां एकसमयाबंधको भूत्वा द्वितीयसमये चैव बंधको भवति, एवं नायुषः, किन्तु शेषायुषो द्वि-त्रिभाग गत्वा एव बंधको भवतीति ज्ञापनार्थं अंतर्मुहूर्तग्रहणं कृतम्।

संप्रति नामकर्मसमयप्रबद्धार्थतानिरूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

णामस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ॥३७॥

सूत्रार्थ —

आयुर्कर्म की कितनी प्रकृतियाँ हैं ?॥३४॥

अन्तर्मुहूर्त-अन्तर्मुहूर्त को समयप्रबद्धार्थता से गुणित करने पर जो प्राप्त हो उतनी
आयुर्कर्म की एक-एक प्रकृति है॥३५॥

उसकी इतनी प्रकृतियाँ हैं॥३६॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अन्तर्मुहूर्त-अन्तर्मुहूर्त यह वीप्सा निर्देश है इसलिए चारों आयुओं का स्थितिबंधक काल अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है, यह सिद्ध है। इस बंधककाल से एक समयप्रबद्ध को गुणित करने पर पृथक्-पृथक् चारों आयुओं की समयप्रबद्धार्थता का प्रमाण होता है।

यहाँ कोई शंका करता है —

आयु के संक्षेपाद्धा से हीन पूर्वकोटि के त्रिभाग प्रमाण अथवा कदलीघात का आश्रय करके अन्तर्मुहूर्त से हीन पूर्वकोटि प्रमाण समयप्रबद्धार्थता क्यों नहीं कही गई है ?

आचार्यदेव समाधान देते हैं —

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार जीव सातावेदनीय आदि कर्मों का एक समय अबन्धक होकर द्वितीय समय में ही बंधक हो जाता है, इस प्रकार आयुर्कर्म का बंधक नहीं होता, किन्तु शेष आयु के दो त्रिभाग बिताकर ही बंधक होता है, यह बतलाने के लिए अन्तर्मुहूर्त का ग्रहण किया है।

अब नामकर्म की समयप्रबद्धार्थता का निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

नामकर्म की कितनी प्रकृतियाँ हैं ?॥३७॥

**णामस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी वीसं-अट्टारस-सोलस-पण्णारस-
चोदस-बारस-दस सागरोवमकोडाकोडीयो समयपबद्धदुदाए गुणिदाए।।३८।।**

एवडियाओ पयडीओ।।३९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — नरकगति-नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-तिर्यग्गति-तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वि-एकेन्द्रिय-पंचेन्द्रियजाति-औदारिक-वैक्रियिक-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-औदारिक-वैक्रियिक-शरीरांगोपांग-हुंडकसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-आतप-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-स्थावर-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-अस्थिर-अशुभ-अनादेय-दुर्भग-दुःस्वर-अयशःकीर्ति-निर्माणनाम्नां विंशतिसागरोपमकोटाकोटिप्रमाणमुत्कृष्टस्थितिबंधः। द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-सूक्ष्म-साधारण-अपर्याप्त-पंचमसंस्थान-पंचमसंहननानामष्टादशसागरोपमकोटाकोटिप्रमाणं उत्कृष्टस्थितिबंधः। चतुर्थसंस्थान-चतुर्थसंहननानां षोडशसागरोपमकोटाकोटिप्रमाणमुत्कृष्टस्थितिबंधः। मनुष्यगति-मनुष्यगति-प्रायोग्या-नुपूर्विप्रकृत्योः पंचदशकोटाकोटिसागरोपमप्रमाणमुत्कृष्टस्थितिबंधो भवति। तृतीयसंस्थान-तृतीय-संहननयोः चतुर्दशकोटाकोटिसागरोपममुत्कृष्टस्थितिबंधः। द्वितीयसंस्थान-द्वितीयसंहननयोः द्वादशकोटा-कोटिसागरोपममुत्कृष्ट-स्थितिबंधः। देवगति-देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-समचतुरस्रसंस्थान-वज्रर्षभवज्रनाराचसंहनन-प्रशस्तविहायोगति-स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशस्कीर्तीणां दशकोटाकोटि-सागरोपममुत्कृष्ट-स्थितिबंधः। एताभिः स्थितिभिः पृथक्-पृथक् समयप्रबद्धे गुणिते स्वक-स्वकसमयप्रबद्धार्थता भवति।

बीस, अठारह, सोलह, पन्द्रह, चौदह, बारह और दस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों को समयप्रबद्धार्थता से गुणित करने पर जो प्राप्त हो उतनी नामकर्म की एक-एक प्रकृति है।।३८।।

उसकी इतनी प्रकृतियाँ हैं।।३९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — नरकगति, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति, तिर्यग्गति प्रायोग्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय जाति व पंचेन्द्रिय जाति (औदारिक, वैक्रियिक) तैजस व कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, औदारिक व वैक्रियिक शरीरांगोपांग, हुण्डकसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिका संहनन, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, अस्थिर, अशुभ, अनादेय, दुर्भग, दुस्वर, अयशःकीर्ति और निर्माण इन नामकर्म की प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थितिबंध बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण होता है, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, पाँचवाँ संस्थान और पाँचवाँ संहनन इनका उत्कृष्ट स्थितिबंध अठारह कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण है। चौथे स्थान और चौथे संहनन का उत्कृष्ट स्थितिबंध सोलह कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण है। मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का उत्कृष्ट स्थितिबंध पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण होता है। तृतीय संस्थान और तृतीय संहनन का उत्कृष्ट स्थितिबंध चौदह कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण होता है। द्वितीय संस्थान और द्वितीय संहनन का उत्कृष्ट स्थितिबंध बारह कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण होता है। देवगति, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभवज्रनाराचसंहनन, प्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशःकीर्ति इनका उत्कृष्ट स्थितिबंध दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण होता है। इन स्थितियों के द्वारा पृथक्-पृथक् समयप्रबद्ध को गुणित करने पर अपनी-अपनी समयप्रबद्धार्थता होती है।

संप्रति आहारद्विकस्य समयप्रबद्धार्थता संख्यातान्तर्मुहूर्तमात्रा। तद्यथा-अष्टवर्षान्तर्मुहूर्तस्योपरि संयतः (अप्रमत्तसंयतः) अंतर्मुहूर्तकालमाहारद्विकं बंधयित्वा नियमात् श्राम्यति, प्रमत्तसंयतकाले आहारद्विकस्य बंधाभावात्। एवमन्तर्मुहूर्तमबंधको भूत्वा पुनः अंतर्मुहूर्तं बंधको भवति, प्रतिपन्नाप्रमत्तभावत्वात्। एवमप्रमत्त-प्रमत्तकालयोः बंधकोऽबंधकश्च भूत्वा तावद् गच्छति यावत्पूर्वकोटि-चरमसमय इति। एतान्तर्मुहूर्तान् समुच्चयरूपेण गृहीतेसंख्यातान्तर्मुहूर्तमात्रा चैव समयप्रबद्धार्थता लभ्यते।

तीर्थकरस्य पुनः सातिरेकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपममात्रा समयप्रबद्धार्थता लभ्यते। तद्यथा—एको देवो वा नारको वा सम्यग्दृष्टी पूर्वकोट्यायुष्कमनुष्येषु उपपन्नः, गर्भाद्याष्टवर्षाणामन्तर्मुहूर्ताभ्यधिकानामुपरि तीर्थकरनाम-कर्मबंधमागत्य ततः प्रभृति उपरि निरन्तरं बध्यते यावदवशेषपूर्वकोटिसमधिक-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपममाणीति, तीर्थकरं बध्यमानसंयतस्य बद्धत्रयस्त्रिंशत्सागरोपममात्रदेवायुष्कस्य देवेषूपत्यन्नस्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपममात्रकालं निरन्तरं बंधोपलंभात्। पुनस्ततः च्युतः समानः पुनरपि तीर्थकरनामकर्मप्रकृतिं बध्नाति यावत् पूर्वकोटि-आयुष्कमनुष्येषु उत्पद्य वर्षपृथक्त्वावशेषे अपूर्वकरणः संयतो भूत्वा चरमसप्तमभागस्य प्रथमसमयापूर्वकरण इति। उपरि बंधो नास्ति, चरमसप्तमभागस्य प्रथमसमये अनुत्पादानुच्छेदेन बंधो व्युच्छिद्यते इति ससूत्राचार्यवचनोपलंभात्।

अत्र कश्चिदाह—

वर्षपृथक्त्वं किमिति अवशेषितम् ?

अब आहारद्विक की समयप्रबद्धार्थता का प्रमाण संख्यात अन्तर्मुहूर्त मात्र प्राप्त होता है। जो इस प्रकार है—आठ वर्ष व अन्तर्मुहूर्त के ऊपर संयत अप्रमत्तसंयत होकर अन्तर्मुहूर्त काल तक आहारद्विक को बांधकर नियम से थक जाता है, कारण कि प्रमत्तसंयत काल में आहारद्विक का बंध नहीं होता है। इस प्रकार से अन्तर्मुहूर्त काल तक अबंधक होकर फिर से अन्तर्मुहूर्तकाल तक बंधक होता है, क्योंकि तब उसने अप्रमत्तभाव को प्राप्त कर लिया है। इस प्रकार अप्रमत्त व प्रमत्तकालों में क्रम से बंधक व अबंधक होकर तब तक जाता है जब तक पूर्वकोटि का अंतिम समय प्राप्त होता है। इन अन्तर्मुहूर्तों को समुच्चयरूप से ग्रहण करने पर संख्यात अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही समयप्रबद्धार्थता पाई जाती है।

परन्तु तीर्थकर प्रकृति की समयप्रबद्धार्थता कुछ अधिक तेतीस सागरोपम प्रमाण पायी जाती है। वह इस प्रकार है—एकदेव अथवा नारकी सम्यग्दृष्टि पूर्वकोटि प्रमाण आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। उसके गर्भ से लेकर अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षों के पश्चात् तीर्थकर नामकर्म बंध को प्राप्त हुआ, उससे आगे वह शेष पूर्वकोटि से अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाणकाल तक निरन्तर बांधता है, क्योंकि जो संयत तेतीस सागरोपम प्रमाण देवायु को बांधकर देवों में उत्पन्न हो तीर्थकर प्रकृति को बांधता है, उसके तेतीस सागरोपम प्रमाणकाल तक उसका निरन्तर बंध पाया जाता है। फिर वहाँ से च्युत होकर फिर से भी वह पूर्वकोटि प्रमाण आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न होकर वर्ष पृथक्त्व के शेष रहने पर अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती होकर अंतिम सप्तम भाग के प्रथमसमयवर्ती अपूर्वकरण तक तीर्थकर नामकर्म को बांधता है। इसके आगे उसका बंध नहीं होता है, क्योंकि “अंतिम सप्तम भाग के प्रथम समय में अनुत्पादानुच्छेद से उसका बंध व्युच्छिन्न हो जाता है”, ऐसा ससूत्राचार्य का वचन पाया जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है—

वर्षपृथक्त्व को अवशेष क्यों रखा गया है ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नैष दोषः, तीर्थविहारस्य जघन्येन वर्षपृथक्त्वमात्रकालोपलंभात्। एवमादिमान्तिमद्वाभ्यां वर्षपृथक्त्वाभ्यां न्यूनद्विपूर्वकोटिभिः सातिरेक त्रयस्त्रिंशत्सागरोपममात्रा तीर्थकरस्य समयप्रबद्धार्थता भवतीति केऽपि आचार्या भणन्ति। तत्र घटते। किंच — आहारद्विकस्य संख्यातवर्षमात्रा तीर्थकरस्य सातिरेकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपममात्रा समयप्रबद्धार्थता भवतीति सूत्राभावात्। न च सूत्रप्रतिकूलं व्याख्यानं भवति, व्याख्यानाभासत्वात्। न च युक्त्या सूत्रस्य बाधा संभवति, सकलबाधातीतस्य सूत्रव्यपदेशात्।

पुनः कश्चिदाह —

यद्येवं तर्हि एतेषां कर्मणां त्रयाणां कियन्ती समयप्रबद्धार्थता ?

आचार्यदेवः प्राह —

विंशतिसागरोपमकोटाकोटिमात्रा।

पुनरपि कश्चिदाशङ्कते —

एतेषां त्रयाणां कर्मणामुत्कृष्टस्थितिबंधः अन्तःकोटाकोटिमात्रश्चैव। न च तावत्कालं एतेषां बंधोऽपि संभवति, क्रमेण संख्यातवर्षसातिरेकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपममात्रकालबंधोपलंभात्। येषामन्तःकोटाकोटिमात्रापि समयप्रबद्धार्थता न संभवति कथं तेषां विंशतिसागरोपमकोटाकोटिमात्रसमयप्रबद्धानां संभव इति ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नैष दोषः, एतेषु त्रिषु कर्मसु बध्यमानेषु विंशतिसागरोपम कोटाकोटिषु संचितनामकर्मसमयप्रबद्धेषु एतेषु संक्रममानेषु विंशतिसागरोपमकोटाकोटिमात्रसमयप्रबद्धार्थतायाः उपलंभात्।

आचार्य इसका समाधान देते हैं —

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि तीर्थविहार का काल जघन्य स्वरूप से वर्ष पृथक्त्व मात्र पाया जाता है।

इस प्रकार आदि और अन्त के दो वर्षपृथक्त्वों से रहित तथा दो पूर्वकोटि अधिक तीर्थकर प्रकृति के तेतीस सागरोपम मात्र समयप्रबद्धार्थता होती है, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं परन्तु वह घटित नहीं होता है, क्योंकि आहारकद्विक की संख्यात वर्ष मात्र और तीर्थकर प्रकृति की साधिक तेतीस सागरोपम प्रमाण समयप्रबद्धार्थता है, ऐसा कोई सूत्र नहीं है और सूत्र के प्रतिकूल व्याख्यान होता नहीं है क्योंकि वह व्याख्यानाभास कहा जाता है। यदि कहा जाए कि युक्ति से सूत्र को बाधा पहुँचाई जा सकती है, सो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि जो समस्त बाधाओं से रहित होता है, उसकी सूत्र संज्ञा है।

पुनः कोई शंका करता है — यदि ऐसा है तो फिर इन तीन कर्मों की समयप्रबद्धार्थता कितनी है ?

आचार्यदेव इसका भी समाधान देते हैं — उनकी समयप्रबद्धार्थता बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण है।

पुनरपि कोई शंका करता है —

इन तीन कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबंध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण ही होता है परन्तु इतने काल तक उनका बंध भी संभव नहीं है, क्योंकि वह क्रम से संख्यात वर्ष और कुछ अधिक तेतीस सागरोपम काल तक ही पाया जाता है इसलिए जिनकी अन्तःकोड़ाकोड़ी मात्र भी समयप्रबद्धार्थता संभव नहीं है, उनके बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण समयप्रबद्धों की संभावना कैसे की जा सकती है ?

आचार्यदेव इसका समाधान देते हैं —

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि बंधते समय इन तीनों कर्मों में बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों में संचय को प्राप्त हुए नामकर्म के समयप्रबद्धों का संक्रमण होने पर इनकी बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण समयप्रबद्धार्थता

पुनरप्याशङ्कां करोति —

एतास्तिस्त्रोऽपि बंधप्रकृतयः। न च बंधप्रकृतीनां संक्रमेण समयप्रबद्धार्थता वक्तुं शक्यते, सातावेदनीयस्यापि त्रिंशत्सागरोपमकोटाकोटिमात्रसमयप्रबद्धार्थताप्रसंगात् इति ?

आचार्यदेवः परिहरति —

तद्यथा —

यासां प्रकृतीनां स्थितिसत्त्वादुपरि कस्मिन्नपि काले स्थितिबंधः संभवति ता बंधप्रकृतयो नाम। यासां पुनः प्रकृतीनां बंधश्चैव नास्ति, बंधे सत्यपि यासां प्रकृतीनां स्थितिसत्त्वादुपरि सर्वकालं बंधो न संभवति, ताः सत्त्वप्रकृतयः, सत्त्वप्रधानत्वात्। न चाहारद्विकतीर्थकराणां स्थितिसत्त्वादुपरि बंधोऽस्ति, सम्यग्दृष्टिषु तदनुपलंभात् तस्मात् सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वयोरिव एतानि त्रीण्यपि सत्त्वकर्माणि। ततो यथा सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वयोः समयप्रबद्धार्थता संक्रमेण प्ररूपिता तथा एतासामपि संक्रमेणैव प्ररूपयितव्या, सत्त्वकर्मत्वं प्रति भेदाभावात्।

कश्चित् शिष्यः पृच्छति पुनरपि —

यद्यपि संक्रमेण समयप्रबद्धार्थता उच्यते तर्ह्यपि उत्कृष्टस्थितिमात्रा समयप्रबद्धार्थता नोपलभ्यते, सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वयोः कर्मस्थितिप्रथमसमयप्रभृति अन्तरमात्रकाले बद्धसमयप्रबद्धानां संक्रमाभावात् आहारतीर्थकरेषु उदयावलिमात्रसमयप्रबद्धानां संक्रमाभावात् इति ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

पाई जाती है।

इसके ऊपर भी कोई शंका करता है —

ये तीनों ही बंधप्रकृतियाँ हैं और बंध प्रकृतियों की संक्रमण से समयप्रबद्धार्थता कहना शक्य नहीं है, क्योंकि ऐसा होने पर सातावेदनीय की भी समयप्रबद्धार्थता तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण प्राप्त होती है ?

आचार्यदेव इसका भी समाधान करते हुए कहते हैं —

वह इस प्रकार है — जिनप्रकृतियों का स्थितिसत्त्व से अधिक किसी भी काल में स्थितिबंध संभव है, वे बंधप्रकृतियाँ कही जाती हैं परन्तु जिन प्रकृतियों का बंध ही नहीं होता है और बंध के होने पर भी जिन प्रकृतियों का स्थितिसत्त्व से अधिक सदाकाल बंध संभव नहीं है, वे सत्त्व प्रकृतियाँ हैं, क्योंकि वहाँ सत्त्व की प्रधानता है। आहारकद्विक और तीर्थकर प्रकृति का स्थितिसत्त्व से अधिक बंध संभव नहीं है, क्योंकि वह सम्यग्दृष्टियों में नहीं पाया जाता है। इस कारण सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व के समान ये तीनों ही सत्त्व प्रकृतियाँ हैं अतएव जिस प्रकार सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियों की समयप्रबद्धार्थता की संक्रमण द्वारा प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार इनकी भी समयप्रबद्धार्थता की प्ररूपणा संक्रमण द्वारा करनी चाहिए, क्योंकि सत्त्वकर्मता के प्रति उनमें कोई भेद नहीं पाया जाता है।

कोई शिष्य पुनः प्रश्न करता है —

यद्यपि संक्रमण से इनकी समयप्रबद्धार्थता बतलाई जा रही है तो भी इनकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण समयप्रबद्धार्थता नहीं पायी जाती है, क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियों में कर्मस्थिति के प्रथम समय से लेकर अन्तरप्रमाण काल में बांधे गये समयप्रबद्धों के संक्रमण का अभाव है तथा आहारकद्विक और तीर्थकर प्रकृतियों में उदयावली प्रमाण समयप्रबद्धों के संक्रमण का अभाव है ?

आचार्यदेव इसका उत्तर देते हैं —

नैष दोषः, नानाकालेषु नानाजीवनाश्रित्य प्ररूप्यमाणे सर्वेषां समयप्रबद्धानां संक्रमोपलंभात्। न च कर्मस्थितौ आदौ चैव अत्र भवतीति नियमोऽस्ति, अनादिसंसारे बुद्धिबलसिद्धादिदर्शनात्। अत्र यद् ग्रंथबहुत्वभयेन नोक्तं तद् चिन्तयित्वा वक्तव्यम्। पुनश्च —

यावन्तः समयप्रबद्धाः पूर्वं प्ररूपिताः एकैकस्याः प्रकृतेः, तावन्मात्राः प्रकृतयो भवन्तीति गृहीतव्यम्।

अधुना गोत्रकर्मसमयप्रबद्धार्थतानिरूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

गोदस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ॥४०॥

गोदस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी वीसं-दससागरोवमकोडाकोडीओ समयपबद्धदुदाए गुणिदाए॥४१॥

एवडियाओ पयडीओ॥४२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — विंशतिसागरोपमकोटाकोटिभिः एकसमयप्रबद्धे गुणिते नीचगोत्रस्य समयप्रबद्धार्थताप्रमाणं भवति। दशसागरोपम कोटाकोटिभिः गुणिते उच्चगोत्रस्य समयप्रबद्धार्थताप्रमाणं भवति। अत्र सातासातावेदनीययोः प्ररूपितविधानयोः संचिन्त्य वक्तव्यम्।

तात्पर्यमेतत् —

अस्मिन्ननादिसंसारे भ्राम्यद्भिरपि सम्यग्दृष्टिभिः उच्चनीचगोत्रनिमित्तेन उच्चावस्थां निम्ननीचावस्थां च अपाकृत्य सर्वोच्चसुखमतीन्द्रियं प्राप्तुकामैः निजशुद्धबुद्धपरमात्मतत्त्वं भावयद्भिः स्वशुद्धात्मनि एव स्थिरत्वं

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि नाना कालों में नाना जीवों का आश्रय करके प्ररूपणा करने पर सब समयप्रबद्धों का संक्रमण पाया जाता है। दूसरी बात यह है कि यहाँ कर्मस्थिति के आदि में ही होता है, ऐसा नियम भी नहीं है, क्योंकि अनादि संसार में बुद्धिबल से सिद्ध आदि देखी जाती है। यहाँ ग्रंथ की अधिकता के भय से जो नहीं कहा गया है, उसको विचार करके कहना चाहिए। पुनश्च एक-एक प्रकृति के जितने समयप्रबद्ध पहले कहे गये हैं, उतनी मात्र प्रकृतियाँ होती हैं, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

अब गोत्रकर्म की समयप्रबद्धार्थता का निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

गोत्रकर्म की कितनी प्रकृतियाँ हैं ?॥४०॥

बीस और दस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों को समयप्रबद्धार्थता से गुणित करने पर जो प्राप्त हो उतनी गोत्रकर्म की एक-एक प्रकृति है॥४१॥

उसकी इतनी प्रकृतियाँ हैं॥४२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों से एक समयप्रबद्ध को गुणा करने पर नीचगोत्र की समयप्रबद्धार्थता का प्रमाण होता है तथा दस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों से गुणित करने पर उच्चगोत्र की समयप्रबद्धार्थता का प्रमाण होता है। साता व असाता वेदनीय के संबंध में जो विधि प्ररूपित की गई है, उसको भले प्रकार विचार कर यहाँ कहना चाहिए।

तात्पर्य यह है इस अनादि संसार में भ्रमण करते हुए भी सम्यग्दृष्टि जीवों को उच्च और नीच गोत्र के निमित्त से होने वाली उच्च और निम्न श्रेणी अवस्था को हटाकर सर्वोच्च अतीन्द्रिय सुख को प्राप्त करने की

विधातव्यं। यावदेतादृशी स्थितिर्न भवेत् तावत् पंचपरमेष्ठिनां शरणं गृहीत्वा भगवद्भक्तिर्भावना विधातव्या।
तथाहि—

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।

तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद्, यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः॥१॥

अथवा—

मुनीश! लीनाविव कीलिताविव, स्थिरौ निखाताविव बिम्बिताविव।

पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमो धुनानौ हृदि दीपिकाविव॥२॥

अत्र पर्यंतं समयप्रबद्धार्थता कथिता।

अत्र क्षेत्रप्रत्यासे ज्ञानावरण-दर्शनावरण-मोहनीय-अन्तराय-वेदनीय-आयु-नाम-गोत्राणां क्षेत्रप्रत्यासा
ज्ञातव्या भवन्ति।

अधुना क्षेत्रप्रत्यासकथनप्रतिज्ञारूपेण सूत्रमवतार्यते —

खेत्तपच्चासे त्ति॥४३॥

एतदधिकारस्मारणार्थं सूत्रमस्ति। प्रत्यास्यते अस्मिन्निति प्रत्यासः, क्षेत्रं तत्प्रत्यासश्च क्षेत्रप्रत्यासः।
जीवेन अवष्टब्धक्षेत्रस्य 'क्षेत्रप्रत्यासः', इति संज्ञा ज्ञातव्या।

संप्रति ज्ञानावरणकर्मप्रकृति संख्यानिरूपणार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

इच्छा से निज शुद्ध-बुद्ध परमात्मतत्त्व की भावना भाते हुए अपनी शुद्धात्मा में ही स्थिरता रखना चाहिए। जब
तक ऐसी स्थिति प्राप्त न हो पावे, तब तक पंचपरमेष्ठी भगवन्तों की शरण लेकर जिनेन्द्र भगवान की भक्ति
करना चाहिए। जैसा कि समाधिभक्ति में श्री पूज्यपाद स्वामी ने कहा भी है—

श्लोकार्थ—हे जिनेन्द्र प्रभु! जब तक मुझे मोक्ष की प्राप्ति न हो जावे, तब तक आपके चरण कमल
मेरे हृदय में विराजमान रहें और मेरा हृदय आपके चरण कमलों में लीन रहे, यही मेरी प्रार्थना है॥१॥

अथवा—

श्लोकार्थ—हे मुनीश! आपके चरण कमल मेरे हृदय में कीलित के समान स्थापित रहें, गड़े हुए के
समान स्थिर हो जावें, प्रतिबिम्बित के समान स्थित हो जावें और अन्धकार को दूर करते हुए दीपक के समान
मेरे हृदय में आपके चरणकमल सदा के लिए स्थिर हो जावें, ऐसी प्रार्थना है।

॥यहाँ तक समयप्रबद्धार्थता कही गई॥

अब क्षेत्रप्रत्यास में ज्ञानावरण-दर्शनावरण-मोहनीय-अन्तराय-वेदनीय-आयु-नाम और गोत्र इन आठों
कर्मों का क्षेत्रप्रत्यास जानना है।

अब क्षेत्रप्रत्यास के कथन की प्रतिज्ञारूप सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

क्षेत्रप्रत्यास अनुयोगद्वार का अधिकार है॥४३॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह सूत्र अधिकार का स्मरण कराता है।

जहाँ समीप में रहा जाता है वह प्रत्यास कहा जाता है, क्षेत्ररूप प्रयास क्षेत्रप्रत्यास है, इस प्रकार यहाँ
कर्मधारय समास है। जीव के द्वारा अवष्टब्ध (अवलम्बित) क्षेत्र की क्षेत्रप्रत्यास संज्ञा जानना चाहिए।

अब ज्ञानावरणकर्मप्रकृति की संख्या का निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

णाणावरणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ॥४४॥

णाणावरणीयस्स कम्मस्स जो मच्छो जोयणसहस्सओ सयंभुरमणसमुद्दस्स बाहिरल्लए तडे अच्छिदो, वेयणसमुग्घादेण समुहदो, काउलेस्सियाए लग्गो, पुणरवि मारणंतियसमुग्घादेण समुहदो, तिण्णि विगहगदिकंडयाणि काऊण से काले अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु उववज्जिहदि त्ति॥४५॥

खेत्तपच्चासेण गुणिदाओ॥४६॥

एवडियाओ पयडीओ॥४७॥

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — योजनसहस्रप्रमाणावगाहनायुक्तो यो मत्स्यः, स्वयंभूरमणसमुद्रस्य बाह्यतटे स्थितः, तत्र वेदनासमुद्घातेन परिणतः कापोतलेश्यासहितोऽस्ति, विग्रहगतेः त्रीणि काण्डकानि कृत्वा अनंतरसमये सप्तम्यां पृथिव्यां नारकेषु उत्पत्स्यते तस्य ज्ञानावरणकर्मणः एकैका प्रकृतिर्भवति।

एतेन सर्वेणापि सूत्रेण ज्ञानावरणीयस्य उत्कृष्टक्षेत्रप्रत्यासः प्ररूपितः। एतस्य सूत्रस्यार्थोऽपि सुगमोऽस्ति। क्षेत्रविधाने प्ररूपितत्वात्।

पूर्वोक्तेन क्षेत्रप्रत्यासेन गुणिताः समयप्रबद्धार्थताप्रकृतयः अत्रतन प्रकृतिप्रमाणं भवन्ति।

सूत्रार्थ —

ज्ञानावरणीय कर्म की कितनी प्रकृतियाँ हैं ?॥४४॥

जो मत्स्य एक हजार योजन प्रमाण है, स्वयंभूरमण समुद्र के बाह्य तट पर स्थित है, वेदनासमुद्घात को प्राप्त हुआ है, कापोतलेश्या से संलग्न है, इसके बाद मारणांतिक समुद्घात को प्राप्त हुआ है, विग्रहगति के तीन काण्डकों को करके अनन्तर समय में नीचे सातवीं पृथिवी के नारकियों में उत्पन्न होगा, उसके ज्ञानावरण कर्म की जो एक-एक प्रकृति होती है॥४५॥

उन्हें क्षेत्रप्रत्यास से गुणित करने पर ज्ञानावरण की क्षेत्रप्रत्यास प्रकृतियों का प्रमाण होता है॥४६॥

उसकी इतनी प्रकृतियाँ हैं॥४७॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — सूत्र का अभिप्राय स्पष्टरूप से जानना चाहिए कि एक हजार योजन प्रमाण अवगाहना सहित जो महामत्स्य स्वयंभूरमण समुद्र के बाह्य तट पर स्थित है, वहाँ वह वेदना समुद्घात से परिणत होकर कापोतलेश्या से सहित है। वह विग्रहगति के तीन काण्डकों को करके अनन्तर समय में सातवीं पृथिवी में नारकियों में उत्पन्न होगा, उस महामत्स्य के ज्ञानावरण कर्म की एक-एक प्रकृति होती है।

इन सभी सूत्र के द्वारा ज्ञानावरणीय कर्म के उत्कृष्ट क्षेत्रप्रत्यास की प्ररूपणा की गई है। इस सूत्र का अर्थ भी सुगम है, क्योंकि क्षेत्रविधान में उसकी प्ररूपणा की जा चुकी है।

पूर्वोक्त क्षेत्रप्रत्यास के समयप्रबद्धार्थता प्रकृतियों को गुणित करने पर यहाँ की प्रकृतियों का प्रमाण आता है।

प्रकृत्यर्थतायां याः प्रकृतयो ज्ञानावरणीयस्य प्ररूपितास्ता आत्मात्मनः समयप्रबद्धार्थतायाः गुणयितव्याः। एवं गुणिते समयप्रबद्धार्थताप्रकृतयो भवन्ति। पुनस्तासु क्षेत्रप्रत्यासेन जगत्प्रतरस्य असंख्यातभागमात्रेण गुणितासु अत्रतनप्रकृतयो भवन्ति। अत्र त्रैशिकक्रमेण प्रकृतिप्रमाणमानेतव्यम्।

अधुना दर्शनावरणत्रिकक्षेत्रप्रत्यासनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराडयाणं॥४८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यथा ज्ञानावरणीयस्य समयप्रबद्धार्थताप्रकृतीः क्षेत्रप्रत्यासेन गुणयित्वा आनीतास्तथा एतेषां अपि त्रयाणां कर्मणां क्षेत्रप्रत्यासप्रकृतिप्रमाणमानेतव्यम्।

अधुना वेदनीयादि चतुष्काघातिकर्मणां क्षेत्रप्रत्यासनिरूपणार्थं सूत्रपञ्चकमवतार्यते —

वेयणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ॥४९॥

वेयणीयस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी अण्णदरस्स केवलिस्स केवलि-समुग्घादेण सव्वलोगं गदस्स॥५०॥

खेत्तपच्चासेण गुणिताओ॥५१॥

प्रकृत्यर्थता में ज्ञानावरण की जिन प्रकृतियों की प्ररूपणा की गई है उनको अपनी-अपनी समयप्रबद्धार्थता से गुणित करना चाहिए। इस प्रकार गुणित करने पर समयप्रबद्धार्थता प्रकृतियाँ होती हैं, फिर उनको जगत्प्रतर के असंख्यातवें भागमात्र क्षेत्रप्रत्यास से गुणित करने पर यहाँ की प्रकृतियाँ होती हैं। यहाँ त्रैशिक क्रम से प्रकृतियों का प्रमाण लाना — निकालना चाहिए।

अब दर्शनावरणत्रिक के क्षेत्रप्रत्यास को निरूपित करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्मों के संबंध में प्ररूपणा करनी चाहिए॥४८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म की समयप्रबद्धार्थता प्रकृतियों को क्षेत्रप्रत्यास से गुणित करके लाया गया है, उसी प्रकार इन तीनों ही कर्मों के क्षेत्रप्रत्यासरूप प्रकृतियों के प्रमाण को लाना — निकालना चाहिए।

अब वेदनीय आदि चारों अघातिया कर्मों का क्षेत्रप्रत्यास निरूपित करने हेतु पाँच सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

वेदनीय कर्म की कितनी प्रकृतियाँ हैं ?॥४९॥

केवलिसमुद्घात से समुद्घात को प्राप्त होकर सर्वलोक को प्राप्त हुए अन्यतर केवली के जो वेदनीय कर्म की एक-एक प्रकृति होती है॥५०॥

उन्हें क्षेत्रप्रत्यास से गुणित करने पर वेदनीय कर्म की क्षेत्रप्रत्यास प्रकृतियों का प्रमाण होता है॥५१॥

एवडियाओ पयडीओ॥५२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतेन सूत्रेण क्षेत्रप्रत्यासप्रमाणं प्ररूपितं संस्मारितं वा, क्षेत्रविधाने प्ररूपितत्वात्। वेदनीयस्य एकैका प्रकृतिः क्षेत्रप्रत्यासेन गुणिता सन्ती असंख्याताः प्रकृतयो भवन्ति। एका समयप्रबद्धार्थताप्रकृतिर्यदि घनलोकमात्रा भवति तर्हि सर्वासां किं लभामहे ? इति क्षेत्रप्रत्यासगुणकारः साधयितव्यः।

अत्र कश्चिदाह —

“वेयणीयस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी सव्वलोगं गदस्स केवलिस्स “क्षेत्रप्रत्यासेन गुणिताः” इति कथमत्र भिन्नाधिकरणानां संबंधः ?

आचार्यदेवः समाधत्ते —

नैतद् वक्तव्यं, “एक्केक्का” इति सूत्रे वीप्सानिर्देशेन स्वकान्तः-क्षिप्त बहुत्वेन समानाधिकरणत्वं प्रति विरोधाभावात्। एतावन्त्यः प्रकृतयो भवन्तीति ज्ञातव्यम्।

एवमाउअ-णामा-गोदाणं॥५३॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एवमेव आयुर्नामगोत्राणां कर्मणामपि वेदनीयक्षेत्रप्रत्याससदृशी व्यवस्था कथयितव्या।

उसकी इतनी प्रकृतियाँ हैं॥५२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस सूत्र के द्वारा क्षेत्रप्रत्यास के प्रमाण की प्ररूपणा की गई है अथवा, उनका स्मरण कराया गया है, क्योंकि उसकी प्ररूपणा क्षेत्रविधान में की जा चुकी है।

वेदनीय कर्म की एक-एक प्रकृति क्षेत्रप्रत्यास से गुणित होकर असंख्यात प्रकृतियाँ होती हैं। यदि एक समयप्रबद्धार्थता प्रकृति घनलोक प्रमाण है, तो सब प्रकृतियाँ कितनी होंगी, इस प्रकार क्षेत्रप्रत्यास के गुणकार को सिद्ध करना चाहिए।

यहाँ कोई शंका करता है —

‘वेयणीयस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडीसव्वलोगं गदस्स केवलिस्स खेत्तपच्चासेण गुणिदाओ’ (यहाँ चूँकि ‘पयडी’ पद एकवचन और ‘गुणिदाओ’ पद बहुवचन है), अतएव यहाँ इन भिन्न अधिकरण वालों का संबंध किस प्रकार हो सकता है ?

आचार्यदेव समाधान देते हैं —

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि “एक्केक्का” इस प्रकार अपने भीतर बहुत्व को रखने वाले वीप्सानिर्देश से उनका समानाधिकरण होने में कोई विरोध नहीं आता है।

इतनी प्रकृतियाँ होती हैं, ऐसा जानना चाहिए।

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार आयु, नाम और गोत्र कर्मों के संबंध में जानना चाहिए॥५३॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसी प्रकार आयु-नाम और गोत्रकर्म की भी वेदनीय क्षेत्रप्रत्यास के सदृश व्यवस्था बतलानी चाहिए।

एवं कर्मणां अष्टविधानामपि क्षेत्रप्रत्यासं ज्ञात्वा असंख्यातप्रदेशप्रमाणमपि स्वदेहप्रमाणमात्मानं शुद्धबुद्ध-
नित्यनिरंजनपरमात्मस्वभावं भावयित्वा स्वशुद्धात्मा प्रकटयितव्यः।

इत्थं क्षेत्रप्रत्यासं नाम-अनुयोगद्वारं एकादशसूत्रैः समाप्तम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य वेदनानाम्नि चतुर्थखण्डे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणि-
टीकायां द्वादशग्रन्थे द्वितीयमहाधिकारान्तर्गते वेदनापरिमाणविधानानुयोग-
द्वारनामायं द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

इस प्रकार आठों प्रकार के कर्मों का क्षेत्रप्रत्यास जानकर असंख्यातप्रदेशप्रमाण भी आत्मा को
स्वदेहप्रमाण देखते हुए उसके शुद्ध-बुद्ध-नित्य-निरंजन परमात्मस्वभाव की भावना भाकर निज शुद्धात्मा
को प्रगट करना चाहिए।

ग्यारह सूत्रों के द्वारा यह क्षेत्रप्रत्यास नाम का अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम ग्रंथ के वेदना नामक चतुर्थखण्ड में गणिनी ज्ञानमती
माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में बारहवें ग्रंथ में द्वितीय
महाधिकार के अन्तर्गत वेदनापरिमाणविधान अनुयोगद्वार
नाम का यह द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।



अथ वेदनाभागाभागविधानानुयोगद्वारम्

(वेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-पंचदशानुयोगद्वारम्)

तृतीयोऽधिकारः

मंगलाचरणम्

इन्द्राः अष्टसहस्रनामकथनैश्चक्रुः स्तुतिं भक्तितः।

तैरन्वर्थकनामभिर्भविजना, निघ्नन्ति पापं महत्॥

तेऽप्यष्टोर्ध्व-सहस्रलक्षणधरं, देहं लभेरन् जनाः।

नामान्यष्ट-सहस्रकाणि सततं, कुर्वन्तु मे (नो) मंगलम्॥१॥

अथ द्वितीयवेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गत-पंचदशं वेदनाभागाभागविधानानुयोगद्वारमस्ति। तत्र तावत् चतुर्भिः स्थलैः एकविंशतिसूत्रैः एतद् वेदनाभागाभागविधानानुयोगद्वारं प्रारभ्यते। तत्र तावत्प्रथमस्थले अधिकारप्रतिज्ञाभेदसूचनपरत्वेन “वेयणा” इत्यादिना सूत्रद्वयं कथ्यते। ततः परं द्वितीयस्थले प्रकृत्यर्थतायां भागप्रमाणनिरूपणत्वेन “पयडिअट्टदाए” इत्यादिना सूत्रचतुष्टयं। ततश्च तृतीयस्थले समयप्रबद्धार्थतायां भागाभागप्रतिपादनत्वेन “समय-” इत्यादिना सूत्रषट्कं। पुनश्च चतुर्थस्थले अष्टकर्मसु क्षेत्रप्रत्यासनिरूपणार्थं “खेत्त” इत्यादिना नवसूत्राणीति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अधुना अधिकारप्रतिज्ञा-भेदनिरूपणार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

अथ वेदनाभागाभागविधान अनुयोगद्वार

(वेदनानुयोगद्वार के अन्तर्गत-पन्द्रहवाँ अनुयोगद्वार)

तृतीय अधिकार

मंगलाचरण

श्लोकार्थ — इन्द्र ने जिन एक हजार आठ नामों को बोलकर भगवान् जिनेन्द्र की भक्तिपूर्वक स्तुति की थी, उन सार्थक नामों को पढ़कर भव्य जीव घोर पापों को नष्ट करते हैं तथा वे भव्य प्राणी इन सहस्रनाम मंत्रों के द्वारा एक हजार आठ लक्षण सहित देह को धारण कर ऊर्ध्वगति को प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे वे एक हजार आठ नाम मंत्र (सहस्रनाम मंत्र) हम सभी का सतत मंगल करें॥१॥

अब यह द्वितीय वेदनानुयोगद्वार के सोलह भेदों के अन्तर्गत वेदनाभागाभागविधान नाम का पन्द्रहवाँ अनुयोगद्वार है। उसमें चार स्थलों में इक्कीस सूत्रों के द्वारा यह वेदना भागाभागविधान अनुयोगद्वार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में अधिकार प्रतिज्ञा के भेदों की सूचना देने वाले “वेयणा” इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। पुनः द्वितीय स्थल में प्रकृत्यर्थता में भागाभाग के प्रमाण का निरूपण करने वाले “पयडिअट्टदाए” इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके पश्चात् तृतीय स्थल में समयप्रबद्धार्थता में भागाभाग का प्रतिपादन करने वाले “समय” इत्यादि छह सूत्र हैं। पुनश्च चतुर्थ स्थल में आठों कर्मों में क्षेत्रप्रत्यास का निरूपण करने हेतु “खेत्त” इत्यादि नौ सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब अधिकार प्रतिज्ञा एवं उसके भेदों का निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

वेयणा-भागाभागविहाणे त्ति॥१॥

**तत्थ इमाणि तिण्णि अणुयोगद्वाराणि-पयडिअट्टदा समयपबद्धट्टदा
खेत्तपच्चासे त्ति॥२॥**

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अत्र प्रथमं सूत्रमधिकारस्मारणार्थं कथितमस्ति।

एवमेतान्येवात्र त्रीणि अनुयोगद्वाराणि भवन्ति, अन्येषामसंभवात्।

एवं प्रथमस्थले प्रतिज्ञासूचनपरत्वेन भेदकथनत्वेन च सूत्रद्वयं गतं।

संप्रति प्रकृत्यर्थताभागप्रमाणनिर्धारणार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

**पयडिअट्टदाए णाणावरणीय-दंसणावरणीयस्स कम्मस्स पयडीओ
सव्वपयडीणं केवडियो भागो॥३॥**

दुभागो देसूणो॥४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अत्र किं संख्यातभागः किं असंख्यातभागः किमनन्तिमभागः? इति प्रश्ने क्रियमाणे आचार्यदेवाः समादधते। तद्यथा —

इमाः सर्वाः किंचिन्न्यूनद्वितीयभागप्रमाणाः प्रकृतयो भवन्ति। तदेव विस्तीर्यते —

अवधिज्ञानावरणीयप्रकृतयः अवधिदर्शनावरणीयप्रकृतयश्च पृथक्-पृथक् असंख्यातलोकमात्रा

सूत्रार्थ —

अब वेदनाभागाभागविधान अनुयोगद्वार का कथन है॥१॥

उसमें ये तीन अनुयोगद्वार हैं — प्रकृत्यर्थता, समयप्रबद्धार्थता और क्षेत्रप्रत्यास॥२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ प्रथम सूत्र तो अधिकार का स्मरण कराने के लिए कहा गया है।

द्वितीय सूत्र में कहा है कि इस प्रकार यहाँ ये तीन ही अनुयोगद्वार हैं, क्योंकि इनसे अन्य अनुयोगद्वार यहाँ संभव नहीं हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में प्रतिज्ञा की सूचना देने वाले तथा भेद कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब प्रकृत्यर्थताभागप्रमाण का निर्धारण करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

**प्रकृत्यर्थता से ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म की प्रकृतियाँ सब प्रकृतियों
के कितने भाग प्रमाण हैं ?॥३॥**

वे सब प्रकृतियों के कुछ कम द्वितीय भाग प्रमाण हैं॥४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ क्या वे संख्यातवें भाग प्रमाण हैं, क्या असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं अथवा क्या अनन्तवें भागप्रमाण हैं? इस प्रकार के प्रश्न होने पर आचार्यदेव उनका समाधान करते हैं।

वह इस प्रकार है —

ये सभी प्रकृतियाँ कुछ कम द्वितीयभागप्रमाण होती हैं। उसी को विस्तार से कहते हैं —

अवधिज्ञानावरणीयकर्म की प्रकृतियाँ और अवधिदर्शनावरणीय कर्म की प्रकृतियाँ पृथक्-पृथक्

भूत्वा अन्योऽन्यमपेक्ष्य समानाः, सर्वेऽपि अवधिज्ञानविकल्पाः अवधिदर्शनपुरंगमत्वोपलंभात्। मतिज्ञानावरणीयप्रकृतयः चक्षुर्दर्शन-अचक्षुर्दर्शनावरणीयप्रकृतयश्च पृथक्-पृथगसंख्यातलोकमात्रा भूत्वा अन्योऽन्यमपेक्ष्य समानाः, सर्वस्य मतिज्ञानस्य दर्शनपुरंगमत्वाभ्युपगमात्। श्रुतज्ञानावरणीयप्रकृतयः असंख्यातलोकमात्राः। मनःपर्ययज्ञानावरणीय-प्रकृतयः असंख्यातकल्पमात्राः। एतयोः श्रुतज्ञान-मनःपर्ययज्ञानावरणीयप्रकृत्योः न दर्शनमस्ति, मतिज्ञान-पुरंगमत्वात्। तेन दर्शनावरणीयप्रकृतिभ्यो ज्ञानावरणीयप्रकृतयो विशेषाधिकाः।

अत्र कियन्मात्रो विशेषः ?

असंख्यातभागमात्रो विशेषो ज्ञातव्यः। किन्तु मतिज्ञाने श्रुतज्ञानं प्रविशतीति पृथगत्र न गृहीतव्यम् अन्यथा 'देशोन्निद्राभागत्वानुपपत्तेः।'

अथवा, श्रुतज्ञान-मनःपर्ययज्ञानयोरपि दर्शनमस्ति, तदवगतार्थसंवेदनायास्तत्रापि उपलंभात्। न पूर्वाभ्युपगमेन विरोधः तत्कारणीभूतदर्शनस्य तत्र प्रतिषेधविधानात्।

केवलदर्शनावरणीयस्य एका प्रकृतिरस्ति। केवलज्ञानावरणीयस्यापि एका चैव। तेन ते द्वे अपि सदृश्यौ स्तः। निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धिः निद्रा च प्रचला च एताः पञ्च प्रकृतयो दर्शनावरणीयस्य सन्ति। किन्तु एताः अप्रधानाः, मनःपर्ययज्ञानावरणीयप्रकृतीनामसंख्यातभागत्वात्। ततः सिद्धं दर्शनावरणीयप्रकृतिभ्यो ज्ञानावरणीयप्रकृतयो बहुका इति।

असंख्यातलोकप्रमाण होकर परस्पर की अपेक्षा समान हैं, क्योंकि अवधिज्ञान के सब भेद अवधिदर्शनपूर्वक पाये जाते हैं। मतिज्ञानावरणीयकर्म की प्रकृतियाँ और चक्षु व अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म की प्रकृतियाँ पृथक्-पृथक् असंख्यात लोकमात्र होकर अन्योन्य की अपेक्षा समान हैं, क्योंकि समस्त मतिज्ञान को दर्शनपूर्वक स्वीकार किया गया है। श्रुतज्ञानावरणीय कर्म की प्रकृतियाँ असंख्यातलोकमात्र हैं। मनःपर्ययज्ञानावरणीयकर्म की प्रकृतियाँ असंख्यातकल्पमात्र (असंख्यात से कुछ कम) हैं। इन श्रुतज्ञानावरणीय और मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्मप्रकृतियों का दर्शन नहीं होता, क्योंकि ये ज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होते हैं इसलिए दर्शनावरणीय कर्म की प्रकृतियों की अपेक्षा ज्ञानावरणीय की प्रकृतियाँ विशेष अधिक हैं।

प्रश्न — विशेष का प्रमाण कितना है ?

उत्तर — वह असंख्यातवें भाग मात्र है किन्तु मतिज्ञान में चूँकि श्रुतज्ञान प्रविष्ट है अतएव यहाँ पृथक् ग्रहण नहीं करना चाहिए अन्यथा ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म की प्रकृतियाँ सब प्रकृतियों के कुछ कम द्वितीय भाग प्रमाण नहीं बन सकती हैं।

अथवा, श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञानों के भी दर्शन हैं, क्योंकि उसके द्वारा अवगत अर्थ का गत संवेदन वहाँ भी पाया जाता है। ऐसा स्वीकार करने पर पूर्व मान्यता के साथ विरोध होगा, सो भी नहीं है, क्योंकि उनके कारणीभूत दर्शन के प्रतिषेध का वहाँ पर विधान किया गया है।

केवलदर्शनावरणीय कर्म की एक प्रकृति है। केवलज्ञानावरणीय कर्म की भी एक ही प्रकृति है इसलिए वे दोनों समान हैं। निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा और प्रचला ये पाँच प्रकृतियाँ दर्शनावरणीयकर्म की हैं किन्तु ये अप्रधान हैं, क्योंकि वे मनःपर्ययज्ञानावरणीय प्रकृतियों के असंख्यातवें भाग मात्र हैं। इससे सिद्ध है कि दर्शनावरणीय कर्म की प्रकृतियों की अपेक्षा ज्ञानावरणीय कर्म की प्रकृतियाँ बहुत हैं।

असातावेदनीयादिशेषप्रकृतयो दर्शनावरणीयप्रकृतीनां असंख्यातभागमात्राः भूत्वा मनःपर्ययज्ञानावरणीय-प्रकृतिभ्यः असंख्यातगुणाः।

असंख्यातगुणत्वं कथं ज्ञायते ?

ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीयप्रकृतयः सर्वप्रकृतीनां 'द्विभागो देशोनः' इति सूत्रस्यान्यथानुपपत्तेरेव ज्ञायते।

संप्रति ज्ञानावरणीयसर्वप्रकृतिभिः अष्टकर्मप्रकृतिपुंजे भागे हृते सातिरेकद्विरूपौ लभ्येते। सातिरेकप्रमाण-मेकरूपस्य असंख्यातभागः। तद्यथा —

ज्ञानावरणीयप्रकृतिषु अष्टकर्मणां सर्वप्रकृतिपुंजात् अपनीतासु एका अवहारशलाका लभ्यते (१)। संप्रति अवशेषाः दर्शनावरणीयादिसप्तकर्मप्रकृतयः सन्ति। पुनः तत्र असातावेदनीयादिशेषप्रकृतिषु पञ्च-रूपोनमनःपर्ययज्ञानावरणीयप्रकृतीः गृहीत्वा दर्शनावरणीयप्रकृतिषु प्रक्षिप्ते प्रक्षिप्तप्रकृतिभिः सह दर्शनावरणीयप्रकृतयः ज्ञानावरणीयप्रकृतिभिः सदृश्यो भवन्ति। अपनीते द्वितीया अवहारशलाका लभ्यते (२)।

पुनः गृहीतावशेषासु प्रकृतिषु ज्ञानावरणीयप्रकृतिप्रमाणेन क्रियमाणासु एकरूपस्य असंख्यातभागः अवहारः उपलभ्यते, ज्ञानावरणीयस्य प्रकृतिषु यदि एका अवहार कालशलाका लभ्यते तर्हि गृहीतशेषप्रकृतिषु किं लभामहे इति प्रमाणेन फलगुणित-इच्छायां अपवर्तितायां एकरूपस्य असंख्यातभागोपलंभात्। एताभ्यां सातिरेकद्विरूपाभ्यां सर्वप्रकृतिषु अपवर्तितासु ज्ञानावरणीयप्रकृतिप्रमाणं लभ्यते। एवं दर्शनावरणीयस्यापि सातिरेकद्विरूपमात्रो भागहारः साधयितव्यः।

असातावेदनीय आदि शेष कर्मों की प्रकृतियाँ दर्शनावरणीय की प्रकृतियों के असंख्यातवें भागमात्र होकर के मनःपर्ययज्ञानावरणीय की प्रकृतियों से असंख्यातगुणी हैं।

प्रश्न — वे उनसे असंख्यातगुणी हैं यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

उत्तर — 'ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय की यह प्रकृतियाँ सब प्रकृतियों के द्वितीय भाग से कुछ कम हैं' इस सूत्र की अन्यथानुपपत्ति से वह जाना जाता है।

अब ज्ञानावरणीय की सब प्रकृतियों का आठ कर्मों के प्रकृति पुंज में भाग देने पर कुछ अधिक दो रूप पाये जाते हैं। साधिकता का प्रमाण एक अंक का असंख्यातवें भाग है। वह इस प्रकार से है— आठ कर्मों की सब प्रकृतियों के समूह में से ज्ञानावरणीय की प्रकृतियों को कम कर देने पर एक अवहारशलाका पायी जाती है (१)। अवशेषरूप से दर्शनावरणीय आदि शेष कर्मों की प्रकृतियाँ रहती हैं। फिर उन असातावेदनीय आदि शेष कर्मों की प्रकृतियों में से पाँच अङ्कों से कम मनःपर्ययज्ञानावरणीय की प्रकृतियों को ग्रहण कर दर्शनावरणीय की प्रकृतियों में मिला देने पर मिलायी हुई प्रकृतियों के साथ दर्शनावरणीय की प्रकृतियाँ ज्ञानावरणीय की प्रकृतियों के सदृश होती हैं। इन दर्शनावरणीय की प्रकृतियों के उक्त कर्म प्रकृतियों में से कम कर देने पर द्वितीय अवहारशलाका पाई जाती है (२)।

फिर ग्रहण की गई प्रकृतियों से अवशिष्ट रहीं प्रकृतियों को ज्ञानावरणीय की प्रकृतियों के प्रमाण से करने पर एक अंक का असंख्यातवाँ भाग मात्र अवहार पाया जाता है, क्योंकि ज्ञानावरणीय की प्रकृतियों में यदि एक अवहारशलाका पाई जाती है, तो ग्रहण की गई प्रकृतियों से शेष रही प्रकृतियों में कितनी अवहारशलाका पायी जाएंगी, इस प्रकार प्रमाण से फलगुणित इच्छा को अपवर्तित करने पर एक अंक

संप्रति वेदनीयादिशेषषट्कर्मणां भागप्रमाणनिर्धारणार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

**वेयणीय-मोहणीय-आउअ-णामा-गोद-अंतराइयस्स कम्मस्स पयडीओ
सव्वपयडीणं केवडियो भागो।।५।।**

असंखेज्जदिभागो।।६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — स्वक-स्वकप्रकृतिभिः सर्वप्रकृतिसमूहे भागे हृते असंख्यातलोकमात्ररूपोपलंभात्।

एवं असंख्यातलोकमात्रप्रमाणविभाव भाव-ख्याति-लाभ-पूजादि- भावान् त्यक्त्वा निजशुद्धबुद्ध-परमात्म-स्वरूपश्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयभावनां कुर्वद्भिः भवद्भिः भेदरत्नत्रयमेकदेशरत्नत्रयं वा दधानैः स्वात्मनिधिं उपलब्धुकामैः मोक्षमार्गे सततं पुरुषार्थो विधेयः।

एवं द्वितीयस्थले प्रकृत्यर्थताभागप्रमाणनिर्धारणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

अधुना-अधिकारप्रतिज्ञाकथन-ज्ञानदर्शनावरणद्वयकर्मणोः समयप्रबद्धार्थताभागप्रतिपादनार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

समयपबद्धट्टाए।।७।।

का असंख्यातवाँ भाग पाया जाता है। इन साधिक दो अंकों से सब प्रकृतियों को अपवर्तित करने पर ज्ञानावरणीय की प्रकृतियों का प्रमाण उपलब्ध होता है। इसी प्रकार दर्शनावरणीय के भी साधिक दो अंक मात्र भागहार को साध लेना चाहिए।

अब वेदनीय आदि छह कर्मों का भागप्रमाण निर्धारण करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय कर्म की प्रकृतियाँ सब प्रकृतियों के कितने भाग प्रमाण हैं ?।।५।।

वे उनके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अपनी-अपनी प्रकृतियों का सभी कर्मप्रकृतियों के समूह में भाग देने पर असंख्यात लोकमात्र अंक पाये जाते हैं।

इस प्रकार असंख्यातलोकमात्र विभाव भावरूप ख्याति-लाभ-पूजा आदि के भावों का त्याग करके निज शुद्ध-बुद्ध-परमात्मतत्त्व के स्वरूप का श्रद्धान-ज्ञान और आचरणरूप अभेदरत्नत्रय की भावना करते हुए आप सभी को भेदरत्नत्रय अथवा एकदेशरत्नत्रय को धारण करके स्वात्मनिधि को प्राप्त करने की इच्छा से मोक्षमार्ग में सतत पुरुषार्थ करना चाहिए, यहाँ ऐसा तात्पर्य ग्रहण करना।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में प्रकृत्यर्थताभाग का प्रमाण निर्धारण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब अधिकार की प्रतिज्ञा का कथन और ज्ञानावरण-दर्शनावरण दोनों कर्मों की समयप्रबद्धार्थता भाग का प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

समयप्रबद्धार्थता का अधिकार है।।७।।

णाणावरणीय-दंसणावरणीयस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी तीसं तीसं
सागरोवमकोडाकोडीयो समयपबद्धदुदाए गुणिदाए सव्वपयडीणं
केवडियाओ भागो ?॥८॥

दुभागो देसूणो॥९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अत्र प्रथमसूत्रमधिकारस्मारणार्थं वर्तते।

अत्रैवं सूत्रसंबंधः कर्तव्यः। तद्यथा — त्रिंशत् त्रिंशत् सागरोपमकोटाकोटिप्रमाणं समयप्रबद्धार्थतायां
गुणितायां ज्ञानावरणीयदर्शनावरणीयस्य कर्मणः एकैका प्रकृतिरेतावती भवति। एवंविधाः ज्ञानावरणीय-
दर्शनावरणीय-कर्मप्रकृतयः सर्वप्रकृतीनां कियान् भागः? इति संबंधः कर्तव्यः। शेषं सुगमं।

अत्र सातिरेकद्विरूपमात्रभागहारः पूर्वमिव साधयितव्यः, गुणकारकृतभेदेन सह सातिरेकद्विरूपभागहारस्य
विरोधाभावात्।

संप्रति वेदनीयादिशेषषट्कर्मणां भागप्रमाणनिर्धारणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

एवं वेयणीय-मोहणीय-आउअ-णामा-गोद-अंतराइयाणं च णेयव्वं॥१०॥

णवरि विसेसो सव्वपयडीणं केवडियो भागो ?॥११॥

असंखेज्जदि भागो॥१२॥

तीस-तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमों को समयप्रबद्धार्थता से गुणित करने पर जो
प्राप्त हो उतनी मात्र ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय की एक-एक प्रकृति सब
प्रकृतियों के कितने भाग प्रमाण हैं ?॥८॥

वे उनके कुछ कम द्वितीय भाग प्रमाण हैं॥९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ प्रथम सूत्र अधिकार का स्मरण कराने के लिए है।

यहाँ इस प्रकार सूत्र का संबंध करना चाहिए। उसे कहते हैं — तीस-तीस सागरोपम कोड़ाकोड़ियों को
समयप्रबद्धार्थता से गुणित करने पर जो प्राप्त हो, उतनी मात्र ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म की एक-
एक प्रकृति होती है। इस प्रकार की ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्मप्रकृतियाँ सब प्रकृतियों के कितने
भाग प्रमाण हैं ? ऐसा संबंध करना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

यहाँ साधिक दो अंकमात्र भागहार को पूर्व के समान सिद्ध करना चाहिए, क्योंकि गुणकारकृत भेद के
साथ साधिक दो अंकमात्र भागहार का कोई विरोध नहीं पाया जाता है।

अब वेदनीय आदि शेष छह कर्मों का भागप्रमाण निर्धारण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय के संबंध में
जानना चाहिए॥१०॥

विशेष यह है कि वे सब प्रकृतियों के कितने भाग प्रमाण हैं ?॥११॥

वे उनके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं॥१२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यथा ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीययोः समयप्रबद्धार्थतां स्वक-स्वकोत्कृष्ट-स्थितिभिः गुणयित्वा प्रकृतीनां प्रमाणप्ररूपणा कृता तथा एतेषां कर्मणां स्वक-स्वकोत्कृष्टबंधस्थितिभिः बंधककालैश्च समयप्रबद्धार्थतां गुणयित्वा प्रकृतिप्रमाणप्ररूपणा कर्तव्या मंदमेधाविशिष्यबोधनार्थमिति।

पुनः सर्वप्रकृतीनां कियद्भागो विशेषः? इति प्रश्ने सति असंख्यातभागो ज्ञापयितव्यः।

एताभिः समयप्रबद्धताप्रकृतिभिः सर्वप्रकृतिसमूहे भागे हते असंख्यातरूपोपलंभात्।

एतत् प्रवृत्तिगणनाव्यवस्थां ज्ञात्वा कर्मणां स्थितिबंधकारणानिमित्तेभ्यो भीत्वा स्वशुद्धपरमानंदस्वभावमात्मानं भावयित्वा सम्यक्त्वदृढीकर्तुं भावनया च भगवच्चरणशरणं गृहीतव्यम्।

एवं तृतीयस्थले कर्मसमयप्रबद्धार्थता भागनिर्धारणत्वेन सूत्रषट्कं गतम्।

एवं समयप्रबद्धार्थता कथिता।

अधुना क्षेत्रप्रत्यास निरूपणप्रतिज्ञाकथन-ज्ञानावरणकर्मक्षेत्रप्रत्यासनिरूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

खेत्तपच्चासे त्ति॥१३॥

णाणावरणीयस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी जो मच्छो जोयणसहस्सियो सयंभुरमणसमुद्दस्स बाहिरिल्लए तडे अच्छिदो, वेयणसमुग्घादेण समुहदो,

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जिस प्रकार ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय की समयप्रबद्धार्थता को अपनी-अपनी उत्कृष्ट बंध स्थितियों से गुणित कर प्रकृतियों के प्रमाण की प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार से इन कर्मों की अपनी-अपनी उत्कृष्टबंधस्थितियों और बन्धक कालों से समयप्रबद्धार्थता को गुणित करके प्रकृतियों के प्रमाण की प्ररूपणा मन्दबुद्धि शिष्यों के प्रबोधनार्थ करनी चाहिए।

पुनः सब प्रकृतियों के कितने भागप्रमाण विशेष है? ऐसा प्रश्न होने पर असंख्यातवें भागप्रमाण जानना चाहिए, क्योंकि इन समयप्रबद्धार्थता प्रकृतियों का समस्त प्रकृतिसमूह में भाग देने पर असंख्यातभाग अंक पाये जाते हैं।

इस प्रकृतिगणना की व्यवस्था को जानकर कर्मों की स्थितिबंध के कारण वाले निमित्तों से डरकर निज शुद्ध परमानंदस्वभावी आत्मा की भावना भाकर और सम्यक्त्व को दृढ़ करने की भावना से भगवान के चरण-शरण को ग्रहण करना चाहिए, यहाँ यह अभिप्राय समझना।

इस प्रकार तृतीय स्थल में कर्मसमयप्रबद्धार्थता का भाग निर्धारण करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

॥इस प्रकार समयप्रबद्धार्थता कही गई है॥

अब क्षेत्रप्रत्यास के निरूपण हेतु प्रतिज्ञा का कथन एवं ज्ञानावरणकर्म का क्षेत्रप्रत्यास निरूपित करने के लिए तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

क्षेत्रप्रत्यास अनुयोगद्वार का अधिकार है॥१३॥

ज्ञानावरणकर्म की एक-एक प्रकृति जो मत्स्य एक हजार योजन प्रमाण अवगाहना से युक्त होता हुआ स्वयंभूरमण समुद्र के बाहरी तट पर स्थित है, वेदनासमुद्घात को

काउलेस्सियाए लग्गो, पुणरवि मारणंतियसमुग्घादेण समुहदो, तिण्णि विग्गहकंडयाणि काऊण से काले अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु उववज्जि-हदि त्ति खेत्तपच्चासएण गुणिदाओ सव्वपयडीणं केवडियो भागो ?।।१४।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — प्रथमसूत्रमधिकारस्मारणार्थं वर्तते।

‘जो मच्छो’ इत्यादिं कृत्वा ‘उववज्जिहदि’ पर्यंतं कथनं, यदस्ति तत् अनेन सूत्रेण क्षेत्रप्रत्यासः प्ररूपितः। एतेन क्षेत्रप्रत्यासेन गुणिताः समयप्रबद्धार्थताः प्रकृतयो ज्ञानावरणीयस्य कर्मणः एकैका प्रकृतिः एतावन्त्यो भवन्ति।

पुनः एवंविधाः ज्ञानावरणीयस्य कर्मणः प्रकृतयः सर्वप्रकृतीनां कियान् भागः? इति प्रश्नवाचकसूत्रस्यात्र संबंधः कर्तव्यः।

दुभागो देसूणो।।१५।।

सिद्धांतचिन्तामणिटीका — अत्रतनगुणकारे सर्वप्रकृतीनां सत्यपि सर्वप्रकृतयो ज्ञानावरणीयस्य प्रकृतिप्रमाणेन अपह्रियमाणाः सातिरेकद्विरूपमात्रावहारशलाकानां उपलंभनिमित्ता भवन्तीति।

संप्रति दर्शनावरणत्रिकप्रकृतिक्षेत्रप्रत्यास निरूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं।।१६।।

प्राप्त है, कापोतलेश्या से संलग्न है, फिर से मारणान्तिक समुद्धात से समुद्धात को प्राप्त है, तीन विग्रहकाण्डकों को करके अनन्तर समय में नारकियों में उत्पन्न होगा, इस क्षेत्रप्रत्यास से समयप्रबद्धार्थता प्रकृतियों को गुणित करने पर जो प्राप्त हो, उतनी होती है। ये प्रकृतियाँ सब प्रकृतियों के कितने भाग प्रमाण हैं ?।।१४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ प्रथम सूत्र अधिकार का स्मरण कराने के लिए है। “जो मच्छो” इत्यादि से लेकर “उववज्जिहदि” पर्यन्त जो सूत्र का कथन है, उस सूत्र के द्वारा क्षेत्रप्रत्यास को प्ररूपित किया है। इस क्षेत्रप्रत्यास से गुणित समयप्रबद्धार्थता प्रकृतियाँ जितनी होती हैं उतनी मात्र ज्ञानावरणीय कर्म की एक-एक प्रकृति होती है। इस प्रकार की ज्ञानावरणीय प्रकृतियाँ सब प्रकृतियों के कितने भाग प्रमाण हैं, ऐसा सूत्र का संबंध करना चाहिए।

सूत्रार्थ —

वे कुछ कम उनके द्वितीय भागप्रमाण हैं।।१५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ तक गुणकार में सभी प्रकृतियों के होने पर भी सब प्रकृतियों को ज्ञानावरणीय की प्रकृतियों से अपहृत करने पर वे कुछ अधिक दो अंक प्रमाण अवहारशलाकाओं की उपलब्धि में निमित्त होती हैं।

अब दर्शनावरण आदि तीन प्रकृतियों का क्षेत्रप्रत्यास निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

इसी प्रकार दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्म के संबंध में कहना चाहिए।।१६।।

**णवरि मोहणीय-अंतराइयस्स सव्वपयडीणं केवडिओ भागो॥१७॥
असंखेज्जदिभागो॥१८॥**

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एतेषां कर्मणां यथा ज्ञानावरणीयस्य क्षेत्रप्रत्यासप्रकृतिप्ररूपणा कृता तथा भागाभागश्च कर्तव्यः। शेषं सुगमं वर्तते।

अधुना वेदनीयादि-अघातिकर्मभागाभागनिरूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

**वेयणीयस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी अण्णदरस्स केवलिस्स केवलि-
समुग्घादेण समुहदस्स सव्वलोगं गयस्स खेत्तपच्चासएण गुणिदाओ
सव्वपयडीणं केवडिओ भागो॥१९॥**

असंखेज्जदिभागो॥२०॥

एवं आउअ-णामा-गोदाणं॥२१॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यथा वेदनीयस्य भागाभागः प्ररूपितस्तथा एतेषां त्रयाणां कर्मणां प्ररूपयितव्यः।

इतो विशेषः — ज्ञानावरण-दर्शनावरण-मोहनीय-अंतरायाणां घातिकर्मणां वेदनीय-आयु-नाम-गोत्राणां

**विशेष इतना है — मोहनीय और अन्तराय की प्रकृत प्रकृतियाँ सब प्रकृतियों के
कितने भाग प्रमाण हैं ?॥१७॥**

वे उनके असंख्यातवें भाग प्रमाण है॥१८॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जिस प्रकार से ज्ञानावरणीय कर्म की क्षेत्रप्रत्यास प्रकृतियों की प्ररूपणा की गई है। उसी प्रकार से इन तीन कर्मों के भागाभाग की भी प्ररूपणा करनी चाहिए।

शेष कथन सुगम है।

अब वेदनीय आदि अघातिया कर्मों के भागाभाग निरूपण हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

**केवलिसमुद्घात से समुद्घात को प्राप्त होकर सर्वलोक को प्राप्त हुए अन्यतर
केवली के इस क्षेत्रप्रत्यास से समयप्रबद्धार्थता प्रकृतियों को गुणित करने पर जो प्राप्त
हो, उतनी मात्र वेदनीय कर्म की एक-एक प्रकृति होती है। ये प्रकृतियाँ सब प्रकृतियों
के कितने भाग प्रमाण हैं ?॥१९॥**

वे उनके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं॥२०॥

इसी प्रकार आयु, नाम और गोत्रकर्म के संबंध में कहना चाहिए॥२१॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — जिस प्रकार वेदनीयकर्म के भागाभाग की प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार इन तीन कर्मों के भागाभाग की भी प्ररूपणा करनी चाहिए।

इसका विस्तार करते हैं — ज्ञानावरण-दर्शनावरण-मोहनीय और अन्तराय इन घातिया कर्मों का और

चाघातिकर्मणां क्षेत्रप्रत्यासं ज्ञात्वा अहर्निशं भावयितव्यं यत् एतेषां कर्मणां मूलकारणं मोहनीयकर्म एव अतो यथा स्यात्तथा मोहनीयकर्मविनाशार्थं द्वादशानुप्रेक्षां पुनः पुनः भावयन् सन् संसारशरीरभोगेषु निर्विण्णो भूत्वा अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधुषु पंचपरमेष्ठिषु भक्तिः कर्तव्या। पुनश्च भेदाभेदरत्नत्रयप्राप्त्यर्थं पुरुषार्थो विधातव्यः।

अस्य महतः षट्खण्डागमग्रंथपठनपाठनस्य एष एव सारो ज्ञातव्योऽस्ति।

एवं चतुर्थस्थले क्षेत्रप्रत्यासभागाभागनिरूपणपरत्वेन नवसूत्राणि गतानि।

इति श्रीमत्षट्खण्डागमस्य वेदनानाम्नि चतुर्थखण्डे द्वादशे ग्रन्थे गणिनीज्ञानमतीकृत-
सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां द्वितीयमहाधिकारान्तर्गते वेदनाभागा-
भागविधाननामायं तृतीयोऽधिकारः समाप्तः।

वेदनीय-आयु-नाम-गोत्र इन अघातिया कर्मों का क्षेत्रप्रत्यास जानकर हमें अहर्निश—दिन-रात भावना भानी चाहिए कि इन सभी कर्मों का मूल कारण मोहनीय कर्म ही है अतः जैसे बने वैसे मोहनीय कर्म को नष्ट करने हेतु बारह भावनाओं को पुनः पुनः भाते हुए संसार-शरीर-भोगों से विरक्त होकर अर्हत्-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु इन पंचपरमेष्ठियों की भक्ति करनी चाहिए, पुनश्च भेदाभेद रत्नत्रय को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करना चाहिए।

इस महान षट्खण्डागम ग्रंथ के पठन-पाठन का यही सार समझना चाहिए। यह टीकाकर्त्री का अभिप्राय है।

इस प्रकार से चतुर्थ स्थल में क्षेत्रप्रत्यास के भागाभाग का निरूपण करने वाले नौ सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम के वेदना नामक चतुर्थ खण्ड में बारहवें ग्रंथ
में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में
द्वितीय महाधिकार के अन्तर्गत वेदनाभागाभागविधान
नाम का यह तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।



अथ वेदना-अल्पबहुत्वविधानानुयोगद्वारम्

(वेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-षोडशानुयोगद्वारम्)

चतुर्थोऽधिकारः

मंगलाचरणम्

यद् द्रव्यार्थिकतोऽप्यनादिनिधनं, पर्यायतः साद्यपि।

जैनेन्द्रं वरशासनं शिवकरं, तीर्थेश्वरैः वर्तितम्॥

कुर्यात् ज्ञानमतिं श्रियं वितनु मे, नद्याच्च जीयाच्चिरम्।

श्री तीर्थकरशासनानि सततं, कुर्वन्तु मे (नो) मंगलम्॥१॥

अथ द्वितीयवेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गत-षोडशं वेदनाल्पबहुत्वानुयोगद्वारमस्ति। तत्र तावत् चतुर्भिः स्थलैः षड्विंशतिसूत्रैः वेदनाल्पबहुत्वानुयोगद्वारं प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले अधिकारप्रतिज्ञाकथनत्वेन भेदनिरूपणपरत्वेन च 'वेयणा' इत्यादिना सूत्रद्वयं वर्तते। पुनः द्वितीयस्थले प्रकृत्यर्थताल्पबहुत्वकथनत्वेन "पयडि-" इत्यादिना अष्टौ सूत्राणि कथ्यन्ते। तदनु तृतीयस्थले समयप्रबद्धार्थतायामल्पबहुत्वकथनत्वेन "समयपबद्धद्वुदाए" इत्यादिना अष्टौ सूत्राणि वक्ष्यन्ते। पुनश्च क्षेत्रप्रत्यासापेक्षया अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन "खेत्तपच्चासएत्ति" इत्यादिना सूत्राष्टकमिति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अथ वेदना अल्पबहुत्वविधान अनुयोगद्वार (वेदनानुयोगद्वार के अन्तर्गत-सोलहवाँ अनुयोगद्वार)

चतुर्थ अधिकार

मंगलाचरण

श्लोकार्थ — जो द्रव्यार्थिक नय से अनादिनिधन है और पर्यायार्थिक नय से सादि भी है। ऐसा जिनेन्द्र भगवान का मुक्तिप्रदायक जैनशासन तीर्थकरों के द्वारा प्रवर्तित किया जाता है। वह जिनशासन मुझे ज्ञानमती लक्ष्मी प्रदान करे तथा चिरकाल तक जयशील होवे। तीर्थकर भगवन्तों का वह सर्वोदय शासन हम सभी के लिए सतत — सदैव मंगलकारी होवे॥१॥

यह द्वितीय वेदनानुयोगद्वार के सोलह भेदों के अन्तर्गत सोलहवाँ वेदनाल्पबहुत्वानुयोग द्वार है। उसमें चार स्थलों में छब्बीस सूत्रों के द्वारा वेदनाल्पबहुत्वानुयोगद्वार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में अधिकार प्रतिज्ञा का कथन और भेदों का निरूपण करने हेतु "वेयणा" इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में प्रकृत्यर्थताल्पबहुत्व का कथन करने वाले "पयडि" इत्यादि आठ सूत्र हैं। उसके पश्चात् तृतीय स्थल में समयप्रबद्धार्थता में अल्पबहुत्व का कथन करने वाले "समयपबद्धद्वुदाए" इत्यादि आठ सूत्र कहेंगे। पुनश्च क्षेत्रप्रत्यास की अपेक्षा अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु "खेत्तपच्चासएत्ति" इत्यादि आठ सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अधुना अधिकारप्रतिज्ञाभेदनिरूपणार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

वेयणाअप्पाबहुए त्ति॥१॥

तत्थ इमाणि तिण्णि अणुयोगद्वाराणि णादव्वाणि भवन्ति — पयडिअट्टदा

समयपबद्धट्टदा खेत्तपच्चासए त्ति॥२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — एवमत्र त्रीण्येवानुयोगद्वाराणि भवन्ति, अन्येषामसंभवात्।

एवं प्रथमस्थले अधिकारप्रतिज्ञासूचक-भेदनिरूपकपरत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

संप्रति प्रकृत्यर्थताल्पबहुत्वसूचनार्थं सूत्राष्टकमवतार्यते —

पयडिअट्टदाए सव्वत्थोवा गोदस्स कम्मस्स पयडीओ॥३॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका —

कुतः ? द्विपरिमाणत्वात्। द्वयंकप्रमाणत्वादित्यर्थः।

वेयणीयस्स कम्मस्स पयडीओ तत्तियाओ चेव॥४॥

सातावेदनीयासातावेदनीयभेदेन द्विभावोपलंभात्।

आउअस्स कम्मस्स पयडीओ संखेज्जगुणाओ॥५॥

अब अधिकार की प्रतिज्ञा और भेदों को निरूपित करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

वेदनाअल्पबहुत्व का अधिकार है॥१॥

उसमें ये तीन अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं — प्रकृत्यर्थता, समयप्रबद्धार्थता और क्षेत्रप्रत्यास॥२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इस प्रकार यहाँ तीन ही अनुयोगद्वार हैं, क्योंकि इनसे अतिरिक्त अनुयोगद्वारों की यहाँ संभावना नहीं पाई जाती है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में अधिकार प्रतिज्ञा को सूचित करने वाला और भेद का निरूपक ऐसे दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब प्रकृत्यर्थताल्पबहुत्व को सूचित करने हेतु आठ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

प्रकृत्यर्थता की अपेक्षा गोत्रकर्म की प्रकृतियाँ सबसे स्तोक हैं॥३॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — ऐसा क्यों है ? क्योंकि वे दो अंक प्रमाण हैं ऐसा अभिप्राय है।

सूत्रार्थ —

वेदनीय कर्म की भी उतनी ही प्रकृतियाँ हैं॥४॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — क्योंकि साता व असाता के भेद से उनकी भी दो संख्या पाई जाती है।

सूत्रार्थ —

आयु कर्म की प्रकृतियाँ उनसे संख्यातगुणी हैं॥५॥

को गुणकारः ? द्वे रूपे स्तः।

अंतराड्यस्स कम्मस्स पयडीओ विसेसाहियाओ॥६॥

कियन्मात्रेण ? स्वकचतुर्भागमात्रेण अधिका ज्ञातव्याः।

मोहणीयस्स कम्मस्स पयडीओ संखेज्जगुणाओ॥७॥

को गुणकारः ? द्वि-पंचभागोनषड्रूपाणि सन्ति। ($५ \frac{५}{५} = २८$)।

णामस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ॥८॥

अत्र गुणकारः असंख्याता लोका ज्ञातव्या भवन्ति।

दंसणावरणीयस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ॥९॥

अत्रापि गुणकारः असंख्याता लोकाः।

णाणावरणीयस्स कम्मस्स पयडीओ विसेसाहियाओ॥१०॥

अत्रासंख्याताः कल्पाः विशेषाधिका मन्तव्याः।

एवं द्वितीयस्थले प्रकृत्यर्थतायां अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सूत्राष्टकं गतम्।

इत्थं प्रकृत्यर्थता समाप्ता।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — गुणकार क्या है ? गुणकार दो का अंक है।

सूत्रार्थ —

अन्तराय कर्म की प्रकृतियाँ उनसे विशेष अधिक हैं॥६॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — कितने मात्र से वे अधिक हैं ? वे अपने चतुर्थ भाग मात्र से अधिक हैं, ऐसा जानना चाहिए।

सूत्रार्थ —

मोहनीय कर्म की प्रकृतियाँ उनसे संख्यातगुणी हैं॥७॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — गुणकार क्या है ? गुणकार दो बटे पाँच (२/५) भाग से कम छह अंक है।

(५)।

सूत्रार्थ —

नामकर्म की प्रकृतियाँ उनसे असंख्यातगुणी हैं॥८॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ गुणकार का प्रमाण असंख्यात लोक है।

सूत्रार्थ —

दर्शनावरणीय की प्रकृतियाँ उनसे असंख्यातगुणी हैं॥९॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ भी गुणकार असंख्यात लोक प्रमाण है।

सूत्रार्थ —

ज्ञानावरणीय की प्रकृतियाँ उनसे विशेष अधिक हैं॥१०॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ असंख्यात कल्प प्रमाण विशेष अधिक हैं।

संप्रति समयप्रबद्धार्थताल्पबहुत्वप्रतिपादनार्थं सूत्राष्टकमवतार्यते —

समयप्रबद्धदृष्टा सव्वत्थोवा आउअस्स कम्मस्स पयडीओ॥११॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अन्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वात् आयुःकर्मणः प्रकृतयः सर्वस्तोकाः कथ्यन्ते।

गोदस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ॥१२॥

अत्र गुणकारः पल्योपमस्य असंख्यातभागः कथयितव्यः।

वेयणीयस्स कम्मस्स पयडीओ विसेसाहियाओ॥१३॥

पंचदशकोटाकोटिसागरोपमप्रमाणो विशेषाधिकोऽत्र ज्ञातव्यः।

अंतराइयस्स कम्मस्स पयडीओ संखेज्जगुणाओ॥१४॥

सातिरेकत्रिरूपाणि गुणकारोऽत्र मन्तव्यः।

मोहणीयस्स कम्मस्स पयडीओ संखेज्जगुणाओ॥१५॥

अत्र गुणकारः संख्याताः समयाः सन्ति।

णामस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ॥१६॥

इस प्रकार द्वितीय स्थल में प्रकृत्यर्थता में अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार प्रकृत्यर्थता समाप्त हुई।

अब समयप्रबद्धार्थता के अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने हेतु आठ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

समयप्रबद्धार्थता की अपेक्षा आयुकर्म की प्रकृतियाँ सबसे स्तोका हैं॥११॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होने से आयुकर्म की प्रकृतियाँ सबसे कम कही गई हैं।

सूत्रार्थ —

गोत्रकर्म की प्रकृतियाँ उनसे असंख्यातगुणी हैं॥१२॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ गुणकार पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग कहना चाहिए।

सूत्रार्थ —

वेदनीय कर्म की प्रकृतियाँ उनसे विशेष अधिक हैं॥१३॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण विशेष अधिक यहाँ जानना चाहिए।

सूत्रार्थ —

अन्तराय कर्म की प्रकृतियाँ उनसे संख्यातगुणी हैं॥१४॥

यहाँ गुणकार कुछ अधिक तीन अंक मानना चाहिए।

सूत्रार्थ —

मोहनीय कर्म की प्रकृतियाँ उनसे संख्यातगुणी हैं॥१५॥

यहाँ गुणकार संख्यात समय होते हैं।

सूत्रार्थ —

नामकर्म की प्रकृतियाँ उनसे असंख्यात गुणी हैं॥१६॥

अत्र गुणकारः, असंख्याता लोकाः सन्ति इति ज्ञातव्यः।

दंशणावरणीयस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ॥१७॥

अत्रापि गुणकारः असंख्यातलोकप्रमाणो ज्ञातव्यः।

णाणावरणीयस्स कम्मस्स पयडीओ विसेसाहियाओ॥१८॥

असंख्याताः कल्पाः विशेषाधिका ज्ञातव्याः।

एवं तृतीयस्थले समयप्रबद्धार्थतायां अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सूत्राष्टकं गतम्।

इत्थं समयप्रबद्धार्थता समाप्ता।

संप्रति क्षेत्रप्रत्यासापेक्षया प्रकृतीनामल्पबहुत्वनिरूपणार्थं सूत्राष्टकमवतार्यते —

खेत्तपच्चासए त्ति सव्वत्थोवा अंतराइयस्स कम्मस्स पयडीओ॥१९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — पंचगुणित-त्रिंशत्सागरोपमकोटाकोटिगुणित-महामत्स्योत्कृष्ट-क्षेत्रप्रमाणत्वात्

अन्तरायस्य कर्मणः प्रकृतयः सर्वस्तोकाः सन्ति।

मोहणीयस्स कम्मस्स पयडीओ संखेज्जगुणाओ॥२०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — नवशत-पंचनवतिसागरोपमकोटाकोटिभिः गुणितमहामत्स्योत्कृष्टक्षेत्रमात्र-

प्रकृतित्वात्। अत्र गुणकारः सातिरेकषट् रूपाणि।

यहाँ गुणकार असंख्यात लोक हैं, ऐसा जानना चाहिए।

सूत्रार्थ —

दर्शनावरणीय कर्म की प्रकृतियाँ उनसे असंख्यातगुणी हैं॥१७॥

यहाँ भी गुणकार असंख्यात लोक प्रमाण जानना चाहिए।

सूत्रार्थ —

ज्ञानावरणीय कर्म की प्रकृतियाँ उनसे विशेष अधिक हैं॥१८॥

यहाँ असंख्यातकल्प विशेष अधिक जानना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में समयप्रबद्धार्थता में अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार समयप्रबद्धार्थता समाप्त हुई।

अब क्षेत्रप्रत्यास की अपेक्षा कर्मप्रकृतियों का अल्पबहुत्व निरूपण करने हेतु आठ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

क्षेत्रप्रत्यास की अपेक्षा अन्तराय कर्म की प्रकृतियाँ सबसे कम हैं॥१९॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — क्योंकि वे पाँच गुणे तीस (३०×५) कोड़ाकोड़ी सागरोपमों से गुणित महामत्स्य के उत्कृष्ट क्षेत्र के बराबर हैं, इसलिए अन्तराय कर्म की प्रकृतियाँ सबसे कम हैं।

सूत्रार्थ —

मोहनीय कर्म की प्रकृतियाँ उनसे संख्यातगुणी हैं॥२०॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — इसका कारण यह है कि वे प्रकृतियाँ नौ सौ पंचानवे कोड़ाकोड़ी सागरोपमों से गुणित महामत्स्य के उत्कृष्ट क्षेत्र के बराबर हैं। यहाँ गुणकार कुछ अधिक छह अंक है।

आउअस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ॥२१॥

अन्तर्मुहूर्तगुणितघनलोकप्रमाणत्वात्। अत्र गुणकारः जगत्प्रतरस्य असंख्यातभागो ज्ञातव्यः।

गोदस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ॥२२॥

अत्र गुणकारः अन्तर्मुहूर्तेनापवर्तित त्रिंशत्सागरोपमकोटाकोटिप्रमाणो ज्ञातव्यः।

वेयणीयस्स कम्मस्स पयडीओ विसेसाहियाओ॥२३॥

अत्र विशेषाधिकः असंख्यातलोकमात्रो भवति।

णामस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ॥२४॥

अत्र गुणकारः असंख्याता लोका मन्तव्याः।

दंसणावरणीयस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ॥२५॥

गुणकारोऽत्र असंख्याता लोका ज्ञातव्याः।

णाणावरणीयस्स कम्मस्स पयडीओ विसेसाहियाओ॥२६॥

सूत्रार्थ —

आयुर्कर्म की प्रकृतियाँ उनसे असंख्यातगुणी हैं॥२१॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इसका कारण यह है कि वे अन्तर्मुहूर्त से गुणित घनलोक प्रमाण है। यहाँ गुणकार जगत्प्रतर का असंख्यातवाँ भाग जानना चाहिए।

सूत्रार्थ —

गोत्रकर्म की प्रकृतियाँ उनसे असंख्यातगुणी हैं॥२२॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ गुणकार अन्तर्मुहूर्त से अपवर्तित तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण जानना चाहिए।

सूत्रार्थ —

वेदनीय कर्म की प्रकृतियाँ उनसे विशेष अधिक हैं॥२३॥

यहाँ विशेष अधिक असंख्यातलोकमात्र होता है।

सूत्रार्थ —

नामकर्म की प्रकृतियाँ उनसे असंख्यातगुणी हैं॥२४॥

यहाँ गुणकार असंख्यात लोक मानना चाहिए।

सूत्रार्थ —

दर्शनावरणीय कर्म की प्रकृतियाँ उनसे असंख्यातगुणी हैं॥२५॥

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ गुणकार असंख्यातलोक प्रमाण जानना चाहिए।

सूत्रार्थ —

ज्ञानावरणीय कर्म की प्रकृतियाँ उनसे विशेष अधिक हैं॥२६॥

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — अत्रापि प्रतरस्य असंख्यातभागमात्रो विशेषाधिको ज्ञातव्यः।

तात्पर्यमत्र — कर्मप्रकृतीनां त्रिविधानुयोगद्वारं पठित्वा कर्मास्त्रवबंधकारणानि चिन्तयितव्यानि। पुनश्च “केवलश्रुतसंघर्षमदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य” इत्यादि सूत्रार्थं पुनः पुनः विचिन्त्य दर्शनमोहनीयास्त्रवबंध-कारणमपसार्य भेदाभेदरत्नत्रयभावनां भावयद्भिः पंचगुरूणां चतुर्विंशतितीर्थकराणां च शरणं गृहीत्वा प्रार्थयितव्यः।

तथाहि —

याचेऽहं याचेऽहं जिन ! तव चरणारविंदयोर्भक्तिम्।

याचेऽहं याचेऽहं पुनरपि तामेव तामेव॥

एवं जिनेन्द्रदेवभक्तिप्रसादेन सम्यग्दर्शनं दृढीकृत्य जिनागमपठनपाठननिमित्तेन सम्यग्ज्ञानाराधनां कुर्वद्भिः यथाशक्ति सम्यक्चारित्रमनुपालनीयम्।

एवं चतुर्थस्थले क्षेत्रप्रत्यासाल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन सूत्राष्टकं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य वेदनानाम्नि चतुर्थखण्डे द्वादशे ग्रन्थे गणिनीज्ञानमती-

कृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां वेदनाल्पबहुत्वानुयोगद्वारनामायं

चतुर्थोऽधिकारः समाप्तः।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका — यहाँ भी प्रतर का असंख्यातवाँ भागमात्र विशेष अधिक जानना चाहिए।

यहाँ तात्पर्य यह है कि कर्मप्रकृतियों के तीन प्रकार के अनुयोगद्वारों को पढ़कर कर्मास्त्र एवं कर्मबंध के कारणों के विषय में चिन्तन करना चाहिए। पुनश्च “केवलश्रुतसंघर्षमदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य” इस तत्त्वार्थसूत्र के सूत्र का अर्थ पुनः-पुनः चिन्तन करते हुए दर्शनमोहनीय के आस्त्र और बंध के कारणों को हटाकर भेदाभेदरत्नत्रय की भावना भाते हुए पंचपरमगुरुओं-पंचपरमेष्ठियों की एवं चौबीस तीर्थकर भगवन्तों की शरण लेकर प्रार्थना करना चाहिए कि —

श्लोकार्थ — हे जिनेन्द्र भगवान् ! आपके चरणकमल में मेरी भक्ति बनी रहे, यही मैं याचना करता हूँ।

पुनः-पुनः इसी भक्ति को प्राप्त करने हेतु मैं याचना करता हूँ-याचना करता हूँ।

इस प्रकार जिनेन्द्रदेव की भक्ति के प्रसाद से सम्यग्दर्शन को दृढ़ करके जिनागम के पठन-पाठन के निमित्त से सम्यग्ज्ञान की आराधना करते हुए हम सभी को सम्यक्चारित्र का यथाशक्ति अनुपालन करना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में क्षेत्रप्रत्यासाल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम ग्रंथ के वेदनानामक चतुर्थ खण्ड में बारहवें

ग्रंथ में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिन्तामणि

टीका में वेदना अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार नाम का

यह चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।



—मंगलाचरणम्—

देवासुरेन्द्रनरनागसमर्चितेभ्यः, पापप्रणाशकरभव्यमनोहरेभ्यः।

घण्टाध्वजादिपरिवारविभूषितेभ्यः, नित्यं नमो जगति सर्वजिनालयेभ्यः॥१॥

इतो विस्तरः—षट्खण्डागमग्रन्थस्य चतुर्थखंडे वेदनानामधेये षोडश अनुयोगद्वाराणि वर्णितानि सन्ति। आद्यानि पञ्चानुयोगद्वाराणि दशमग्रन्थे—पुस्तके विस्तरेण प्रतिपादितानि। पुनः वेदनाकालविधान-वेदनाभावविधाननामानुयोगद्वारद्वयं एकादशमग्रन्थे—पुस्तके कथितं। तदनन्तरं वेदनाप्रत्ययविधानादारभ्य वेदनाल्पबहुत्वविधानपर्यंतं नवानुयोगद्वाराणि अस्मिन् द्वादशे ग्रन्थे—पुस्तके प्रोक्तानि।

अस्मिन् ग्रंथे महाधिकारौ द्वौ विभाजितौ स्तः। वेदनाप्रत्ययविधानादारभ्य वेदनानन्तरविधानपर्यंतं पञ्चानुयोगद्वारसमन्वितोऽयं प्रथमो महाधिकारः कथितः। अस्मिन् महाधिकारे सूत्रसंख्याः द्वादशाधिकशतानि ज्ञातव्याः। पुनश्च द्वितीये महाधिकारे वेदनासन्निकर्षविधानादारभ्य वेदनाल्पबहुत्वविधानपर्यन्ताः चत्वारोऽधिकाराः। तेषु सूत्राणि एकविंशत्यधिकचतुःशतानि सन्ति। अत्र ग्रंथे सूत्राणि त्रयस्त्रिंशदधिकपञ्चशतानि सन्ति।

अस्मिन् सूत्रग्रंथे महासमुद्रे ज्ञानामृतलिप्सया मयावगाहनं कृत्वा श्रीवीरसेनाचार्यवर्यकृपाप्रसादेन धवलाटीकाया मनाक्सारं गृहीत्वा स्वाल्पबुद्ध्या गीर्वाणीभाषायां “सिद्धान्तचिन्तामणिनामधेया” टीका लिखिता, सा केवलं स्वात्मशुद्ध्यै स्वात्मसिद्ध्यै चिच्चैतन्यचिन्तामणिस्वरूपनिजशुद्धबुद्धिसिद्धपरमात्मपदप्राप्त्यै चैव रचिता न च लोकख्यातिभावनया।

कासुचित् मुद्रितासु प्रतिषु विशेषपाठ उपलभ्यते तदहमपि उद्धरेयं—“वेयणाखंडसमत्ता” इति पाठः। ततश्च निम्नपाठः उपलभ्यते—“णमो णाणाराहणाए, णमो दंसणाराहणाए, णमो चरित्ताराहणाए, णमो

—मंगलाचरण—

देव, असुर, धरणेन्द्र आदि से समर्चित—पूजित, पाप कर्मों का नाश करके भव्य प्राणियों के मन को हरण करने वाले, घण्टा, ध्वजादि परिवार अर्थात् छत्र आदि से विभूषित जो जिनमंदिर हैं, उन सभी जिनालयों को मेरा नमस्कार हो॥१॥

इसका विस्तार करते हैं—

षट्खण्डागम ग्रंथ के वेदना नामक चतुर्थ खण्ड में सोलह अनुयोगद्वार वर्णित हैं। उसमें से प्रारंभ के पाँच अनुयोगद्वार दशवें ग्रंथ में (दसवीं पुस्तक में) विस्तार से प्रतिपादित हैं, पुनः वेदनाकालविधान और वेदनाभावविधान नाम के दो अनुयोगद्वार ग्यारहवें ग्रंथ—पुस्तक में कहे हैं। तदनन्तर वेदनाप्रत्ययविधान से प्रारंभ करके वेदनाअल्पबहुत्व विधान पर्यन्त नौ अनुयोगद्वार इस बारहवें ग्रंथ में कहे गये हैं।

इस ग्रंथ—पुस्तक में दो महाधिकार विभाजित किये गये हैं। वेदनाप्रत्ययविधान से प्रारंभ करके वेदनानन्तर विधान तक पाँच अनुयोगद्वार से समन्वित प्रथम महाधिकार कहा है। इस महाधिकार में एक सौ बारह सूत्र संख्या जाननी चाहिए। पुनश्च द्वितीय महाधिकार में वेदनासन्निकर्ष विधान से प्रारंभ करके वेदनाल्पबहुत्व विधान तक चार अधिकार हैं। उनमें सूत्रसंख्या चार सौ इक्कीस है। इस प्रकार इस बारहवें ग्रंथ में कुल पाँच सौ तेतीस सूत्र हैं।

इस सूत्र ग्रंथरूपी महासमुद्र में मैंने ज्ञानामृत प्राप्त करने की अभिलाषा से अवगाहन करके श्री वीरसेनाचार्यवर्य की कृपाप्रसाद से धवला टीका के कुछ सार को ग्रहण करके अपनी अल्पबुद्धि के द्वारा गीर्वाणी भाषा में—संस्कृत में “सिद्धान्तचिन्तामणिटीका” नाम की टीका लिखी है, वह केवल अपनी आत्मा की शुद्धि के लिए और आत्मसिद्धि के लिए तथा चिच्चैतन्य चिन्तामणिस्वरूप निज शुद्ध-बुद्ध-सिद्धस्वरूप परमात्मपद की प्राप्ति के लिए ही रची है न कि उसमें मेरी कोई लोकख्याति की भावना रही है।

किन्हीं-किन्हीं ग्रंथ की प्रतियों में विशेष पाठ प्राप्त होता है, उसको भी मैं यहाँ उद्धृत कर रही हूँ—“वेयणाखंडसमत्ता” अर्थात् “वेदनाखण्ड समाप्त हुआ” यहाँ पाठ है।

तवाराहणाए, णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं, णमो भयवदो महदिमहावीर- वड्ढमाणबुद्धरिसिस्स, णमो भयवदो गोदमसामिस्स, नमः सकलविमलकेवल- ज्ञानावभासिने, नमो वीतरागाय महात्मने नमो वर्द्धमानभट्टारकाय।

अबोधे बोधं यो जनयति सदा भव्यकुमुदे।

प्रभूय प्रल्हादी दुरितपरितापोपशमनः॥

तपोवृत्तिर्यस्य स्फुरति जगदानन्दजननी।

जिनध्यानासक्तो जयति कुलचन्द्रो मुनिरयम्॥

वेदनाखण्डं समाप्तम्।

वर्तमानकाले जंबूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखंडे भारतदेशे बिहारप्रदेशे नालंदाजनपदे राजगृहीनगरी- सिद्धक्षेत्रनाम्ना प्रसिद्धास्ति। इयं मुनिसुव्रतनाथभगवतो जन्मभूमिरस्ति। अधुना वीरनिर्वाणसंवत् त्रिंशदधिकपंचविंशतिशततमं वर्तते। वर्तमानकालात् एकादशलक्षषडशीतिसहस्र-पंचशतत्रिंशद्वर्षपूर्वं मुनिसुव्रतो भगवान् निर्वाणपदमवाप। एवं द्वादशलक्ष-षोडशसहस्र-पंचशतत्रिंशद्वर्षपूर्वं जैनतीर्थंकरपरंपरायां असौ विंशतितमो भगवान् तीर्थंकरदेवो राजगृहीशासकः सौधर्मेन्द्रपूजितो महाराजसुमित्रस्य महाराज्ञी सोमायां जन्म जग्राह। एष हरिवंशशिरोमणिः तीर्थंकरो भगवान् अत्रैव दीक्षां जग्राह, अत्रैव च केवलज्ञानमपि संप्राप्नोत्। अयं जगत्प्रभुः मम चतुर्विधसंघस्य सर्वजगतां सर्वभव्यानां च मंगलं कुर्यात्।

उसके बाद निम्न पाठ उपलब्ध होता है—

“ज्ञानाराधना को नमस्कार हो, दर्शनाराधना को नमस्कार हो, चारित्राराधना को नमस्कार हो, तपाराधना को नमस्कार हो, अरहंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो, लोक में स्थित समस्त साधुओं को नमस्कार हो, भगवान् महति महावीर वर्धमान बुद्धि ऋषि को नमस्कार हो, भगवान् गौतम स्वामी को नमस्कार हो, सकल विमल केवलज्ञान को प्रगट करने वाले वीतराग महात्मा श्रीवर्द्धमानभट्टारक को मेरा नमस्कार हो।”

श्लोकार्थ — जो अज्ञानी में भी ज्ञान उत्पन्न करते हैं, भव्य कमलों को प्रफुल्लित करके सदैव उनके दुरित परिताप का उपशम करते हैं, जिनकी तपोवृत्ति जगत में आनंद उत्पन्न करती हुई स्फुरायमान होती है, ऐसे जिनेन्द्र प्रभु के ध्यान में तन्मय यह कुलचन्द्र मुनि जयशील होंगे।

॥वेदनाखण्ड समाप्त॥

वर्तमान समय में जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में आर्यखण्ड के अन्दर भारतदेश के बिहार प्रदेश के नालंदा जनपद में राजगृही नगरी सिद्धक्षेत्र नाम से प्रसिद्ध है। यह तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान् की जन्मभूमि है। इस समय वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ तीस चल रहा है। वर्तमान संवत् २५३० से ग्यारह लाख छियासी हजार पाँच सौ तीस (११,८६,५३०) वर्ष पूर्व मुनिसुव्रत भगवान् ने निर्वाण पद को (सम्मेदशिखर पर्वत से) प्राप्त किया था। इस प्रकार १२ लाख १६ हजार ५३० वर्ष पूर्व जैन तीर्थंकरों की परम्परा में इन बीसवें तीर्थंकर भगवान् मुनिसुव्रतनाथ ने राजगृही के शासक सौधर्मेन्द्र से पूजित महाराज सुमित्र की महारानी सोमा के गर्भ से जन्म लिया था। हरिवंश के शिरोमणि इन तीर्थंकर भगवान् ने यहीं (राजगृही में) दीक्षा ग्रहण की और केवलज्ञान भी यहीं प्राप्त किया था। ऐसे वे जगत्प्रभु भगवान् मेरे लिए मंगलकारी हों, चतुर्विध संघ के लिए मंगलकारी हों, सम्पूर्ण जगत् के लिए

सार्धद्वादशफुटप्रमिता अस्य भगवतः प्रतिमा मत्प्रेरणया स्थापिता पंचकल्याणकैः प्रतिष्ठिता जायते राजगृहीजन्मभूमिक्षेत्रे। सापि चिरकालं स्थेयात् जिनशासनप्रभावनां विस्तारयन्ती सर्वकालं कर्तृणां दर्शकानां पूजकानां च मंगलं कुर्यात् सर्वजगति क्षेमं, सुभिक्षं, कल्याणं च कुर्यादिति भावयाम्यहम्।

महाव्रतं मुक्तिपथं दधानः, प्राप्तः प्रमुक्तिं मुनिसुव्रतस्त्वं।

बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः, भूयात् सदा मे हि नमोऽस्तु तुभ्यम्॥

संप्रति यस्य तीर्थंकरस्य शासनं प्रवर्तते। यस्य षड्विंशतिशततमे महोत्सवे भारतदेशस्य शासक-प्रधानमंत्र्यादयः सहभागिनोऽभवन्। तस्यैव जन्मभूमिकुण्डलपुरीतीर्थक्षेत्रे स्थित्वा अहं इमां सिद्धान्तचिंतामणिटीकां अलिखम्। टीका लेखने कुण्डलपुर्याः राजगृहीक्षेत्रं कदाचित् पावापुरी-सिद्धक्षेत्रमपि गच्छन्ती आसम्। पुनः पुनः वन्दनार्थं गत्वा तत्रापि उभयक्षेत्रे अपि उपविश्य लिखन्ती अस्मि। श्रीभगवन्महावीरस्वामिनः जन्मभूमि-देशनाभूमि-निर्वाणभूमित्रयतीर्थभूमयः श्री महावीर-त्रिवेणीसंगमसदृशाः अस्माकं मनःप्रसक्त्यै वाणीशुद्ध्यै सिद्ध्यै च भूयासुरिति याचामहे। पुनश्च भगवन्तमन्तिमतीर्थंकरं श्रीमहावीरस्वामिनमहमनन्तशः प्रवन्दे।

श्रियाभिवृद्धः खलु वर्द्धमानः, श्रीमुक्तिलक्ष्म्या भुवनाधिनाथः।

सर्वार्थसिद्ध्यै कृतकृत्यसिद्धः, त्वां नौमि भो वीर! निजात्मसिद्ध्यै॥१॥

मंगलकारी हों एवं समस्त भव्य प्राणियों के लिए मंगलकारी होवें, यही मेरी प्रार्थना है।

इस राजगृही जन्मभूमि तीर्थ पर उन मुनिसुव्रतनाथ भगवान की साढ़े बारह फुट उत्तुंग प्रतिमा मेरी प्रेरणा से स्थापित हुई और पंचकल्याणक से प्रतिष्ठित हुई हैं। वह भी चिरकाल तक यहाँ स्थित रहें, जिनशासन की प्रभावना को फैलाती हुई सदैव मूर्ति विराजमान कर्ता का, दर्शकों का और पूजकों का मंगल करें एवं सम्पूर्ण विश्व में क्षेम-सुभिक्ष और कल्याण करें, यही मेरी भावना है।

श्लोकार्थ—हे मुनिसुव्रतनाथ भगवान्! आपने मुक्तिपथ के कारणभूत महाव्रतों को धारण-पालन करते हुए प्रकृष्ट मोक्षपद को प्राप्त कर लिया है। आपको मेरा नित्य ही नमस्कार होवे तथा आप मुझे बोधि-समाधि प्रदान करें और मेरी सदैव परिणाम विशुद्धि होवे, यही आपके श्रीचरणों में प्रार्थना है।

वर्तमान में इस धरती पर जिन तीर्थंकर भगवान का शासन प्रवर्त रहा — चल रहा है। जिनके २६००वें जन्मकल्याणक महोत्सव में भारत देश के शासक प्रधानमंत्री आदि सहभागी हुए। उन्हीं भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर तीर्थक्षेत्र पर बैठकर मैंने इस सिद्धान्त चिंतामणि टीका को लिखा है। टीका लेखन में कुण्डलपुरी से कभी राजगृही, कभी पावापुरी सिद्धक्षेत्र भी जाती रहती थी। बार-बार तीर्थवन्दना के लिए जाकर वहाँ भी दोनों तीर्थों पर बैठकर लेखन किया करती थी। श्री भगवान् महावीर की जन्मभूमि प्रथम देशनाभूमि और निर्वाणभूमि ये तीनों तीर्थभूमियाँ श्री महावीर तीर्थ त्रिवेणी के संगम के सदृश हैं, ये हमारे मन की शांति के लिए, वाणी की शुद्धि के लिए तथा सर्वसिद्धि के लिए होवें, यही तीर्थत्रय के प्रति हमारी याचना है।

अंतिम तीर्थंकर श्री भगवान महावीर स्वामी के श्रीचरणों में मेरा अनन्त बार वंदन है।

श्लोकार्थ—हे वीर भगवान्! आप अन्तरंग-बहिरंग दोनों प्रकार की लक्ष्मी के वृद्धिकारक होने से वर्द्धमान नाम को सार्थक करते हैं, श्री मुक्तिलक्ष्मी के साथ आप तीनों लोकों के अधिनाथ हैं, सम्पूर्ण अर्थ—प्रयोजनों की सिद्धि कर लेने से आप कृतकृत्य सिद्ध हो गये हैं अतः हे नाथ! निज आत्मा की सिद्धि के लिए मेरा आपको बारम्बार नमस्कार है॥१॥

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिसूरिप्रणीतषट्खण्डागमस्य चतुर्थखण्डे द्वादशे ग्रन्थे
 श्रीभूतबलिसूरिकृत - 'वेदनाखंडनाम'-ग्रंथस्य श्रीवीरसेनाचार्यविरचितधवला-
 टीकाप्रमुखनानाग्रन्थाधारेण विरचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमा-
 चार्यश्चारित्रचक्रवर्ती-श्रीशांतिसागरस्तस्य प्रथमपट्टाधीशः
 श्रीवीरसागराचार्यस्तस्य शिष्या-जम्बूद्वीपरचनाप्रेरिका-
 गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां
 अयं वेदनासन्निकर्षविधानादि-वेदनाल्प-
 बहुत्वविधानपर्यंतप्ररूपको द्वितीयो
 महाधिकारः समाप्तः।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदन्त-भूतबली आचार्य प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ
 के चतुर्थ खण्ड में बारहवें ग्रंथ में श्री भूतबली सूरिकृत वेदनाखण्ड ग्रंथ
 की श्री वीरसेन आचार्य द्वारा रचित धवला टीका को प्रमुख करके
 अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से विरचित बीसवीं सदी के
 प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी, उनके
 प्रथम पट्टाधीश श्री वीरसागर आचार्य, उनकी शिष्या
 जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी आर्थिका
 ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणिटीका में
 यह वेदनासन्निकर्ष विधान से लेकर
 वेदनाअल्पबहुत्व विधान पर्यन्त
 अनुयोगद्वारों का प्ररूपण करने
 वाला द्वितीय महाधिकार
 समाप्त हुआ।

विशेष — आज फाल्गुन शुक्ला तृतीया (वीर नि. सं. २५३८ में) शुक्रवार, दिनाँक २४ फरवरी सन् २०१२ को षट्खण्डागम सूत्र ग्रंथ के चतुर्थ खण्ड में इस १२वीं पुस्तक की सिद्धान्तचिंतामणिटीका का हिन्दी अनुवाद पूर्ण करते हुए मुझे (आर्थिका चन्दनामती को) अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

तीर्थकरत्रय प्रभु श्री शांतिनाथ-श्रीकुंथुनाथ-श्री अरनाथ के चार-चार कल्याणक से पवित्र हस्तिनापुर तीर्थ पर जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, बीसवीं सदी की प्रथम बालब्रह्मचारिणी आर्थिका, युगप्रवर्तिका, राष्ट्रगौरव, सिद्धान्तचक्रेश्वरी पूज्य १०५ गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की पावन प्रेरणा से इस धरती पर विश्व में प्रथम बार निर्मित जम्बूद्वीप, तेरहद्वीप एवं तीनलोक की भव्य रचनाओं से समन्वित अतिशय क्षेत्र जम्बूद्वीप स्थल नामक तीर्थ परिसर में रत्नत्रय निलय वसतिका में गुरु की छत्रच्छाया में बैठकर आज इस हिन्दी टीका की पूर्णता के साथ-साथ विशेष हर्ष के क्षण प्राप्त हो रहे हैं, जब सनावद (म.प्र.) में 'श्री

णमोकार धाम” नाम के नवोदित तीर्थ पर पंचपरमेष्ठी भगवन्तों की प्रतिमाएँ विराजमान हो रही हैं, महामंत्र णमोकार के पाँचों पद, पैतिस अक्षर वहाँ सुन्दर पच्चीकारी के साथ उत्कीर्ण किये गये हैं तथा तीर्थ परिसर में विराजित भगवान ऋषभदेव की ७ फुट उत्तुंग प्रतिमा का महामस्तकाभिषेक चल रहा है। इन सभी दृश्यों को पारस टी.वी. चैनल के माध्यम से सारे देश में जीवन्त प्रसारण के रूप में देखा जा रहा है।

इस अनादिनिधन णमोकार महामंत्र के द्वारा ही श्री पुष्पदंत और भूतबली आचार्य भगवन्तों ने षट्खण्डागम सूत्र ग्रंथ का शुभारंभ किया है। मंगलाचरण के रूप में सत्प्ररूपणा ग्रंथ (पुस्तक-१) का प्रथम सूत्र णमोकार मंत्र ही है। ऐसे उस महामंत्र का सर्वतोमुखी प्रकाश फैलाने की भावना से सन् १९९६ में पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी ने संघस्थ शिष्य एवं जम्बूद्वीप धर्मपीठ के पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज की जन्मभूमि सनावद में उनकी बलवती भावना देखकर णमोकार धाम तीर्थ की योजना प्रदान की और उसका शिलान्यास भी उसी समय संघ सानिध्य में सम्पन्न हुआ। पुनः क्रम-क्रम से वहाँ चैत्यालय आदि का निर्माण हुआ और तीर्थ के प्रमुख कार्यकर्ता श्री प्रकाशचंद जैन सर्राफ (क्षु. मोतीसागर जी के गृहस्थावस्था के लघु भ्राता) के पुरुषार्थ से सन् २०१० में पाँचों परमेष्ठी की प्रतिमाएँ हस्तिनापुर में प्रतिष्ठित हुई पुनः समयानुसार उन्हें णमोकार धाम तीर्थ के जिनमंदिर जी में विराजमान होने का आज शुभ मुहूर्त आया है जब जम्बूद्वीप के नूतन पीठाधीश श्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी के सानिध्य में यह पुण्य आयोजन सम्पन्न हो रहा है।

यह “णमोकार धाम तीर्थ” युग-युग तक इस लोक में जीवन्त रहे और सभी भव्यात्माओं को महामंत्र की महिमा बताता रहे, यही पंचपरमेष्ठी भगवन्तों के श्रीचरणों में मंगल प्रार्थना है।



उपसंहारः

मंगलाचरणम्

श्री ऋषभो जगन्नाथः, त्वां ऋषभं दधे हृदि।
 ऋषभेण जितो मृत्युः, ऋषभाय नमो नमः॥१॥
 ऋषभाद् द्विविधो मार्गः, ऋषभस्य वचोऽमृतम्।
 ऋषभेऽनन्तसंपत्तिः, ऋषभेश्वर! पाहि माम्॥२॥

अधुना वेदनाखण्डग्रन्थस्य उपसंहारः क्रियते —

अग्रायणीयपूर्वस्य पंचमवस्तुनः चतुर्थप्राभृतस्य 'कर्मप्रकृति' नाम अस्ति^१। तस्याः कर्मप्रकृतेः चतुर्विंशति-अनुयोगद्वाराणि सन्ति — 'कृति-वेदना-स्पर्श-कर्म-प्रकृति-बंधन-निबंधन-प्रक्रम-उपक्रम-उदय-मोक्ष-संक्रम-लेश्या-लेश्याकर्म-लेश्यापरिणाम-सातासात-दीर्घह्रस्व-भवधारणीय-पुद्गलात्त-निधत्तानिधत्त-निकाचितानिकाचित-कर्मस्थिति-पश्चिमस्कंध-अल्पबहुत्वानीति ज्ञातव्यानि।

अस्मिन् चतुर्थे 'वेदनाखंडं' नामधेये चत्वारो ग्रन्थाः विद्यन्ते। नवम-दशम-एकादश-द्वादशमरूपेण। नवमपुस्तके 'कृति' नामानुयोगद्वारमस्ति, अस्मिन् ग्रंथे षट्सप्तति सूत्राणि। अत्र ग्रन्थे विशेषेण चतुश्चत्वारिंशत् गणधरवलयमंत्रा विस्तृतार्थाः कथिताः। दशमपुस्तकादारभ्य 'वेदना' अनुयोगद्वारमस्ति। तत्र वेदनानिक्षेप-वेदनानयविभाषणता-वेदनानामविधान-वेदनाद्रव्यविधान-वेदनाक्षेत्रविधान-वेदनाकालविधान-

-मंगलाचरण-

तीनों लोकों के नाथ श्री ऋषभदेव भगवान हैं, उन ऋषभदेव भगवान को मैं हृदय में धारण करता हूँ। ऋषभदेव भगवान के द्वारा मृत्यु को जीत लिया गया है अर्थात् उन ऋषभदेव भगवान ने मृत्यु का विनाश करके मोक्षधाम को प्राप्त कर लिया है, ऐसे उन ऋषभदेव भगवान के लिए मेरा नमस्कार है। उन ऋषभदेव भगवान से दो प्रकार का मार्ग (गृहस्थ एवं मुनिधर्म रूप दो प्रकार का मोक्षमार्ग) प्रवर्तित हुआ, उन ऋषभदेव भगवान के वचन अमृत स्वरूप हैं। उन ऋषभदेव में अनन्त सम्पत्ति प्रगट हो गई अर्थात् ऋषभदेव भगवान ने शाश्वत अनन्त सुख सम्पत्ति की प्राप्ति कर ली है, ऐसे हे ऋषभेश्वर भगवान्! मेरी रक्षा कीजिए॥१-२॥

इस मंगलाचरण के श्लोक में सातों विभक्तियों में भगवान ऋषभदेव की स्तुति की गई है।

अब वेदनाखण्ड ग्रंथ का उपसंहार करते हैं —

अग्रायणीय पूर्व की पंचम वस्तु के चतुर्थ प्राभृत का "कर्मप्रकृति" यह नाम है। उस कर्मप्रकृति के चौबीस अनुयोगद्वार हैं — कृति-वेदना-स्पर्श-कर्म-प्रकृति-बंधन-निबंधन-प्रक्रम-उपक्रम-उदय-मोक्ष-संक्रम-लेश्या-लेश्याकर्म-लेश्यापरिणाम-सातासात-दीर्घह्रस्व-भवधारणीय-पुद्गलात्त-निधत्तानिधत्त-निकाचितानिकाचित-कर्मस्थिति-पश्चिमस्कंध और अल्पबहुत्व।

वेदनाखण्ड नाम वाले इस चतुर्थ खण्ड में चार ग्रंथ हैं। नवमाँ-दशवाँ-ग्यारहवाँ और बारहवाँ, इन चार ग्रंथों में पूरा वेदनाखण्ड समाविष्ट है। नवमी पुस्तक में 'कृति' नाम का अनुयोगद्वार है, इस ग्रंथ में ७६ सूत्र हैं। इस ग्रंथ में विशेषरूप से ४४ गणधरवलय मंत्रों का विस्तृत अर्थ कहा गया है। दशवीं पुस्तक से 'वेदना' अनुयोगद्वार का आरंभ है। उसमें वेदनानिक्षेप-वेदनानयविभाषणता-वेदनानामविधान-वेदनाद्रव्यविधान-

वेदनाभावविधान-वेदनाप्रत्ययविधान-वेदनास्वामित्वविधान-वेदनावेदनाविधान-वेदनागतिविधान-वेदनाअनंतरविधान-वेदनासन्निकर्षविधान-वेदनापरिमाणविधान-वेदनाभागाभागविधान-वेदनाल्पबहुत्व-विधानानीति षोडशानुयोगद्वाराणि वर्णितानि।

दशमपुस्तके वेदानिक्षेप-वेदाननयविभाषणता-वेदानामविधान-वेदनाद्रव्यविधान-वेदनाक्षेत्रविधान नामानि पंचानुयोगद्वाराणि कथितानि। तत्र ग्रंथे सूत्रसंख्यात्रयोविंशत्यधिकत्रिंशतानि सन्ति।

एकादशमपुस्तके वेदनाकालविधान-वेदनाभावविधान-नामधेये द्वे अनुयोगद्वारे स्तः। अत्र सूत्राणि त्रिनवत्यधिकपञ्चशतानि सन्ति।

द्वादशमपुस्तके वेदनाप्रत्ययविधानादारभ्य वेदनाल्पबहुत्वविधानपर्यंतं नवानुयोगद्वाराणि प्रतिपादितानि भवन्ति।

अस्मिन् ग्रन्थे यद्यपि द्वौ महाधिकारौ कृत्वा प्रथमे महाधिकारे पंचाधिकारा द्वितीये महाधिकारे चत्वारोऽधिकाराः कृताः। तथापि चतुर्विंशत्यनुयोगद्वारे वेदानुयोगद्वारं द्वितीयमस्ति। अस्मिन् वेदानाम्नि अनुयोगद्वारे षोडशानुयोगद्वाराणि अन्तर्भेदरूपेण कथितानि। तदपेक्षया इमानि वेदनाप्रत्ययविधानानुयोगद्वारादि-नवम-दशमादिषोडशपर्यंतं अनुयोगद्वाराणि ज्ञातव्यानि भवन्ति।

अत्र द्वादशमग्रन्थे सूत्राणि त्रयस्त्रिंशदधिकपञ्चशतानि ज्ञातव्यानि।

अस्मिन् चतुर्थखंडे वेदानानामधेये सर्वाणि सूत्राणि एकसहस्र-पंचशत-चतुर्दशप्रमितानि भवन्ति।

तात्पर्यमेतत् — नवमग्रन्थे कृत्यनुयोगद्वारं, पुनश्च दशमैकादशमद्वादशमपुस्तकेषु 'वेदना' नामानुयोगद्वारं

वेदनाक्षेत्रविधान-वेदनाकालविधान-वेदनाभावविधान-वेदनाप्रत्ययविधान-वेदनास्वामित्वविधान-वेदनावेदनाविधान-वेदनागतिविधान-वेदनाअनंतरविधान-वेदनासन्निकर्षविधान-वेदनापरिमाणविधान-वेदनाभागाभागविधान-वेदनाल्पबहुत्व विधान ये १६ अनुयोगद्वार वर्णित हैं।

दशवीं पुस्तक के अन्दर इन १६ अनुयोगद्वारों में से वेदानिक्षेप-वेदाननयविभाषणता-वेदानाम विधान-वेदनाद्रव्यविधान-वेदनाक्षेत्रविधान नाम वाले पाँच अनुयोगद्वार कहे गये हैं। इस ग्रंथ में सूत्र संख्या ३२३ है।

ग्यारहवीं पुस्तक में वेदनाकालविधान, वेदनाभावविधान नाम के दो अनुयोग द्वार हैं। यहाँ सूत्र पाँच सौ तिरानवे हैं। बारहवीं पुस्तक में वेदनाप्रत्ययविधान से लेकर वेदनाअल्पबहुत्व पर्यन्त नौ अनुयोगद्वार प्रतिपादित किये हैं।

इस ग्रंथ में यद्यपि दो महाधिकार करके प्रथम महाधिकार में पाँच अधिकार हैं और द्वितीय महाधिकार में चार अधिकार किये हैं, फिर भी चौबीस अनुयोगद्वारों में वेदानुयोगद्वार नाम का यह द्वितीय अनुयोगद्वार है। इस वेदना नाम के अनुयोगद्वार में सोलह अनुयोगद्वार अन्तर्भेदरूप से कहे गये हैं। उस अपेक्षा से ये वेदनाप्रत्ययविधान अनुयोगद्वार आदि नवमें-दशवें से लेकर सोलह तक अनुयोगद्वार यहाँ जानना चाहिए।

इस बारहवें ग्रंथ में ५३३ सूत्रों की संख्या जानना चाहिए।

वेदना नाम के इस चतुर्थ खण्ड में कुल मिलाकर सभी सूत्र एक हजार पाँच सौ चौदह (१५१४) संख्या प्रमाण होते हैं।

तात्पर्य यह है कि नवमें ग्रंथ में कृति अनुयोगद्वार और दशवें से बारहवें तक तीन ग्रंथों में "वेदना" नाम

वर्णितम्। अतएव अस्य 'वेदनाखण्ड' नाम सार्थकमस्ति।

अग्रे चतुर्विंशति-अनुयागद्वारेषु मध्ये 'स्पर्श-कर्म-प्रकृत्यादि-द्वाविंशत्यनुयोगद्वाराणां वर्णना भविष्यति। तेषु ग्रंथेषु वर्गणानां प्रधानत्वात् 'वर्गणाखण्ड'-मिति संज्ञा वर्तते।

एषु पंचखण्डेष्वेव षोडशग्रन्था विभक्ताः सन्ति। षष्ठ्यखण्डो महाबंधनामधेयोऽस्ति इति ज्ञातव्यम्।

का अनुयोगद्वार पूरा वर्णित है, इसलिए इसका 'वेदनाखण्ड' नाम सार्थक है।

आगे चौबीस अनुयोगद्वारों में स्पर्श-कर्म-प्रकृति आदि २२ अनुयोगद्वारों की वर्णना होगी। उन ग्रंथों में वर्गणाओं की प्रधानता होने से 'वर्गणाखण्ड' यह संज्ञा है।

इन पाँच खण्डों में ही सोलह ग्रंथ विभक्त हैं तथा छठा खण्ड 'महाबंध' नाम वाला है, ऐसा जानना चाहिए।



राजगृही-तीर्थस्य माहात्म्यम् —

पावापुरी सिद्धक्षेत्रे पांडुकशिलापरिसरे नवनिर्मितमंदिरे श्रीमहावीरस्वामिनस्तदवगाहनाप्रमाणप्रवाल-वर्णीय-प्रतिमायाः पंचकल्याणकप्रतिष्ठां मार्गशीर्षपंचम्याः प्रारभ्य दशमीपर्यंतं कारयित्वा राजगृहीतीर्थे वयं समागताः।

अधुनात्र राजगृहीतीर्थक्षेत्रे मार्गशीर्षशुक्लैकादश्या आरभ्य पूर्णिमापर्यन्ता भगवतः श्रीमुनिसुव्रतनाथस्य जन्मभूमौ तस्यैव भगवतः पञ्चकल्याणकप्रतिष्ठा भवन्ती आस्ते।

श्रीमुनिसुव्रतनाथस्य जीवनवृत्तम् —

वर्तमानावसर्पिणीकालस्य चतुर्विंशतितीर्थकरपरम्परायां विंशतितमोऽयं भगवान् वर्तमानकाले विहारप्रान्तस्य नालंदा-जनपदे स्थितराजगृहीनगर्यां द्वादशलक्षषोडशसहस्र-पञ्चशतत्रिंशद्वर्षपूर्वं अजायत। अस्य भगवतो गर्भ-जन्म-तपःकेवलज्ञानकल्याणान्यत्रैव बभूवुः। सम्मदशिखरे निर्जरनामकूटात् निर्वाणं च प्राप।

पिता सुमित्रो महाराजः, माता सोमा महाराज्ञी, हरिवंशतिलकप्रभुः वैदूर्यमणिसन्निभः कान्तिमान्, शरीरोत्सेधो विंशतिधनुप्रमाणं, त्रिंशत्सहस्रवर्षायुष्कः। भगवान् मुनिसुव्रतनाथः श्रावणकृष्णाद्वितीयायां गर्भकल्याणकं संप्राप्य वैशाखकृष्णाद्वादश्यां जन्म गृहीतवान्। द्वाविंशतिसहस्रपञ्चशतवर्षानन्तरं राज्यभारं स्वपुत्राय दत्त्वा तत्रैव नगर्याः बहिर्नीलवननामोद्याने वैशाखकृष्णादशम्यां चंपकवृक्षतले दीक्षामादाय महामुनिः छद्मस्थकाले एकवर्षं व्यतीत्य पुनः तत्रैव चंपकवृक्षतले वैशाखकृष्णानवम्यां केवलज्ञानमवाप्नोत्। भगवत्समवसरणे श्रीमल्लिसेनादयोऽष्टादशगणधरदेवाः, त्रिंशत्सहस्रमुनयः, आर्थिकापुष्पदन्तागणिनी,

राजगृही तीर्थ का माहात्म्य —

पावापुरी सिद्धक्षेत्र में पाण्डुकशिला परिसर में नवनिर्मित मंदिर के अंदर श्री महावीर स्वामी की अवगाहना प्रमाण (७ हाथ की) प्रवाल — मूंगावर्णी लाल प्रतिमा की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा मगसिर शुक्ला पंचमी से प्रारंभ करके दशमी तक करवाकर हम लोग संघ सहित राजगृही आ गये। पुनः राजगृही तीर्थक्षेत्र पर मगसिर शुक्ला एकादशी से लेकर पूर्णिमा पर्यन्त भगवान् श्री मुनिसुव्रतनाथ की जन्मभूमि में उन्हीं मुनिसुव्रत भगवान् की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई।

श्री मुनिसुव्रतनाथ का जीवनवृत्त —

वर्तमान अवसर्पिणीकाल की चौबीस तीर्थकर परम्परा में ये बीसवें भगवान् वर्तमानकाल में बिहार प्रान्त के नालंदा जिले में स्थित राजगृही नगरी में बारह लाख सोलह हजार पाँच सौ तीस (१२१६५३०) वर्ष पूर्व जन्मे थे। इन भगवान् के गर्भ-जन्म-तप और केवलज्ञान ये चार कल्याणक यहीं हुए और इन्होंने सम्मदशिखर के निर्जर कूट से निर्वाणपद को प्राप्त किया था।

उनके पिता सुमित्र महाराज और माता महारानी सोमा थीं। हरिवंश के तिलक वे प्रभु वैदूर्यमणि (नीलमणि) के समान कान्ति वाले थे, उनके शरीर की ऊँचाई २० धनुष प्रमाण और आयु ३० हजार वर्ष थी। भगवान् मुनिसुव्रतनाथ ने श्रावण कृष्णा द्वितीया को माता के गर्भ में आकर गर्भकल्याणक को प्राप्त किया और वैशाख कृष्णा द्वादशी को जन्म लिया। २२ हजार ५०० वर्ष के अनन्तर वे अपने पुत्र को राज्यभार सौंपकर उसी राजगृही नगरी के बाहर नीलवन नामक उद्यान में वैशाख कृष्णा दशमी को चंपक वृक्ष के नीचे दीक्षा धारण करके महामुनि बन गये। छद्मस्थ काल में उन्होंने एक वर्ष व्यतीत करके पुनः उसी चंपकवृक्ष के नीचे

पंचाशत्सहस्रार्थिकाः, एकलक्षश्रावकाः, त्रिलक्षप्रमाणाश्राविकाश्च असंख्यातदेवदेवांगनाः, भगवतः शासनदेवः वरुणयक्षः, बहुरूपिणीदेवीयक्षिणी शासनदेवी प्रसिद्धा।

प्रभुः सम्मेदशिखरपर्वतस्योपरि एकमासपर्यंतं योगं निरुद्ध्य फाल्गुनकृष्णाद्वादश्यां तिथौ आत्मनः परमानन्दस्वरूपं सिद्धधाम अवाप। इमं श्रीमुनिसुव्रततीर्थकरमहमपि भक्त्या नमस्करोमि।

टीकापूर्तिः — अद्य प्रभोर्दीक्षाकल्याणकप्रतिष्ठातिथौ वीराब्दे त्रिंशदुत्तरपंचविंशतिशततमे मार्गशीर्षशुक्ला-त्रयोदश्यां विंशतितमतीर्थकरभगवंतं श्रीमुनिसुव्रतनाथं मुहुर्मुहुर्नमस्कृत्य पुनः अंतिमतीर्थकरश्रीमहावीरस्वामिनं च वंदित्वा प्रभोः मुनिसुव्रतनाथस्य गर्भजन्मदीक्षाकेवलज्ञानपवित्रतीर्थं श्रीसन्मतिनाथस्य प्रथमदेशनाभूमिं च वन्दमानया मया महद्दर्शभावेन श्रीषट्खण्डागमग्रन्थेषु द्वादशग्रन्थस्य एषा सिद्धान्तचिंतामणिटीका परिपूर्यते।

ग्रन्थकर्ता द्विविधः कथ्यते। तथाहि —

कत्तारो दुवियप्पो णादव्वो अत्थगंथभेदेहिं।

दव्वादचउपयारेहिं भासिमो अत्थकत्तारं^१॥५५॥

आकर वैशाख कृष्णा नवमी को केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

भगवान के समवसरण में श्री मल्लिसेन आदि अठारह गणधरदेव थे, तीस हजार मुनि थे, आर्थिका पुष्पदन्ता नाम की गणिनी एवं पचास हजार आर्थिकाएँ थीं, एक लाख श्रावक तथा तीन लाख प्रमाण श्राविकाएँ थीं, असंख्यात देव-देवियाँ थे, भगवान के शासन देव वरुणयक्ष एवं शासनदेवी बहुरूपिणीदेवी यक्षिणी ये सभी प्रसिद्धि को प्राप्त हुए हैं।

प्रभु ने सम्मेदशिखर पर्वत के ऊपर एक मास तक योग का निरोध करके फाल्गुन कृष्णा द्वादशी तिथि को आत्मा के परमानन्दस्वरूप सिद्धधाम — मोक्ष को प्राप्त किया था। ऐसे श्री मुनिसुव्रत भगवान को मेरा भक्तिपूर्वक नमस्कार होवे।

टीका की पूर्णता —

आज प्रभु के पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के मध्य दीक्षाकल्याणक के दिन वीर निर्वाण संवत् २५३० में मगसिर शुक्ला त्रयोदशी को बीसवें तीर्थकर भगवान श्री मुनिसुव्रतनाथ को बारम्बार नमस्कार करके पुनः अंतिम तीर्थकर श्री महावीर स्वामी को वंदन करके प्रभु मुनिसुव्रतनाथ के गर्भ-जन्म-दीक्षा एवं केवलज्ञान से पवित्र तीर्थ को तथा श्री सन्मतिनाथ की प्रथम देशनाभूमि राजगृही नगरी की वंदना करते हुए अत्यन्त हर्षित भावपूर्वक श्रीषट्खण्डागम ग्रंथों में बारहवें ग्रंथ की यह सिद्धान्तचिंतामणिटीका मेरे द्वारा पूर्ण की जा रही है।

ग्रंथकर्ता दो प्रकार के कहे हैं। जो इस प्रकार हैं —

श्लोकार्थ — अर्थकर्ता और ग्रंथकर्ता के भेद से कर्ता के दो भेद जानना चाहिए। उनमें से द्रव्यादिक चार प्रकार से अर्थकर्ता का निरूपण करते हैं॥५५॥

इस प्रकार तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में श्रीयतिवृषभाचार्य ने तीर्थकर श्री महावीर स्वामी को द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव की अपेक्षा अर्थशास्त्र का कर्ता कहा है।

भगवान् महावीरस्वामी वैशाखशुक्लादशम्यां जृम्भिकाग्रामे ऋजुकूलानदीतीरे सालवृक्षस्य तले शुक्लध्यानान्निना घातिकर्माणि निहत्य दिव्यकेवलज्ञानमवाप। तत्काले एव सौधर्मेन्द्राज्ञया धनपतिः पंचसहस्रधनूषि आकाशांगणे गत्वा दिव्यसमवसरणरचनां व्यधात्। चतुर्णिकायदेवैः समन्विता द्वादशगणवेष्टिता प्रभोः सभा शुशुभे किंतु प्रभोर्दिव्यध्वनिर्न बभूव। सर्वत्र श्रीविहारो भूत्वा राजगृहीनगर्या विपुलाचलपर्वतस्योपरि प्रभोः समवसरणरचना संजाता।

सौधर्मेन्द्रेण दिव्यध्वनेरभावकारणं संचिन्त्य युक्त्या गोतमगोत्रीय इन्द्रभूति-विप्रोऽत्र समवसरणे आनीतः। असौ विप्रवर्यः श्रीमहावीरस्वामिनः समवसरणे मानस्तंभमालोक्य गलितमदो भूत्वा सम्यग्दर्शनेन समन्वितो प्रभोः शिष्यत्वं स्वीकृत्य जैनैश्चरीदीक्षां जग्राह। तत्क्षणे एव अयं महामुनिः इन्द्रभूतिः श्री गौतमः गणधरपदवीं संप्राप्य मत्यादिचतुर्ज्ञानानि उत्पाद्य सप्तर्द्धिसमन्वितो बभूव।

तदानीमेव श्रावणकृष्णाप्रतिपत्तिथौ श्रीमहावीरस्वामिनः दिव्यध्वनिः निरगच्छत्।

उक्तं च तिलोयपण्णत्तिग्रन्थे —

जोयणपमाणसंठितिरियामरमणुवणिवहपडिबोहो।

मिदुमधुरगभीरतराविसदविसयसयलभासाहिं॥६०॥

अट्टरस महाभासा खुल्लयभासा वि सत्तसयसंखा।

अक्खरअणक्खरप्पय सण्णीजीवाण सयलभासाओ॥६१॥

भगवान् महावीर स्वामी ने वैशाख शुक्ला दशमी के दिन जृम्भिका ग्राम में ऋजुकूला नदी के तट पर साल वृक्ष के नीचे शुक्लध्यान की अग्नि के द्वारा घातिया कर्मों का नाश करके दिव्य केवलज्ञान को प्राप्त किया था। तत्काल ही सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से धनपति कुबेर ने पाँच हजार धनुष ऊपर आकाश में अधर दिव्य समवसरण की रचना बना दी थी, चारों निकाय के देवों से समन्वित बारहगण — सभा से वेष्टित प्रभु महावीर उस समवसरण के मध्य कमलासन पर विराजमान थे किन्तु उनकी दिव्यध्वनि नहीं खिरी थी। सभी जगह विहार होकर राजगृही नगरी में विपुलाचल पर्वत के ऊपर प्रभु के समवसरण की रचना हो गई अर्थात् विपुलाचल पर्वत पर समवसरण रचना में भगवान् महावीर स्वामी विराजमान हो गये।

तब सौधर्म इन्द्र भगवान् की दिव्यध्वनि के न खिरने का कारण सोचकर युक्ति से गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति ब्राह्मण को भगवान् के समवसरण में ले आये।

उन ब्राह्मण महोदय ने श्री महावीर स्वामी के समवसरण में मानस्तंभ को देखकर गलितमद — मानरहित होकर सम्यग्दर्शन से समन्वित होकर — सम्यग्दृष्टि बनकर प्रभु की शिष्यता को स्वीकार करके जैनैश्चरी दीक्षा ग्रहण कर ली। तत्क्षण ही ये महामुनि इन्द्रभूति श्री गौतम स्वामी गणधर पदवी को प्राप्त करके मति आदि चार ज्ञान को उत्पन्न करके सप्त ऋद्धियों से समन्वित हो गये। उसी समय श्रावण कृष्णा प्रतिपदा तिथि को श्री महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि खिरने लगी।

जैसा कि तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में वर्णन आया है —

गाथार्थ — जो एक योजनप्रमाण समवसरण सभा में स्थित तिर्यंच, देव और मनुष्यों के समूह को प्रतिबोधित करने वाले हैं, संज्ञी जीवों की अक्षर और अनक्षररूप अठारह महाभाषा तथा सात सौ छोटी भाषाओं में परिणत हुई और तालु, दंत, ओंठ तथा कण्ठ के हलन-चलनरूप व्यापार से रहित होकर एक ही

एदासिं भासाणं तालुवदंतोडुकंठवावारं।
 परिहरिय एक्ककालं भव्वज्जणाणंदकरभासो॥६२॥
 भावणवेंतरजोइसियकप्पवासेहिं केसवबलेहिं।
 विज्जाहरेहिं चक्किप्पमुहेहिं णरेहिं तिरिएहिं॥६३॥
 एदेहिं अण्णेहिं विरचिदचरणारविंदजुगपूजो।
 दिट्ठसयलट्ठसारो महवीरो अत्थकत्तारो॥६४॥
 सुरखेयरमणहरणे गुणणामे पंचसेलणयरम्मि।
 विउलम्मि पव्वदवरे वीरजिणो अट्ठकत्तारो॥६५॥
 चउरस्सो पुव्वाए रिसिसेलो दाहिणाए वेभारो।
 णइरिदिदिसाए विउलो दोण्णि तिकोणट्ठिदायारा॥६६॥
 चावसरिच्छो छिण्णो वरुणाणिलसोमदिसविभागेसु।
 ईसाणाए पंडू वण्णा सव्वे कुसग्गपरियरणा^१॥६७॥

अत्र तीर्थे संप्रति रत्नगिरिनामपर्वते प्रभोः श्रीमुनिसुव्रतनाथस्य दीक्षाकल्याणक-केवलज्ञानकल्याणकाभ्यां पवित्रचरणचिन्हानि वर्तन्ते।

एत्थावसप्पिणीए चउत्थकालस्स चरिमभागम्मि।
 तेत्तीसवासअडमासपण्णरसदिवससेसम्मि ॥६८॥

समय में भव्यजनों को आनन्द करने वाली भाषा (दिव्यध्वनि) के स्वामी हैं॥६०-६१-६२॥

भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और कल्पवासी देवों के द्वारा तथा नारायण, बलभद्र, विद्याधर और चक्रवर्ती आदि प्रमुख मनुष्य, तिर्यच और अन्य भी ऋषि-महर्षियों से जिनके चरणारविन्दयुगल की पूजा की गई है और जिन्होंने सम्पूर्ण पदार्थों के सार को देख लिया है, ऐसे महावीर भगवान (द्रव्य की अपेक्षा) अर्थागम के कर्ता हैं। देव और विद्याधरों के मन को मोहित करने वाले और सार्थक नाम से प्रसिद्ध पंचशैल (पंच पहाड़ों से सुशोभित) नगर अर्थात् राजगृही नगरी में, पर्वतों में श्रेष्ठ विपुलाचल पर्वत पर श्री वीरजिनेन्द्र (क्षेत्र की अपेक्षा) अर्थशास्त्र के कर्ता हुए॥६३-६४-६५॥

राजगृह नगर के पूर्व में चतुष्कोण ऋषिशैल, दक्षिण में वैभार और नैऋत्य दिशा में विपुलाचल पर्वत है। ये दोनों, वैभार और विपुलाचल पर्वत, त्रिलोक आकृति से युक्त हैं॥६६॥

पश्चिम, वायव्य और सोम (उत्तर) दिशा में फैला हुआ धनुष के आकार का छिन्न नाम का पर्वत है और ईशान दिशा में पाण्डु नाम का पर्वत है। उपर्युक्त पाँचों ही पर्वत कुशाग्रों से वेष्टित हैं॥६७॥

इस राजगृही तीर्थ पर वर्तमान में रत्नगिरि नाम के पर्वत पर प्रभु श्री मुनिसुव्रतनाथ के दीक्षाकल्याणक और केवलज्ञानकल्याणक के प्रतीक में पवित्र चरणचिन्ह बने हुए हैं।

गाथार्थ — यहाँ अवसर्पिणी के चतुर्थकाल के अन्तिम भाग में तेतीस वर्ष, आठ माह और पन्द्रह दिन शेष रहने पर वर्ष के श्रावण नामक प्रथम महीने में, कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के दिन अभिजित नक्षत्र के उदित रहने पर धर्मतीर्थ की उत्पत्ति हुई॥६८॥

वासस्स पढममासे सावणणामम्मि बहुलपडिवाए।
 अभिजीणक्खत्तम्मि य उप्पत्ती धम्मतिथस्स॥६९॥
 सावणबहुले पाडिवरुद्धमुहुत्ते सुहोदये रविणो।
 अभिजस्स पढमजोए जुगस्स आदी इमस्स पुढं^१॥७०॥

अनन्तरं श्रीगौतमस्वामी-ग्रन्थकर्ता बभूव।

उक्तं च श्रीयतिवृषभाचार्येण —

महवीरभासियत्थो तस्सिं खेत्तम्मि तत्थ काले य।
 खायोवसमविवद्धिदचउरमलमईहि पुण्णेण॥७६॥
 लोयालोयाण तहा जीवाजीवाण विविहविसयेसु।
 संदेहणासणत्थं उवगदसिरिवीरचलणमूलेण॥७७॥
 विमले गोदमगोत्ते जादेणं इंदभूदिणामेण।
 चउवेदपारगेणं सिस्सेण विसुद्धसीलेण॥७८॥
 भावसुदपज्जयेहिं परिणदमयिणा अ बारसंगाणं।
 चोद्दसपुव्वाण तहा एक्कमुहुत्तेण विरचणा विहिदो॥७९॥
 इय मूलतंतकत्ता सिरिवीरो इंदभूदिविप्पवरो।
 उवतंतं कत्तारो अणुतंतं सेसआइरिया^२॥८०॥

श्रावण कृष्णा पडिवा — प्रतिपदा (एकम्) के दिन रुद्रमुहूर्त के रहते हुए सूर्य का शुभ उदय होने पर अभिजित नक्षत्र के प्रथम योग में युग का प्रारंभ हुआ, यह स्पष्ट है॥६९-७०॥

इसके अनन्तर श्री गौतम स्वामी ग्रंथकर्ता हुए।

श्रीयतिवृषभाचार्य ने तिलोयपण्णत्ति में इसका वर्णन करते हुए कहा है —

गाथार्थ — भगवान् महावीर के द्वारा उपदिष्ट पदार्थस्वरूप, उसी क्षेत्र और उसी काल में ज्ञानावरण के विशेष क्षयोपशम से वृद्धि को प्राप्त निर्मल चार बुद्धियों (कोष्ठ, बीज, संभिन्नश्रोत्र और पदानुसारी) से परिपूर्ण लोक, अलोक और जीवाजीवादि विविध विषयों में उत्पन्न हुए संदेह को नष्ट करने के लिए श्री वीर भगवान् के चरण — मूल की शरण में आए हुए, निर्मल गौतम गोत्र में उत्पन्न हुए प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग इन चार वेदों में अथवा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, इन चार वेदों में पारंगत, विशुद्ध शील के धारक, भावश्रुतरूप पर्याय से बुद्धि की परिपक्वता को प्राप्त, ऐसे इन्द्रभूति नामक शिष्य अर्थात् गौतम गणधर द्वारा एक मुहूर्त में बारह अंग और चौदह पूर्वों की रचना रूप से ग्रथित किया गया।

इस प्रकार श्री वीर भगवान् मूलतंत्रकर्ता, ब्राह्मणों में श्रेष्ठ इन्द्रभूति गणधर उपतंत्र-कर्ता और शेष आचार्य अनुतंत्र-कर्ता हैं॥७६ से ८०॥

श्री गौतमस्वामी परिचयः —

अस्ति मगधदेशे ब्राह्मणनाम नगरं। तत्र शांडिल्यनामधेयो विप्रस्तस्य द्वे भार्ये स्थांडिला-केशरीनामधेये स्तः। प्रथमभार्यायाः द्वौ पुत्रौ गौतमः गार्ग्यश्च बभूवतुः। द्वितीयभार्यायाः भार्गवाख्य एकः पुत्रो बभूव। एषां त्रयाणां पुत्राणां इन्द्रभूति-अग्निभूति-वायुभूतिनामान्यपि आसन्।

अयं गौतमाख्यो विप्रवरः महाभिमानी ब्रह्मशालायां पंचशतशिष्याणामुपाध्यायोऽभवत्।

“अहं चतुर्दशमहाविद्यानां पारंगतो विद्वान् मत्तोऽपरे केचिदपि विद्वान्सोऽस्मिन् भूतले न सन्तीति” मन्यमानोऽयं अध्यापयति स्म।

भगवन्महावीरस्वामिनः केवलज्ञानार्कोदये सत्यपि समवसरणसभायां प्रभोर्दिव्यध्वनिर्न निर्जगाम।

षट्षष्टिदिवसानंतरं सौधर्मन्त्रो गणधराभावे भगवतो दिव्यध्वनिर्नभवतीति स्वावधिज्ञानेन निश्चित्य संप्रतिकाले गौतमोऽयं विप्रो योग्योऽस्तीति संप्रधार्य वृद्धरूपं गृहीत्वा तस्य ब्रह्मशालायां गत्वा ब्रवीति —

“भोः विप्रवर! मम गुरुः संप्रति ध्यानस्थितो मौनमादाय तिष्ठति, अत एवाहं एकस्य श्लोकस्यार्थमवबोद्धुमत्रागतोऽस्मि।

तेन गर्वेणोक्तं — यद्यहं अर्थं ज्ञापयिष्यामि तर्हि त्वं किं दास्यसि?

इन्द्रेण कथितं — यदि भवान् अर्थमकरिष्यत् तर्हि सर्वेषां समक्षेऽहं तव शिष्योऽभविष्यम् यदि भवान्

श्री गौतम स्वामी का परिचय —

मगधदेश में ब्राह्मण नाम का एक नगर है। वहाँ शाण्डिल्य नाम के ब्राह्मण थे, उनके स्थांडिला और केशरी नाम वाली दो पत्नी थीं। प्रथम पत्नी से गौतम और गार्ग्य नाम के दो पुत्र हुए। द्वितीय पत्नी से भार्गव नाम का एक पुत्र हुआ। इन तीनों पुत्रों के इन्द्रभूति-अग्निभूति और वायुभूति नाम भी थे।

उनमें से यह गौतम नाम के ब्राह्मण महाअभिमानी थे और वह अपनी ब्रह्मशाला में पाँच सौ शिष्यों को पढ़ाने वाले उपाध्याय थे।

“मैं चौदह महाविद्याओं का पारंगत विद्वान् हूँ, मेरे समान कोई दूसरे विद्वान् इस धरती पर नहीं हैं” ऐसा मानते हुए वह सभी को वेद-वेदांगों का अध्ययन कराते थे।

जब भगवान् महावीर स्वामी को केवलज्ञानसूर्य के उदय होने पर भी समवसरण सभा में प्रभु की दिव्यध्वनि प्रगट नहीं हुई। तब छ्यासठ दिनों के पश्चात् सौधर्म इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से यह जानकर कि “गणधर के अभाव में भगवान् की दिव्यध्वनि नहीं प्रगट हो रही है” और वर्तमान में एक गौतम ब्राह्मण ही इस योग्य हैं, ऐसा सोचकर वे स्वयं विक्रिया से एक वृद्ध पुरुष का रूप धारण करके गौतम की ब्रह्मशाला में जाकर कहते हैं—

हे विप्रवर! मेरे गुरु इस समय ध्यान में स्थित होकर मौन व्रत लेकर बैठे हैं, इसलिए मैं आपसे एक श्लोक का अर्थ जानने के लिए आया हूँ।

उस ब्राह्मण ने गर्व के साथ उत्तर दिया —

यदि मैं तुम्हारे श्लोक का अर्थ बता दूँगा, तो तुम मुझे क्या दोगे ?

इन्द्र ने कहा —

यदि आप अर्थ बता देंगे, तो सभी के सामने मैं आपका शिष्य बन जाऊँगा और यदि आप उसका अर्थ

अर्थ नावबोधयिष्यत् तर्हि स्वविद्यार्थिभिः सह उभयभातृभ्यामपि सार्धं मम गुरोर्शिष्योऽभविष्यत्।

गौतमेन एतद्वचनं स्वीकृतम्।

तदानीं वृद्धरूपधारिणा इन्द्रेण प्रोक्तम् —

“धर्मद्वयं त्रिविधकालसमग्रकर्म, षट्द्रव्यकायसहिताः समयैश्च लेश्याः।

तत्त्वानि संयमगती सहितं पदार्थै-रंगप्रवेदमनिशं वद चास्तिकायम्॥”

तदा मनसि संचिन्त्य कथितं — भोः विप्र! त्वं स्वगुरोः पार्श्वे चल, तत्रैवाहं अर्थं ज्ञापयित्वा तव गुरुणा सार्धं वादं करिष्यामि।

सौधर्मेन्द्रः एतदाकर्ण्य प्रसन्नो भूत्वा सर्वैः सार्धं चचाल। भगवन्महावीर स्वामिनः समवसरणसन्निधौ आगच्छन्तः सर्वे राजगृहीविपुलाचलस्योपरि समाजग्मुः।

मानस्तंभं विलोक्य तत्क्षणे एव गौतमविप्रस्य मानं गलितं जातं, तस्य दर्शनमोहतिमिरापहरणे सति सम्यग्दर्शनमाविर्बभूव।

तदानीं इन्द्रभूतिनामधेयोऽयं विप्रो भगवन्तं स्तुवानः पुनः पुनः नमस्कारं चकार। तदनु स्वभातृभ्यां सर्वशिष्यैश्च सार्धं प्रभोः पादमूले जैनेश्वरीदीक्षामादाय प्रभोः शिष्यत्वं स्वीचकार। अन्तर्मुहूर्ते एव गौतमस्वामी महामुनिः मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानैः सह सप्तर्द्धिसमन्वितो बभूव। तथा च तत्काले एव भगवतां प्रथमगणधरोऽभवत्। उभौ भ्रातरौ अपि स्वपंचशत-पंचशतशिष्यैः सार्धं दीक्षितौ भूत्वा तौ अपि गणधरौ बभूवतुः।

नहीं बता पाएंगे तो आप अपने सभी विद्यार्थियों एवं दोनों भाइयों के साथ मेरे गुरु के शिष्य बन जाना।

गौतम ने यह शर्त स्वीकार कर ली।

तब वृद्धरूपधारी इन्द्र ने अपना श्लोक सुनाना प्रारंभ कर दिया —

श्लोकार्थ — दो धर्म, तीन प्रकार का काल, सम्पूर्ण कर्म, छह द्रव्य और काय से सहित समय (शास्त्र), लेश्या, तत्त्व, संयम, गति से सहित पदार्थ और अंगप्रवेद और अस्तिकाय आदि के बारे में आप बतलाइये।

तब गौतम श्लोक के अर्थ को न समझ पाने के कारण मन में कुछ सोचकर बोले — हे ब्राह्मण देवता ! तुम अपने गुरु के पास मुझे ले चलो, वहीं पर मैं इसके अर्थ को बताकर तुम्हारे गुरु के साथ वाद — शास्त्रार्थ करूंगा।

सौधर्म इन्द्र यह सुनकर खुश होकर उन सभी के साथ चल पड़ा। भगवान् महावीर स्वामी के समवसरण की सन्निधौ में आते हुए वे सभी राजगृही के विपुलाचल पर पहुँच गये।

वहाँ सर्वप्रथम मानस्तंभ को देखकर उसी क्षण गौतम ब्राह्मण का अहंकार चूर-चूर हो गया उसके हृदय से दर्शनमोहनीय कर्म का अंधकार नष्ट होते ही सम्यग्दर्शन प्रगट हो गया।

उस समय इन्द्रभूति नाम के इस विप्र ने भगवान की स्तुति करते हुए पुनः-पुनः उन्हें नमस्कार किया। पुनः अपने दोनों भाइयों एवं समस्त शिष्यों के साथ प्रभु के पादमूल में जैनेश्वरी दिगम्बर दीक्षा ग्रहण कर प्रभु की शिष्यता स्वीकार कर ली। अन्तर्मुहूर्त में ही वे गौतम स्वामी महामुनि मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय ज्ञानों के साथ सात ऋद्धियों से समन्वित हो गये तथा वे उसी क्षण भगवान के प्रथम गणधर बन गये। दोनों भाई भी उनके साथ ही दीक्षित होकर भगवान के गणधर बन गये तथा उनके पाँच सौ शिष्य भी दीक्षित होकर दिगम्बर मुनि बन गये।

गौतमस्वामिना शिष्ये संजाते सति प्रभोर्दिव्यध्वनिर्निर्जगाम। तदानीं समवसरणे असंख्यातभव्या देवाः देव्यश्च, संख्याता मनुष्याः संख्याताः तिर्यञ्चश्च — द्वादशगणाः भगवतो दिव्यध्वनिस्वरूपाममृतवाणीं पायं पायं संतुष्टास्संतुष्टाः बभूवुः।

श्रावणकृष्णाप्रतिपत्तिथौ महावीरप्रभोर्धर्मतीर्थोत्पत्तिदिवसे एव द्वादशांगरचना संजाता —

उक्तं च —

विनेयोऽहं कृतश्राद्धो जीवतत्त्वविनिश्चये। सौधर्मपूजितः पञ्चशतब्राह्मणसूनुभिः॥३६७॥

श्रीवर्धमानमानम्य संयमं प्रतिपन्नवान्। तदैव मे समुत्पन्नाः परिणामविशेषतः॥३६८॥

ऋद्धयः सप्तसर्वाङ्गानामप्यर्थपदान्यतः। भट्टारकोपदेशेन श्रावणे बहुले तिथौ॥३६९॥

पक्षादावर्थरूपेण सद्यः पर्याणमन् स्फुटम्। पूर्वाण्हे पश्चिमे भागे पूर्वाणामप्यनुक्रमात्॥३७०॥

इत्यनुज्ञातसर्वाङ्गपूर्वार्थो धीचतुष्कवान्। अङ्गानां ग्रन्थसन्दर्भं पूर्वात्रौ व्यधामहम्॥३७१॥

पूर्वाणां पश्चिमे भागे ग्रन्थकर्ता ततोऽभवम्। इति श्रुतर्द्धिभिः पूर्णोऽभूव गणभृदादिमः॥३७२॥^१

संप्रति श्री गौतमस्वामिमुखकमलविनिर्गताः चतस्रो रचनाः संप्राप्यन्ते। चैत्यभक्तिः, दैवसिक-अष्टदैवसिक^२-पाक्षिकप्रतिक्रमणदण्डकाः, वीरभक्तिः गणधरवलयमंत्राश्च।

गौतम स्वामी के द्वारा प्रभु की शिष्यता स्वीकार करने पर तुरंत भगवान् महावीर की दिव्यध्वनि प्रगट हो गई — खिरने लगी। उस समय समवसरण में असंख्यात भव्य प्राणी, देव-देवियाँ, संख्यात मनुष्य और संख्यात तिर्यच अर्थात् बारह सभाओं में बैठे सभी जीवगण भगवान् की दिव्यध्वनि स्वरूप अमृतवाणी का पान कर-करके संतुष्ट और संतुष्ट हो गये।

उस श्रावण कृष्णा प्रतिपदा (एकम) तिथि को महावीर प्रभु के धर्मतीर्थ उत्पत्ति के दिन ही द्वादशांग की रचना हो गई।

आचार्य श्री गुणभद्र स्वामी ने उत्तर पुराण में कहा है —

श्लोकार्थ — श्री गौतम गणधर समवसरण में राजा श्रेणिक से कहते हैं कि काललब्धि आदि की कारण सामग्री मिलने पर मुझे जीवतत्त्व का निश्चय हो गया और मैं उसकी श्रद्धा करके भगवान् का शिष्य बन गया। पुनः सौधर्म इन्द्र ने मेरी पूजा की और मैंने पाँच सौ ब्राह्मण पुत्रों के साथ श्री वर्धमान स्वामी को नमस्कार कर संयम धारण कर लिया। परिणामों की विशेष शुद्धि होने से मुझे उसी समय सात ऋद्धियाँ प्राप्त हो गईं। तदनन्तर भट्टारक वर्धमान स्वामी के उपदेश से मुझे श्रावण बदी प्रतिपदा के दिन पूर्वाण्ह काल में समस्त अंगों के अर्थ और पद स्पष्ट जान पड़े। इसी तरह उसी दिन अपराण्ह काल में अनुक्रम से पूर्वों के अर्थ तथा पदों का भी स्पष्ट बोध हो गया। इस प्रकार जिसे समस्त अंगों तथा पूर्वों का ज्ञान हुआ है और जो चार ज्ञान से सम्पन्न हैं, ऐसे मैंने रात्रि के पूर्व भाग में अंगों की और पिछले भाग में पूर्वों की ग्रंथ रचना की। उसी समय से मैं ग्रंथकर्ता हुआ। इस तरह श्रुतज्ञानरूपी ऋद्धि से पूर्ण हुआ मैं भगवान् महावीर स्वामी का प्रथम गणधर हो गया।

वर्तमान में श्री गौतम स्वामी के मुखकमल से निकली हुई चार रचनाएँ प्राप्त होती हैं — चैत्यभक्ति, दैवसिक-अष्टमी संबंधी (आठ दिन में किया जाने वाला अष्टमी का प्रतिक्रमण) पाक्षिक प्रतिक्रमण के

देववन्दनाटीकाकारश्रीप्रभाचन्द्राचार्येण कथितमास्ते —

“श्रीवर्धमानस्वामिनं प्रत्यक्षीकृत्य गौतमस्वामी जयतीत्यादिस्तुतिमाह” —

जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृम्भिता - वरमुकुटच्छायाद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ।

कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणो। विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः॥१॥

इयं चैत्यभक्तिः पंचत्रिंशत्पद्यैः अतीव मधुर-सरसोत्तमास्ति। पंचगुरूणां नवदेवानां चैत्यचैत्यालयादीनां

तथा च प्रभोर्वीतरागमुद्राया अति- महत्त्वपूर्णवर्णना दृश्यते —

अताम्रनयनोत्पलं, सकलकोपवहेर्जयात्, कटाक्षशरमोक्षहीन - मविकारतोद्रेकतः॥

विषादमदहानितः, प्रहसितायमानं सदा, मुखं कथयतीव ते, हृदयशुद्धिमात्यन्तिकीम्॥३१॥

दैवसिक प्रतिक्रमणटीकायां श्री प्रभाचन्द्राचार्येण प्रोक्तं —

“श्रीगौतमस्वामीमुनीनां दुःषमकाले दुष्परिणामादिभिः प्रतिदिनमुपार्जितस्य कर्मणो विशुद्ध्यर्थं

प्रतिक्रमणलक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलार्थमिष्टदेवताविशेषं नमस्करोति”^१ —

श्रीमते वर्धमानाय नमो नमितविद्विषे।

यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदायते^१॥१॥ इत्यादि।

दण्डकपाठ, वीरभक्ति और गणधरवलय मंत्र।

देववन्दना (सामायिक पाठ) के टीकाकार श्रीप्रभाचन्द्राचार्य ने कहा है—

“श्री वर्धमान स्वामी को प्रत्यक्ष करके गौतम स्वामी ने “जयति” इत्यादि स्तुति में कहा है—

श्लोकार्थ—हे भगवन्! आप जयशील होवें। आपके चरणकमल के नीचे स्वर्णकमलों की रचना इन्द्र करते हैं और आप उनके ऊपर अधर विहार करते हैं। उस समय इन्द्रों के झुके हुए मस्तक के मुकुटों की मणियों की कान्तिप्रभा से चुम्बित आपके चरण कमल अति सुशोभित होते हैं। आपके पद का आश्रय लेकर जन्मजात विरोधी कलुषित चित्त वाले जन्तूगण भी आपस का वैर छोड़कर परस्पर में मैत्रीभाव धारण कर लेते हैं॥१॥

यह चैत्यभक्ति ३५ पद्यों से सहित अतीव मधुर-सरस और उत्तम है। इसमें पंचमहागुरुओं का, नव देवों का, चैत्य-चैत्यालय आदि का तथा प्रभु की वीतराग मुद्रा का अति महत्त्वपूर्ण वर्णन देखा जाता है—

श्लोकार्थ—हे नाथ! आपके नेत्र कमल लालिमा से रहित हैं, क्योंकि आपने सम्पूर्ण क्रोधरूपी अग्नि को जीत लिया है। आपके नेत्र कटाक्षरूपी बाण के छोड़ने से रहित हैं, क्योंकि आपने सम्पूर्ण विकार और उद्रेक को नष्ट कर दिया है। आपके मुख पर सदैव प्रसन्नता दिखती है, क्योंकि आप समस्त मद और विषाद से रहित हो चुके हैं तथा आपकी मन्द-मन्द मुस्कान आपके अन्तःकरण की पूर्ण शुद्धि को बतलाती है॥३१॥

दैवसिक प्रतिक्रमण की टीका में श्रीप्रभाचन्द्राचार्य ने कहा है—

“श्री गौतम स्वामी ने दुःषमकाल में मुनियों के दुष्परिणाम आदि के निमित्त से प्रतिदिन उपार्जित होने वाले कर्मों की विशुद्धि के लिए प्रतिक्रमण लक्षण वाले उपाय—पुरुषार्थ को बताया है, उसी प्रतिक्रमण के प्रारंभ में मंगल के लिए इष्ट देवता विशेष को गौतम स्वामी नमस्कार करते हैं—

श्लोकार्थ—विद्वेषियों के द्वारा भी जो नमित हैं अर्थात् जिनके चरणकमलों में विद्वेषीजन भी नमन करते हैं और जिनके केवलज्ञान के अन्तर्गत होकर तीनों लोक गोष्पद—गाय के खुर के समान लघुरूप धारण कर लेते हैं अर्थात् तीनों लोकों को जो गाय के खुर के समान शीघ्र जान लेते हैं ऐसे श्रीमान् वर्धमान भगवान के लिए मेरा नमस्कार है॥१॥

अग्रे बृहत्प्रतिक्रमणटीकायामपि कथितं। तथाहि —

“श्री गौतमस्वामी-दैवसिकादिप्रतिक्रमणादिभिर्निराकर्तुमशक्यानां दोषानां निराकरणार्थं बृहत्प्रतिक्रमण-लक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलार्थमिष्ट देवताविशेषं नमस्कुर्वन्नाह “णमो जिणाणमित्यादि।”

षट्खण्डागममहाग्रन्थेऽपि एवमेव कथितमस्ति —

“एवं दव्वट्टियजणाणुग्गहट्टं णमोक्कारं गोदमभडारओ महाकम्मपयडिपाहुडस्स आदिमिह काऊण पज्जवट्टियणयाणुग्गहट्टमुत्तरसुत्ताणि भणदि”-णमो ओहिजिणाणं।”

एवमेव वीरभक्तिरपि श्री गौतमस्वामिमुखकमलविनिर्गतास्ति —

“यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद्-द्रव्याणि तेषां गुणान्।

पर्यायानपि भूतभाविभवतः, सर्वान् सदा सर्वदा।

जानीते युगपत् प्रतिक्षणमतः, सर्वज्ञ इत्युच्यते।

सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते, वीराय तस्मै नमः॥१॥”

इत्थं श्रीगौतमस्वामी — प्रथमगणधरदेवः त्रिंशद्वर्षपर्यंतं भगवन्महावीरसमवसरणे द्वादशगणानामीशः प्रभोर्दिव्यध्वनेः सर्वत्र विस्तीरकृत्य मुख्यश्रोतुः श्रेणिकमहाराजस्य नानाप्रश्नानां समाधानं कारं कारं मादृशानाम-संख्यप्राणिगणानामुपकारको बभूव।

कार्तिककृष्णामावस्यायां भगवन्महावीरस्वामिनि मोक्षं गतेऽयं श्रीगौतमस्वामी-केवलज्ञानमवाप्नोत्।

उक्तं चोत्तरपुराणे —

आगे बृहत्प्रतिक्रमण की टीका में भी कहा है। जो इस प्रकार है —

“श्री गौतम स्वामी ने दैवसिक आदि प्रतिक्रमणों के द्वारा जिन दोषों का निराकरण होना अशक्य है उन दोषों का निराकरण करने हेतु बृहत् प्रतिक्रमणलक्षण उपाय को बताते हुए उसके आदि में मंगल के लिए इष्टदेवता विशेष को नमस्कार करते हुए “णमो जिणाणं” इत्यादि पाठ कहा है।

षट्खण्डागम महाग्रंथ में भी इसी प्रकार का कथन है —

“इस प्रकार द्रव्यार्थिक नय को जानने वालों के ऊपर अनुग्रह हेतु गौतम भट्टारक महाकर्म प्रकृति प्राभृत को आदि में नमस्कार करके पर्यायार्थिकनय के ज्ञायक शिष्यों के अनुग्रहार्थ उत्तर सूत्रों को कहते हैं — “णमो ओहिजिणाणं” अर्थात् “अवधिजिनों को नमस्कार हो।”

इसी प्रकार वीरभक्ति भी श्री गौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत है —

श्लोकार्थ — जो जगत् के समस्त चराचर द्रव्यों को, उनके गुणों को एवं उनकी भूत-भविष्यत्-वर्तमान काल संबंधी समस्त पर्यायों को भी प्रतिक्षण युगपत् — एक साथ जानते हैं वे सर्वज्ञ कहलाते हैं। उन सर्वज्ञ — जिनेश्वर महति महावीर भगवान के लिए मेरा बारम्बार नमस्कार है॥१॥

इस प्रकार भगवान महावीर के समवसरण में द्वादश गणों के ईश प्रथम गणधरदेव श्री गौतम स्वामी ने तीस वर्ष तक प्रभु की दिव्यध्वनि को सर्वत्र (पूरे आर्यखण्ड में) फैलाकर मुख्य श्रोता श्री श्रेणिक महाराजा के नाना प्रश्नों का समाधान कर-करके मुझ सदृश असंख्य प्राणियों का उपकार किया है।

कार्तिक कृष्णा अमावस्या को भगवान् महावीर स्वामी के मोक्ष चले जाने पर उन गौतम स्वामी ने उसी दिन सायंकाल में केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया था।

उत्तरपुराण में कहा है —

वीर निर्वृतिसंप्राप्तदिन, एवास्तघातिकः॥५१५॥

भविष्याम्यहमप्युद्यत्केवलज्ञानलोचनः।

भव्यानां धर्मदेशेन विहृत्य विषयांस्ततः॥५१६॥

केवलज्ञानार्कोदये तत्क्षणे एव इन्द्रैः श्रीगणधरकेवलिनो गंधकुटीरचना कारिता। तस्यापि श्रीगौतम-प्रभोर्दिव्यध्वनिना असंख्यभव्यगणा मोक्षपथगामिनो बभूवुः।

पुनश्च प्रथमगणधरदेवोऽपि केवली भगवान् द्वादशवर्षपर्यन्तं^१ भारतभूमौ विहरमाणो श्रीगौतमः अघातिकर्माण्यपि निहृत्य मोक्षं जगाम।

वर्तमानकाले गुणावासिद्धक्षेत्रमस्य निर्वाणतीर्थं प्रसिद्धमस्ति। तत्रापि सरोवरे मध्ये मंदिरे श्रीगणधरदेवस्य चरणचिन्हानि सन्ति।^३

अतएव इदं राजगृहीतीर्थक्षेत्रं प्रथमतः विंशतितमतीर्थकरस्य जन्मभूमिः चतुःकल्याणकैः पवित्रभूमिश्चास्ति।

अनंतरमंतिमतीर्थकरस्य श्रीमहावीरस्वामिनः प्रथमदेशनाभूमिः वर्तते। ततः प्रभृति एव वीरशासनजयंतीपर्व अद्यावधि जैनसमाजे चलति।

द्वितीयगणधरदेवस्य श्रीसुधर्माचार्यस्य निर्वाणभूमिः। अन्येषां मुनीनां श्रीवारिषेण-धन्यकुमार-अभयकुमारादीनां दीक्षाभूमिः तपश्चर्याभूमिश्चापि अस्ति।

महासतीगणिनीप्रमुखा चंदनाद्यार्थिकाणां तपश्चरणभूमिस्तथा च श्रीश्रेणिकमहाराजस्य — भावितीर्थकर-

श्लोकार्थ — गौतम स्वामी कहते हैं — जिस दिन भगवान् महावीर स्वामी को निर्वाण प्राप्त होगा, उसी दिन मैं भी घातिया कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञानरूपी नेत्र को प्रगट करने वाला होऊंगा और भव्य जीवों को धर्मोपदेश देता हुआ अनेक देशों में विहार करूंगा॥१५-१६॥

केवलज्ञानसूर्य के उदय होने पर तत्क्षण ही इन्द्रों ने श्री गणधरकेवली भगवान की गंधकुटी की रचना कर दी। उन श्री गौतम स्वामी की दिव्यध्वनि से भी असंख्य भव्यगण मोक्षपथगामी हुए हैं।

पुनश्च प्रथम गणधर देव श्री गौतम स्वामी ने भी केवली भगवान के रूप में बारह वर्ष तक भारत की भूमि पर विहार करते हुए अन्त में अघातिया कर्मों को भी नष्ट करके मोक्ष प्राप्त कर लिया।

वर्तमानकाल में गुणावां सिद्धक्षेत्र (बिहार प्रांत में) इनके निर्वाणतीर्थ के रूप में प्रसिद्ध है। वहाँ भी सरोवर के मध्य निर्मित मंदिर में श्री गणधर देव के चरणचिन्ह विराजमान हैं।

अतएव यहाँ विशेष ज्ञातव्य है कि यह राजगृही तीर्थ प्राथमिक रूप से बीसवें तीर्थकर की जन्मभूमि और उनके चार कल्याणकों से पवित्र भूमि है। उसके पश्चात् अंतिम तीर्थकर श्री महावीर स्वामी की प्रथम देशनाभूमि है। उसी समय से आज तक वीरशासन जयंती पर्व (श्रावण कृष्णा एकम्) को जैन समाज में चल रहा है।

द्वितीय गणधर देव श्री सुधर्माचार्य की निर्वाणभूमि भी राजगृही है। इसके साथ ही अन्य मुनि श्रीवारिषेण-धन्यकुमार-अभयकुमार आदि मुनियों की भी दीक्षाभूमि एवं तपोभूमि भी है।

भगवान महावीर के समवसरण की प्रमुख गणिनी महासती चंदना आदि आर्थिकाओं की तपश्चरण भूमि एवं श्रेणिक महाराज जो महापद्म नाम के भावी तीर्थकर हैं उनकी जन्मभूमि, उनके क्षायिक सम्यक्त्व संप्राप्ति

१. उत्तरपुराण पर्व ७६। २. षट्खण्डागम (धवलाटीका समन्वित) पु. ९, पृ. १३०। ३. अत्र मम प्रेरणया नवनिर्मितमंदिरे श्रीगौतमस्वामिनः पञ्चफुट-उत्तुंगखड्गासनप्रतिमा स्थापिता जाता। (कार्तिक वीर सं. २५३१, दिनांक १९-११-२००४)।

श्रीमहापद्मस्य जन्मभूमिः क्षायिकसम्यक्त्वसंप्राप्तभूमिः तीर्थकरप्रकृतिबंधकारणभूमिरपि वर्तते।

अद्यतनात् पुरा षष्ठ्यधिकपंचविंशति-शतवर्षपूर्वं अत्र प्रभोः समवसरणमागतं। अंतिमकाले अत्रत्यादेव समवसरणं पावापुर्या संप्राप्य अंतिमदिव्यध्वनिना असंख्यभव्यान् देवासुरमनुष्यादीन् संबोध्य विघटितं जातम्। तत्रत्यादेव श्रीमहावीरस्वामी त्रिंशदुत्तरपंचविंशतिशतवर्षाणि पूर्वं सिद्धिप्रासादं संप्राप्नोत्।

परमपवित्रमिदं तीर्थं समागत्याहं अत्यर्थमानंदमनुभवामि।

तीर्थकरजन्मभूमिवंदना

(मंगलचतुर्विंशतिका)

(अनुष्टुप्छंदः)

अयोध्या मंगलं कुर्या-दनन्ततीर्थकर्तृणाम्। शाश्वती जन्मभूमिर्या, प्रसिद्धा साधुभिर्नुता॥१॥
 ऋषभोऽजिततीर्थेशोऽप्यभिनंदनतीर्थकृत्। श्रीमान् सुमतिनाथश्चा-नन्तनाथजिनेश्वरः॥२॥
 पंचतीर्थकृतां गर्भ-जन्मकल्याणकादिषु। इन्द्रादिभिः सदा वंद्या, वंद्यते वंदयिष्यते॥३॥
 संप्रति कालदोषेण, शेषास्तीर्थकराः पृथक्। संजातास्ता अपि जन्म-भूमयो मंगलं भुवि॥४॥
 श्रावस्ती मंगलं कुर्यात्, संभवनाथजन्मभूः। तनुतान्मे मनःशुद्धिं, भव्यानां भवहारिणी॥५॥
 कौशाम्बी मंगलं कुर्यात्, पद्मप्रभस्य जन्मभूः। जिनसूर्यो मनोऽब्जं मे, प्रफुल्लीकुरुतादपि॥६॥

की भूमि तथा तीर्थकर प्रकृति बंध की कारणभूमि भी यही राजगृही नगरी है।

आज से (सन् २००३ से) २५६० वर्ष पूर्व यहाँ भगवान का समवसरण आया था। अंतिम समय में यहीं से भगवान का समवसरण पावापुरी में आया और वहाँ अंतिम दिव्यध्वनि के द्वारा असंख्य भव्य जीवों को देव-असुर-मनुष्यादिकों को सम्बोधित करके समवसरण विघटित हो गया, पुनः वहीं से ५३० वर्ष पूर्व श्री महावीर स्वामी ने सिद्धिप्रासाद — मोक्षमहल को प्राप्त कर लिया।

परम पवित्र इस तीर्थ पर आकर मुझे अत्यधिक आनंद की अनुभूति हो रही है।

तीर्थकर जन्मभूमि वंदना

(मंगल चतुर्विंशतिका)

श्लोकार्थ — जो अनन्त तीर्थकरों की शाश्वत जन्मभूमि के नाम से प्रसिद्ध है, साधुओं के द्वारा स्तुत्य है, ऐसी अयोध्या नगरी तीर्थभूमि हम सबका मंगल करे॥१॥

तीर्थकर श्री ऋषभदेव-अजितनाथ-अभिनंदननाथ-सुमतिनाथ और अनन्तनाथ जिनेश्वर इन पाँच तीर्थकरों के गर्भ-जन्म आदि कल्याणकों में इन्द्र उस अयोध्या नगरी की वन्दना करने आये थे अतः यह नगरी उनके द्वारा सदैव वंद्य थी, आज भी वंद्य है और आगे भी वंदनीय रहेगी॥२-३॥

वर्तमान युग में कालदोष के कारण इन पाँच तीर्थकरों से अतिरिक्त अन्य १९ तीर्थकरों ने अयोध्या से पृथक् स्थानों पर जन्म ले लिया, वे तीर्थभूमियाँ भी जगत् में मंगलकारी होवें॥४॥

तृतीय तीर्थकर भगवान संभवनाथ की जन्मभूमि श्रावस्ती हम सबका मंगल करे। वह श्रावस्ती नगरी भव्यात्माओं के लिए संसार का नाश करने वाली है, मेरे मन की शुद्धि को वृद्धिगत करे॥५॥

जिनसूर्य भगवान पद्मप्रभ की जन्मभूमि कौशाम्बी नगरी हमारा मंगल करे और मेरे मनरूपी कमल को

वाराणसी जगन्मान्या, मंगलं तनुतान्मम। जन्मभूमिः सुरैः पूज्या, सुपार्श्वपार्श्वनाथयोः॥७॥
 चन्द्रपुरी सुरैर्मान्या, मंगलं कुरुतात्सदा। चन्द्रप्रभजिनेन्द्रस्य, जन्मभूर्जन्मपावनी॥८॥
 काकंदी मंगलं कुर्यात्, पुष्पदन्तस्य जन्मभूः। आनंदं तनुताद् भूमौ, सर्वमंगलकारिणी॥९॥
 मंगलं कुरुतान्नित्यं, जन्मभूर्भद्रकावती। शीतलस्य जिनेन्द्रस्य, मनो मे शीतलं क्रियात्॥१०॥
 सिंहपुरी जगन्मान्या, मंगलं कुरुतान्मम। श्रीश्रेयांसजिनेन्द्रस्य, जन्मभूमिः शिवंकरा॥११॥
 चंपापुरी जगद्वंध्या, मंगलं तनुताद् ध्रुवं। वासुपूज्यजिनेन्द्रस्य, जन्मभूमिर्नुतामरैः॥१२॥
 सा कंपिलापुरी नित्यं, मंगलं कुरुतान्मम। मच्चित्तं विमलीकुर्यात्, विमलेश्वरजन्मभूः॥१३॥
 रत्नपुरी यतीन्द्राणां, मंगलं कुरुताच्च नः। सद्धर्मवृद्धये भूयाद्, धर्मनाथस्य जन्मभूः॥१४॥
 हस्तिनागपुरी नित्यं, मंगलं तनुतान्मम। शांतिकुंथ्वरतीर्थेशां, जन्मभूमिर्जगन्नुता॥१५॥
 या मिथिलापुरी शश्वत्, मंगलं कुरुतान्मम। जन्मभूमिः प्रसिद्धाभूत्, मल्लिनाथनमीशयोः॥१६॥

भी प्रफुल्लित करे॥६॥

तीर्थकर श्री सुपार्श्वनाथ एवं पार्श्वनाथ की जन्मभूमि जगत् में मान्य वाराणसी नगरी मेरा मंगल करे, जो कि देवों के द्वारा सदैव पूज्य है॥७॥

श्री चन्द्रप्रभ तीर्थकर प्रभु के जन्म से पवित्र एवं देवों के द्वारा मान्य जन्मभूमि चन्द्रपुरी नगरी सदैव मंगल करे॥८॥

भगवान् पुष्पदन्तनाथ की जन्मभूमि सभी के लिए मंगल करने वाली काकंदी नगरी हमारा और सबका मंगल करे और इस भारतभूमि पर आनंद का विस्तार करे— सुख की वृद्धि करे॥९॥

दशवें तीर्थकर श्री शीतलनाथ भगवान् की जन्मभूमि भद्रकावती नगरी (इसे भदिलपुरी के नाम से भी जाना जाता है) नित्य ही हम सबका मंगल करे और मेरे मन को शीतलता प्रदान करे॥१०॥

जगत् में मान्य एवं भव्यों के लिए शिवपथ को प्रदान करने वाली शिवंकर श्री श्रेयांसनाथ प्रभु की जन्मभूमि सिंहपुरी नगरी (वर्तमान में सारनाथ के नाम से प्रसिद्ध है) मेरा मंगल करे॥११॥

श्री वासुपूज्य जिनेन्द्र की जन्मभूमि मेरा निश्चित ही मंगल करे जो कि देवों से पूज्य और सम्पूर्ण संसार में वंद्य है॥१२॥

श्री विमलनाथ भगवान् की जन्मभूमि कम्पिलापुरी नित्य ही मेरा मंगल करे और मेरे चित्त—मन को विमल—पवित्र करे॥१३॥

पन्द्रहवें तीर्थकर श्री धर्मनाथ की जन्मभूमि रत्नपुरी नगरी हम सबका मंगल करे तथा यतीन्द्रों—मुनियों के सद्धर्म की वृद्धि के लिए होवे॥१४॥

तीर्थकर श्री शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की जन्मभूमि जगत्पूज्य हस्तिनापुरी नगरी नित्य ही मेरा मंगल करे॥१५॥

श्री मल्लिनाथ और नमिनाथ की जन्मभूमि जो मिथिलापुरी नगरी जगत् में प्रसिद्ध हुई है वह मिथिलापुरी नगरी मेरा शाश्वत मंगल करे॥१६॥

मंगलं संततं कुर्यात्, राजगृही सुजन्मभूः। मुनिसुव्रतनाथस्य, दद्यान्मे सुव्रतं त्वसौ॥१७॥
 शौरीपुर्यर्द्धचक्रयाद्यैः, मान्या मे मंगलं क्रियात्। इन्द्रादिभिः सदा वंद्या, नेमिनाथस्य जन्मभूः॥१८॥
 या कुण्डलपुरी पूज्या, मंगलं कुरुताद् भुवि। जन्मभूमिः प्रसिद्धास्ति, महावीरस्य संप्रति॥१९॥
 राजधानीह सिद्धार्थ-भूपतेः साधुभिर्नुता। नंदावर्तं च प्रासादं, रत्नवृष्ट्या सुमंगलम्॥२०॥
 चतुर्विंशतितीर्थेशां, षोडश जन्मभूमयः। वंद्यास्ता मंगलं कुर्युः, घ्नन्तु जन्मपरम्परां॥२१॥
 दीक्षाज्ञानस्थलं पूज्यं, प्रयागश्चाहिच्छत्रकं। जृम्भिका मंगलं कुर्यात्, पूर्णज्ञानर्द्धये भवेत्॥२२॥
 कैलाशचंपापावोर्ज-यन्तसम्मोदशृंगिषु। निर्वाणभूमयो यास्ताः, कुर्वन्तु मम मंगलम्॥२३॥
 पंचकल्याणकैः पूज्या, भूमिसरोवराद्रयः। तास्तान् ज्ञानमती याचे, दद्युः सिद्धिं च मे ध्रुवाम्॥२४॥

श्रीमुनिसुव्रतनाथभगवान्, श्री महावीरस्वामी भगवतो दिव्यध्वनिः, वीरशासनजयंती पर्व इदं राजगृही तीर्थमपि सर्वभक्त्यानां सर्वजगतामपि क्षेमं सुभिक्षं शांतिं समृद्धिं च कुर्यात्, तथा चास्माकं सिद्धये भूयादिति

श्री मुनिसुव्रतनाथ तीर्थकर की जन्मभूमि राजगृही नगरी मेरा सतत मंगल करे तथा मुझे सुव्रत — महाव्रत प्रदान करे॥१७॥

इन्द्रादि के द्वारा सदा जो वंद्य है, अर्धचक्री — नारायण श्रीकृष्ण आदि के द्वारा जो मान्य हुई है, ऐसी तीर्थकर श्री नेमिनाथ भगवान की जन्मभूमि शौरीपुरी नगरी मेरा मंगल करे॥१८॥

जो कुण्डलपुर नगरी वर्तमान भगवान महावीर की जन्मभूमि के रूप में पूज्य और प्रसिद्ध है वह कुण्डलपुरी जगत में मंगल करे॥१९॥

साधुओं के द्वारा स्तुत (संजय-विजय नाम के चारणऋद्धिधारी मुनि जहाँ आये थे) वह कुण्डलपुर नगरी महाराजा सिद्धार्थ की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध हुई है वहाँ निर्मित नंदावर्त महल जहाँ रत्नवृष्टि होती थी वह प्रासाद भी मंगलकारी होवे॥२०॥

इस प्रकार चौबीसों तीर्थकर भगवन्तों की सोलह जन्मभूमियाँ वंद्य हैं, वे हम सभी का मंगल करें तथा हमारी जन्मपरम्परा को समाप्त करें यही भावना है॥२१॥

तीर्थ प्रयाग जो कि भगवान ऋषभदेव का दीक्षा एवं ज्ञानकल्याणक स्थल (प्रयाग) है तथा अहिच्छत्र जो भगवान पार्श्वनाथ का केवलज्ञानकल्याणक स्थल है और जृम्भिका जो भगवान महावीर की केवलज्ञानकल्याणक स्थली है, ऐसे ये तीनों तीर्थक्षेत्र हम सभी का मंगल करें तथा हमें पूर्णज्ञान की प्राप्ति करावें॥२२॥

कैलाशपर्वत, चंपापुरी, पावापुरी, ऊर्जयन्तगिरि (गिरनार पर्वत) एवं सम्मोदशिखर ये पाँच निर्वाणभूमियाँ (चौबीस भगवन्तों की) हैं ये सभी मेरा मंगल करें॥२३॥

चौबीस तीर्थकरों के पंचकल्याणकों से पूज्य जो भूमि-सरोवर-पर्वत आदि तीर्थरूप स्थल हैं उन सभी को नमन करके मैं अपनी मति को सम्यग्ज्ञान रूप बनाने की याचना करती हूँ। पक्ष में ज्ञानमती गणिनी आर्थिका यह याचना करती हैं कि ये तीर्थ मुझे ध्रुवसिद्धि अर्थात् मुक्तिलक्ष्मी प्रदान करें॥२४॥

श्री मुनिसुव्रत भगवान्, श्री महावीर स्वामी, उनकी दिव्यध्वनि, वीरशासन जयंती पर्व तथा यह राजगृही तीर्थ भी समस्त भव्य जीवों के लिए एवं सम्पूर्ण जगत के लिए भी क्षेम, सुभिक्ष, शांति और समृद्धि को करे

भावयामहे।

संप्रति वीरनिर्वाणसंवत्सरं त्रिंशदधिकपंचविंशतिशततमं वर्तते। अस्मात्संवत्सरात् एकोन-चत्वारिंशत्सहस्र-चतुःशत-नवतिवर्षन्यून-शतकोटि-सागरकालपूर्वं श्रीचंद्रप्रभो भगवान् मोक्षमवाप। अस्मात्कालात् दशलक्षपूर्ववर्षान् प्राक् अस्याष्टमतीर्थकरस्य काशीदेशे चन्द्रपुरीनगरीशासको महासेननृपतिः इन्द्रादिपूज्यस्तस्य महाराज्यः लक्ष्मणामातुः गर्भात् जन्म बभूव। चन्द्रपुर्यां पौषकृष्णैकादश्यां जन्मकल्याणकं बभूव। कुंदपुष्पसन्निभोऽयं चन्द्रप्रभस्तीर्थकरः सर्वर्तुकवने नागवृक्षतले पौषकृष्णैकादश्यामेव दीक्षाकल्याणकमपि समवाप।

श्रीभगवान् पार्श्वनाथतृतीयसहस्राब्दीमहोत्सवघोषणा — पौषकृष्णैकादश्यां तिथौ काशीदेशे वाराणस्यां नगर्यां महानृपतेः अश्वसेनस्य महाराज्यः वामादेव्यो गर्भात् भगवान् पार्श्वनाथो जज्ञे। उग्रवंशशिरोमणिः मरकतमणिसन्निभः त्रयोविंशतितमस्तीर्थकरोऽयं अस्मात् वीरनिर्वाणसंवत्सरात् द्विसहस्र-अष्टशताशीतिवर्षपूर्वं अवततार।

उक्तं च 'तिलोयपण्णत्ति' ग्रंथे —

अटुत्तरिअधियाए वेसदपरिमाणवासअदिरित्ते।

पासजिणुप्पत्तीदो उप्पत्ती वड्डमाणस्स^१॥५७७॥

द्विशत-अष्टसप्ततिवर्षानन्तरं वर्द्धमानजिनोऽवतीर्णः।

अस्यां संख्यायां षड्विंशतिशतानि द्व्यधिकानि संख्यामेलने द्विसहस्र-अष्टशताशीतिसंख्या भवति

तथा हम सबकी सिद्धि के लिए होवे ऐसी भावना हम भाते हैं।

इस समय वीर निर्वाण संवत्सर का २५३० वाँ वर्ष चल रहा है। इस संवत्सर से ३९ हजार चार सौ नब्बे (३९४९०) वर्ष कम सौ करोड़ सागर काल पूर्व श्री चन्द्रप्रभ भगवान मोक्ष गये। इस उपर्युक्त कथित काल से दश लाख पूर्व वर्ष पहले इन आठवें तीर्थकर का काशी देश में चन्द्रपुरी नगरी के शासक इन्द्रादि से पूज्य महासेन राजा की महारानी लक्ष्मणा माता के गर्भ से जन्म हुआ था। चन्द्रपुरी नगरी में पौष कृष्णा एकादशी तिथि को जन्मकल्याणक हुआ था। कुंद पुष्प के समान श्वेत कांति के धारक तीर्थकर श्री चन्द्रप्रभ भगवान ने सर्वर्तुकवन में नागवृक्ष के नीचे पौष कृष्णा एकादशी को ही दीक्षा धारण करके दीक्षाकल्याणक महोत्सव को प्राप्त किया था।

भगवान श्री पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव की घोषणा —

पौष कृष्णा एकादशी तिथि में काशी देश की बनारस नगरी में महाराजा अश्वसेन की महारानी वामादेवी के गर्भ से भगवान पार्श्वनाथ का जन्म हुआ था। उग्रवंश के शिरोमणि मरकतमणि (पन्ना के समान हरा) के समान हरित वर्ण वाले ये तेईसवें तीर्थकर इस वीर निर्वाण संवत्सर से दो हजार आठ सौ अस्सी (२८८०) वर्ष पूर्व अवतरित हुए थे। तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में कहा है —

गाथार्थ — भगवान् पार्श्वनाथ की उत्पत्ति के पश्चात् दो सौ अठत्तर वर्षों के बीत जाने पर वर्धमान तीर्थकर अवतीर्ण हुए।॥५७७॥

दो सौ अठत्तर वर्ष के अनन्तर वर्धमान जिनेन्द्र अवतीर्ण हुए थे।

इस संख्या में २६०२ की संख्या मिलाने पर २८८० की संख्या होती है (२७८+२६०२=२८८०)।

१. तिलोयपण्णत्ति अधिकार ४।

(२७८ + २६०२ = २८८०)

राजगृहीसिद्धक्षेत्रे मार्गशीर्षशुक्लाद्वादश्यां भगवतो मुनिसुव्रतनाथस्य पंचकल्याणकप्रतिष्ठायां जन्मकल्याणक-दिवसे 'भगवान् पार्श्वनाथतृतीयसहस्राब्दीमहोत्सवः' अस्मिन् भारतदेशे सर्वजैनानुयायिभिः प्रभावनापूर्वकं विधातव्य इति प्रेरणा कृता मया। भगवतः पार्श्वनाथस्य कृपाप्रसादेन निर्विघ्नतया अयं महोत्सवः सफलीभूयादिति प्रार्थ्यते।

वाराणस्यां पौषकृष्णैकादश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथाय नमः।

वाराणस्यां पौषकृष्णैकादश्यां अश्ववने देवदारुवृक्षतले दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथाय नमः।

अन्त्यमंगलम्

मुनिसुव्रततीर्थेशं, वीरनाथं च नौम्यहम्।

जन्मभूमिं प्रणम्यापि, नमामि देशनाधराम्॥१॥

शून्यत्रिपंचद्वयंकेऽस्मिन्, वीराब्दे मार्गशीर्षके।

त्रयोदश्यां सिते टीका, मया सेयमपूर्यत॥२॥

षट्खण्डागमग्रन्थोऽयं, तुर्यः खण्डो जयेत् भुवि।

गणिनीज्ञानमत्येयं, कृता टीकापि नन्दताम्॥३॥

* * *

राजगृही सिद्धक्षेत्र में मगसिर शुक्ला द्वादशी को भगवान् मुनिसुव्रतनाथ की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में जन्मकल्याणक के दिन मैंने प्रेरणा प्रदान की कि “भगवान् पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव” इस भारत देश में समस्त जैनधर्म के अनुयायियों के द्वारा प्रभावनापूर्वक मनाना चाहिए।

भगवान् पार्श्वनाथ की कृपाप्रसाद से यह महोत्सव सफल होवे, यही मेरी प्रार्थना है।

यहाँ निम्न मंत्र द्रष्टव्य हैं—

वाराणस्यां पौषकृष्णैकादश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथाय नमः।

वाराणस्यां पौषकृष्णैकादश्यां अश्ववने देवदारुवृक्षतले दीक्षाकल्याणकप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथाय नमः।

अन्त्य मंगल

श्लोकार्थ—तीर्थकर श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान् एवं वीरनाथ भगवान् को मेरा नमन है। मुनिसुव्रतनाथ की जन्मभूमि राजगृही को प्रणाम करके महावीर स्वामी की देशनाभूमि उसी राजगृही तीर्थ को भी मैं नमस्कार करती हूँ॥१॥

वीर निर्वाण संवत् २५३० में मगसिर शुक्ला त्रयोदशी को यह टीका मेरे द्वारा पूर्ण की गई है॥२॥

षट्खण्डागम ग्रंथ का यह चतुर्थ खण्ड इस पृथ्वीतल पर जयशील होवे तथा मुझ गणिनी ज्ञानमती द्वारा रचित यह सिद्धान्तचिंतामणिटीका भी सबको आनन्दित करे तथा चिरंजीवी होवे, यही मंगल कामना है।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदंतभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य महाग्रन्थराजे चतुर्थखण्डे श्रीभूतबलि-
सूरिकृत-‘वेदनाखंड’ नामग्रन्थस्य श्रीवीरसेनाचार्यविरचित-धवलाटीकाप्रमुखानेकग्रन्था-
धारेण विरचिते विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः चारित्रचक्रवर्ती-श्रीशांतिसागरस्तस्य
पट्टाधीशः श्रीवीरसागरस्तस्य शिष्या जम्बूद्वीपरचना-तीर्थकरजन्मभूमिविकास-
प्रेरिकागणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां अयं
‘वेदनाखण्डनामधेयश्चतुर्थः खण्डः समाप्तः।

पूर्णोऽयं वेदनाखण्डनामचतुर्थः खण्डः

जैनं जयतु शासनम्।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदंत-भूतबली प्रणीत षट्खण्डागम महाग्रन्थराज में चतुर्थ
खण्ड में श्रीभूतबली आचार्य कृत ‘वेदनाखण्ड’ नामक ग्रंथ की श्री वीरसेनाचार्य
विरचित धवला टीका को प्रमुख करके अन्य भी अनेक ग्रंथों के आधार से
रचित बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर
मुनिराज, उनके प्रथम पट्टाधीश आचार्यश्री वीरसागर मुनिराज,
उनकी शिष्या-जम्बूद्वीप रचना निर्माण एवं तीर्थकर
जन्मभूमि विकास की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती
माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-
टीका में यह वेदनाखण्ड नामक
चतुर्थ खण्ड समाप्त हुआ।

॥जैनशासन जयशील होवे॥

मुझ आर्थिका चंदनामती ने आज हस्तिनापुर तीर्थ की पवित्र भूमि पर बैठकर पूज्य गणिनीप्रमुख
आर्थिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा षट्खण्डागम ग्रंथ पर लिखी गई सिद्धान्तचिंतामणिटीका के इस
चतुर्थ खण्ड का हिन्दी अनुवाद पूर्ण करके धन्यता का अनुभव किया है।

ज्ञानमती को नित नमूँ, ज्ञानकली खिल जाय।

ज्ञानज्योति की चमक में, जीवन मम मिल जाय।।



चतुर्थखण्डस्य द्वादशग्रन्थस्य प्रशस्तिः

मंगलाचरणम्

सा कुण्डलपुरी पूज्या, लोकेऽस्मिन् मंगलं क्रियात्।

जन्मभूमिः प्रसिद्धा या, महावीरस्य संप्रति॥१॥

भगवन्महावीरजन्मभूमौ श्रावणकृष्णादशम्यां^१ वीराब्दे एकोनत्रिंशदधिकपंचविंशतितमे एतद्द्वादशग्रन्थस्य सिद्धान्तचिन्तामणिटीका प्रारब्धा मया। यस्मिन् स्थले तीर्थकरशिशोः दर्शनमात्रेण श्रीसंजय-विजयमहामुन्योः शंकायाः समाधानं बभूव तत्पवित्रभूमौ स्थित्वा टीकालेखनेन 'ममापि ज्ञानावरणीयकर्मक्षयोपशमो वर्द्धिष्यते नात्र संदेहः' इति निश्चित्य एव प्रतिमासं कुण्डलपुरक्षेत्रात् राजगृही-पावापुर्योः दर्शन-वन्दनाभक्तयो मया क्रियन्ते श्रद्धया परमप्रीत्या कर्मक्षयार्थं चेति।

अस्मिन् मध्ये पावापुरीसिद्धक्षेत्रे पाण्डुकशिलापरिसरे अवगाहनाप्रमाणा-पद्मरागमणिसन्निभा-खड्गासन-प्रतिमायाः पंचकल्याणकप्रतिष्ठा मध्यमरूपेण वीराब्दे त्रिंशदधिकपंचविंशतितमे मार्गशीर्षशुक्लाषष्ठ्याः आरभ्य दशमीपर्यन्तं^२ संजाता। पुनस्तत्रत्यादेव निर्गत्य वयं राजगृहीनगर्या भगवन्मुनिसुव्रतनाथस्य पंचकल्याणकप्रतिष्ठायां समागच्छाम।

अत्र मार्गशीर्षशुक्लैकादश्याः आरभ्य पूर्णिमापर्यन्तं पंचकल्याणकप्रतिष्ठासीत्। तत्र जन्मकल्याणक-दिवसे^३ मार्गशीर्षशुक्लाद्वादश्यां^४ 'भगवत्पाश्चनाथतृतीयसहस्राब्दीमहोत्सव-करणार्थं वाराणस्याश्चोद्धाटनाथं

मंगलाचरण

श्लोकार्थः—वर्तमान में भगवान महावीर की जन्मभूमि के रूप में प्रसिद्ध वह कुण्डलपुर नगरी लोक में परम पूज्य है वह पावन तीर्थभूमि मेरा मंगल करे॥१॥

भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर तीर्थ पर वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ उनतीस (२५२९) में श्रावण कृष्णा दशमी तिथि को (२४ जुलाई सन् २००३ को) मैंने इस बारहवें ग्रंथ की सिद्धान्तचिन्तामणि टीका का लेखन प्रारम्भ किया। जिस स्थल पर तीर्थकर शिशु के दर्शन मात्र से श्री संजय और विजय महामुनियों की शंका का समाधान हो गया था, उस पवित्र भूमि पर बैठकर टीका का लेखन करने से "मेरे भी ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम वर्द्धिगत होगा इसमें कोई सन्देह नहीं है" ऐसा निश्चय करके ही मैंने प्रतिमाह कुण्डलपुर तीर्थ से राजगृही (भगवान महावीर की प्रथम देशनाभूमि) एवं पावापुरी (भगवान महावीर की निर्वाणभूमि) की श्रद्धापूर्वक परमप्रीति से कर्मक्षय की भावना से दर्शन और वन्दना किया है।

इस मध्य पावापुरी सिद्धक्षेत्र में पाण्डुक शिला परिसर में भगवान महावीर की पद्मरागमणि के समान लाल पाषाण की अवगाहना प्रमाण सात हाथ उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा विराजमान करके उनकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा मध्यम रूप में वीर निर्वाण संवत् २५३० में मगशिर शुक्ला षष्ठी से आरम्भ करके मगशिर शुक्ला दशमी तक सम्पन्न हुई। पुनः वहीं से चलकर हम लोग भगवान् मुनिसुव्रतनाथ की जन्मभूमि राजगृही नगरी में आयोजित पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में पहुँच गये।

राजगृही में मगशिर शुक्ला एकादशी से पूर्णिमा तक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा थी। वहाँ जन्मकल्याणक

१. श्रावण कृ. १०, वी.नि.सं. २५२९, दिनाँक २४-७-२००३ ग्रंथ टीका प्रारंभ। २. पंचकल्याणक पावापुरी में वी.नि.सं. २५३०, मगशिर शु. ६ से १०, दिनाँक २९ नवम्बर से ३ दिसम्बर २००३। ३. राजगृही में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा मगशिर शु. १२, वी.नि.सं. २५३०, दिनाँक ५-१२-२००३।

घोषणा कृता मया।

किंच भगवतो पार्श्वनाथस्य जन्मकल्याणकं द्विसहस्र-अष्टशत-अशीतिवर्षपूर्वं संजातं।

अनंतरं अस्य ग्रन्थस्य टीकापूर्तिः राजगृहीनगर्या तीर्थक्षेत्रे (जिला-नालंदा) वीराब्दे त्रिंशदधिक-पंचविंशति-शततमे मार्गशीर्षशुक्लात्रयोदश्यामभवत्^१। अस्मिन् ग्रन्थे त्रयस्त्रिंशदधिकपञ्चशतानि सूत्राणि, पृष्ठाः पंचसप्तत्यधिक-शतानि सन्ति।

अत्र पर्यंतं वेदनाखण्डनाम-चतुर्थः खण्डः समाप्तः।

अस्य चतुर्थखण्डस्य लेखनकाले दिल्ली-हरियाणा-उत्तरप्रदेश-बिहारप्रदेश-झारखण्डप्रदेशेषु गमनागमनं संजातं।

अस्मात् वीराब्दात् पंचविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमात् आरभ्य त्रिंशदधिकपंचविंशतिशततमपर्यंतं पंचवर्षेषु श्रीऋषभदेवदीक्षा-केवलज्ञानभूमिप्रयागजैनतीर्थ-कांपिल्यपुरी-मथुरा-शौरीपुर-वाराणसी-सिंहपुरी-चन्द्रपुरी-पाटलिपुत्र-कमलदह-कुण्डलपुर-राजगृही-पावापुरी-गुणावां-सम्मेदशिखरसिद्ध-क्षेत्रादितीर्थक्षेत्रेषु दर्शन-वन्दना-भक्ति-ध्यानाभ्यास-टीकालेखनादिश्रेष्ठभावनासु सुकाला व्यतीता अस्माकं महत्पुण्यसंयोगेनेति मन्यामहे।

अस्मिन् चतुर्थखण्डे पंचविंशत्यधिकपंचदशशतानि सूत्राणि (१५२५), पृष्ठाः पंचत्रिंशदधिकषट्शतानि सन्ति।

एषु चतुःषु ग्रन्थेषु १. समयसारः २. प्रवचनसारः ३. प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी ४. पार्श्वभ्युदयः

के दिन मगशिर शुक्ला द्वादशी को मैंने “भगवान् पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव” करने हेतु वाराणसी से महोत्सव का उद्घाटन करने के लिए घोषणा की क्योंकि भगवान् पार्श्वनाथ का जन्मकल्याणक आज से दो हजार आठ सौ अस्सी (२८८०) वर्ष पूर्व बनारस में ही हुआ था।

इसके अनन्तर मगशिर शुक्ला त्रयोदशी को उसी वीर निर्वाण संवत् २५३० में मैंने इस ग्रंथ की टीका को राजगृही तीर्थक्षेत्र (जिला नालंदा) पर पूर्ण किया। इस ग्रंथ में ५३३ सूत्र हैं, १७५ पृष्ठ (मेरे द्वारा हस्तलिखित) हैं।

यहाँ तक वेदनाखण्ड नाम का चतुर्थ खण्ड समाप्त हुआ।

इस चतुर्थखण्ड के (९-१०-११-१२ चार ग्रंथों में निबद्ध चतुर्थ खण्ड के) लेखन काल में दिल्ली-हरियाणा-उत्तर प्रदेश-बिहार प्रदेश और झारखण्ड इन पांच प्रदेशों में गमनागमन (विहार) हुआ है।

वीर निर्वाण संवत् २५२५ से लेकर २५३० तक इन पाँच वर्षों में श्रीवृषभदेव भगवान की दीक्षा और केवलज्ञानकल्याणक भूमि प्रयाग जैन तीर्थ, कांपिल्यपुरी (कम्पिलाजी) मथुरा, शौरीपुर, वाराणसी, सिंहपुरी, चन्द्रपुरी, पाटलिपुत्र (पटना), कमलदह (पटना में स्थित), कुण्डलपुर, राजगृही, पावापुरी, गुणावा, सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र आदि तीर्थों पर दर्शन-वन्दना-भक्ति-ध्यानाभ्यास-टीकालेखन आदि श्रेष्ठ भावनाओं से युक्त अपना समय व्यतीत किया, यह हमारा पुण्य का महान संयोग रहा ऐसा हम मानते हैं।

इस चतुर्थ खण्ड में कुल पन्द्रह सौ पच्चीस (१५२५) सूत्र हैं, छह सौ पैंतिस पृष्ठ (मेरे द्वारा लिखित) हैं। इन चारों ग्रंथों में (९-१०-११-१२ में) १. समयसार २. प्रवचनसार, ३. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी,

५. तिलोयपण्णत्ती ६. तत्त्वार्थवृत्ति: ७. तत्त्वार्थवार्तिकं ८. आदिपुराणं ९. पद्मपुराणं १०. कसायपाहुडग्रन्थः ११. मूलाचारः १२. गोम्मटसारजीवकाण्डं १३. प्राकृतभक्तिः १४. अनगारधर्मामृतं १५. आचारसारः १६. त्रिलोकसारः १७. स्वयंभूस्तोत्रं १८. इष्टोपदेशः १९. नियमसारप्राभृत-स्याद्वादचन्द्रिकाटीका २०. पञ्चास्तिकायादिशास्त्राणां उद्धरणानि गृहीतानि सन्ति।

चतुर्ग्रन्थसमन्वितोऽयं वेदनानामचतुर्थः खण्डः, सहयोगिनः सर्वे ग्रन्थाश्च, सर्वाणितीर्थ-क्षेत्राणि, सर्वाः पंचकल्याणकप्रतिष्ठाः, सर्वत्र तीर्थेषु प्रतिष्ठिताः सर्वा जिनप्रतिमाः, विश्वशांतिमहावीरविधानं, तस्यानुष्ठानं सर्वजिनशासनप्रभावनाकार्याणि चास्माकं, विश्वेषां सर्वत्र चतुर्विधसंघानां च मंगलं कुर्वन्तु, क्षेमं, सुभिक्षं, आरोग्यं शान्तिं पुष्टिं तुष्टिं च वितरन्तु इति भावयामहे।

अत्र कुण्डलपुरतीर्थक्षेत्रे विहारप्रान्तराज्यपाल-महामहिमएम. रामा जोयिस-अशोककुमारसिंह (मंत्री-कला, संस्कृति, युवा एवं पर्यटनविभाग-बिहार) सुरेन्द्रकुमार-‘तरुण’ (राजगीरपूर्वशिक्षामंत्री, बिहारसरकार) ई. हुकुमसिंहमीणा (जिलाधिकारी-नालंदा)-अमितलोढा (आरक्षीअधीक्षक-नालंदा)-ए.के. पाण्डे (सहायक-अधीक्षक-पुरातत्त्वसंग्रहालय-नालंदा) माननीय श्री सी.पी. ठाकुर (केन्द्रीयलघुउद्योगमंत्री-भारतसरकार) डॉ. रवीन्द्रपंत (निदेशक-नवनालंदा-महाविहार) श्रीश्यामचंद्रझा (डी.वाई.एस.पी.) केन्द्रीयविधायक-श्रीश्रवणकुमार (नालंदा) इत्यादयः श्रीमहावीरजन्मभूमिवंदनां कुर्वन्तो महतीप्रशंसां चक्रुः।

शरत्पूर्णिमायां महोत्सवे मम जन्मजयंतीतिथौ महामहिमराज्यपाल न्यायमूर्ति-श्री एम.रामा जोयिस-महानुभावेन भगवानऋषभदेवअन्तर्ग्राहीयनिर्वाणमहामहोत्सवे घोषित-“ श्री ऋषभदेवनेशनलएवार्ड” पुरस्कारेण

४. पार्श्वभ्युदय, ५. तिलोयपण्णत्ती, ६. तत्त्वार्थवृत्ति, ७. तत्त्वार्थवार्तिक, ८. आदिपुराण, ९. पद्मपुराण, १०. कसायपाहुड ग्रंथ, ११. मूलाचार, १२. गोम्मटसार जीवकाण्ड, १३. प्राकृतभक्ति, १४. अनगार धर्मामृत, १५. आचारसार, १६. त्रिलोकसार, १७. स्वयंभूस्तोत्र, १८. इष्टोपदेश, १९. नियमसार प्राभृत की स्याद्वादचन्द्रिका टीका, २०. पञ्चास्तिकाय आदि शास्त्रों के उद्धरण ग्रहण किये हैं।

चार ग्रंथों में निबद्ध यह वेदना नामक चतुर्थ खण्ड है। उसमें सहयोगी बने सभी ग्रंथ, सभी तीर्थक्षेत्र, सभी पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएं, सभी तीर्थों पर प्रतिष्ठित सब जिनप्रतिमाएं, विश्वशांति महावीर विधान, उसका अनुष्ठान एवं मध्य में सम्पन्न हुए समस्त जिनशासन की प्रभावना के कार्य सम्पूर्ण विश्व के लिए और सर्वत्र चतुर्विध संघ के लिए मंगलकारी होवें तथा क्षेम-सुभिक्ष-आरोग्य-शांति-पुष्टि एवं तुष्टि को प्रदान करें यही हमारी भावना है।

यहाँ कुण्डलपुर तीर्थक्षेत्र पर बिहार प्रान्त के राज्यपाल महामहिम एम. रामा. जोयिस, अशोक कुमार सिंह (मंत्री-कला, संस्कृति, युवा एवं पर्यटन विभाग-बिहार प्रदेश), सुरेन्द्र कुमार ‘तरुण’ (पूर्व शिक्षामंत्री-बिहार सरकार)-राजगीर, ई. हुकुमसिंह मीणा (जिलाधिकारी-नालंदा), अमित लोढा (आरक्षी अधीक्षक-नालंदा), ए. के. पाण्डे (सहायक अधीक्षक पुरातत्त्व संग्रहालय-नालंदा), माननीय श्री सी. पी. ठाकुर (केन्द्रीय लघु उद्योगमंत्री-भारत सरकार) डॉ. रवीन्द्र पन्त (निदेशक-नवनालंदा महाविहार), श्री श्यामचन्द्र झा (डी. वाई. एस. पी.), केन्द्रीय विधायक श्री श्रवणकुमार (नालंदा) इत्यादि महानुभावों ने श्री महावीर जन्मभूमि की वन्दना करते हुए उसकी महती प्रशंसा की।

शरदपूर्णिमा महोत्सव के अवसर पर मेरे जन्मदिवस की तिथि आश्विन शुक्ला पूर्णिमा को बिहार प्रदेश के तत्कालीन महामहिम राज्यपाल श्री एम. रामा जोयिस महानुभाव के करकमलों द्वारा भगवान ऋषभदेव

श्री वी. धनंजयकुमारजैनस्य (पूर्व वित्तराज्यमंत्री) सम्मानं कारितम्।

अत्र तीर्थे प्राचार्यश्रीनरेन्द्रप्रकाश-श्री शिवचरणलाल-डॉ. अनुपम जैनादयो विद्वान्सोऽपि समागत्य सहभागिनो बभूवुः।

गुरुपरम्परा — श्रीमद्भगवन्महतिमहावीरस्वामिनां शासने श्री गौतमस्वामिप्रभृतिगणधरदेवादयस्तदनन्तरं अनेके आचार्याः बभूवुः। अस्मिन् दिगम्बर जैनशासनपरम्परायां मूलसंघे श्रीकुन्दकुन्दाय्माये सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यश्चारित्रचक्रवर्ती श्रीशांतिसागरमहामुनीन्द्रो बभूव। तस्य प्रथमशिष्यः प्रथम एव पट्टाचार्यः श्रीवीरसागरमहामुनिः। तस्य गुरुदेवस्यः करकमलाभ्यां आर्थिकादीक्षां संप्राप्य अहं संप्रति 'गणिनीज्ञानमती' नाम्ना प्रसिद्धास्मि।

मम संघस्थ-प्रज्ञाश्रमणीआर्थिकाचन्दनामती-जम्बूद्वीपपीठाधीश-क्षुल्लकमोतीसागर-कर्मयोगी-ब्रह्मचारीरवीन्द्रकुमारजैन (जम्बूद्वीपअध्यक्ष)-ब्रह्मचारिणी कुमारी बीना-कु. आस्था-सारिका-इन्दु-चन्द्रिका-अलका-प्रीति-स्वाति इत्यादि संघस्थव्रतिगणानामनुकूलत्वमपि मम टीकालेखनकार्ये निमित्तमस्ति।

अधुना-भारतदेशस्य राष्ट्रपतिमहामहिम-डॉ. ए.पी.जे. अब्दुलकलाम (शाकाहारी)-प्रधानमंत्री-श्रीअटल-बिहारीवाजपेयी-बिहारप्रान्तराज्यपाल-महामहिम-श्री एम.रामाजोयिस-मुख्यमंत्री-राबड़ीदेवी-इत्यादि महानुभावाः गणतंत्रशासनं रक्षन्ति।

आसां जन्मभूमि-निर्वाणभूमीनां विकास-नवनिर्माण-प्रतिष्ठा-महोत्सवादिकार्येषु मनोवचनकार्यैः धनैश्च

अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव में घोषित किये गये “श्रीऋषभदेव नेशनल अवार्ड” नामक पुरस्कार से श्री वी. धनंजयकुमार जैन (पूर्व वित्तराज्यमंत्री) का सम्मान करवाया गया अर्थात् उन्हें प्रशस्ति आदि के द्वारा सम्मानित किया गया।

उस समारोह में तीर्थ पर प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी, पण्डित श्री शिवचरण लाल जी एवं डॉ. अनुपम जैन आदि अनेक विद्वान भी पधारकर सहभागी बने।

गुरु परम्परा—श्रीमद् भगवान महति महावीर स्वामी के शासन में श्रीगौतमस्वामी आदि गणधर देव हुए, तदनन्तर अनेक आचार्य हुए। इसी दिगम्बर जैनशासन परम्परा में मूलसंघ में, श्री कुन्दकुन्द आम्नाय में, सरस्वतीगच्छ बलाकात्कारगण में बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शान्तिसागर महामुनीन्द्र हुए हैं। उनके प्रथम शिष्य एवं प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर महामुनि थे। उन वीरसागर गुरुदेव के करकमलों से आर्थिका दीक्षा प्राप्त कर मैं आज 'गणिनी ज्ञानमती' नाम से प्रसिद्ध हुई हूँ।

मेरे संघ में स्थित प्रज्ञाश्रमणी आर्थिका चन्दनामती, जम्बूद्वीप के पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर, कर्मयोगी ब्रह्मचारी रवीन्द्र कुमार जैन (जम्बूद्वीप के अध्यक्ष), बालब्रह्मचारिणी कुमारी बीना-कु. आस्था, कु. सारिका, कु. इन्दू, कु. चन्द्रिका, कु. अलका, कु. प्रीति, कु. स्वाति इत्यादि संघस्थ व्रतीगणों की अनुकूलता भी मेरे टीकालेखन कार्य में निमित्त रही है।

इस समय भारत देश के राष्ट्रपति महामहिम डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम हैं (ये शाकाहारी हैं), प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी हैं, बिहारप्रान्त के राज्यपाल महामहिम श्री एम. रामा जोयिस हैं, मुख्यमंत्री राबड़ी देवी इत्यादि महानुभाव गणतंत्र शासन की रक्षा कर रहे हैं।

इन जन्मभूमि, निर्वाणभूमियों के विकास-नवनिर्माण-प्रतिष्ठामहोत्सव आदि कार्यों में मन-वचन-

ये सहयोगिनो जैनधर्मावलम्बिनः श्रावकाः श्राविकाश्च, सर्वेभ्यः सर्वाभ्यश्च मम मंगलाशीर्वादोऽस्तु। ते सर्वे एवमेव धर्मप्रभावनादिकार्याणि कुर्वन्तो मानवजीवनसाफल्यं विदधतु।

अन्त्यमंगलम्

मंगलं संततं कुर्यात्, राजगृही सुजन्मभूः।
 मुनिसुव्रतनाथस्य, दद्यान्मे सुव्रतं त्वसौ॥१॥
 वीरस्य देशनाभूमिः, ज्ञानर्द्धये भवेन्मम।
 षट्खण्डागमग्रन्थानां, ज्ञानं च विशदीभवेत्॥२॥
 तीर्थक्षेत्राणि लोकेऽस्मिन्, यावज्जैनेन्द्रशासनम्।
 गणिनीज्ञानमत्येयं, टीका तावत् श्रियं दिशेत्॥३॥

काय से और धन-सम्पत्ति के द्वारा जो जैनधर्मावलम्बी श्रावक-श्राविकाएं सहयोगी बने हैं उन सभी के लिए मेरा मंगल आशीर्वाद है। वे सभी श्रद्धालु भक्त इसी प्रकार से धर्मप्रभावना आदि के कार्यों को करते हुए अपने मनुष्य जीवन को सफल बनावें।

अन्त्य मंगल

श्लोकार्थ—भगवान् मुनिसुव्रतनाथ की जन्मभूमि राजगृही सभी के लिए मंगल करे तथा मुझे सुव्रतों को—महाव्रत को प्रदान करें॥१॥

वह राजगृही भगवान् महावीर की प्रथम देशनाभूमि है अतः मेरी ज्ञानवृद्धि करे तथा षट्खण्डागम ग्रंथों को समझने हेतु मेरा ज्ञान इस तीर्थ की कृपाप्रसाद से विशद—निर्मलता को प्राप्त होवे॥२॥

इस संसार में जब तक तीर्थक्षेत्र हैं एवं जिनेन्द्र भगवान् का जैनशासन है तब तक यह मुझ गणिनी ज्ञानमती द्वारा रचित टीका श्री—अन्तरंग-बहिरंग लक्ष्मी को प्रदान करती रहे यही मंगल कामना है॥३॥



हिन्दी टीकाकर्त्री की प्रशस्ति

-प्रज्ञाश्रमणी आर्थिका चन्दनामती

“श्री शान्तिनाथ अरु कुंथु अरह तीर्थकरत्रय को नमन करूँ।
उनके चउ चउ कल्याणक से पावन तीरथ को नमन करूँ।
हस्तिनापुरी में तीनों प्रभु की जिनप्रतिमा को नमन करूँ।
वहाँ निर्मित जम्बूद्वीप तीर्थ की सब प्रतिमा को नमन करूँ॥१॥

इस जम्बूद्वीप के परिसर में रत्नत्रयनिलय वसतिका है।
उसमें प्रवास के मध्य लिखी मैंने यह हिन्दी टीका है।
सिद्धान्तसुचिन्तामणि टीका षट्खण्डागम पर लिखी गई।
गणिनीप्रमुखा श्री ज्ञानमती माताजी ने जो लिखी नई॥२॥

इसके चतुर्थ वेदनाखण्ड की हिन्दी टीका पूर्ण हुई।
फाल्गुन शुक्ला पंचमि तिथि भी मेरे जीवन में धन्य हुई।
प्रभु महावीर निर्वाण का संवत् पच्चिस सौ अड़तिस यह है।
सत्ताइस फरवरि दो हजार बारह अरु सोमवार दिन है॥३॥

है आज का दिन महिमाशाली हस्तिनापुरी के उत्सव का।
तीर्थकरत्रय अरु तीनलोक की जिनप्रतिमा के महोत्सव का।
दो वर्ष पूर्व ये पंचकल्याणकपूर्वक हुई प्रतिष्ठित थीं।
राष्ट्रीय महोत्सव हुआ यहाँ तब लाखों जनता हर्षित थी॥४॥

अतएव मनाया गया आज शुभ प्रतिष्ठापना उत्सव है।
अभिषेक हुआ जिनबिम्बों का भक्तों ने किया प्रभु उत्सव है।
प्रभु मल्लिनाथ निर्वाणदिवस भी आज मनाया हम सबने।
लघु पंचकल्याणक में देखा दीक्षाकल्याणक भी हमने॥५॥

हर धार्मिक क्रिया में भाग लिया फिर यह लेखन सम्पन्न किया।
मंगल मुहूर्त में ग्रंथ पूर्णकर मन-वच-तन को धन्य किया।
श्री जिनवर एवं सरस्वती माता के पद में नमन किया।
श्री ज्ञानमती माताजी को कृति अर्पित कर पद नमन किया॥६॥

अपना किञ्चित् परिचय देना समुचित मैं यहाँ समझती हूँ।
गुरु चरणों की छाया सर्वाधिक गौरवमयी समझती हूँ।
गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी की लघु भगिनी कहलाती।
यह शारीरिक संबंध किन्तु उनकी शिष्या बन सुख पाती॥७॥

सन् उन्निस् सौ अट्टावन में अट्टारह मई जनम पाया।
 तिथि ज्येष्ठ कृष्ण मावस की थी दिन रवीवार शुभ कहलाया॥
 श्री छोटेलाल पिता मेरे माँ मोहिनि से मैं धन्य हुई।
 वे रत्नमती आर्यिका बनीं अंतिम समाधि कर धन्य हुई॥८॥

नौ पुत्री एवं चार पुत्र को जनम दिया उस माता ने।
 सबको संस्कारों की घूटी दे धन्य किया उस माता ने॥
 पहली सन्तान हुई मैना अन्तिम त्रिशला सौभाग्यवती।
 मैत्रि में शेष ग्यारह सन्तानों में मैं माधुरि बारहवीं॥९॥

श्री ज्ञानमती जी अभयमती एवं मैं बन चन्दनामती।
 आर्यिका बनीं तीनों बहनें उनमें गणिनी हैं ज्ञानमती॥
 भाई रवीन्द्र जी पीठाधीश्वर श्री रवीन्द्रकीर्ति बनकर।
 जिनधर्म की कीर्ति बढ़ाते हैं अपनी कर्मठता के बल पर॥१०॥

वे आज हैं मांगीतुंगी में इन्द्रध्वज पाठ के आयोजक।
 सानिध्य दे रहे महायज्ञ में कर्मयोगि पीठाधीश्वर॥
 परसों फाल्गुन सुदि सप्तमि तिथि को प्रारंभ करके महाकार्य।
 एक शतक आठ फुट ऋषभदेव प्रतिमा निर्माण का महाकार्य॥११॥

श्री ज्ञानमती माताजी ने यह शुभ मुहूर्त बतलाया है।
 उसके निमित्त ही इन्द्रध्वज का महाविधान कराया है॥
 हो शीघ्र कार्य सम्पन्न मूर्ति पर्वत पर जल्दी प्रगटित हो।
 जैनी संस्कृति की कीर्तिपताका दिग्दिगन्त में प्रसरित हो॥१२॥

अध्यक्ष मूर्ति निर्माण समिति के हैं रवीन्द्रकीर्ति स्वामी।
 सबको संग में लेकर चलना उनकी पहचान मधुर वाणी॥
 इसलिए समिति के सभी कार्यकर्ता इनसे खुश रहते हैं।
 अपने स्वामी जी के स्वागत में सदा हि तत्पर रहते हैं॥१३॥

हम तीन बहन एक भाई चारों अवध प्रान्त के गौरव हैं।
 हम मोक्षमार्ग के अनुयायी गुरुपरम्परा के सौरभ हैं॥
 बचपन में कभी न सोचा था मैं साध्वी दीक्षा धारूंगी।
 शास्त्रों का कर स्वाध्याय कभी ऐसी टीका लिख पाऊंगी॥१४॥

यह सब उपकार ज्ञानमति माताजी का मेरे ऊपर है।
 ग्यारह वर्षीय उम्र से मुझको दिया ब्रह्मचर्य व्रत है॥
 फिर तेरह वर्ष की उम्र में ही आजन्म ग्रहण कर ब्रह्मचर्य।
 गुरुसेवा धर्माध्ययन किया गुरुपद में बीस वर्ष रहकर॥१५॥

तेरह अगस्त उन्निस सौ नवासी रबीवार का दिन आया।
 श्रावण शुक्ला ग्यारस तिथि को मेरा सौभाग्य दिवस आया॥
 मुझको दीक्षा दे मातुश्री ने नाम चन्दनामती दिया।
 माधुरी से बन चन्दनामती आर्यिका जन्म निज धन्य किया॥१६॥

चारित्रचक्रवर्ती शान्तीसागराचार्य के उपवन में।
 इक कलिका बन प्रस्फुटित हुई श्री गुरुवर के नन्दनवन में॥
 जिस परम्परा का संरक्षण करती हैं ज्ञानमती माता।
 उस परम्परा का संवर्धन करना मुझको भी है भाता॥१७॥

हे आयुष्मन्तों! मैंने केवल सुनी यही गुरुवाणी है।
 श्री शान्तिसिंधु गुरु में साकार हुई सच्ची जिनवाणी है॥
 उस परम्परा में वीरसिन्धु शिवसिन्धु आदि आचार्य हुए।
 श्रीधर्मसिन्धु अरु अजितसिंधु श्रेयांससागराचार्य हुए॥१८॥

हैं वर्तमान में अभिनन्दनसागर छट्टे आचार्यप्रवर।
 यह निष्कलंक आचार्य श्रृंखला सदा चलेगी धरती पर॥
 इनमें श्री वीरसिंधु की शिष्या ज्ञानमती माताजी हैं।
 अग्रिम के कई सूरिवर की दीक्षा प्रेरणा प्रदात्री हैं॥१९॥

इनकी कृति यह षट्खण्डागम की संस्कृत टीका रचना है।
 मुझको आदेश मिला हिन्दी अनुवाद तुम्हें यह करना है॥
 गुरु आदेशों का पालन कर, मैंने हिन्दी अनुवाद किया।
 गुरु आशीषों के ही बल पर, मैंने इसका स्वाध्याय किया॥२०॥

मैं सच्चे देव शास्त्र गुरु से, बस यही प्रार्थना करती हूँ।
 श्रुतदेवी ज्ञानमती माता की, स्वास्थ्य कामना करती हूँ॥
 हे भव्यात्माओं! तुम सब दोनों, टीका का स्वाध्याय करो।
 “चन्दनामती” स्वाध्याय का फल, निःश्रेयस पद को प्राप्त करो॥२१॥

॥वर्धतां श्रुतशासनम्॥



षट्खण्डागम पुस्तक-12 – संस्कृत टीका लेखन की तिथि, स्थान एवं दिनांक

क्र.	तिथि	वीर संवत्	ग्राम (स्थान)	दिनांक
प्रारंभ—				
1.	श्रावण कृ. 10	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	24-7-2003
1.	श्रावण कृ. 11	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल (नालंदा) बिहार	25-7-2003
2.	श्रावण कृ. 12	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	26-7-2003
3.	श्रावण कृ. 13	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	27-7-2003
4.	श्रावण शु. 1	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	30-7-2003
5.	श्रावण शु. 2	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	31-7-2003
6.	श्रावण शु. 4	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	1-8-2003
7.	श्रावण शु. 5	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	2-8-2003
8.	श्रावण शु. 6	2529	पावापुरी (नालंदा) बिहार	3-8-2003
8.	श्रावण शु. 9	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	6-8-2003
9.	श्रावण शु. 10	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	7-8-2003
10.	श्रावण शु. 11	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	8-8-2003
11.	श्रावण शु. 12	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	9-8-2003
12.	श्रावण शु. 13	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	10-8-2003
13.	भाद्रपद कृ. 1	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	13-8-2003
14.	भाद्रपद कृ. 2	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	14-8-2003
15.	भाद्रपद कृ. 5	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	17-8-2003
16.	भाद्रपद कृ. 9	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	21-8-2003
17.	भाद्रपद कृ. 11	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	23-8-2003
18.	भाद्रपद कृ. 13	2529	पावापुरी (नालंदा) बिहार	25-8-2003
18.	भाद्रपद शु. 3	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	30-8-2003
19.	आश्विन कृ. 2	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	12-9-2003
20.	आश्विन कृ. 3	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	13-9-2003
21.	आश्विन कृ. 4	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	14-9-2003
22.	आश्विन कृ. 5	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	15-9-2003
23.	आश्विन कृ. 6	2529	पावापुरी (नालंदा) बिहार	16-9-2003
23.	आश्विन कृ. 11	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	22-9-2003
24.	आश्विन कृ. 12	2529	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	23-9-2003

क्र.	तिथि	वीर संवत्	ग्राम (स्थान)	दिनांक
25.	आश्विन कृ. 13	2529	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	24-9-2003
26.	आश्विन शु. 2	2529	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	27-9-2003
27.	आश्विन शु. 3	2529	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	28-9-2003
28.	आश्विन शु. 4	2529	राजगृही (नालंदा) बिहार	29-9-2003
28.	आश्विन शु. 5	2529	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	30-9-2003
29.	आश्विन शु. 6	2529	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	1-10-2003
30.	आश्विन शु. 7	2529	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	2-10-2003
31.	आश्विन शु. 9	2529	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	4-10-2003
32.	आश्विन शु. 10 (विजया दशमी)	2529	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	5-10-2003
33.	आश्विन शु. 11	2529	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	6-10-2003
34.	आश्विन शु. 12	2529	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	7-10-2003
35.	आश्विन शु. 13	2529	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	8-10-2003
36.	कार्तिक कृ. 3	2529	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	13-10-2003
37.	कार्तिक कृ. 4	2529	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	14-10-2003
38.	कार्तिक कृ. 5	2529	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	15-10-2003
39.	कार्तिक कृ. 6	2529	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	16-10-2003
40.	कार्तिक कृ. 7	2529	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	17-10-2003
41.	कार्तिक कृ. 9	2529	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	19-10-2003
42.	कार्तिक कृ. 10	2529	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	20-10-2003
43.	कार्तिक कृ. 11	2529	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	21-10-2003
44.	कार्तिक कृ. 12	2529	पावापुरी (नालंदा) बिहार	22-10-2003
45.	कार्तिक कृ. 13	2529	पावापुरी (नालंदा) बिहार	23-10-2003
44.	कार्तिक शु. 1	2530	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	26-10-2003
45.	कार्तिक शु. 4	2530	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	28-10-2003
46.	मगसिर कृ. 1	2530	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	9-11-2003
47.	मगसिर कृ. 4	2530	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	13-11-2003
48.	मगसिर कृ. 5	2530	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	14-11-2003
49.	मगसिर कृ. 6	2530	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	15-11-2003
50.	मगसिर कृ. 7	2530	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	16-11-2003
51.	मगसिर कृ. 9	2530	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	18-11-2003
52.	मगसिर कृ. 10	2530	कुण्डलपुर, नंदावर्त महल	19-11-2003

क्र.	तिथि	वीर संवत्	ग्राम (स्थान)	दिनांक
53.	मगसिर कृ. 11	2530	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	20-11-2003
54.	मगसिर कृ. 12	2530	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	21-11-2003
55.	मगसिर शु. 1	2530	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	24-11-2003
56.	मगसिर शु. 2	2530	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	25-11-2003
57.	मगसिर शु. 3	2530	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	26-11-2003
58.	मगसिर शु. 4	2530	पावापुरी (नालंदा) बिहार	27-11-2003
59.	मगसिर शु. 5	2530	कुण्डलपुर, नंघावर्त महल	28-11-2003
60.	मगसिर शु. 6	2530	पावापुरी (नालंदा) बिहार	29-11-2003
61.	मगसिर शु. 7	2530	पावापुरी (नालंदा) बिहार	30-11-2003
62.	मगसिर शु. 9	2530	पावापुरी (नालंदा) बिहार	2-12-2003
63.	मगसिर शु. 11	2530	राजगृही (नालंदा) बिहार	4-12-2003
समापन—				
63.	मगसिर शु. 13	2530	राजगृही (नालंदा) बिहार (पंचकल्याणकप्रतिष्ठावसरे)	6-12-2003



सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
-----------	-------	-----------

द्वादशो ग्रंथः

वेदनाप्रत्ययविधानादिनवानुयोगद्वारसमन्वितः

(चतुर्विंशत्यनुयोगद्वारेषु द्वितीयवेदनानुयोगद्वारस्य षोडशभेदान्तर्गतं अष्टमानुयोगद्वारम्)

वेदनाप्रत्ययविधानानुयोगद्वारम्

प्रथमो महाधिकारः

अन्तर्गत प्रथमोऽधिकारः

१.	वेयणापच्यविहाणे ति।	७
२.	पेगम-ववहार-संगहाणं णाणावरणीयवेयणा पाणादिवादपच्चए।	८
३.	मुसावादपच्चए।	१२
४.	अदत्तादाणपच्चए।	१४
५.	मेहुणपच्चए।	१४
६.	परिग्गहपच्चए।	१५
७.	रादिभोयणपच्चए।	१५
८.	एवं कोह-माण-माया-लोह-राग-दोस-मोह-पेम्मपच्चए।	१६
९.	णिदाणपच्चए।	१८
१०.	अब्भक्खाण-कलह-पेसुण्ण-रइ-अरइ-उवहि-णियदि-माण-माय-मोस-मिच्छणाण-मिच्छदंसण-पओअपच्चए।	१८
११.	एवं सत्तहं कम्माणं।	२१
१२.	उज्जुसुदस्स णाणावरणीयवेयणा जोगपच्चए पयडिपदेसगं।	२२
१३.	कसायपच्चए ट्ठिदि-अणुभागवेयणा।	२३
१४.	एवं सत्तण्णं कम्माणं।	२४
१५.	सद्दणयस्स अवत्तव्वं।	२६
१६.	एवं सत्तण्णं कम्माणं।	२८

वेदनास्यामित्यविधानानुयोगद्वारम्

(वेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-नवमानुयोगद्वारम्)

द्वितीयोऽधिकारः

१.	वेयणासामित्तविहाणे ति।	३१
२.	पेगम-ववहाराणं णाणावरणीयवेयणा सिया जीवस्स वा।	३२
३.	सिया णोजीवस्स वा।	३३
४.	सिया जीवाणं वा।	३४
५.	सिया णोजीवाणं वा।	३५
६.	सिया जीवस्स च णोजीवस्स च।	३५

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
७.	सिया जीवस्स च णोजीवाणं च।	३५
८.	सिया जीवाणं च णोजीवस्स च।	३६
९.	सिया जीवाणं च णोजीवाणं च।	३६
१०.	एवं सत्तण्णं कम्माणं।	३६
११.	संगहणयस्स णाणावरणीयवेयणा जीवस्स वा।	३७
१२.	जीवाणं वा।	३८
१३.	एवं सत्तण्णं कम्माणं।	३८
१४.	सददुजुसुदाणं णाणावरणीयवेयणा जीवस्स।	३८
१५.	एवं सत्तण्णं कम्माणं।	४०

अथ वेदनावेदनाविधानानुयोगद्वारम्

(वेदानुयोगद्वारान्तर्गत-दशमानुयोगद्वारम्)

तृतीयोऽधिकारः

१.	वेयणावेयणाविहाणे त्ति।	४२
२.	सव्वं पि कम्मं पयडि त्ति कट्टु णेगमणयस्स।	४४
३.	णाणावरणीयवेयणा सिया बज्झमाणिया वेयणा।	४५
४.	सिया उदिण्णा वेयणा।	४७
५.	सिया उवसंता वेयणा।	४८
६.	सिया बज्झमाणियाओ वेयणाओ।	४९
७.	सिया उदिण्णाओ वेयणाओ।	५०
८.	सिया उवसंताओ वेयणाओ।	५२
९.	सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च।	५३
१०.	सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च।	५४
११.	सिया बज्झमाणियाओ च उदिण्णा च।	५५
१२.	सिया बज्झमाणियाओ च उदिण्णाओ च।	५५
१३.	सिया बज्झमाणिया च उवसंता च।	५८
१४.	सिया बज्झमाणिया च उवसंताओ च।	५८
१५.	सिया बज्झमाणियाओ च उवसंताओ च।	५९
१६.	सिया बज्झमाणियाओ च उवसंताओ च।	५९
१७.	सिया उदिण्णा च उवसंता च।	६१
१८.	सिया उदिण्णा च उवसंताओ च।	६३
१९.	सिया उदिण्णाओ च उवसंता च।	६३
२०.	सिया उदिण्णाओ च उवसंताओ च।	६४

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२१.	सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च उवसंता च।	६४
२२.	सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च उवसंताओ च।	६६
२३.	सिया बज्झमाणिया च उदिण्णाओ च उवसंता च।	६७
२४.	सिया बज्झमाणिया च उदिण्णाओ च उवसंताओ च।	६७
२५.	सिया बज्झमाणियाओ च उदिण्णा च उवसंता च।	६८
२६.	सिया बज्झमाणियाओ च उदिण्णा च उवसंताओ च।	६८
२७.	सिया बज्झमाणियाओ च उदिण्णाओ च उवसंता च।	६८
२८.	सिया बज्झमाणियाओ च उदिण्णाओ च उवसंताओ च।	६८
२९.	एवं सत्तण्णं कम्माणं।	६९
३०.	ववहारणयस्स णाणावरणीयवेयणा सिया बज्झमाणिया वेयणा।	६९
३१.	सिया उदिण्णा वेयणा।	७०
३२.	सिया उवसंता वेयणा।	७१
३३.	सिया उदिण्णाओ वेयणाओ।	७२
३४.	सिया उवसंताओ वेयणाओ।	७३
३५.	सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च।	७३
३६.	सिया बज्झमाणिया च उदिण्णाओ च ।	७४
३७.	सिया बज्झमाणिया च उवसंता च।	७४
३८.	सिया बज्झमाणिया च उवसंता च।	७४
३९.	सिया उदिण्णा च उवसंता च।	७५
४०.	सिया उदिण्णा च उवसंताओ च।	७५
४१.	सिया उदिण्णाओ च उवसंता च।	७६
४२.	सिया उदिण्णाओ च उवसंताओ च।	७६
४३.	सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च उवसंता च।	७७
४४.	सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च उवसंताओ च।	७७
४५.	सिया बज्झमाणिया च उदिण्णाओ च उवसंता च।	७७
४६.	सिया बज्झमाणिया च उदिण्णाओ च उवसंताओ च।	७७
४७.	एवं सत्तण्णं कम्माणं।	७७
४८.	संगहणयस्स णाणावरणीयवेयणा सिया बज्झाणिया वेयणा।	७८
४९.	सिया उदिण्णा वेयणा।	७८
५०.	सिया उवसंता वेयणा।	७८
५१.	सिया बज्झमाणिया च वेयणा च।	७८
५२.	सिया बज्झमाणिया च उवसंता च।	७९
५३.	सिया उदिण्णा च उवसंता च।	७९
५४.	सिया बज्झमाणिया च उदिण्णा च उवसंता च।	७९
५५.	एवं सत्तण्णं कम्माणं।	७९

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
-----------	-------	-----------

५६.	उजुसुदस्स णाणावरणीयवेयणा उदिण्णफलपत्तविवागा वेयणा।	८०
५७.	एवं सत्तण्णं कम्माणं।	८०
५८.	सद्दणयस्स अवत्तव्वं।	८०

वेदनागतिविधानानुयोगद्वारम्

(वेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-एकादशानुयोगद्वारम्)

चतुर्थोऽधिकारः

१.	वेयणागदिविहाणे त्ति।	८३
२.	णेगम-ववहार-संगहाणं णाणावरणीयवेयणा सिया अवट्ठिदा।	८४
३.	सिया ट्ठिदाट्ठिदा।	८४
४.	एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं।	८७
५.	वेयणीयवेयणा सिया ट्ठिदा।	८७
६.	सिया अट्ठिदा।	८७
७.	सिया ट्ठिदाट्ठिदा।	८७
८.	एवमाउव-णामा-गोदाणं।	८७
९.	उजुसुदस्स णाणावरणीयवेयणा सिया ट्ठिदा।	८८
१०.	सिया अट्ठिदा।	८८
११.	एवं सत्तण्णं कम्माणं।	८९
१२.	सद्दणयस्स अवत्तव्वं।	८९

वेदना-अनन्तरविधानानुयोगद्वारम्

(वेदनानुयोगद्वारान्तर्गत-द्वादशानुयोगद्वारम्)

पञ्चमोऽधिकारः

१.	वेयणा-अणंतरविहाणे त्ति।	९२
२.	णेगम-ववहाराणं णाणावरणीयवेयणा अणंतरबंधा।	९३
३.	परंपरबंधा।	९३
४.	तदुभयबंधा।	९४
५.	एवं सत्तण्णं कम्माणं।	९४
६.	संगहणयस्स णाणावरणीयवेयणा अणंतरबंधा।	९५
७.	परंपरबंधा।	९५
८.	एवं सत्तण्णं कम्माणं।	९५
९.	उजुसुदस्स णाणावरणीयवेयणा परंपरबंधा।	९६
१०.	एवं सत्तण्णं कम्माणं।	९७
११.	सद्दणयस्स अवत्तव्वं।	९७

सूत्र सं.

सूत्र

पृष्ठ सं.

द्वितीयो महाधिकारः

वेदनासंनिकर्षविधानानुयोगद्वारम्

(वेदानुयोगद्वारान्तर्गत-त्रयोदशानुयोगद्वारम्)

प्रथमोऽधिकारः

१.	वेयणासणियासविहाणे ति।	१०१
२.	जो सो वेयणासणियासो सो दुविहो— सत्थाणवेयणासणियासो चेव परत्थाणवेयणासणियासो चेव।	१०१
३.	जो सो सत्थाणवेयणासणियासो सो दुविहो— जहण्णओ सत्थाण-वेयणा-सणियासो चेव उक्कस्सओ सत्थाणवेयणासणियासो चेव।	१०२
४.	जो सो जहण्णओ सत्थाणवेयणासणियासो थप्पो सो।	१०३
५.	जो सो उक्कस्सओ सत्थाणवेयणासणियासो सो चउव्विहो— दव्वदो खेत्तदो कालदो भावदो चेदि।	१०३
६.	जस्स णाणावरणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सा तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१०४
७.	णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा।	१०४
८.	तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१०५
९.	उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा।	१०५
१०.	उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणा।	१०६
११.	तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१०६
१२.	उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा।	१०६
१३.	उक्कस्सादो अणुक्कस्सा छट्ठाणपदिदा।	१०७
१४.	अणंतभागहीणा वा असंखेज्जभागहीणा वा संखेज्जभागहीणा वा संखेज्जगुणहीणा वा असंखेज्जगुणहीणा वा अणंतगुणहीणा वा।	१०७
१५.	जस्स णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१०९
१६.	णियमा अणुक्कस्सा।	१०९
१७.	चउट्ठाणपदिदा-असंखेज्जभागहीणा वा संखेज्जभागहीणा वा संखेज्जगुणहीणा वा असंखेज्जगुणहीणा वा।	१०९
१८.	तस्स कालदो किं उक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१११
१९.	उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा।	११२
२०.	उक्कस्सादो अणुक्कस्सा तिट्ठाणपदिदा-असंखेज्जभागहीणा वा संखेज्जभागहीणा वा संखेज्जगुणहीणा वा।	११२
२१.	तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	११३
२२.	उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा।	११३
२३.	उक्कस्सादो अणुक्कस्सा छट्ठाणपदिदा।	११४
२४.	जस्स णाणावरणीयस्स कालदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	११४
२५.	उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा।	११४
२६.	उक्कस्सादो अणुक्कस्सा पञ्चट्ठाणपदिदा।	११५

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२७.	तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	११६
२८.	उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा।	११६
२९.	उक्कस्सादो अणुक्कस्सा चउट्टाणपदिदा।	११६
३०.	तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	११७
३१.	उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा।	११७
३२.	उक्कस्सादो अणुक्कस्सा छट्टाणपदिदा।	११८
३३.	जस्स णाणावरणीयवेयणा भावदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	११८
३४.	उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा।	११८
३५.	उक्कस्सादो अणुक्कस्सा पञ्चट्टाणपदिदा।	११८
३६.	तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	११९
३७.	उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा।	११९
३८.	उक्कस्सादो अणुक्कस्सा चउट्टाणपदिदा।	११९
३९.	तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१२०
४०.	उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा।	१२०
४१.	उक्कस्सादो अणुक्कस्सा तिट्टाणपदिदा असंखेज्जभागहीणा वा संखेज्जभागहीणा वा संखेज्ज- गुणहीणा वा।	१२१
४२.	एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं।	१२३
४३.	जस्स वेयणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सा तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१२३
४४.	णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा।	१२३
४५.	तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१२४
४६.	उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा।	१२४
४७.	उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणा।	१२४
४८.	तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१२४
४९.	णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा।	१२४
५०.	जस्स वेयणीयवेयणा खेत्तदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१२५
५१.	णियमा अणुक्कस्सा चउट्टाणपदिदा।	१२५
५२.	तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१२६
५३.	णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा।	१२६
५४.	तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१२६
५५.	उक्कस्सा भाववेयणा।	१२६
५६.	जस्स वेयणीयवेयणा कालदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१२९
५७.	उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा।	१२९
५८.	उक्कस्सादो अणुक्कस्सा पञ्चट्टाणपदिदा।	१२९
५९.	तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१३०
६०.	णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा।	१३०

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
६१.	तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१३०
६२.	णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा।	१३०
६३.	जस्स वेयणीयवेयणा भावदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१३१
६४.	णियमा अणुक्कस्सा चउट्ठाणपदिदा।	१३१
६५.	तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१३१
६६.	उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा।	१३२
६७.	उक्कस्सादो अणुक्कस्सा विट्ठाणपदिदा असंखेज्जभागहीणा वा असंखेज्जगुणहीणा वा।	१३२
६८.	तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१३२
६९.	णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा।	१३२
७०.	एवं णामा-गोदाणं।	१३३
७१.	जस्स आउअवेयणा दव्वदो उक्कस्सा तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१३३
७२.	णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा।	१३३
७३.	तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१३४
७४.	णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जभागहीणा।	१३४
७५.	तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१३५
७६.	णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा।	१३५
७७.	जस्स आउअवेयणा खेत्तदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१३६
७८.	णियमा अणुक्कस्सा विट्ठाणपदिदा संखेज्जगुणहीणा वा असंखेज्जगुण-हीणा वा।	१३६
७९.	तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१३७
८०.	णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा।	१३७
८१.	तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१३७
८२.	णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा।	१३७
८३.	जस्स आउअवेयणा कालदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१३८
८४.	णियमा अणुक्कस्सा विट्ठाणपदिदा संखेज्जगुणहीणा वा असंखेज्जगुणहीणा वा।	१३८
८५.	तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१३८
८६.	णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा।	१३८
८७.	तस्स भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१३९
८८.	णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा।	१३९
८९.	जस्स आउअवेयणा भावदो उक्कस्सा तस्स दव्वदो किमुक्कस्सा अणु-क्कस्सा।	१३९
९०.	णियमा अणुक्कस्सा तिट्ठाणपदिदा संखेज्जभागहीणा वा संखेज्जगुण-हीणा वा असंखेज्ज-गुणहीणा वा।	१४०
९१.	तस्स खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१४०
९२.	णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा।	१४०
९३.	तस्स कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१४१

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
९४.	णियमा अणुक्कस्सा चउट्टाणपदिदा असंखेज्जभागहीणा वा संखेज्जभागहीणा वा संखेज्जगुणहीणा वा असंखेज्जगुणहीणा वा।	१४१
९५.	जो सो थप्पो जहण्णओ सत्थाणवेयणासण्णियासो सो चउव्विहो—दव्वदो खेत्तदो कालदो भावदो चेदि।	१४२
९६.	जस्स णाणावरणीयवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१४३
९७.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	१४३
९८.	तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१४४
९९.	जहण्णा।	१४४
१००.	तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१४४
१०१.	जहण्णा।	१४४
१०२.	जस्स णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१४५
१०३.	णियमा अजहण्णा चउट्टाणपदिदा असंखेज्जभागब्भहिया वा संखेज्जभागब्भहिया वा, संखेज्जगुणब्भहिया वा असंखेज्जगुणब्भहिया वा।	१४५
१०४.	तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा वा।	१४५
१०५.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	१४५
१०६.	तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा वा।	१४६
१०७.	णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।	१४६
१०८.	जस्स णाणावरणीयवेयणा कालदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१४६
१०९.	जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा पञ्चट्टाणपदिदा अणंतभागब्भहिया वा असंखेज्जभागब्भहिया वा संखेज्जभागब्भहिया वा संखेज्जगुणब्भहिया वा असंखेज्जगुणब्भहिया वा।	१४७
११०.	तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१४७
१११.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	१४८
११२.	तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१४८
११३.	जहण्णा।	१४८
११४.	जस्स णाणावरणीयवेयणा भावदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१४८
११५.	जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो, अजहण्णा पञ्चट्टाणपदिदा।	१४८
११६.	तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१४९
११७.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	१४९
११८.	तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१४९
११९.	जहण्णा।	१४९
१२०.	एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं।	१५०
१२१.	जस्स वेयणीयवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१५०
१२२.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	१५०
१२३.	तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१५१
१२४.	जहण्णा।	१५१

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१२५.	तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा वा।	१५१
१२६.	जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।	१५१
१२७.	जस्स वेयणीयवेयणा खेत्तदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१५२
१२८.	णियमा अजहण्णा चउट्टाणपदिदा।	१५२
१२९.	तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१५२
१३०.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	१५२
१३१.	तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१५२
१३२.	णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।	१५२
१३३.	जस्स वेयणीयवेयणा कालदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१५३
१३४.	जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा पञ्चट्टाणपदिदा।	१५३
१३५.	तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१५३
१३६.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	१५४
१३७.	तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१५४
१३८.	जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।	१५४
१३९.	जस्स वेयणीयवेयणा भावदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१५५
१४०.	जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा चउट्टाणपदिदा।	१५५
१४१.	तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१५५
१४२.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	१५६
१४३.	तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१५६
१४४.	जहण्णा।	१५६
१४५.	जस्स आउअवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१५६
१४६.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	१५६
१४७.	तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१५७
१४८.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	१५७
१४९.	तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१५७
१५०.	णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।	१५७
१५१.	जस्स आउअवेयणा खेत्तदो जहण्णा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१५७
१५२.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	१५७
१५३.	तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१५८
१५४.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	१५८
१५५.	तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ?।	१५८
१५६.	जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा छट्टाणपदिदा।	१५८
१५७.	जस्स आउअवेयणा कालदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१५९
१५८.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	१५९
१५९.	तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१५९

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१६०.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	१५९
१६१.	तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१५९
१६२.	णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।	१६०
१६३.	जस्स आउअवेयणा भावदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१६०
१६४.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	१६०
१६५.	तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१६१
१६६.	जहण्णा वा अजहण्णा वा। जहण्णादो अजहण्णा चउट्ठाणपदिदा।	१६१
१६७.	तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१६१
१६८.	णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।	१६१
१६९.	जस्स णामवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१६२
१७०.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	१६२
१७१.	तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१६२
१७२.	जहण्णा।	१६२
१७३.	तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१६२
१७४.	णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।	१६२
१७५.	जस्स णामवेयणा खेत्तदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१६३
१७६.	णियमा अजहण्णा चउट्ठाणपदिदा।	१६३
१७७.	तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१६३
१७८.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	१६३
१७९.	तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१६४
१८०.	जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा छट्ठाणपदिदा।	१६४
१८१.	जस्स णामवेयणा कालदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१६४
१८२.	जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा पञ्चट्ठाणपदिदा।	१६४
१८३.	तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१६५
१८४.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	१६५
१८५.	तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१६५
१८६.	णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।	१६५
१८७.	जस्स णामवेयणा भावदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१६६
१८८.	णियमा अजहण्णा चउट्ठाणपदिदा।	१६६
१८९.	तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१६६
१९०.	जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा चउट्ठाणपदिदा।	१६६
१९१.	तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१६७
१९२.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	१६७
१९३.	जस्स गोदवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१६७
१९४.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	१६७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१९५.	तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१६८
१९६.	जहण्णा।	१६८
१९७.	तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१६८
१९८.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भिया।	१६८
१९९.	जस्स गोदवेयणा खेत्तदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१६९
२००.	णियमा अजहण्णा चउट्टाणपदिदा।	१६९
२०१.	तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१६९
२०२.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भिया।	१६९
२०३.	तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१६९
२०४.	णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भिया।	१६९
२०५.	जस्स गोदवेयणा कालदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१७०
२०६.	जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा पञ्चट्टाणपदिदा।	१७०
२०७.	तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१७१
२०८.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भिया।	१७१
२०९.	तस्स भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१७१
२१०.	णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भिया।	१७१
२११.	जस्स गोदवेयणा भावदो जहण्णा तस्स दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१७१
२१२.	णियमा अजहण्णा चउट्टाणपदिदा।	१७२
२१३.	तस्स खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१७२
२१४.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भिया।	१७२
२१५.	तस्स कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१७२
२१६.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भिया।	१७२
२१७.	जो सो परत्थाणवेयणासणियासो सो दुविहो—जहण्णओ परत्थाण-वेयणा-सणियासो चेव उक्कस्सओ परत्थाणवेयणासणियासो चेव।	१७३
२१८.	जो सो जहण्णओ परत्थाणवेयणासणियासो सो थप्पो।	१७३
२१९.	जो सो उक्कस्सओ परत्थाणवेयणासणियासो सो चउव्विहो—दव्वदो खेत्तदो कालदो भावदो चेदि।	१७४
२२०.	जस्स णाणावरणीयवेयणा दव्वदो उक्कस्सा तस्स छण्णं कम्माणमाउववज्जाणं दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१७५
२२१.	उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा, उक्कस्सादो अणुक्कस्सा विट्टाणपदिदा।	१७५
२२२.	अणंतभागहीणा वा असंखेज्जभागहीणा।	१७५
२२३.	तस्स आउअवेयणा दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१७६
२२४.	णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा।	१७६
२२५.	एवं छण्णं कम्माणमाउववज्जाणं।	१७७
२२६.	जस्स आउअवेयणा दव्वदो उक्कस्सा तस्स सत्तण्णं कम्माणं वेयणा दव्वदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१७७
२२७.	णियमा अणुक्कस्सा चउट्टाणपदिदा।	१७७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२२८.	असंखेज्जभागहीणा वा संखेज्जभागहीणा वा संखेज्जगुणहीणा वा असंखेज्ज-गुणहीणा वा।	१७८
२२९.	जस्स णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो उक्कस्सा तस्स दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयवेयणा खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१७९
२३०.	उक्कस्सा।	१७९
२३१.	तस्स वेयणीय-आउअ-णामा-गोदवेयणा खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१७९
२३२.	णियमा अणुक्कस्सा असंखेज्जगुणहीणा।	१७९
२३३.	एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं।	१८०
२३४.	जस्स वेयणीयवेयणा खेत्तदो उक्कस्सा तस्स णाणावरणीय-दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयवेयणा खेत्तदो उक्कस्सिया णत्थि।	१८०
२३५.	तस्स आउअ-णामा-गोदवेयणा खेत्तदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१८०
२३६.	उक्कस्सा।	१८०
२३७.	एवमाउअ-णामा-गोदाणं।	१८१
२३८.	जस्स णाणावरणीयवेयणा कालदो उक्कस्सा तस्स छण्णं कम्माणं आउअवज्जाणं वेयणा कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१८१
२३९.	उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा, उक्कस्सादो अणुक्कस्सा असंखेज्ज-भागहीणा।	१८१
२४०.	तस्स आउअवेयणा कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१८२
२४१.	उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा, उक्कस्सादो अणुक्कस्सा चउट्ठाणपदिदा।	१८२
२४२.	एवं छण्णं कम्माणं आउअवज्जाणं।	१८३
२४३.	जस्स आउअवेयणा कालदो उक्कस्सा तस्स सत्तण्णं कम्माणं वेयणा कालदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१८४
२४४.	उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा, उक्कस्सादो अणुक्कस्सा तिट्ठाणपदिदा।	१८४
२४५.	असंखेज्जभागहीणा वा संखेज्जभागहीणा वा संखेज्जगुणहीणा वा।	१८४
२४६.	जस्स णाणावरणीयवेयणा भावदो उक्कस्सा तस्स दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयवेयणा भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१८५
२४७.	उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा, उक्कस्सादो अणुक्कस्सा छट्ठाणपदिदा।	१८५
२४८.	तस्स वेयणीय-आउअ-णामा-गोदवेयणा भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१८६
२४९.	णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा।	१८६
२५०.	एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं।	१८६
२५१.	जस्स वेयणीयवेयणा भावदो उक्कस्सा तस्स णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयवेयणा भावदो सिया अत्थि सिया णत्थि।	१८७
२५२.	जदि अत्थि भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१८७
२५३.	णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा।	१८७
२५४.	तस्स मोहणीयवेयणा भावदो णत्थि।	१८८
२५५.	तस्स आउअवेयणा भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१८९
२५६.	णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा।	१८९
२५७.	तस्स णामा-गोदवेयणा भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१८९

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२५८.	उक्कस्सा।	१९०
२५९.	एवं णामा-गोदानं।	१९०
२६०.	जस्स आउअवेयणा भावदो उक्कस्सा तस्स सत्तणं कम्माणवेयणा भावदो किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा।	१९०
२६१.	णियमा अणुक्कस्सा अणंतगुणहीणा।	१९०
२६२.	जो सो थप्पो जहण्णओ परत्थाणवेयणासण्णियासो सो चउव्विहो—दव्वदो खेत्तदो कालदो भावदो चेदि।	१९१
२६३.	जस्स णाणावरणीयवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स दंसणावरणीय-अंतराइयवेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१९१
२६४.	जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णादो विट्ठाण-पदिदा।	१९२
२६५.	अणंतभागब्भहिया वा असंखेज्जभागब्भहिया वा।	१९२
२६६.	तस्स वेयणीय-णामा-गोदवेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ?।	१९३
२६७.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जभागब्भहिया।	१९३
२६८.	तस्स मोहणीयवेयणा दव्वदो जहण्णिया णत्थि।	१९३
२६९.	तस्स आउअवेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ?।	१९४
२७०.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	१९४
२७१.	एवं दंसणावरणीय-अंतराइयाणं।	१९४
२७२.	जस्स वेयणीयवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स णाणावरणीय-दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं वेयणा दव्वदो जहण्णिया णत्थि।	१९५
२७३.	तस्स आउअवेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ?।	१९५
२७४.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	१९५
२७५.	तस्स णामा-गोदवेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ?।	१९५
२७६.	जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णादो विट्ठाणपदिदा।	१९६
२७७.	अणंतभागब्भहिया वा असंखेज्जभागब्भहिया वा।	१९६
२७८.	एवं णामा-गोदानं।	१९६
२७९.	जस्स मोहणीयवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स छण्णं कम्माणमाउअवज्जाणं वेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१९७
२८०.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जभागब्भहिया।	१९७
२८१.	तस्स आउअवेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा ?।	१९७
२८२.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जभागब्भहिया।	१९७
२८३.	जस्स आउअवेयणा दव्वदो जहण्णा तस्स सत्तणं कम्माणं वेयणा दव्वदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१९७
२८४.	णियमा अजहण्णा चउट्ठाणपदिदा।	१९७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२८५.	जस्स णाणावरणीयवेयणा खेत्तदो जहण्णा तस्स सत्तण्णं कम्माणं वेयणा खेत्तदो किं जहण्णा अजहण्णा।	१९९
२८६.	जहण्णा।	१९९
२८७.	एवं सत्तण्णं कम्माणं।	१९९
२८८.	जस्स णाणावरणीयवेयणा कालदो जहण्णा तस्स दंसणावरणीय-अंतराइयवेयणा कालदो किं जहण्णा अजहण्णा?।	२००
२८९.	जहण्णा।	२००
२९०.	तस्स वेयणीय-आउअ-णामा-गोदवेयणा कालदो किं जहण्णा अजहण्णा ?।	२००
२९१.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	२००
२९२.	तस्स मोहणीयवेयणा कालदो जहण्णिया णत्थि।	२००
२९३.	एवं दंसणावरणीय-अंतराइयाणं।	२००
२९४.	जस्स वेयणीयवेयणा कालदो जहण्णा तस्स णाणावरणीय-दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं वेयणा कालदो जहण्णिया णत्थि।	२०१
२९५.	तस्स आउअ-णामा-गोदवेयणा कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।	२०१
२९६.	जहण्णा।	२०१
२९७.	एवं आउअ-णामा-गोदाणं।	२०१
२९८.	जस्स मोहणीयवेयणा कालदो जहण्णा तस्स सत्तण्णं कम्माणं वेयणा कालदो किं जहण्णा अजहण्णा।	२०१
२९९.	णियमा अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया।	२०२
३००.	जस्स णाणावरणीयवेयणा भावदो जहण्णा तस्स दंसणावरणीय-अंतराइय-वेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।	२०२
३०१.	जहण्णा।	२०२
३०२.	तस्स वेयणीय-आउअ-णामा-गोदवेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ?।	२०२
३०३.	णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।	२०२
३०४.	तस्स मोहणीयवेयणा भावदो जहण्णिया णत्थि।	२०३
३०५.	एवं दंसणावरणीय-अंतराइयाणं।	२०३
३०६.	जस्स वेयणीयवेयणा भावदो जहण्णा तस्स णाणावरणीय-दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयवेयणा भावदो जहण्णिया णत्थि।	२०४
३०७.	तस्स आउअ-णामा-गोदवेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ?।	२०४
३०८.	णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।	२०४
३०९.	जस्स मोहणीयवेयणा भावदो जहण्णा तस्स सत्तण्णं कम्माणं वेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।	२०४
३१०.	णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।	२०५
३११.	जस्स आउअवेयणा भावदो जहण्णा तस्स छण्णं कम्माणं णामवज्जाणं वेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ?।	२०५
३१२.	णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भहिया।	२०५

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
३१३.	तस्स णामवेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा।	२०६
३१४.	जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा छट्ठाणपदिदा।	२०६
३१५.	जस्स णामवेयणा भावदो जहण्णा तस्स छण्णं कम्माणमाउअवज्जाणं वेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ?।	२०६
३१६.	णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भिया।	२०६
३१७.	तस्स आउअवेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ?।	२०६
३१८.	जहण्णा वा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा छट्ठाणपदिदा।	२०६
३१९.	जस्स गोदवेयणा भावदो जहण्णा तस्स सत्तण्णं कम्माणं वेयणा भावदो किं जहण्णा अजहण्णा ?।	२०७
३२०.	णियमा अजहण्णा अणंतगुणब्भिया।	२०७

अथ वेदनापरिमाणविधानानुयोगद्वारम्

(वेदानुयोगद्वारान्तर्गत-चतुर्दशानुयोगद्वारम्)

द्वितीयोऽधिकारः

१.	वेयणापरिमाणविहाणे त्ति।	२१०
२.	तत्थ इमाणि तिण्णि अणुयोगद्वाराणि-पगदिअट्टदासमयपबद्धट्टदा खेत्तपच्चासए त्ति।	२११
३.	पगदिअट्टदाए णाणावरणीय-दंसणावरणीयकम्मस्स केवडियाओ पयडीओ।	२१२
४.	णाणावरणीय-दंसणावरणीयकम्मस्स असंखेज्जलोगपयडीओ।	२१२
५.	एवडियाओ पयडीओ।	२१३
६.	वेयणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ।	२१४
७.	वेयणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ।	२१४
८.	एवडियाओ पयडीओ।	२१४
९.	मोहणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ।	२१५
१०.	मोहणीयस्स कम्मस्स अट्ठावीसं पयडीओ।	२१५
११.	एवडियाओ पयडीओ।	२१५
१२.	आउअस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ।	२१७
१३.	आउअस्स कम्मस्स चत्तारि पयडीओ।	२१७
१४.	एवडियाओ पयडीओ।	२१७
१५.	णामस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ।	२१८
१६.	णामस्स कम्मस्स असंखेज्जलोगमेत्तपयडीओ।	२१८
१७.	एवडियाओ पयडीओ।	२१८
१८.	गोदस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ।	२२०
१९.	गोदस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ।	२२०
२०.	एवडियाओ पयडीओ।	२२०
२१.	अंतराइयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ।	२२१

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२२.	अंतराइयस्स कम्मस्स पञ्च पयडीओ।	२२१
२३.	एवडियाओ पयडीओ।	२२१
२४.	समयपबद्धट्टुदाए।	२२९
२५.	णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयस्स केवडियाओ पयडीओ।	२२९
२६.	णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी तीसं तीसं सागरोवमकोडाकोडीयो समयपबद्धट्टुदाए गुणिदाए।	२२९
२७.	एवडियाओ पयडीओ।	२२९
२८.	वेयणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ।	२३१
२९.	वेयणीयस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी तीसं-पणारस सागरोवमकोडा-कोडीओ समयपबद्धट्टुदाए गुणिदाए।	२३१
३०.	एवडियाओ पयडीओ।	२३१
३१.	मोहणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ।	२३४
३२.	मोहणीयस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी सत्तरि-चत्तालीसं वीसं पणारस-दस-सागरोवम-कोडाकोडीयो समयपबद्धट्टुदाए गुणिताए।	२३४
३३.	एवडियाओ पयडीओ।	२३४
३४.	आउअस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ।	२३७
३५.	आउअस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी अंतोमुहुत्तमंतोमुहुत्तं समय-पबद्धट्टुदाए गुणिदाए।	२३७
३६.	एवडियाओ पयडीओ।	२३७
३७.	णामस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ।	२३७
३८.	णामस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी वीसं-अट्टारस-सोलस-पणारस-चोद्दस-बारस-दस सागरोवमकोडाकोडीयो समयपबद्धट्टुदाए गुणिदाए।	२३८
३९.	एवडियाओ पयडीओ।	२३८
४०.	गोदस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ।	२४२
४१.	गोदस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी वीसं-दससागरोवमकोडाकोडीओ समयपबद्धट्टुदाए गुणिदाए।	२४२
४२.	एवडियाओ पयडीओ।	२४२
४३.	खेत्तपच्चासे त्ति।	२४३
४४.	णाणावरणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ।	२४४
४५.	णाणावरणीयस्स कम्मस्स जो मच्छो जेयणसहस्सओ सयंभुरमणसमुद्दस्स बहिरल्लए तडे अच्छिदो, वेयणसमुग्घादेण समुहदो, काउलेस्सियाए लग्गो, पुणरवि मारणंतियसमुग्घादेण समुहदो, तिण्णि विगहगदिकंडयाणि कारुण से काले अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु उववज्जिहदि त्ति।	२४४
४६.	खेत्तपच्चासेण गुणिदाओ।	२४४
४७.	एवडियाओ पयडीओ।	२४४
४८.	एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं।	२४४
४९.	वेयणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ।	२४४

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
५०.	वेयणीयस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी अण्णदरस्स केवलस्स केवलिसमुग्घादेण सव्वलोगं गदस्स।	२४४
५१.	खेत्तपच्चासेण गुणिताओ।	२४४
५२.	एवडियाओ पयडीओ।	२४६
५३.	एवमाउअ-णामा-गोदाणं।	२४६

अथ वेदनाभागाभागविधानानुयोगद्वारम्

(वेदानुयोगद्वारान्तर्गत-पंचदशानुयोगद्वारम्)

तृतीयोऽधिकारः

१.	वेयणा-भागाभागविहाणे त्ति।	२४९
२.	तत्थ इमाणि तिणिण अणुयोगद्वाराणि-पयडिअट्टदा समयपबद्धट्टदा खेत्तपच्चासे त्ति।	२४९
३.	पयडिअट्टदाए णाणावरणीय-दंसणावरणीयस्स कम्मस्स पयडीओ सव्वपयडीणं केवडियो भागो।	२४९
४.	दुभागो देसूणो।	२४९
५.	वेयणीय-मोहणीय-आउअ-णामा-गोद-अंतराइयस्स कम्मस्स पयडीओ सव्वपयडीणं केवडियो भागो।	२५२
६.	असंखेज्जदिभागो।	२५२
७.	समयपबद्धट्टदाए।	२५२
८.	णाणावरणीय-दंसणावरणीयस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी तीसं तीसं सागरोवमकोडाकोडीयो समयपबद्धट्टदाए गुणिदाए सव्वपयडीणं केवडियाओ भागो ?।	२५३
९.	दुभागो देसूणो।	२५३
१०.	एवं वेयणीय-मोहणीय-आउअ-णामा-गोद-अंतराइयाणं च णेयव्वं।	२५३
११.	णवरि विसेसो सव्वपयडीणं केवडियो भागो।	२५३
१२.	असंखेज्जदि भागो।	२५३
१३.	खेत्तपच्चासे त्ति।	२५४
१४.	णाणावरणीयस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी जो मच्छो जोयणसहस्सियो सयंभुरमणसमुहस्स बाहिरिल्लए तडे अच्छिदो, वेयणसमुग्घादेण समुहदो, काउलेस्सियाए लग्गो, पुणरवि मारणंतिय-समुग्घादेण समुहदो, तिणिण विग्गहकंडयाणि कारुण से काले अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु उववज्जिहदि त्ति खेत्तपच्चासएण गुणिदाओ सव्वपयडीणं केवडियो भागो ?।	२५५
१५.	दुभागो देसूणो।	२५५
१६.	एवं दंसणावरणीय-मोहणीय-अंतराइयाणं।	२५५
१७.	णवरि मोहणीय-अंतराइयस्स सव्वपयडीणं केवडिओ भागो।	२५६
१८.	असंखेज्जदिभागो।	२५६
१९.	वेयणीयस्स कम्मस्स एक्केक्का पयडी अण्णदरस्स केवलस्स केवलिसमुग्घादेण समुहदस्स सव्वलोगं गयस्स खेत्तपच्चासएण गुणिदाओ सव्वपयडीणं केवडिओ भागो।	२५६
२०.	असंखेज्जदिभागो।	२५६
२१.	एवं आउअ-णामा-गोदाणं।	२५६

सूत्र सं.

सूत्र

पृष्ठ सं.

अथ वेदना-अल्पबहुत्वविधानानुयोगद्वारम्

(वेदानुयोगद्वारान्तर्गत-षोडशानुयोगद्वारम्)

चतुर्थोऽधिकारः

१.	वेयणाअप्पाबहुए त्ति।	२५९
२.	तत्थ इमाणि तिणिण अणुयोगद्वाराणि णादव्वाणि भवन्ति — पयडिअट्टदा समयपबद्धट्टदा खेत्त- पच्चासए त्ति।	२५९
३.	पयडिअट्टदाए सव्वत्थोवा गोदस्स कम्मस्स पयडीओ।	२५९
४.	वेयणीयस्स कम्मस्स पयडीओ तत्तियाओ चेव।	२५९
५.	आउअस्स कम्मस्स पयडीओ संखेज्जगुणाओ।	२५९
६.	अंतराइयस्स कम्मस्स पयडीओ विसेसाहियाओ।	२६०
७.	मोहणीयस्स कम्मस्स पयडीओ संखेज्जगुणाओ।	२६०
८.	णामस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ।	२६०
९.	दंसणावरणीयस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ।	२६०
१०.	णाणावरणीयस्स कम्मस्स पयडीओ विसेसाहियाओ।	२६०
११.	समयपबद्धट्टदाए सव्वत्थोवा आउअस्स कम्मस्स पयडीओ।	२६१
१२.	गोदस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ।	२६१
१३.	वेयणीयस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ।	२६१
१४.	अंतराइयस्स कम्मस्स पयडीओ संखेज्जगुणाओ।	२६१
१५.	मोहणीयस्स कम्मस्स पयडीओ संखेज्जगुणाओ।	२६१
१६.	णामस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ।	२६१
१७.	दंसणावरणीयस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ।	२६२
१८.	णाणावरणीयस्स कम्मस्स पयडीओ विसेसाहियाओ।	२६२
१९.	खेत्तपच्चासए त्ति सव्वत्थोवा अंतराइयस्स कम्मस्स पयडीओ।	२६२
२०.	मोहणीयस्स कम्मस्स पयडीओ संखेज्जगुणाओ।	२६२
२१.	आउअस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ।	२६३
२२.	गोदस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ।	२६३
२३.	वेयणीयस्स कम्मस्स पयडीओ विसेसाहियाओ।	२६३
२४.	णामस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ।	२६३
२५.	दंसणावरणीयस्स कम्मस्स पयडीओ असंखेज्जगुणाओ।	२६३
२६.	णाणावरणीयस्स कम्मस्स पयडीओ विसेसाहियाओ।	२६३

द्वादशे ग्रन्थे सूत्र संख्या:-५३२

॥समाप्तोऽयं चतुर्थो वेदनाखण्डः॥

षट्खण्डागम वंदना

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

—शेर छंद—

जैवन्त हो महावीर दिव्यध्वनि जगत में। जैवन्त हो गौतम गणीश ज्ञान जगत में॥
 जैवन्त हो उन रचित द्वादशांग जगत में। जैवन्त हो उपलब्ध शास्त्र अंश जगत में॥1॥
 गौतम ने अपना ज्ञान फिर लोहार्य को दिया। लोहार्य स्वामी से वो जम्बूस्वामी ने लिया॥
 क्रमबद्ध ये त्रय केवली निर्वाण को गये। फिर पाँच मुनी चौदह पूर्व धारी हो गये॥2॥
 नंतर विशाखाचार्य आदि ग्यारह मुनि हुए। एकादशांग पूर्व दश के पूर्ण ज्ञानी थे॥
 अरु शेष चार पूर्व का इक देश ज्ञान पा। परिपाटी क्रम से उसको जगत में भी दिया था॥3॥
 नक्षत्राचार्य आदि पाँच मुनियों ने क्रम से। पाया था वही ज्ञान एक देश अंश में॥
 नंतर सुभद्र आदि चार मुनियों ने पाया। इक अंग ज्ञान देश अंश ज्ञान भी पाया॥4॥
 यह ज्ञान पुनः क्रम से श्रीधरसेन को मिला। अतएव वर्तमान में श्रुत का कमल खिला॥
 इस श्रुत की कहानी सुन रोमांच होता है। शिष्यों के समर्पण का परिज्ञान होता है॥5॥
 निज आयु अल्प जान दो मुनियों को बुलाया। निज ज्ञान उन्हें सौंप मन में हर्ष समाया॥
 मुनिराज नर वाहन तथा सुबुद्धि ने सोचा। गुरु ज्ञानवाटिका की मैं समृद्धि करूँगा॥6॥
 अध्ययन पूर्ण होने पर गुरुवंदना करी। देवों ने पुष्प आदि से गुरु अर्चना करी॥
 मुनिवर सुबुद्धि जी की दंतपंक्ति बनाई। कह पुष्पदंत गुरु ने उनकी कीर्ति बढ़ाई॥7॥
 मुनिराज नरवाहन को पूजा भूत सुरों ने। फिर भूतबली नाम दिया उन्हें गुरु ने॥
 वे इस प्रकार पुष्पदंत भूतबलि बने। षट्खंड जिनागम को जीत चक्रपति बने॥8॥
 गुजरात अंकलेश्वर में चौमासा रचाया। फिर ज्ञान को लिपिबद्ध करना मन में था आया।
 श्री पुष्पदंतमुनि ने सत्प्ररूपणा रची। मुनिराज भूतबलि के पास उसे भेज दी॥9॥
 आगे उन्होंने द्रव्यप्रमाणानुगम आदी। षट्खण्डों में हजारों सूत्रों की भी रचना की॥
 फिर ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी की तिथि आ गई। आगम की रचना पूर्ण कर संतुष्टि छा गई॥10॥
 सिद्धांतचक्रवर्ती थे धरसेन जी सचमुच। श्री पुष्पदंत भूतबली में भी थे ये गुण॥
 पश्चात्त्वर्ति मुनि भी उनके अंशरूप हैं। जिनको मिला सिद्धान्त ज्ञान साररूप है॥11॥
 त्रयखण्ड पे परिकर्म टीका कुन्दकुन्द की। थी पद्धति द्वितीय टीका शामकुण्ड की॥
 श्रीतुम्बूलूर सूरि ने टीका की पंचिका। स्वामी समन्तभद्र ने चौथी रची टीका॥12॥

श्री बप्पदेव गुरु ने लिखी व्याख्याप्रज्ञप्ती। धवलादि टीकाओं के कर्ता वीरसेन जी॥
 इन छह में मात्र धवला उपलब्ध आज है। पाँचों ही शेष टीका के नाम मात्र हैं॥१३॥
 सदि बीसवीं में भी मिले सिद्धान्त ग्रंथ ये। चारित्रचक्रवर्ति शांतिसिंधु कृपा से॥
 इन सबको ताम्रपत्र पे उत्कीर्ण कराया। विद्वानों से टीकाओं का अनुवाद कराया॥१४॥
 संस्कृत तथा प्राकृत में मिश्र है धवल टीका। अतएव मणिप्रवालन्याय युक्त है टीका॥
 इसका ही ले आधार ज्ञानमती मात ने। टीका रची सिद्धान्तचिन्तामणि नाम से॥१५॥
 इन सबकी टीकाओं को बार-बार मैं नमूँ। षट्खण्ड जिनागम में मूलग्रंथ को प्रणमूँ॥
 मुझको भी इन्हें पढ़ने की शक्ति प्राप्त हो। माता सरस्वती मुझे तव भक्ति प्राप्त हो॥१६॥
 षट्खण्ड धरा जीत चक्रवर्ति ज्यों बनें। षट्खंडजिनागम को भी त्यों ही जो पढ़ें॥
 सिद्धान्तचक्रवर्ति वे हों 'चन्दनामती'। मैं भी करूँ सिद्धान्त ग्रंथ की सदा भक्ती॥१७॥

